ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

अष्टपाहुड़ प्रवचन

भाग-३

परम पूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित
परमागम श्री अष्टपाहुड़ (बोधपाहुड़) पर
परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाहिक शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :

श्री दिग बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

प्रथम संस्करण :

ISBN No. :

न्यौछावर राशि : 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.)
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीर परमात्मा का वर्तमान शासन प्रवर्त रहा है। आपश्री की दिव्यध्वनि द्वारा प्रकाशित मोक्षमार्ग, परम्परा हुए अनेक आचार्य भगवन्तों द्वारा आज भी विद्यमान है। श्री गौतम गणधर के बाद अनेक आचार्य हुए, उनमें श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव का स्थान श्री महावीरस्वामी, श्री गौतम गणधर के पश्चात् तीसरे स्थान पर आता है, यह जगत विदित है।

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य विक्रम संवत् ४९ के लगभग हुए हैं। आपश्री ने स्वयं की ऋद्धि द्वारा वर्तमान विदेहक्षेत्र में प्रत्यक्ष विराजमान श्री सीमन्धर भगवान के समवसरण में आठ दिन रहकर दिव्यदेशना ग्रहण की है, वहाँ से आकर उन्होंने अनेक महान परमागमों की रचना की। उनमें अष्टप्राभृत ग्रन्थ का भी समावेश होता है। आचार्य भगवन्त की पवित्र परिणति के दर्शन उनकी प्रत्येक कृतियों में होते हैं। भव्य जीवों के प्रति निष्कारण करुणा करके उन्होंने मोक्षमार्ग का अन्तर–बाह्यस्वरूप स्पष्ट किया है। आचार्य भगवन्त ने मोक्षमार्ग को टिका रखा है, यह कथन वस्तुतः सत्य प्रतीत होता है।

चतुर्थ गुणस्थान से चौदह गुणस्थानपर्यन्त अन्तरंग मोक्षमार्ग के साथ भूमिकानुसार वर्तते विकल्प की मर्यादा कैसी और कितनी होती है वह आपश्री ने स्पष्ट किया है। इस प्रकार निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप स्पष्ट करके अनेक प्रकार के विपरीत अभिप्रायों में से मुमुक्षु जीवों को उभारा है। अष्टप्राभृत ग्रन्थ में मुख्यरूप से निर्ग्रन्थ मुनिदशा कैसी होती है और साथ में कितनी मर्यादा में उस गुणस्थान में विकल्प की स्थिति होती है, यह स्पष्ट किया है।

वर्तमान दिगम्बर साहित्य तो था ही परन्तु साहित्य में निहित मोक्षमार्ग का स्वरूप यदि इस काल में किसी दिव्यशक्ति धारक महापुरुष ने प्रकाशित किया हो तो वे हैं परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी। पूज्य गुरुदेवश्री ने शास्त्रों में निहित मोक्षमार्ग को स्वयं की दिव्य श्रुतलब्धि द्वारा समाज में निर्भीकता से उद्घाटित किया है। शास्त्र में मोक्षमार्ग का रहस्य तो प्ररूपित था ही परन्तु इस काल के अचम्भा समान पूज्य गुरुदेवश्री की अतिशय भगवती प्रज्ञा ने उस रहस्य को स्पष्ट किया है। पूज्य गुरुदेवश्री का असीम उपकार आज तो गाया ही जाता है किन्तु पंचम काल के अन्त तक गाया जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा अनेक परमागमों पर विस्तृत प्रवचन हुए हैं। उनमें अष्टपाहुड़ का भी समावेश होता है। प्रस्तुत प्रवचन शब्दशः प्रकाशित हों, ऐसी भावना मुमुक्षु समाज में से व्यक्त होने से श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विले पार्ला, मुम्बई द्वारा इन प्रवचनों का अक्षरशः

प्रकाशित करना सहर्ष स्वीकार किया गया, तद्नुसार ये प्रवचन सात भाग में प्रकाशित होंगे। इस तृतीय भाग में **बोधपाहुड़** की सम्पूर्ण गाथाओं के प्रवचनों का समावेश है।

बोधपाहुड़ में आयतन, चैत्यगृह, जिनप्रतिमा, दर्शन, जिनबिम्ब, जिनमुद्रा, ज्ञान, देव, तीर्थ, अरहन्त तथा प्रव्रज्या इन ग्यारह विषयों का संक्षिप्त कथन है। 'भावश्रवण है, वह आयतन है, चैत्यगृह है, जिनप्रतिमा है'—ऐसा वर्णन विशेष प्रकार से किया गया है। जिनोपदिष्ट प्रव्रज्या का सम्यक् वर्णन 17 गाथाओं में सुचारूरूप से किया गया है।

उपरोक्त विषयों की सम्पूर्ण छनावट पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक पहलुओं से प्रस्तुत प्रवचनों में की है। आचार्य भगवान के हृदय में प्रविष्ट होकर उनके भावों को खोलने की अलौकिक सामर्थ्य के दर्शन पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों में होते हैं। सम्यक्त्वसहित चारित्र का स्वरूप कैसा होता है, इसका विशद वर्णन प्रस्तुत प्रवचनों में हुआ है।

इन प्रवचनों को सी.डी. में से सुनकर गुजराती भाषा में शब्दश: तैयार करने का कार्य नीलेशभाई जैन, भावनगर द्वारा किया गया है, तत्पश्चात् इन प्रवचनों को श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा जाँचा गया है। बहुत प्रवचन बैटरीवाले होने से जहाँ आवाज बराबर सुनायी नहीं दी, वहाँ .... करके छोड़ दिया गया है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कोष्ठक का भी प्रयोग किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज में भी इन प्रवचनों का व्यापक प्रचार-प्रसार हो, इस भावना से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) ने किया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रवचनों को पुस्तकारूढ़ करने में जागृतिपूर्वक सावधानी रखी गयी तथापि कहीं क्षति रह गयी हो तो पाठकवर्ग से प्रार्थना है कि वे हमें अवश्य सूचित करें। जिनवाणी का कार्य अति गम्भीर है, इसलिए कहीं प्रमादवश क्षति रह गयी हो तो देव-गुरु-शास्त्र की विनम्रतापूर्वक क्षमायाचना करते हैं। पूज्य गुरुदेवश्री के चरणों में तथा प्रशममूर्ति भगवती माता के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन समर्पित करते हुए भावना भाते हैं कि आपश्री की दिव्यदेशना जयवन्त वर्तो.. जयवन्त वर्तो..

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com पर रखा गया है।

अन्तत: प्रस्तुत प्रवचनों के स्वाध्याय द्वारा मुमुक्षु जीव आत्महित की साधना करें इसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृतने पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध–विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्लार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्‌भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते–करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	गाथा	पृष्ठ नम्बर
४९	३०-०७-१९७०	३ से ५	००१
५०	३१-०७-१९७०	६ से ८	०२३
५१	०२-०८-१९७०	८ से १०	०४३
५२	०३-०८-१९७०	१० से १३	०५९
५३	०४-०८-१९७०	१२ से १४	०७८
५४	०५-०८-१९७०	१५ से १७	०९४
५५	०६-०८-१९७०	१७ से २०	११२
५६	०७-०८-१९७०	२० से २२	१३१
५७	०८-०८-१९७०	२२ - २३	१५०
५८	०९-०८-१९७०	२३ - २४	१६८
५९	११-०८-१९७०	२४ - २५	१७६
६०	१२-०८-१९७०	२६ - २७	१९६
१६३	०१-०१-१९७१	२८	२१५
१६४	०२-०१-१९७१	२८ से ३२	२३२
१६५	०३-०१-१९७१	३२	२५६
१६६	०५-०१-१९७१	३२ से ४१	२७४
१६७	०६-०१-१९७१	४१	३०२
१६८	०७-०१-१९७१	४१ से ४४	३१९
१६९	०८-०१-१९७१	४२ से ४८	३४०
१७०	०९-०१-१९७१	४८ से ५१	३६०
१७१	१०-०१-१९७१	५१ से ५४	३७८
१७२	११-०१-१९७१	५४ से ५६	३९८
१७३	१३-०१-१९७१	५६ से ६०	४१५
१७४	१४-०१-१९७१	६०	४३९
१७५	१५-०१-१९७१	६१ - ६२, १ - २	४५७

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ प्रवचन

(श्रीमद् भगवत कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री अष्टपाहुड़ ग्रन्थ पर अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन)

(भाग - 3)

बोधपाहुड़

* गाथा-३-४

आगे इस 'बोधपाहुड' में ग्यारह स्थल बांधे हैं, उनके नाम कहते हैं –

आयदणं चेदिहरं जिणपडिमा दंसणं च जिणबिंबं।
भणियं सुवीयरायं जिणमुद्दा णाणमादत्थं।।३।।
अरहंतेण सुदिट्ठं जं देवं तित्थमिह य अरहंतं।
पावज्जगुणविसुद्धा इय णायव्वा जहाकमसो।।४।।

आयतनं चैत्यगृहं जिनप्रतिमा दर्शनं च जिनबिंबम्।
भणितं सुवीतरागं जिनमुद्रा ज्ञानमात्मार्थम्[१]।।३।।
अर्हता सुदृष्टं यः देवः तीर्थमिह च अर्हन्।
प्रव्रज्या गुणविशुद्धा इति ज्ञातव्याः यथाक्रमशः।।४।।

१. ''आत्मस्थं'' संस्कृत में पाठान्तर है।

* गाथा 1 और 2 के प्रवचन अष्टपाहुड़ प्रवचन भाग-2 में प्रवचन क्रमांक 48 में हैं।

अरहंत–भाषित आयतन जिन–चैत्यगृह प्रतिमा क्रमिक।
दर्शन सु जिन–बिंब वीतरागी जिन सु मुद्रा ज्ञान पद।।३।।
जानो सु देव सु तीर्थ अरहत गुण विशुद्धि से सहित।
दीक्षा हुए ग्यारह विषय सुपरंपरा से ये कथित।।४।।

अर्थ – १. आयतन, २. चैत्यगृह, ३. जिनप्रतिमा, ४. दर्शन, ५. जिनबिम्ब। कैसा है जिनबिम्ब? भले प्रकार वीतराग है, ६. जिनमुद्रा रागसहित नहीं होती है, ७. ज्ञान पद कैसा? आत्मा ही है अर्थ अर्थात् प्रयोजन जिसमें, इस प्रकार सात तो ये निश्चय वीतरागदेव ने कहे वैसे, यथा अनुक्रम से जानने और ८. देव, ९. तीर्थ, १०. अरहन्त तथा गुण से विशुद्ध ११. प्रव्रज्या ये चार जो अरहन्त भगवान ने कहे वैसे इस ग्रन्थ में जानना, इस प्रकार ये ग्यारह स्थल हुए।।३–४।।

भावार्थ – यहाँ आशय इस प्रकार जानना चाहिए कि धर्ममार्ग में कालदोष से अनेक मत हो गये हैं तथा जैनमत में भी भेद हो गये हैं, उनमें आयतन आदि में विपर्यय (विपरीतपना) हुआ है, उनका परमार्थभूत सच्चा स्वरूप तो लोग जानते नहीं हैं और धर्म के लोभी होकर जैसी बाह्य प्रवृत्ति देखते हैं, उनमें ही प्रवर्तने लग जाते हैं, उनको सम्बोधने के लिए यह 'बोधपाहुड' बनाया है। उसमें आयतन आदि ग्यारह स्थानों का परमार्थभूत सच्चा स्वरूप जैसा सर्वज्ञदेव ने कहा है, वैसे कहेंगे, अनुक्रम में जैसे नाम कहे हैं, वैसे ही अनुक्रम से इनका व्याख्यान करेंगे सो जानने योग्य है।।३–४।।

प्रवचन-४९, गाथा-३ से ५, गुरुवार, आषाढ़ कृष्ण १२, दिनांक ३०-०७-१९७०

चौथा अधिकार। इसमें ग्यारह बोल अध्यात्म से उतारे हुए हैं। **आगे इस 'बोधपाहुड' में ग्यारह स्थल बांधे हैं, उनके नाम कहते हैं –**

आयदणं चेदिहरं जिणपडिमा दंसणं च जिणबिंबं।
भणियं सुवीयरायं जिणमुद्दा णाणमादत्थं।।३।।
अरहंतेण सुदिट्ठं जं देवं तित्थमिह य अरहंतं।
पावज्जगुणविसुद्धा इय णायव्वा जहाकमसो।।४।।

वीतरागमार्ग में निश्चय से आयतन, आत्मा के स्वभाव को आयतन कहा है। यह मन्दिर आदि आयतन है अथवा देव-गुरु-शास्त्र को जो आयतन कहा जाता है। आता है न छह आयतन? वह सब व्यवहार है, विकल्प के निमित्त हैं। वास्तविक आयतन तो यह आत्मा है। मुनिपने में संयमसहित वीतरागदशा, यह मुनिपने का भाव, यही आत्मा का आयतन है—यह आत्मा का घर है। समझ में आया? यह मन्दिर और बाह्य आयतन है न? देव-गुरु-शास्त्र, इनको माननेवाले छह आयतन कहलाते हैं, वह सब व्यवहार है, विकल्प है। निश्चय से आयतन यह भगवान आत्मा, जिसमें अनन्त आनन्दादि का स्थान है। ऐसा आत्मा जो केवलज्ञानपने के भाव को साधता है, ऐसे आत्मा को यहाँ आयतन कहा जाता है। शोभालालजी! **आयतन,...** आयतन।

चैत्यगृह,... चैत्य का घर, यह प्रतिमा का घर। यह चैत्य अर्थात् आनन्द ज्ञानस्वरूप आत्मा, वह चैत्यगृह आत्मा है। लो, यह चैत्यगृह (अर्थात्) पुस्तकें, वह चैत्यगृह नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहो, समझ में आया कुछ? जो आत्मा आनन्द और ज्ञान का घर, वह चैत्यगृह तो आत्मा है। यहाँ मुनिपने की अपेक्षा से वर्णन करेंगे। वीतरागी मुनि, निर्ग्रन्थ, भावलिंग और बाह्य लिंग नग्न। यह अन्तर में वस्तु का स्वभाव, आनन्द का स्थान, ज्ञान का स्थान, वह सब आत्मा है। वह आत्मा कहीं राग का स्थान या बाह्य के स्थान वह आत्मा के आयतन नहीं हैं। अकेले बाहर में लग पड़े थे। उसके लिए यह समझाते हैं। मन्दिर और मन्दिर की प्रतिमाओं को और उसमें ही धर्म मानकर बैठ गये। ऐसा नहीं। समझ में आया? अकेले चैतन्य घर बनाकर धर्म मानकर बैठ गये या प्रतिमा और मन्दिर बनाकर धर्म मानकर बैठ गये। वह धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : प्रेमचन्दभाई कहते...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...अर्थात्? वह होता है, परन्तु वह व्यवहार है। निश्चय आत्मा के आनन्द का आयतन—स्थान और जिन चैतन्यघर अपना पहिचानकर अनुभव हुआ, तत्पश्चात् विकल्प आवे, तब उस चैतन्यघर का भक्ति आदि का शुभभाव कहने में आता है। निश्चय हो तो उसे व्यवहार कहने में आता है। परन्तु भान ही नहीं और अकेली प्रतिमा तथा चैत्यघर को उसे ही धर्म मानकर बैठे, यह उसके लिये बनाया है कि तेरी सब बातें

एकान्त हैं। राग से धर्म मानकर, व्यवहार से धर्म मानकर, मन्दिर और चैत्यगृह बनाकर धर्म मानकर बैठे, वह सब मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया ? ऐई..! मोहनभाई!

मुमुक्षु : व्याख्या बहुत कड़क।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मूल तेरा आत्मा अन्दर वस्तु है, महाचैत्य आनन्द का घर, केवलज्ञान का घर तो आत्मा है। केवलज्ञान कोई बाहर से आता होगा ? प्रतिमा से आता होगा ? भगवान के दर्शन करने से केवलज्ञान आता होगा ? भगवानजीभाई!

रागरहित चैतन्यबिम्ब भगवान, जो तेरा चैत्यघर है, इसके सब अर्थ करेंगे, हों! परन्तु सब बात वीतरागता में उतारेंगे। वीतरागता उतारने के लिये यह ग्यारह बोल कहे हैं। व्यवहार होता है, परन्तु वह व्यवहार धर्म है—ऐसा नहीं है। ऐसा भानसहित... आता है, देखो! **'जिणपडिमा'** जिन की प्रतिमा। यह **जिनप्रतिमा,...** वह आत्मा। पुण्य-पाप के विकल्परहित अन्दर वीतराग परिणमन हुआ, इसका नाम जिन की, वीतराग की प्रतिमा है। यह जिनप्रतिमा तो व्यवहार है। शुभभाव आवे तो भक्ति का निमित्त इतना कहलाता है। परन्तु अकेली जिनप्रतिमा उसे ही माने और यह जिनप्रतिमा रह जाए तो उसे धर्म का लाभ नहीं होता। पोपटभाई!

जिनप्रतिमा! यह आत्मा जिनप्रतिमा है। आनन्द का नाथ, रागरहित, विकल्परहित, पुण्य के व्यवहाररहित ऐसा आत्मा जिसे अन्तर दृष्टि में प्रगट हुआ और स्वरूप की स्थिरता, वीतरागता जमी, उसे यहाँ जिनप्रतिमा, वीतराग की प्रतिमा कहते हैं। वह तो बाह्य निक्षेप है। परन्तु यदि यह हो तो उसे व्यवहार निक्षेप का व्यवहार कहने में आता है। परन्तु आत्मा की जिनप्रतिमा छोड़ दे और अकेली जिनप्रतिमा बाहर को ही माने और वहाँ भटका करे तो उसमें कहीं आत्मा का लाभ नहीं होता। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

'दंसणं...' चौथा बोल। यह **दर्शन,...** उसे कहते हैं, निर्ग्रन्थ मुद्रा वीतरागी, वह दर्शन। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित जिसकी मुद्रा नग्न (हो)। नग्न मुद्रा और अन्दर में तीन कषाय के अभाव की वीतराग मुद्रा (हो), उसे यहाँ दर्शन कहा जाता है। जैनदर्शन उसे कहा गया है। कहो, समझ में आया ? जैनदर्शन आत्मा के अतिरिक्त कहीं बाहर नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। अन्तर स्वरूप शुद्ध वीतरागी मूर्ति आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति

की वीतरागता तथा बाह्य नग्नदशा—दिगम्बरदशा को जैनशासन में दर्शन / जैनदर्शन उसे कहा है। समझ में आया? बाहर से जैनदर्शन मान ले, पाँच महाव्रत पालन किये और मन्दिर बनाये और यात्राएँ कीं, वह जैनदर्शन है, (ऐसा माने तो) वह जैनदर्शन नहीं। समझ में आया? सबकी गाथाएँ विस्तार से आयेंगी। **'दंसणं'** ऐसी मुद्रा दिखायी दे। जिसकी वीतरागता और नग्नता, पंच महाव्रत के विकल्प भले हो और नग्नदशा भी अन्तर में वीतरागी बिम्ब हो गया है। जैसा स्वरूप वीतराग है, वैसी पर्याय में वीतरागदशा प्रगट हो गयी है। समझ में आया? उसे दर्शन कहा जाता है। उसे जैनदर्शन कहा जाता है।

मुमुक्षु : चौबीस तीर्थंकर को भजे-पूजे, वह जैन।

पूज्य गुरुदेवश्री : भजे-पूजे क्या? भगवान को भजे-पूजे, वह तो विकल्प है, राग है। राग है, वह जैनदर्शन, निश्चयदर्शन, सच्चा दर्शन नहीं है। वह तो व्यवहार है, वह तो विकल्प है। ऐसा हो वहाँ ऐसा भले हो, परन्तु यह निश्चय जिनदर्शन वह नहीं है। कहो, भीखाभाई!

मुमुक्षु : ...दर्शन या अपना दर्शन?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना और मुनिपने का दोनों का। अपने को प्रगटे तो वह और नहीं तो मुनिपने को प्रगट हुआ, वह जिनदर्शन। उसे जान, ऐसा यहाँ बोध कहना है न? बोधपाहुड़ अर्थात् ऐसा जैनदर्शन है, उसे जान। ऐसे मुनि जो राग-द्वेषरहित, पुण्य-पापरहित वीतरागदशा प्रगट हुई और बाहर में नग्न दशा (हुई), उसे तू जैनदर्शन जान। ऐसा। ऐई..! बोधपाहुड़ है न? आयतन यह है। आत्मा जो मुनि है, उसे तू आयतन जान। बोध, बोध है न प्रत्येक में?

मुमुक्षु : ....बाहिर रखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहिर भले हो परन्तु यह आयतन ऐसा है, ऐसा तेरा स्वभाव है। ऐसा फिर जान। ऐसा कहते हैं न? वह आयतन वीतरागभाव कहा न? वीतरागभाव। वीतरागभाव आयतन। वह आयतन तू जान तो तुझे अन्दर वह आयतन प्रगट हो, ऐसा कहते हैं। वीतरागीभाव, वह आयतन है। वह वीतरागीभाव तू जान तो वीतरागीभाव को प्रगट कर तो तू आयतन हो। जान—जान की बात है न पहली। बोध—जान। उसको तू जानता है...

मुमुक्षु : वीतरागभाव तो तब जब जिनमुद्रा...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह होती है। जब अन्दर वीतरागभाव होता है तो बाह्य में नग्नमुद्रा हो जाती है। उसे वस्त्र-पात्र रहे ऐसा कभी नहीं होता।

मुमुक्षु : वस्त्र निकालने तो पड़ते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निकाले कौन? जड़ की पर्याय कौन छोड़े? वे छूट जाते हैं। ऐसी बातें हैं, भाई! समझ में आया?

ऐसे को तू जान, ऐसा कहते हैं। और वह जानना, वह भले पर हो परन्तु उसका यथार्थ ज्ञान करे तो अपने को भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र हो। ऐसा जिनदर्शन है। जैनदर्शन, वह ऐसे मुनि को दर्शन है, ऐसा तू प्रगट कर तो तू जैनदर्शन है। समझ में आया? जैनदर्शन कोई राग में या बाहर में नहीं रहता। वीतरागभाव। परन्तु पर वीतरागभाव है, उसे तू यहाँ निश्चित कर तो तेरा वीतरागभाव तुझे श्रद्धा में आवे और ज्ञान में स्थिर हो तो तू भी जैनदर्शन है। समझ में आया?

यहाँ तो वस्तु ऐसी पर है परन्तु उसकी वीतरागता का ज्ञान होना चाहिए। मुनि हैं, वे विकल्पवाले हैं, वह कोई गुण नहीं। शरीर मुद्रा है, वह कोई गुण नहीं। उनके गुण वीतरागता है, उसे जो जाने, उसके आत्मा का दर्शन-ज्ञान हुए बिना नहीं रहता। आता है न मोक्षमार्गप्रकाशक में? सच्चे देव का स्वरूप जाने, उसे समकित हुए बिना नहीं रहता। सच्चे गुरु का स्वरूप जाने, उसे समकित हुए बिना नहीं रहता। ऐसा अनेकान्त सिद्धान्त के वास्तविक तत्त्व को भलीभाँति जाने तो सम्यग्दर्शन हुए बिना नहीं रहता। आहाहा!

४. दर्शन, ५. जिनबिंब। है न पाँचवाँ? यह जिनबिम्ब, वह आत्मा। वीतरागी बिम्ब आत्मा। जिसे वीतरागता प्रगट हुई है, वह जिनबिम्ब है। उसे तू जिनबिम्ब जान, ऐसा कहते हैं। यह जिनबिम्ब है, वह तो व्यवहार है। ऐसा जिनबिम्ब का भान है, उसे ऐसा व्यवहार विकल्प (होता है)। यह नीचे कहेंगे। ऐसा विकल्प आवे, हो, परन्तु वह वास्तविक जिनबिम्ब नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह व्यवहार बीच में न हो तो वह निश्चय को जानता नहीं और व्यवहार को ही मान ले तो वह निश्चय को जानता नहीं।

मुमुक्षु : चैतन्यमूर्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : चैतन्यमूर्ति। अन्तर रागरहित स्वयं वीतराग मुद्रा, अपना स्वरूप ही वीतराग बिम्ब है। स्वरूप—स्वभाव। उसकी दृष्टि-श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता प्रगट करे, वह प्रगट जिनबिम्ब है। उसे जिनबिम्ब जान। जिनबिम्ब तो वीतराग का बिम्ब होता है न? वीतराग का घन हो जाना। यह तो जिनबिम्ब बाहर है, व्यवहार है। वहाँ ही लग पड़े कि इसके कारण हमें धर्म होगा, जिनबिम्ब के दर्शन से और जिनबिम्ब की भक्ति से और उसकी स्तुति बराबर ध्यान रखकर करना, हों! ओहो! उससे धर्म है नहीं। यह ध्यान रखकर करे तो वह विकल्प और शुभराग है। वह जिनबिम्ब नहीं। आहाहा! भीखाभाई! भारी कठिन।

मुमुक्षु : यहाँ जिनप्रतिमा और जिनबिम्ब में क्या अन्तर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह थोड़ा-थोड़ा आगे कहेंगे। प्रत्येक में ... होगा। मूल तो सब में मुनिपने का बिम्ब लेते हैं।

'भणियं सुवीयरायं' वीतराग ने ऐसा कहा है, ऐसा कहते हैं, देखो! वीतरागदेव, त्रिलोकनाथ परमात्मा ने यह आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प रहित होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की बिम्ब दशा जिसे प्रगट हुई, उसे भगवान ने जिनबिम्ब आयतन, चैत्यगृह, जिनप्रतिमा और दर्शन कहा गया है। सबका अर्थ आयेगा। यह तो अभी शब्दार्थ है। प्रत्येक की गाथाएँ आयेंगी। समझ में आया?

जिनमुद्रा... लो! छाप। वीतरागभाव की छाप अन्दर प्रगट हो। वह जिनमुद्रा। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प और वह कहीं जिनमुद्रा नहीं है। वह तो व्यवहार जिनमुद्रा है। परन्तु यह निश्चय जिनमुद्रा ऐसी होवे तो उसको व्यवहार जिनमुद्रा कहा जाता है। परन्तु अकेली जिनमुद्रा और उसे ही मान बैठे और वहाँ ही रुक जाए तो उसे आत्मा का लाभ कुछ नहीं होता। गजब बात, भाई! भीखाभाई! आयतन कहा। देव-गुरु-शास्त्र आयतन नहीं, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : गुरु को आयतन रखा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ रखा नहीं। वह तो ऐसा है, उसका तू ज्ञान कर और तुझमें उतर, ऐसा कहते हैं। ज्ञान कर। वह कहीं ज्ञान कराते नहीं। ऐसा स्वरूप है, उसका तू ज्ञान

कर। बोधपाहुड़ है न! ज्ञान करके तू अन्तर स्वरूप में जा तो तुझे तेरा जिनबिम्बपना, जिनमुद्रापना प्रगट होगा। बात ऐसी है। जानना-जानना। उसमें प्रत्येक में बोध है न? बोध को जानना।

'णाणं' ज्ञान किसे कहना? कि आत्मा में से उत्पन्न हों, उसे ज्ञान कहते हैं, ऐसा कहते हैं। शास्त्र का पठन और वह सब ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। **'णाणमादत्थं'** आहाहा! आत्मा में ज्ञान का पिण्ड चैतन्यबिम्ब है, उसमें से प्रगट हुआ जो ज्ञान, वीतरागी पर्याय, चारित्रसहित की यहाँ बात की है, हों! उसे यहाँ ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? यह रटा करते हैं न, 'आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।' परन्तु अर्थात् क्या कहते हैं? 'आतम भावना भावतां जीव लहे (केवलज्ञान रे)...' परन्तु आतमभावना अर्थात् क्या? कनुभाई! आता है या नहीं? आता है?

मुमुक्षु : आता है। लाख बार...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ... बार करे। लाख बार करे नहीं, वह आतम भावना भावता शब्द, वह विकल्प। उसमें कहाँ आतमभावना थी।

आत्मा अन्दर निर्विकल्पस्वरूप है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विकल्प, उससे भिन्न ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें ज्ञान भरा है, ज्ञानस्वरूप है। उसमें से उत्पन्न होती दशा को ज्ञान कहा जाता है। कहो, समझ में आया? देखो न! यह किसलिए लिया है? एकान्त उन शास्त्र के पठनवाले ऐसा कहे, हमको ज्ञान है। जिन भगवान के मन्दिर बनाये, करोड़ मन्दिर बनाये, लाख मन्दिर बनाये; इसलिए यह जिनबिम्ब। वह नहीं। जिनबिम्ब यहाँ है। समझ में आया? ऐई... ! आहाहा! बात ऐसी है।

निश्चय का ऐसा भान होने के पश्चात् जब तक स्वरूप में स्थिर न हो सके, वहाँ ऐसा बीच में व्यवहार आता है। मुनि को अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प आता है, समकिती को भक्ति का विकल्प आता है, परन्तु वह सब व्यवहार है। व्यवहार अभूतार्थ है। वह वास्तविक धर्म है नहीं। अरे रे! भाई! समझ में आया? ईश्वरचन्दजी! कुन्दकुन्दाचार्य...

'अरहंतेण सुदिट्ठं' लो! अरिहन्त भगवान को ऐसा स्वरूप भले दिखा है। **'जं देवं'** और देव का स्वरूप आगे कहेंगे। देव किसे कहते हैं? जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष

दे, उसे देव कहते हैं। यह पुण्य दे, पैसा दे और भोग दे तथा केवलज्ञान दे, उसे देव कहते हैं। ऐसा कहेंगे।

मुमुक्षु : पुत्र दे या न दे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुत्र दे उसमें। ऐई! इसका अर्थ कि देव अरिहन्त परमात्मा है, ऐसा अपना आत्मा है, उसका जो भान करे, उसमें से तो पवित्रता प्रगट करे। परन्तु उसमें जो विकल्प आवे, उससे पुण्य बँध जाए। उससे लक्ष्मी भी मिले, भोग भी मिले और अपनी पवित्रता से मोक्ष मिले। उसे देव (कहते हैं)। ददाति इति देव, आगे आयेगा। पण्डितजी! यह अपेक्षा से बात है। मोक्ष भी भगवान दे। यहाँ तो निमित्त से कथन है न।

मुमुक्षु : जिसके पास हो वह दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके पास हो, वह दे। नहीं हो, वह क्या दे? वह कहे, भाई! गाली दे। दे गाली। तेरे पास गाली है। मेरे पास नहीं तो मैं कहाँ से दूँ? नहीं कहते इस लोक में? कहते हैं या नहीं? वे गाली की झपट बोले। गाळ समझते हो या नहीं? सेठ! गालियाँ। नहीं समझते सेठ। उलझते हैं। गालियाँ बहुत दे, फिर अन्त में कहे कि भाई! तेरे पास गालियाँ हैं तो दे। हमारे पास गालियाँ नहीं। तेरे पास गालियाँ भरी हैं अकेली।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि देव के पास तो अकेली वीतरागता भरी है। और उसमें वीतरागता न रह सके तो उसकी भूमिका में साथ में भक्ति का, पुण्य का, दया, दान का, भगवान की पूजा का भाव आता है। तो उस भाव से पुण्य भी मिलता है, विषयभोग भी मिलते हैं। समझ में आया? धर्म, अर्थ और काम। पुण्य स्वयं, अर्थ–पैसा मिले, उससे भोग मिले और पवित्रता से मोक्ष मिले। ऐसा कहते हैं। तब ऐसे वीतरागमार्ग में ही ऐसा होता है, अन्यत्र नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! यह पूरा श्लोक आयेगा। प्रत्येक के श्लोक आयेंगे।

उसमें आता है न? ओमकार में। 'कामदं मोक्षदं चैव।' आता है न? भगवान परमात्मा की पहिचान करके जिसे सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र प्रगट हुआ, उसे मोक्ष तो है। परन्तु कामदं। बीच में विकल्प जो बाकी रहता है, उससे काम को देगा, भोग को देगा। अर्थात् ऐसी अनुकूलता मिलेगी, इतनी बात। वह ज्ञानी कहीं मानता नहीं कि यह भोग

अच्छे हैं, ऐसा नहीं मानता। यह तो मिलेंगे और होंगे, ऐसी बात करते हैं। समझ में आया ? अरे !

देव सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर, ऐसी जिसे ज्ञान की भानदशा में शक्ति प्रगट हुई है, उसे जो पहिचाने और अपने में ऐसी दशा को प्रगट करे, उसे देव ने मोक्ष दिया, ऐसा कहा जाता है और राग से पुण्य और भोग मिले तो अर्थ और भोग दिये। और पुण्य तो स्वयं व्यवहार धर्म है, उसे दिया। धर्म उसने दिया। धर्म अर्थात् पुण्य, पैसा उसने दिया और भोग उसने दिया, मोक्ष उसने दिया। ऐसा व्यवहार से उसका ज्ञान कराने के लिये ऐसा ज्ञान कर, यह कहते हैं। वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र ऐसा पुण्य या ऐसा भोग या ऐसी अनुकूलता होती नहीं, ऐसा कहते हैं।

तीर्थंकर प्रकृति का भाव किसे होता है ? समकिती को होता है। जिसे राग की प्रीति और रुचि है, उसे तीर्थंकरपने का भाव नहीं हो सकता। ऐसी पुण्यप्रकृति भी समकित बिना अर्थात् वीतराग के श्रद्धा-ज्ञान बिना ऐसी उत्कृष्ट पुण्य प्रकृति भी अज्ञानी को नहीं हो सकती, ऐसा कहते हैं। समकिती कहीं मानता नहीं कि मुझे भोग मिला, वह ठीक है। वह तो संयोग मिलते हैं, इतनी बात है। संयोगी भाव से संयोग मिले, स्वभावभाव से मुक्ति मिले। आहाहा ! मार्ग ऐसा है, भाई !

कहते हैं न ? यह श्वेताम्बर में कहते हैं। हमारे तो आगम और शास्त्र का... क्या कहलाता है ? आगम और प्रतिमा। जिनबिम्ब और जिनआगम भव्यजन को आधार। ऐसा वे लोग कहते हैं। भव्यजीव को तो अभी आगम और जिनप्रतिमा का आधार है। अरे ! आधार आत्मा का है। अब उनका आधार कैसा ? वह तो निमित्त है। समझ में आया ? यह फिर व्यवहार आता अवश्य है। पूर्ण वीतराग न हो, वहाँ व्यवहार पूजा, भक्ति, दान, स्तुति ऐसा भाव होता है। परन्तु वह व्यवहार है। उपचारी जैनदर्शन है। सच्चा दर्शन तो अन्तर वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह वीतराग दर्शन है। समझ में आया ? वह देव है। वह तीर्थ-तीर्थ है। वह आत्मा तीर्थ है। वहाँ बाहर तीर्थ में भटके तो मरकर नहीं तीर्थ, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया ? शत्रुंजय तीर्थ, सम्मेदशिखर तीर्थ और... ऐई ! यह तीर्थ प्रगट हुआ हो तो उनको व्यवहार तीर्थ कहा जाता है। तीर्थ तो यहाँ अन्दर है भगवान। राग-द्वेष का नाश करके अन्दर स्वरूप की शुद्धता के स्नान द्वारा राग-द्वेष का नाश करे, ऐसा

चैतन्य जल भगवान स्वयं तीर्थ है। बाहर का तीर्थ तो व्यवहार तीर्थ कहा जाता है। समझ में आया?

यह तो बाहर में अकेले चिपटे थे और उसके लिये यह स्पष्टीकरण किया है। शास्त्र में व्यवहार है अवश्य। समकिती को होता है। परन्तु तू वहाँ ही मानकर बैठ जाए। अपने भगवान की पूजा करो, चौबीस घण्टे बैठो वहाँ और उससे मोक्ष होगा। मोक्ष तीन काल में नहीं होगा, ले। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया? भीखाभाई! इसके लिये बोधपाहुड़ की रचना की है। तीर्थ।

अरिहन्त का स्वरूप, लो। अरिहन्त का स्वरूप भी भगवान कहते हैं ऐसा। कहने के लिए अरिहन्त कहे, परन्तु अरिहन्त का नाम क्या? उनकी स्थापना क्या? उनका द्रव्य क्या? उनका भाव क्या? उन्हें पंचेन्द्रिय का उदय है या नहीं? वे मनुष्य में हैं या नहीं? इन सबकी पहिचान कराकर अरिहन्त का स्वरूप कहेंगे। ऐसे अरिहन्त-अरिहन्त अकेले करे, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसे अरिहन्त-अरिहन्त ऐसा नाम तो बौद्ध में भी आता है। समझ में आया? उसमें कहे, वहाँ ऐसा कहते हैं, शंकराचार्य को ज्ञान प्रगट हुआ था। एक वृक्ष है, वहाँ बद्रीनाथ में। उसके नीचे ज्योति प्रगट हुई थी, ऐसा कहते हैं। कौन सी ज्योति प्रगटे? जगत में आत्मा पूरा एकरूप माने, उसे यह ज्योति कहाँ से प्रगटे? समझ में आया? खण्ड-खण्ड आत्मा माना उसने।

एक वस्तु स्वयं अखण्ड है। अपनी एक, हों! सब होकर नहीं। पूर्ण नाथ अनन्त-अनन्त स्वभाव का नाथ, अनन्त शान्ति और कल्पवृक्ष का नाथ स्वयं है। ऐसा भगवान, उसे जाने बिना ज्योति कहाँ से प्रगट होती थी? बाहर में वृक्ष के नीचे आँख बन्द करके ध्यान में बैठे, इसलिए प्रगट हो – ऐसा नहीं है। समझ में आया? कहो, ऐई! नेमिदासभाई! अब मन्दिर तो बना लिया। प्रेमचन्दभाई ऐसा बोलता थे कि यह सब हो गया, अब कहो कि दिक्कत नहीं। प्रेमचन्दभाई परन्तु पहले से कहते थे। अभी कहाँ कहते हैं? कि बाहर का तो मार्ग यह व्यवहार है। शुभभाव हो, वहाँ अशुभ से बचने के लिये, ऐसा कहना वह व्यवहार है। बाकी उस समय शुभभाव के असंख्य प्रकार, जिस प्रकार का शुभभाव आवे, उस प्रकार से दया पर लक्ष्य जाए। शुभभाव का चैत्य पर लक्ष्य जाए, भगवान पर जाए। ऐसे शुभभाव होते हैं। परन्तु तू उन्हें ही धर्म मान ले और उसमें से कल्याण हो जाएगा, भव

का अभाव होगा, इस वस्तु में कुछ दम नहीं है। शोभालालजी! आहाहा! तथा वह नहीं, ऐसा भी नहीं है। क्योंकि निश्चय जहाँ पूरा न हो, स्वद्रव्य का आश्रय पूरा न हो, वहाँ तक अपूर्णता में ऐसा रागभाव आये बिना (नहीं रहता)। वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

कहा था न कल, नहीं? वह फिर हाथ आया। उसमें। मनोभाव। मानसिक। मानसिक भाव। स्थापना में मानसिक भाव ऐसा आये बिना रहता नहीं। जिसे वीतराग-स्वभाव के प्रति अपना प्रेम हुआ है, ऐसे वीतरागी भगवान के प्रति उसे प्रेम आये बिना नहीं रहता। परन्तु उसकी मर्यादा शुभराग जितनी है। उसे कोई संवर-निर्जरा मान ले, ऐसा है नहीं। यह श्वेताम्बर में ऐसा है। श्वेताम्बर निकलने के पश्चात् यह बनाया है न? श्वेताम्बर निकले हुए कुन्दकुन्दाचार्य से पहले, सौ वर्ष पहले। उन लोगों में तो ऐसा चलता है कि भगवान की पूजा से आस्रव टलते हैं और संवर बढ़ता है। भगवान की पूजा से आस्रव टलते हैं। समझ में आया? और संवर बढ़े। यहाँ कहे, संवर-फंवर बढ़े नहीं। संवर क्या होता था? भगवान तो परद्रव्य है। तीन लोक के नाथ समवसरण में परमेश्वर विराजते हों तो उनकी भक्ति का भाव वह शुभराग है, पुण्य है, संवर-निर्जरा नहीं। आहाहा!

संवर और निर्जरा वह तो चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसका आश्रय लेकर जो निज शुद्धता प्रगट हो, वह धर्म है। पर का आश्रय जितना ले, उतना विकल्प उठे। हो, परन्तु वह विकल्प उठे, वह पुण्य है। व्यवहार परद्रव्य आश्रित उत्पन्न होता है। और जिसे निश्चय हो, उसे व्यवहार होता है, उसका पुण्य बँधता है। निश्चय से उसे शुद्धता प्रगट होती है। समझ में आया? ऐसा आया यह तो। ऐई! भीखाभाई! आहाहा!

अरहन्त... और **प्रव्रज्या...** ग्यारहवाँ बोल। प्रव्रज्या। प्रव्रज्या किसे कहना? यह साधु साधुपद कहते हैं न? यह प्रव्रज्या ली... प्रव्रज्या ली... वह प्रव्रज्या किसे कहना, यह आगे लेंगे। अन्तर में शान्ति का सागर उछले और जिसमें शान्ति... शान्ति... शान्ति... वीतरागता के उपशमरस में झूलता हो। ऐसे भाव को भगवान प्रव्रज्या कहते हैं। यह नग्नपना ले लिया और वस्त्र छोड़कर साधु हो गये, इसलिए प्रव्रज्या हुई, ऐसा है नहीं। यह तो एक-एक बोल की गाथा लेंगे प्रत्येक की। पूरा बोधपाहुड़ इसके लिये बनाया है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने। समझ में आया? प्रव्रज्या इसमें ली। ऐई! प्रकाशदासजी! यह महाव्रत लिये। धूल भी नहीं, कहते हैं। सुन न! आगे कहेंगे।

प्रव्रज्या तो अन्तर आनन्द का सागर भगवान पर नजर लगायी और जहाँ आनन्द उछले, वीतरागता के, अमृत के रस के घूँट पीता हो, अन्तर अमृतस्वरूप भगवान आत्मा प्रस्फुटित होकर पर्याय में अमृत का प्याला निकल कर आवे, ऐसी दशा को प्रव्रज्या कहा जाता है। आहाहा! गजब व्याख्या, भाई! देखो! अर्थ किया है न वहाँ?

कैसा है जिनबिम्ब ? भले प्रकार वीतराग है, ६. जिनमुद्रा रागसहित नहीं होती है,... देखो! जिनमुद्रा। **७. ज्ञान पद कैसा ? आत्मा ही है अर्थ अर्थात् प्रयोजन जिसमें,...** देखो! नीचे अर्थ में है। ज्ञान उसे कहते हैं कि जिसमें आत्मा ही अकेला प्रयोजन है अन्दर। जिसमें शास्त्र और विकल्प की आवश्यकता नहीं। आहाहा! यह पढ़ने से ज्ञान होता है, यह इसमें इनकार करते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा जिसका प्रयोजन है। ऐसे ध्येय में आत्मा जिसने लिया है, उसे ज्ञान होता है। शास्त्र ध्येय में लिया है, उसे ज्ञान नहीं होता। आहाहा! भगवानजीभाई! भारी बातें आयीं। देखो न! पाठ ऐसा है या नहीं?

'णाणमादत्थं' आत्मा जिसका प्रयोजन। जिस ज्ञान में आत्मा भासित हुआ है। जो ज्ञान आत्मा में से आया है। जिस ज्ञान को विकल्प का और निमित्त का आश्रय नहीं है। ऐसा चैतन्यबिम्ब भगवान, उसके आश्रय से प्रगट हुआ ज्ञान, उसे ज्ञान कहते हैं। सुनने से ज्ञान होता है, वह ज्ञान नहीं, वाँचन से ज्ञान हो वह ज्ञान नहीं—ऐसा कहते हैं। ऐई! फिर ऐसा ज्ञान हो, तब ऐसा विकल्प उसे होता है। वाँचन का, पढ़ने का। परन्तु वह सब व्यवहार है। समझ में आया? श्यामलालजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा! जगत को मूल वस्तु का हाथ पता बिना... चैतन्य कल्पवृक्ष। भगवान चैतन्य कल्पवृक्ष। चिन्तामणिरत्न भगवान आत्मा स्वयं। उसका जिसे भान नहीं, उसका जिसे आश्रय नहीं। अकेले बाहर के देव-गुरु-शास्त्र का आश्रय लेकर पड़े हैं और उसमें कल्याण होगा, (ऐसा मानते हैं)। भटक मरेगा, कहते हैं। शोभालालजी! ऐसे पुस्तक को पूजना-फूजना वह सब धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : उसमें चैत्यगृह आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : चैत्यगृह आ गये।

मुमुक्षु : प्रतिमा को नहीं पूजना, इसको पूजना। दोनों नहीं पूजे जाएँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों एक जाति के हैं। चैत्यगृह हो या प्रतिमा हो। दोनों एक

जाति—पुण्य विकल्प है। उसके आश्रय से। प्रतिमा नहीं मानना और चैत्यगृह मानना, यह तो दोनों विरुद्ध हो गया। समझ में आया? आहाहा! परन्तु गजब। कुन्दकुन्दाचार्य की शैली शासन वीतरागपने को प्रगट करे ऐसी है। बाकी सब बातें। आहाहा! समझ में आया या नहीं? यह मन्दिर-बन्दिर बनाया इससे धर्म होता है, ऐसा नहीं, इससे इनकार करते हैं। नेमिदासभाई ने एक लाख में बनाया। अब एक लाख में क्या बनाया? ४५ हजार रुपये का बनाया, उसमें क्या था? दस लाख में से दो-पाँच लाख डाले हों तो भी अभी कुछ ठीक। तो भी धर्म तो नहीं।

मुमुक्षु : आप तो इनकार ही करते हो, चाहे जितना डाले तो भी इनकार करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब डालने न दे। इनके हाथ में कहाँ बात है? जरा कंचनबेन के हाथ में है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो व्यवहार से बात चलती है तो क्या चले? ऐई! परन्तु देखो पहले छूट से देते थे, वैसा अभी छूट से नहीं देते। खबर है न इतनी तो बात हाथ में...

मुमुक्षु : पर्याय पलटे...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वापस अलग बात है। यह रामजीभाई स्पष्टीकरण करते हैं। सौ के साथ २१, २५। यह किसका करेगा? कहा किसका? नेमिदाससेठ का। रंक भिखारी बातें की फिर २५ लिखावे। आहार के। परन्तु यह क्या हुआ? ऐई..! बात आवे तो सब आवे। यह बड़े गृहस्थ कहलाये। बड़े बँगले दो-दो लाख रुपये के । वे बेचारे साधारण हों। दो-पाँच हजार की पूँजी हो या साधारण हो। २१ तो वह लिखावे। और २१ लिखावे नेमिदास।

मुमुक्षु : अपने २१०० गिन लेना।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई दिक्कत नहीं। रामजीभाई कहे गुड़ की गाड़ी है न? सब जाओ। यह तो एक जानने की बात है। ऐई! श्यामलालभाई! जानने की बात है।

ज्ञान, जिसमें आत्मा का प्रयोजन है। यह तो निश्चय वीतरागदेव को कहे। त्रिलोकनाथ देव परमात्मा ने यह कहा है। जिनमार्ग में इसे जिनमुद्रा और प्रतिमा को आयतन कहा जाता

है। ऐसा यहाँ कहा है। देखो! उसको जिनमार्ग व्यवहार... यह तो व्यवहार है। निश्चय जिनमार्ग में तो यह जिनप्रतिमा आत्मा जिनबिम्ब, जिनमुद्रा, तीर्थ—ऐसा जिनमार्ग में वीतरागदेव ने ऐसा कहा है। कोई कहे कि यह और उन्होंने कहा। इन वीतरागदेव ने यह कहा है। फिर वह व्यवहार बीच में आता है। उसे वीतरागदेव बतलाते हैं कि यह बीच में यह होता है। जोर वहाँ नहीं है। जोर यहाँ है। **'जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं'** (गाथा-२)। ऐसा आया न? आहाहा!

जिनवरनाथ वीतरागदेव ने जैनशासन में इसे आत्मा में स्थान दिया है। न्यालभाई में आता है न? देव-गुरु-शास्त्र अनायतन आता है। वहाँ भड़कते हैं। यहाँ भड़कते तब। नवरंगभाई थे न? आता है न लेख? न्यालभाई का। अन्तिम पीछे का। उसमें ऐसा आवे, देव-गुरु-शास्त्र अनायतन। अब व्यवहार में सब २५ बोल ले, वे आयतन। देव-गुरु-शास्त्र और उनके भक्त यह छह आयतन हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार कहा इसलिए आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ व्यवहार लिखा नहीं, इसलिए इसे आयतन है। यह कहे, आयतन नहीं। वह आयतन कैसा? बाहर का भाव, वह आयतन कैसा? आयतन तो यह है। पुण्य-पाप के विकल्परहित भगवान आत्मा, वह तेरा घर, वह तेरा स्थान, उसमें रहना वह तेरा घर, ऐसा निवास करना, वह तेरा स्थान। बाकी राग में निवास करना, वह तेरा आयतन, घर-बर है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐई! पोपटभाई! पोपटभाई ने मूर्ति स्थापित की है बहुत जगह। अभी वहाँ इनके घर का बाकी है। क्यों? वढवाण का तो मूल इनका घर कहलाये या नहीं? वहाँ खर्च किये, उस रूप से जोरावर, यहाँ कुण्डला, यहाँ अमुक अमुक कहीं, लोग ऐसी बातें करें कि गाँव में अधिक खर्च करेंगे। ऐसा लोग कहते हैं। गाँव में बाकी रह गया है न? मन्दिर ठीक से नहीं हुआ। परन्तु वह तो होनेवाला हो तब होता है। वह कहीं कोई करता है? ऐसी बात है। ऐई! भीखाभाई!

यहाँ तो उसका भाव होता है, वह शुभभाव है और शुभभाव है, वह राग है। राग, वह जैनशासन नहीं। आहाहा! जैनशासन अर्थात् वीतराग की शिक्षा, वीतरागभाव। आहाहा! समझ में आया? ऐ..! हिम्मतभाई! अब तुम्हारे मन्दिर हो गया। कैसे इन्हें हो गया न ठीक से? अब फिर मन्दिर में शुभभाव कहने में दिक्कत नहीं न!

मुमुक्षु : ...बाधा क्या हो उसमें ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाधा तो कही थी। वहाँ भी कहा था। क्या है ?

वीतरागदेव ने कहे... निश्चय ऐसा स्वभाव वीतराग देव ने परमेश्वर ने कहा है। जिनप्रतिमा वह तेरा आत्मस्वभाव, और ऐसे मुनि को प्रगट हुआ इसलिए वे जिनप्रतिमा, वह जिनमुद्रा, वह जिनबिम्ब। सब जिनबिम्ब। वीतरागीभाव, वह जिनबिम्ब हो या यह पत्थर की मूर्ति वह जिनबिम्ब होगी ?

मुमुक्षु : उसकी प्रतिष्ठा की, पश्चात् वीतराग हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वीतराग व्यवहार से। निश्चय से नहीं। ऐई! व्यवहार से जिनबिम्ब सही। शुभभाव आवे। निश्चय जिनबिम्ब यहाँ (अन्दर) है। राग बिना की आत्मा की दशा प्रगट होना, वह जिनबिम्ब है। ऐसा जिसे न जँचे और अकेले मूर्ति, पूजा और वहीं का वहीं चिपटा रहे, और पैसे खर्च करे करोड़ों और धर्म हो जाए, तीन काल में है नहीं। भारी विवाद। एक ओर कहे, होता है, एक ओर कहे उससे धर्म नहीं। पोपटभाई! बाकी होता तो अवश्य है न।

गणधर, सन्त भी भक्ति में परमात्मा का स्मरण करना, लो न। स्मरण करना, वह राग है। णमो अरिहन्ताणं, णमो परमात्मा, ॐ, यह विकल्प है-राग है। यह कहीं निश्चय जैनशासन, सच्चा जैनशासन नहीं है। उपचारिक है। परन्तु यह प्रगट हुआ हो तो उसको उपचारिक जैनशासन कहा जाता है। यह मूल में ठिकाना न हो एकड़ा के और शून्य को लिख डालना। समझ में आया ? भारी बात। प्रकाशदासजी! कहो, ऐसा आया वापस। यहाँ देखो! जिनबिम्ब प्रतिमा यहाँ आयी।

भगवान अमृत का सागर चैतन्यप्रभु, वह वीतराग का बिम्ब स्वयं है। निश्चय से वस्तु। उसके आश्रय से जितनी वीतरागता प्रगट हुई, उसे पर्याय को जिनबिम्ब कहा जाता है। जैनशासन तो पर्याय है न ? द्रव्य तो पूरी वस्तु है। समयसार की १५वीं गाथा में नहीं आया ? **'जो पस्सदि अप्पाणं... पस्सदि जिणसासणं सव्वं।'** आत्मा को बन्ध से, राग से भिन्न अभेदरूप से भासे, अनुभव करे, उसे जैनशासन कहा जाता है। लो! जैनशासन तो उसे कहा। बीच में रागादि आवे, उन्हें यहाँ कहा नहीं। फिर उसे व्यवहार समझ लेना

कि यह जिनशासन है, तो उसे व्यवहार से, उपचार से (कहा है)। समझ में आया? **'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमिवसेसं।'** आता है न? अविशेष, असंयुक्त। शुद्धनय से ... उसे जैनशासन जान। शुद्धनय कहो या जैनशासन कहो। जिसमें विकल्प का शुभराग भी उठे तो कहते हैं कि वह सच्चा जैनशासन नहीं है। आहाहा!

'ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री भगवान।' परमात्मा त्रिलोकनाथ ने समवसरण में... ऐसा कहा न यहाँ? यहाँ कहा। **'भणियं सुवीयरायं,...'** है न? पहले आया था। **'जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं'** दूसरी गाथा में आया था। जिनमार्ग में जिनवर ने यह **'सयलजणबोहणत्थं,...'** सभी जीवों के ज्ञान के लिये। है न यहाँ? **'सयलजण-बोहणत्थं,...'** बुद्धि है न? सभी जीव को ज्ञान कराने के लिये, सच्चा ज्ञान कराने के लिये। वीतरागता प्रगटे, वह (वास्तविक), परन्तु उसका ज्ञान कराने के लिये (कहा है)। देखो! **'सयलजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणिय'** जिनमार्ग में वीतरागदेव ने ऐसा कहा है। आहाहा! व्यवहारवाले चिल्लाहट मचा जाए। खलबलाहट... खलबलाहट... समझ में आया?

कहा था। बहुत वर्ष पहले (संवत्) १९८२ के वर्ष में। मणिभाई थे और कहा था, देखो! मूर्ति तो शास्त्र में है। उसकी पूजा भी शास्त्र में है। (संवत्) १९८२ के वर्ष। ४४ वर्ष हुए। परन्तु एक व्यक्ति ने मूर्ति को बढ़ा डाला। मुकुट, बाजुबन्ध, चाँदी के यह और कपड़े और आंगी, कोट, पेण्ट। एक ने (एकदम) निकाल डाला। स्थानकवासी ने मूल में से निकाल दिया और उन्होंने चढ़ा दिया सिर पर। तब दृष्टान्त दिया था ८२ के वर्ष। कहा, दो भाई—मित्र थे। सौ रुपये दिये थे। दो मित्र थे। उसमें से एक मित्र ने दो रुपये दिये। देखा कि मेरे पिता ने इन्हें दिये हैं। दो शून्य चढ़ाकर माँगे। मींडा अर्थात् शून्य। मेरे पिता ने तुम्हारे पिता को (दस) हजार दिये थे। लाओ। वह कहे, देखो बहियों में। बहियों में देखा तो सौ दिखाई दिये। परन्तु यदि सौ मानूँगा तो (दस) हजार माँगेगा। है ही नहीं जाओ। इसी प्रकार स्थानकवासी ने मूल में से उत्थापित किया और उसने शून्य चढ़ा दिये। मुकुट को... यह तो कोई प्रतिमा कहलाये? जिनबिम्ब कहलाये?

जिनबिम्ब तो जैसे वीतराग थे, ऐसा ही प्रतिबिम्ब सामने दिखाई दे। निष्क्रिय रागरहित, उसे जिनबिम्ब (कहा जाता है)। व्यवहार से, हों! निश्चय जिनबिम्ब तो यह

आत्मा है। समझ में आया? ऐई! हरिभाई! ऐसा कहा था ८२ में। वढवाण चातुर्मास था न जब, तब (कहा था)। परन्तु लोग थोड़े दस-बीस बैठे थे। कोई शंका करे नहीं। उस समय तो बहुत प्रतिष्ठा थी। महाराज कुछ कहते होंगे। परन्तु तुम्हारा यह सब खोटा है, ऐसा कहते हैं। सुन्दर वोरा के उपाश्रय में। समझ में आया? यह तो भी उत्थापित की और स्थापित की। उत्थापित की उसने मूल में से, व्यवहार था, उसका उसे भान ही रहा नहीं। और जिसने स्थापित की है, उसे धर्म मानकर बैठे। और कहीं स्थापित की, उसके लिये यह शृंगार चढ़ा दिया। चाँदी का... आंगी। क्या कहा?

मुमुक्षु : शोभा की।

पूज्य गुरुदेवश्री : शोभा की। आंगी और... वह कैसी? आंगी-बांगी चढ़ावे तो उसे इत्र लगाते हैं। इत्र लगाकर ... इत्र-बीत्र। यह वीतराग मुद्रा को होगा यह? अरे! प्रभु! क्या हो?

यहाँ तो जिनप्रतिमा वीतराग मुद्रा तेरा स्वरूप है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता प्रगटी हो, उसे जब उसमें स्थिर नहीं रह सकता हो, तब ऐसा शुभभाव आवे, उसे जिनबिम्ब व्यवहार से भगवान की प्रतिमा को कहा जाता है। व्यवहार नहीं, ऐसा इनकार करे तो भी परमार्थ को समझता नहीं और व्यवहार है, वही सच्चा व्यवहार धर्म है यह माने तो वह परमार्थ को समझता नहीं। ऐसा स्वरूप है। लो! यहाँ तो जिनमार्ग में ऐसा कहा है। निश्चय... व्यवहार तो बीच में होता है, इतना बतलाया है। स्थापित नहीं किया है। स्थापित नहीं किया अर्थात्? कि यह करने योग्य है, ऐसा नहीं। होता है। बतलाया है कि ऐसा भाव होता है। आहाहा!

यथा अनुक्रम से जानना और ८. देव, ९. तीर्थ,... तीर्थंकर है इसमें? यह कर नहीं चाहिए। निकाल डाला। **देव,...** भगवान ने देव का वर्णन किया। यह अरिहन्त सर्वज्ञदेव। तीर्थ का स्वरूप यह आत्मा। निर्मल आनन्द के ध्यान द्वारा जो अन्दर आनन्द का स्नान करके राग को नाश करे, उसे तीर्थ कहा जाता है। नदी में नहाकर तीर्थ हो जाए और पवित्रता हो, उसमें कुछ है नहीं। कहो, भीखाभाई! ऐसा स्वरूप है।

अरहन्त तथा गुण से विशुद्ध ११. प्रव्रज्या... पाठ में है न? **'पावज्जगुणविसुद्धा'**

कैसी प्रव्रज्या हो? कि वीतरागगुण से शुद्ध हो। पंच महाव्रत के विकल्प हों, वह तो अलग चीज़, वह तो व्यवहार है। वह वास्तविक प्रव्रज्या नहीं। आहाहा! **'गुणविसुद्धा'** जिसे आत्मा के अन्तर पवित्रता के कुण्ड जहाँ प्रस्फुटित हुए हैं। उछले हैं शान्ति के सागर में झूलते हैं उपशमरस में, ऐसी जिसे प्रव्रज्या—वीतरागीभाव हो, उसे प्रव्रज्य कहा जाता है। आहाहा! उसका ज्ञान कर। ऐसी वस्तु होती है। ऐसा।... है न? ज्ञान कराने के लिये, उसे बतलाने के लिये। सभी जीवों को। बापू! ऐसा तू जान। मार्ग ऐसा है – ऐसा जान। जब तक निश्चय न जाने, तब तक तेरे व्यवहार में कुछ है नहीं।

ये चार जो अरहन्त भगवान ने कहे वैसे इस ग्रंथ में जानना,... लो! यह अरिहन्त भगवान ने कहे हैं। समझ में आया? **'गुणविसुद्धा इय णायव्वा जहाकमसो।'** जानना, ऐसा कहा है न? ऐसा आया न? **'णायव्वा'** जानना। जानना। जान तो सही। ज्ञान तो कर। ग्यारह ऐसी चीज़ें होती हैं।

***भावार्थ* – यहाँ आशय इस प्रकार जानना चाहिए कि धर्ममार्ग में कालदोष से अनेक मत हो गये हैं...** कालदोष से अनेक अभिप्राय जगत में हैं। **तथा जैनमत में भी भेद हो गये हैं,...** जैनमत में भी कुछ गड़बड़ उठी है। प्रतिमा की और अमुक की और अमुक की, व्यवहार की। निश्चय पड़ा रहा। **उनमें आयतन आदि में विपर्यय (विपरीतपना) हुआ है,...** उसके वास्तविक स्थान का तो विपरीतपना हो गया है। **उनका परमार्थभूत सच्चा स्वरूप तो लोग जानते नहीं हैं...** आयतन का, प्रतिमा का, मुद्रा का, तीर्थ का सच्चा स्वरूप जाने नहीं। **और धर्म के लोभी होकर...** धर्म तो करना है बेचारे को। कुछ सुखी होना है तो धर्म करते हैं, धर्म के लोभी। **जैसी बाह्य प्रवृत्ति देखते हैं, उनमें ही प्रवर्तने लग जाते हैं,...** बाहर प्रवृत्ति देखे, इसलिए लग जाते हैं। परन्तु बाह्य प्रवृत्ति कहीं मूल धर्म नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म उसे कहते हैं कि बाहर की प्रवृत्ति तो करते हैं जैसी कहते हैं वैसी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में नहीं; अन्दर में है। यह तो दूसरा करे, ऐसा करे। अपने करो, चलो।

उनमें ही प्रवर्तने लग जाते हैं, उनको संबोधने के लिए... है न? उसमें आया

था न ? सर्व जीव भव्य के लिये। भव्य जीव। सकल जन... सकल जीव के बोधन के लिये। कहो, समझ में आया ? **यह 'बोधपाहुड' बनाया है।** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने यह बोधपाहुड़ सब जीवों को वास्तविक सत्य को समझने के लिये यह बोधपाहुड़ रचा है। वह सत्य रह जाए और अकेला तेरा व्यवहार और उपचार सब हो पड़े। महाव्रत के विकल्प, वह प्रव्रज्या हो पड़े। जिनबिम्ब, यह बाहर का मन्दिर, वह तुझे धर्म का स्थान हो पड़े। यह सब उल्टे रास्ते चढ़ गये हैं। समझ में आया ? आहाहा!

उसमें आयतन आदि ग्यारह स्थानों का परमार्थभूत सच्चा स्वरूप जैसा सर्वज्ञदेव ने कहा है,... सर्वज्ञदेव ने कहा है, **वैसे कहेंगे, अनुक्रम में जैसे नाम कहे हैं, वैसे ही अनुक्रम से इनका व्याख्यान करेंगे, सो जानने योग्य है।** लो!

गाथा-५

आगे प्रथम ही जो आयतन कहा उसका निरूपण करते हैं –

मणवयणकायदव्वा आयत्ता[१] जस्स इन्दिया विसया।
आयदणं जिणमग्गे णिद्दिट्ठं संजयं रूवं ।।५।।

मनोवचनकायद्रव्याणि आयत्ताः यस्य ऐन्द्रियाः विषयाः।
आयतनं जिनमार्गे निर्दिष्टं संयतं रूपम् ।।५।।

मन वचन काया द्रव्य इंद्रिय विषय जिनके वशी हैं।
जिन-मार्ग में संयम-सहित यति आयतन निर्दिष्ट हैं।।५।।

अर्थ – **जिनमार्ग में संयमसहित मुनिरूप है, उसे 'आयतन' कहा है। कैसा है मुनिरूप, जिसके मन-वचन-काय द्रव्यरूप हैं वे तथा पाँच इन्द्रियों के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द ये विषय हैं वे। 'आयत्ता' अर्थात् अधीन हैं-वशीभूत हैं। उनके (मन-वचन-काय और पाँच इन्द्रियों के विषय) संयमी मुनि आधीन नहीं हैं। वे मुनि के वशीभूत हैं ऐसा संयमी है वह 'आयतन' है।।५।।**

---

१. स. प्रति में 'आसत्ता' पाठ है जिसकी संस्कृत 'आसक्ताः' है।

गाथा-५ पर प्रवचन

आगे प्रथम ही जो आयतन कहा उसका निरूपण करते हैं – अब आयतन की व्याख्या। आयतन अर्थात् स्थान, आयतन अर्थात् घर।

मणवयणकायदव्वा आयत्ता जस्स इन्दिया विसया।
आयदणं जिणमग्गे णिद्दिट्ठं संजयं रूवं।।५।।

***अर्थ* – जिनमार्ग में संयमसहित मुनिरूप है, उसे 'आयतन' कहा है।** यह वीतरागी संयमसहित जो मुनि का बाह्य नग्नरूप, उसे आयतन कहा जाता है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और कुलिंगी, ये सब व्यवहार से अनायतन है। व्यवहार से अनायतन। और सुदेव-सुगुरु-सुशास्त्र आदि व्यवहार से आयतन हैं। निश्चय से आयतन तो भगवान आत्मा, जिसके घर में भण्डार भरे हैं। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीतरागता जिसके घर में भरी है, उसे आयतन और घर कहा जाता है। बाकी घर उस धूल के घर को घर नहीं कहा जाता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

तुझे ठहरने का ठिकाना—घर हो तो वह अन्दर वस्तु वीतराग है, वह है—ऐसा कहते हैं। घर है घर। देखो! उसमें आता है न? भक्ति में नहीं? 'अब हम कबहु न निज घर आये।' यह भक्ति में आता है न? हिन्दी भक्ति में आता है। 'अब हम कबहु न निज घर आये, परघर फिरत भ्रमत फिरत अनेक नाम धराये। अब हम कबहु न निज घर आये।' देखो! वे लोग भी कह गये हैं, पण्डित भी। पुण्य-पाप की क्रिया, बाहर के निमित्तों का आश्रय, वह तो सब परघर है। आहाहा! समझ में आया? कहो, ईश्वरचन्दजी! आता है या नहीं इसमें? 'कबहु न निज घर आये...' भगवान की प्रतिमा और मन्दिर आदि निजघर नहीं।

मुमुक्षु : सोनगढ़

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ भी निजघर नहीं। यह सोना का घर अन्दर। यह सोना अर्थात् जंग रहित चीज़ आत्मा। जंग-जंग। मैलरहित चीज़ आत्मा। स्वर्ण को जंग नहीं होती। जंग चढ़ती ही नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प के मैलरहित

सोना, ऐसा आत्मा 'सोनगढ़' वह आत्मा का आयतन है। कहो, समझ में आया? गजब। निश्चय-निश्चय (कहते हैं)। परन्तु निश्चय, वही सच्चा है, सुन न! व्यवहार तो फिर बारदान साथ में आता है। माल बिना अकेले बारदान की कीमत क्या? माल न हो और अकेला बारदान-कोथला।

मुमुक्षु : गेहूँ का।

पूज्य गुरुदेवश्री : गेहूँ का परन्तु गेहूँ तो नहीं। गेहूँ बिना गेहूँ की बोरी? इसी प्रकार निश्चय बिना यह व्यवहार? कहाँ से लाया? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

जिनमार्ग में संयमसहित मुनिरूप है, उसे 'आयतन' कहा है। देखो! बाहर से डाला है। **कैसा है मुनिरूप, जिसके मन-वचन-काय द्रव्यरूप हैं, वे तथा पाँच इन्द्रियों के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द ये विषय हैं वे। 'आयत्ता' अर्थात् अधीन हैं...** उस पर को वश किया, ऐसा कहते हैं। निमित्त से बात है न! वह पर के वश नहीं होता। जो मुनि इन्द्रिय और मन-वचन के वश नहीं होता, परन्तु वश किये हैं, ऐसे मुनि को धर्म का आयतन कहा जाता है। आहाहा!

'आयत्ता' अर्थात् अधीन हैं-वशीभूत हैं। उनके (मन-वचन-काय और पाँच इन्द्रियों के विषय) संयमी मुनि आधीन नहीं हैं। इन्द्रिय के आधीन नहीं। अतीन्द्रिय के आधीन आत्मा है। इन्द्रिय के आधीन नहीं, ऐसा जो आत्मा, उसे यहाँ आयतन (कहा है)। आय शब्द है न? आयतन है अर्थात् आयतन के आधीन (ऐसा अर्थ) निकाला। नहीं तो आयतन घर है परन्तु आयतन है अर्थात् आयत्ता। पर के आधीन नहीं। स्वद्रव्य के आधीन है। इसमें से निकाल लेना। यह बाहर से-व्यवहार से बात है।

ऐसा संयमी है वह 'आयतन' है। लो! यह व्यवहार से आयतन। अब निश्चय से आयतन विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५०, गाथा-६ से ८, शुक्रवार, आषाढ़ कृष्ण १३, दिनांक ३१-०७-१९७०

बोधपाहुड़, इसकी गाथा ५वीं चली। पहली बात आयतन-आयतन किसे कहना? जैनदर्शन में वीतराग भगवान ने सच्चा आयतन, घर, निवास, जहाँ निवास करनेयोग्य चीज़ है, उसे यहाँ आयतन कहा गया है। तो आयतन पहला कहा। मुनि का कहा न? मुनि संयमी। सम्यग्दर्शन के भानसहित, संयमसहित वे मुनि स्वयं आयतन अर्थात् उनके स्वभाव में बसनेयोग्य वह जीव है। उसे आयतन कहा गया है। बाहर के घर जो आयतन आदि हैं, वह तो... चैत्यगृह कहलाता है न? आगे आयेगा। व्यवहार है। परमार्थ से आयतन आत्मा है। वह आयतन सम्यक् अनुभवसहित संयम की दशा में रमे, उसे वास्तव में धर्म का निवास करनेवाला, आवास करनेवाला, स्वयं सुखशैय्या में सोनेवाला, ऐसा आयतन उसे कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह गाथा हुई।

अब छठवीं (गाथा)। छठवीं में पहले में मुनि लिये हैं, दूसरे में महाऋषि ऋद्धिधारी। जिन्हें आत्मदर्शन-ज्ञान सहित वीतरागता जहाँ अन्तर (में) प्रगट हुई और जिन्हें लब्धि तथा ऋद्धियाँ प्रगट हुई हैं, ऐसा जो आत्मा, उसे यहाँ आयतन कहा जाता है। समझ में आया? वह निजघर है। वह निज बसनेयोग्य आत्मा। अनेक प्रकार के आनन्द आदि गुणों से भरपूर और पंच महाव्रतवाला तथा अनेक लब्धियुक्त ऐसा जो आत्मा, उसे जैनदर्शन में निश्चय से सच्चा आयतन-निवासस्थान कहा जाता है।

गाथा-६

आगे फिर कहते हैं –

मयरायदोस मोहो कोहो लोहो य जस्स आयत्ता।
पंचमहव्वयधारी आयदणं महरिसी भणियं।।६।।

मदः रागः द्वेषः मोहः क्रोधः लोभः च यस्य आयत्ताः।
पंचमहाव्रतधारी आयतनं महर्षयो भणिताः।।६।।

जिसके हुए वश राग द्वेष रु मोह मद रुष लोभ भी।
जो महाव्रत पाँचों सहित वे आयतन हैं महर्षी।।६।।

***अर्थ* – जिस मुनि के मद, राग, द्वेष, मोह, क्रोध, लोभ और चकार से माया आदि ये सब 'आयत्ता' अर्थात् निग्रह को प्राप्त हो गये और पाँच महाव्रत जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा परिग्रह का त्याग, उनके धारी हो ऐसा महामुनि ऋषीश्वर 'आयतन' कहा है।**

***भावार्थ* – पहिली गाथा में तो बाह्य का स्वरूप कहा था। यहाँ बाह्य-आभ्यन्तर दोनों प्रकार से संयमी हो वह 'आयतन' है, इस प्रकार जानना चाहिए।।६।।**

गाथा-६ पर प्रवचन

मयरायदोस मोहो कोहो लोहो य जस्स आयत्ता।
पंचमहव्वयधारी आयदणं महरिसी भणियं।।६।।

अर्थ – जिस मुनि के मद, राग, द्वेष, मोह, क्रोध, लोभ और चकार से माया आदि ये सब 'आयत्ता' अर्थात् निग्रह को प्राप्त हो गये... जिसे विकार का निग्रह हो रहा है, जिसे विकार है नहीं। ऐसी छठवें-सातवें गुणस्थान की भूमिका, उसे यहाँ महाऋषि गिनकर कषायों का जिसे निग्रह है, जिसे अकषायदशा उग्ररूप से परिणमी है, हुई है, उसे धर्म के निवास को आयतन-स्थान कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

'आयत्ता' अर्थात् निग्रह को प्राप्त हो गये और पाँच महाव्रत जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा परिग्रह का त्याग, उनके धारी हो, ऐसा महामुनि ऋषीश्वर 'आयतन' कहा है। ऐसे महाऋषि को धर्म के मकान—धर्म का स्थान कहा है। यह जिनमन्दिर आदि तो सब व्यवहार स्थान है। समझ में आया?

***भावार्थ* – पहिली गाथा में तो बाह्य का स्वरूप कहा था। यहाँ बाह्य-आभ्यन्तर दोनों प्रकार से संयमी हो, वह 'आयतन'....** कहा गया है। यहाँ तो चैतन्य भगवान स्वयं ही आयतन है। उसके शरीर, वाणी, मन और भगवान की प्रतिमा रहने के

मन्दिर, वे व्यवहार से आयतन हैं। पुण्यबन्ध के निमित्त, पुण्यभाव में निमित्त होते हैं। समझ में आया? अन्दर महाप्रभु अनन्त आनन्द और गुण का भण्डार भगवान, जिसमें परिणति जिसकी निर्मल वीतरागी हुई है, वह धर्म के लिये निवास करनेयोग्य आत्मा है। आहाहा! कहो, समझ में आया? **इसप्रकार जानना चाहिए।**

गाथा-७

आगे फिर कहते हैं –

सिद्धं जस्स सदत्थं विसुद्धझाणस्स णाणजुत्तस्स।
सिद्धायदणं सिद्धं मुणिवरवसहस्स मुणिदत्थं ।।७।।

सिद्धं यस्य संदर्थं विसुद्धध्यानस्य ज्ञानयुक्तस्य।
सिद्धायतनं सिद्धं मुनिवृषभस्य मुनितार्थम् ।।७।।

सुविशुद्ध ध्यानी ज्ञानयुत जिनके सदर्थ सुसिद्ध है।
उन श्रेष्ठ मुनि के शुद्ध सिद्धायतन मानों योग्य है।।७।।

अर्थ – जिस मुनि के सदर्थ अर्थात् समीचीन अर्थ जो 'शुद्ध आत्मा' सो सिद्ध हो गया हो वह सिद्धायतन है। कैसा है मुनि ? जिसके विशुद्ध ध्यान है, धर्मध्यान को साधकर शुक्लध्यान को प्राप्त हो गया है; ज्ञानसहित है, केवलज्ञान को प्राप्त हो गया है। घातिकर्मरूप मल से रहित है, इसीलिए मुनियों में 'वृषभ' अर्थात् प्रधान है, जिसने समस्त पदार्थ जान लिये हैं। इस प्रकार मुनिप्रधान को 'सिद्धायतन' कहते हैं।

भावार्थ – इस प्रकार तीन गाथा में 'आयतन' का स्वरूप कहा। पहिली गाथा में तो संयमी सामान्य का बाह्यरूप प्रधानता से कहा। दूसरी में अंतरंग–बाह्य दोनों की शुद्धतारूप ऋद्धिधारी मुनि ऋषीश्वर कहा और इस तीसरी गाथा में केवलज्ञानी को जो मुनियों में प्रधान है सिद्धायतन कहा है। यहाँ इस प्रकार जानना जो 'आयतन' अर्थात् जिसमें बसे, निवास करे उसको आयतन कहा है, इसलिए धर्मपद्धति में जो धर्मात्मा पुरुष के आश्रय करने योग्य हो वह 'धर्मायतन' है। इस प्रकार मुनि ही धर्म के आयतन

हैं, अन्य कोई भेषधारी, पाखंडी (ढोंगी) विषय-कषायों में आसक्त, परिग्रहधारी धर्म के आयतन नहीं हैं तथा जैनमत में भी जो सूत्रविरुद्ध प्रवर्तते हैं, वे भी आयतन नहीं, वे सब 'अनायतन' हैं।

बौद्धमत में पाँच इन्द्रिय, उनके पाँच विषय, एक मन, एक धर्मायतन शरीर ऐसे बारह आयतन कहे हैं वे भी कल्पित हैं, इसलिए जैसा यहाँ आयतन कहा वैसा ही जानना, धर्मात्मा को उसी का आश्रय करना, अन्य की स्तुति, प्रशंसा, विनयादिक न करना, यह बोधपाहुड ग्रन्थ करने का आशय है। जिसमें इस प्रकार के निर्ग्रन्थ मुनि रहते हैं, इस प्रकार के क्षेत्र को भी 'आयतन' कहते हैं, जो व्यवहार है।।७।।

गाथा-७ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं – अब केवलज्ञानी को लेते हैं। पहले सामान्य मुनि को लिया, दूसरे में ऋद्धिधारी को लिया और तीसरे केवलज्ञानी। तीनों ही आायतन—धर्म के निवासस्थान हैं। समझ में आया?

सिद्धं जस्स सदत्थं विसुद्धझाणस्स णाणजुत्तस्स।
सिद्धायदणं सिद्धं मुणिवरवसहस्स मुणिदत्थं।।७।।

अर्थ – जिस मुनि के सदर्थ अर्थात् समीचीन अर्थ जो 'शुद्ध आत्मा' सो सिद्ध हो गया हो... क्या कहते हैं? भगवान आनन्दस्वरूप परमात्मा स्वयं आत्मा, जिस मुनि को वह सिद्ध हुआ है अन्दर। राग-द्वेषरहित आत्मा के अन्तर अनुभव में, यह आत्मा पवित्र आनन्द का कन्द, केवलज्ञान का कन्द है, ऐसा जिसे अन्तर अनुभव में सिद्ध हुआ है। उसे सिद्धायतन कहा जाता है। लो, यह तुम्हारे बँगले-बँगले को निकाल डाला, जैन मन्दिर को निकाल डाला। पोपटभाई! बँगले की कहीं बात रही।

'शुद्ध आत्मा' सो सिद्ध हो गया हो... अन्तर पवित्रता जिसे प्रगटी है। शुद्ध आत्मा की उपलब्धि जहाँ केवलज्ञान में प्राप्त हुई है। ऐसा कहते हैं। है न? **'सिद्धं जस्स सदत्थं'** सत् अर्थात् आत्मा। ऐसा जो अर्थ उसका भाव प्रगट हो गया है। केवलज्ञान जलहल ज्योति। रागरहित, पुण्यरहित ऐसा भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप जिसकी पर्याय

में पूर्ण प्रगट हो गया, ऐसे केवलज्ञानी, वे धर्म के स्थान हैं, वे धर्म के आयतन हैं, वे धर्म के निवास हैं। समझ में आया ? ऐसा तू जान। ऐसा है न ? बोधपाहुड़ है सही न ? ऐसा तू जान। दूसरे आयतन आदि को व्यवहार कहा (जाता है)। परमार्थ यह न हो तो वे व्यवहार आयतन भी व्यवहार रूप से नहीं गिने जाते, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? अकेला जिनमन्दिर, बाग-बगीचा और उसमें सब स्थान और यह प्रतिमा तथा उसमें सब रुक गये हों, उसे कहते हैं कि यह तो व्यवहार है। निश्चय के भान बिना तेरा व्यवहार, वह व्यवहार कहने में नहीं आता। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

अन्तर भगवान आनन्द का धाम, अतीन्द्रिय ज्ञान का निवासस्थान, ऐसे आत्मा को जिसने जाना नहीं, पहिचाना नहीं, स्थिर नहीं हुआ, उसे बाहर के निवासस्थान, वह तो व्यवहार कहने में आता है। वह तो व्यवहाराभास अज्ञानी को है। जिसे आत्मा के अन्दर में ज्ञानानन्द चैतन्यमूर्ति प्रगट हुआ है, स्वभाव की शक्ति में से सागर जिसकी दशा में उछला है, ऐसे आत्मा को आयतन अर्थात् धर्म के मकान, वास, निवास कहा जाता है। शोभालालजी ! यह गजब बात, भाई। यह धर्म के स्थान। नहीं कहते कि यह धर्म के स्थान। चलो धर्मस्थानक जायें, धर्मस्थानक जायें। परन्तु धर्मस्थानक है कहाँ ? धर्मस्थानक जायें। वे स्थानकवासी हों, वे धर्मस्थानक कहे। मन्दिरमार्गी हो तो मन्दिर धर्मस्थानक कहे। धर्मस्थानक तो यहाँ आत्मा है। उसकी तो जिसे खबर नहीं। ऐसे को बाहर के धर्मस्थानक व्यवहार से भी नहीं कहे जाते। आहाहा ! कहते हैं कि जिसे आत्मा प्रगट हो गया है। सिद्ध हुआ है। ऐसा। केवलज्ञानरूप से अन्दर प्रगट हो गया है।

मुनि **जिसके विशुद्ध ध्यान है, धर्मध्यान को साधकर शुक्लध्यान को प्राप्त हो गया है;...** अन्तर के स्वरूप की एकाग्रता द्वारा, धर्मध्यान द्वारा शुद्ध शुक्लध्यान जिसे निर्मल अन्तर की एकाग्रता प्रगट हुई है। और **ज्ञानसहित है, केवलज्ञान को प्राप्त हो गया है।** केवलज्ञान जिसे प्रगट हुआ है। एक समय में तीन काल, तीन लोक जाने, ऐसी एक समय की पर्याय की ताकत है। ऐसी पर्याय जिसे प्रगट हुई है, वह धर्म का आयतन है। समझ में आया ? उसे पहिचानकर अपने आत्मा में निवास करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं।

और **घातिकर्मरूप मल से रहित है,...** जिसने चार घातिकर्म का नाश किया है, ऐसे केवलज्ञानी परमात्मा को निजघर, निवासस्थान, आयतन, धर्म के मकान कहा जाता

है। कहो, समझ में आया? **इसीलिए मुनियों में 'वृषभ' अर्थात् प्रधान है,...** गणधर आदि मुनि हैं, उसमें भी जिसे केवलज्ञान प्राप्त हुआ है, वे तो मुनियों में भी मुख्य है। वृषभ कहा न वृषभ? **'मुणिवरवसहस्स'** पाठ है इसमें, देखो! **'मुनिवरवृषभस्य'** ऐसा पाठ है। और **कैसा जाने? समस्त पदार्थ जाने...** है न? **'मुणिदत्थं'** अन्तिम शब्द है। जाने हैं **'मुणिदत्थं'** जगत के जो द्रव्य-गुण-पर्याय है, वे सब जिसने जाने हैं। ऐसे केवलज्ञानी को आयतन कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! कहो!

यह मकान-बकान इसके आयतन नहीं। शोभालालजी! मकान तो नहीं, परन्तु जिनमन्दिर भी नहीं। आहाहा! जिनमन्दिर तो यह है। आहाहा! जहाँ वीतरागभाव बसता है, ऐसा जिनमन्दिर तो आत्मा है। उसका जिसे ज्ञान और श्रद्धा का भान नहीं, उसे तो यह व्यवहार मन्दिरादि भी व्यवहाराभास कहे जाते हैं। ऐसा भान हो, पश्चात् उसे शुभभाव आवे तो वह व्यवहार से जिनमन्दिरादि की पूजादि कहने में वह व्यवहारस्थानक है। परन्तु निश्चय होवे तो। निश्चय बिना के व्यवहारस्थानक भी गिनने में नहीं आते। आहाहा! समझ में आया?

उस समय तो कुन्दकुन्दाचार्य के समय बहुत व्यवहार हो पड़ा होगा, इसलिए यह निश्चय का (निरूपण करते हैं)। जिनमार्ग में यह कहा है, ऐसा कहते हैं। वीतराग में जैनमार्ग में आत्मा निर्मलानन्द प्रभु, राग और विकल्प पुण्य के व्यवहार से रहित ऐसा जो आत्मा, उसे जहाँ सिद्ध हुआ है, प्रगट हुआ है, प्राप्त हुआ है, उपलब्ध हुआ है—ऐसे आत्मा को आयतन और निवासस्थान कहा जाता है। ऐसा भगवान ने समवसरण में यह कहा है। समझ में आया?

इस प्रकार मुनिप्रधान को 'सिद्धायतन'... कहते हैं। यह सिद्ध के आयतन उसे कहते हैं। सिद्ध के आयतन, सिद्ध को रहने का स्थान यह आत्मा है, यहाँ सिद्धायतन। ऊपर मुक्तिशिला है, वह कहीं सिद्धायतन नहीं, वह तो व्यवहार है। समझ में आया? मुक्तिशिला होती है न? ४५ योजन ऊपर सिद्ध भगवान रहते हैं। यह उनका स्थान। वह तो व्यवहार है। उसमें कहाँ रहते हैं? वे तो अपने आनन्द और ज्ञान के स्वरूप में रमते हैं, उसे यहाँ सिद्ध भगवान और निज आयतन और निवास कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

पुण्य-पाप के विकल्प भी निकाल दिये। वह रहने का स्थान नहीं। भले पहले लिये

महाव्रतधारी। समझ में आया? परन्तु वे बसे हैं अन्दर स्वरूप में। महाव्रत के विकल्प का भी जिन्हें ज्ञान है। उस ज्ञान में बसे हुए हैं। वास्तव में तो मुनि राग में भी बसे नहीं। उसे धर्म के स्थानक और धर्म के निवास (कहते हैं)। गजब बात। मूल आत्मा ही पड़ा रहा पूरा। वर छोड़कर बारात हो गयी। यह दया पालन की, व्रत पालन किये, भक्ति की, अपवास करना, णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं करना। वर—आत्मा छोड़ दिया। पूरा आत्मा—दूल्हा, उसे छोड़ दिया और अकेली जान / बारात जोड़ दी। दया, दान, व्रत, भक्ति। उसमें क्या है? धूल भी नहीं, कहते हैं। समझ में आया?

इस प्रकार तीन गाथा में 'आयतन' का स्वरूप कहा। पहिली गाथा में तो संयमी सामान्य का बाह्यरूप प्रधानता से कहा। तीन का स्पष्टीकरण करते हैं। बाह्यरूप से मुनि हो नग्न-दिगम्बर। जिसे एक वस्त्र का धागा भी नहीं हो सकता। समझ में आया? दूसरा परिग्रह तो किसका होगा? ऐसे **बाह्यरूप प्रधानता से कहा। दूसरी में...** दूसरी गाथा में। **अंतरंग-बाह्य दोनों की शुद्धतारूप ऋद्धिधारी मुनि ऋषीश्वर कहा...** लो! बाह्य में नग्न-दिगम्बर है, अभ्यन्तर में आनन्द और चैतन्य भगवान जाग उठा है और इसके अतिरिक्त ऋद्धि इत्यादि जिसे बहुत प्रगट हुई। उसे यहाँ आयतन के-धर्म के स्थान कहा जाता है। जिनमार्ग में जिनेश्वर ने यह आयतन कहे हैं। आहाहा! बाहर में और बाहर में अकेला भटका-भटक करता था न! यह मन्दिर और यह भगवान और यह मन्दिर सवेरे उठकर जाओ। यह करो... यह करो... यह करो... परन्तु वह आत्मा है यह रह गया वह? समझ में आया? आत्मा की खबर नहीं होती।

किसान में हमारे (यहाँ) एक बात चलती है। किसान का पुत्र था न छोटा? किसान-किसान है न? कृषिकार। उन लोगों को छोटी उम्र में विवाह करे। लग्न। लग्न समझते हो? शादी। दस वर्ष की उम्र में शादी करे। उसकी शादी हो गयी। अँगूठी पहनी थी। उसका एक मित्र था। ऐ...! तेरे विवाह में मुझे ले जाएगा या नहीं? मित्र को कहे। वह कहे, परन्तु अभी मुझे ले जायेंगे, इसकी मुझे खबर नहीं। विवाह माँडा है उसका। लग्न समझते हो न? शादी। शादी माँडी है उसकी। उसका कारण? मुझे बहुत बार मेरा पिता किसी समय विवाह में ले जाता है और किसी समय नहीं ले जाते। परन्तु वह तो किसी के विवाह में ले जाये। परन्तु तेरे विवाह में तेरे बिना विवाह कैसा? उसे भान नहीं होता।

जो... बहुत बार ले जाते हैं और किसी समय नहीं ले जाते। इस समय मुझे ले जायेंगे या नहीं। परन्तु तेरे विवाह में न ले जाए तो यह विवाह किसका किया है ? श्यामदासजी !

इसी प्रकार आत्मा अन्दर क्या चीज़ है ? अखण्डानन्द प्रभु चैतन्यमन्दिर ज्ञान का धाम, ज्ञानमन्दिर, आनन्द का मन्दिर, उसकी तो इसे खबर नहीं और यह बाहर के मन्दिर को शोधकर वहाँ चला जाता है। और उसमें कल्याण हो जायेगा (ऐसा मानता है)। ऐसा है नहीं। ऐसा कहते हैं। भगवानजीभाई ! दस लाख का मन्दिर बनाया। लो, यह दस लाख का बनाते हैं न यह ? परमागममन्दिर। एक ओर फिर यह कहे। मोक्ष है, वह उसमें नहीं। जिनागम मन्दिर बनावे, उसका मोक्ष हो—ऐसा नहीं। यह तो उसे शुभभाव होता है, तब ऐसा होनेवाला हो तो उसके कारण से होता है। शुभभाव हुआ, इसलिए होता है-ऐसा भी नहीं। आहाहा ! गजब काम। समझ में आया ? दस-दस लाख के, बीस-बीस लाख के मन्दिर बनाये नहीं ? देखो न ! लाडनू में नहीं ? लाडनू में बीस लाख का मन्दिर। गजराजजी। गजराजजी, वच्छराजजी के पिता के नाम का बीस लाख का मन्दिर। लाडनू में है। देखा है ? बहुत विशाल मन्दिर। और यह... कैसे ? छदामीलाल। फिरोजाबाद। उनका मन्दिर बहुत दर्शनीय। लाडनू का। इसने छदामीलाल ने तो और कितना खर्च किया है। कितने एक करोड़ रुपये सबमें यह अमुक में और अमुक में। दो बार निकले थे वहाँ। ऐसा लोग कहते हैं कि आहाहा ! देखो यह स्थान, जिसमें भगवान विराजते हैं। परन्तु भगवान तो यहाँ है या भगवान वहाँ है ? वह तो व्यवहार भगवान है।

मुमुक्षु : व्यवहार वहाँ है, निश्चय...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो व्यवहार है। किन्तु यहाँ निश्चय भगवान यहाँ का भान करे पश्चात् वह व्यवहार होता है या नहीं ? इस मूल भगवान की तो खबर नहीं होती। समझ में आया ?

चैतन्य महाप्रभु तेरे पास विराजता है। तू स्वयं प्रभु है। आहाहा ! अनन्त सिद्ध के स्थान की उत्पत्ति का कारण तू है। अनन्त सिद्ध पर्याय की प्राप्ति की उत्पत्ति का स्थान तेरा आत्मा है। समझ में आया ? यह आत्मा सिद्धायतन है। ऐसा भान श्रद्धा-ज्ञान होने के पश्चात् स्थिर नहीं हो सके, जब तक शुद्धोपयोग न जमे तो उसे ऐसा शुभभाव बाहर मन्दिर आदि का आता है। वह नहीं है, ऐसा भी नहीं है और वह धर्म है, ऐसा भी नहीं है। समझ

में आया ? ऐसा है। तुम्हारे बड़ा मन्दिर बनाया वहाँ नैरोबी में। नहीं ? दस लाख का। कहा ? नैरोबी में या कहाँ ?

मुमुक्षु : मुम्बासा में।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुम्बासा। दस लाख का। प्रसन्न हो जाए। सब जाने कि... आहाहा ! दस लाख का (मन्दिर)। दस लाख क्या करोड़ का मन्दिर हो, वह तो जड़ की पर्याय पर की हुई। तेरा भाव कदाचित् राग मन्द हो तो वह शुभ हो। वह परलक्ष्य से हुआ भाव, वह कहीं धर्म नहीं है। अरे ! गजब बात, भाई ! तथापि वह धर्मी को भी आये बिना रहता नहीं, हों ! क्योंकि जहाँ तक वीतराग न हो, तब ऐसा व्यवहार बीच में आता है। परन्तु वह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। जाननेयोग्य है। वास्तव में तो आदरणीय नहीं। आहाहा ! बहुत काम (कठिन)। समझ में आया ?

मुमुक्षु : सब अनायतन।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अनायतन है। यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र भी अनायतन है। छह आयतन कहे न ? देव-गुरु-शास्त्र और देव-गुरु-शास्त्र के भक्त (ऐसे) छह। २५ बोल में छह आयतन कहे हैं। वह व्यवहार आयतन हैं। निश्चय से आयतन है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग भगवान ने कहा है। जिनेश्वरदेव के मार्ग में निश्चय के मन्दिर, निश्चय का आयतन वह आत्मा है, ऐसा भगवान ने कहा है। ऐई ! शोभालालजी ! यह तो जहाँ जो हो, वह आवे न !

पश्चात् ऐसा स्वभाव का भान है कि मैं ही भगवान को उत्पत्ति करने का आयतन हूँ। सिद्ध भगवान की उत्पत्ति मेरे क्षेत्र में होगी। किसी पर में होगी नहीं। ऐसा भान है जिसे, उस जीव को जब शुभभाव भक्ति का, नाम स्मरण का, पूजा का, मन्दिर का आवे, ऐसे भाव को पुण्यबन्ध का व्यवहार कारण कहते हैं। ऐसी बात है। समझ में आया ? पहले में तो संयमी मुनि को आयतन कहा। पहली गाथा में। पहले में बाह्य और यह अकेला लिया। दूसरे में बाह्य और अभ्यन्तर मुनि की दशा को आयतन कहा। ऋद्धिधारी मुनि। और तीसरी गाथा में केवलज्ञानी (लिये)। तीन आयतन हुए। आहाहा ! उसे **सिद्धायतन कहा है।** लो !

यहाँ इस प्रकार जानना जो 'आयतन' अर्थात् जिसमें बसे, निवास करे उसको आयतन कहा है,... देखो! जिसमें बसनेयोग्य, उसे आयतन कहते हैं। तो आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसमें बसनेयोग्य वह आत्मा है। राग में और पुण्य में और निमित्त में बसनेयोग्य नहीं। आहाहा! कहाँ अटका? कहाँ उपाधि... आहाहा! पंच महाव्रत का विकल्प भी जिसे बोझा लगता है। आता है न? भार। निर्जरा अधिकार में आता है। पंच महाव्रत के विकल्प जिसे बोझा-भार लगता है। ऐसा भगवान पंच महाव्रत के विकल्प से भिन्न चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? हल्की चीज़, हल्की चीज़। हल्की को क्या कहते हैं? जिसमें भार नहीं, वजन नहीं। हल्की। हल्की। हल्की चीज़ तो भगवान आत्मा पुण्य-पाप के रागरहित चीज़, वह हल्की चीज़ है और पुण्य का भाव आवे, वह तो भारी, भारी, भार लगे ऐसी चीज़ है। क्लेश है, क्लेश है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे अकेले क्लेश भोगनेवाले तो मिथ्यादृष्टि हैं, कहते हैं। परन्तु आत्मा के भानसहित के शुभभाववाले हैं, उन्हें क्लेश है, परन्तु उसे व्यवहार से पुण्यबन्ध का कारण कहा गया है। वह पुण्यभावसहित क्लेश है, कषाय है, आकुलता है। कषाय—अग्नि है। आहाहा!

छहढाला में आता है न, छहढाला में? 'राग दाह' 'राग आग दाह'। 'राग आग दाह' राग है, वह अग्निरूपी दाह है। पण्डितजी! यह छहढाला में अन्त में आता है। 'ताते समामृत सेईये' आहाहा! शुभराग, वह आग-दाह। अब वहाँ उसमें कहा, वह तो उसे सूझ पड़ती नहीं। समझ में आया? अन्तिम में है न वह? कहाँ आया वह? अन्तिम है। 'यह राग-आग दहे सदा, तातैं समामृत सेईये।' छहढाला में है वह तो। 'यह राग आग दहे सदा।' वह धर्मस्थान नहीं, कहते हैं। परन्तु व्यवहार आवे परन्तु है आग। 'राग आग दहे सदा, ताते समामृत सेईये' इसलिए रागरहित आत्मा की समता के आनन्द को सेईये। वह आयतन और धर्मस्थान है। 'चिर भजे विषय-कषाय अब तो।' 'चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग जिनपद बेईये। कहाँ रच्यो परपद में, न तेरो पद यहै, क्यों दुःख सहे।' देखो! 'कहाँ रच्यो पर पद में न तेरो...' राग के पद में तेरी कुछ रचना नहीं। वह तो दुःख है। आहाहा! 'कहाँ रच्यो पर पद में न तेरो, पद यहै क्यों दुःख सहे;' पद यह है भगवान आत्मा। आनन्द का धाम, अनाकुल शान्ति का सरोवर, उसके पद में जा, वहाँ शान्ति है। 'क्यों दुःख सहे;' अरे! किसलिए दुःख सहन करता है? आहाहा! 'अब 'दौल' होऊ सुखी स्वपद

रची।' अन्तिम। 'अब 'दौल' हो सुखी सो पद रची, दाव मत चुको यहै।' यह दाव (अवसर) मिला है, उसे चूको नहीं। छहढाला में है ? बोलते हैं, पढ़े, परन्तु वापस अर्थ समझे नहीं। बोल जाए। छहढाला पाठशाला में सिखाते हैं। पाठशाला में सिखावे, रटा दे। स्वपद रच। स्वपद रच। यह राग और पुण्य की रचना छोड़। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसे यहाँ आयतन कहा। लो!

इस प्रकार जानना जो 'आयतन' अर्थात् जिसमें बसे, निवास करे उसको आयतन कहा है, इसलिए धर्मपद्धति में जो धर्मात्मा पुरुष के आश्रय करने योग्य... देखो! धर्म की पद्धति की रीति में जो धर्मात्मा पुरुष को आश्रय करनेयोग्य है, वह तो धर्मायतन। धर्मायतन की व्याख्या की है कि धर्मी जीव को जिसका आश्रय करनेयोग्य है, उसे धर्मायतन कहते हैं। **इस प्रकार मुनि ही धर्म के आयतन हैं,...** यहाँ तो पूरा मार्ग ही निर्ग्रन्थ मुनि, वीतराग और बाहर मुद्रा अरिहन्त जैसी, उसे जैनदर्शन कहा जाता है। अरिहन्त जैसे थे, ऐसी निर्ग्रन्थ जिसकी दशा और अन्तर वीतरागी दशा, उसे जैनदर्शन (कहते हैं)। आगे (गाथा-१४) में आयेगा। दर्शन की व्याख्या। 'दंसेइ' जिसे दिखावे ऐसा। आहाहा! अनन्त-अनन्त आनन्द की कली से खिल गया भगवान और बाहर में जिसकी नग्न मुद्रा, उसे भगवान से जैनदर्शन कहा गया है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसे मार्ग की जिसे श्रद्धा भी नहीं, अन्दर पहिचान नहीं, वे सब मिथ्यादृष्टि चार गति में रुलनेवाले हैं। ऐसा है यहाँ तो।

कहते हैं कि **इस प्रकार मुनि ही धर्म के आयतन हैं, अन्य कोई भेषधारी,...** देखो! अन्य के भेष दूसरे, अन्दर में अनुभव, ध्यान, ज्ञान का भान नहीं ऐसे **पाखंडी (ढोंगी) विषय-कषायों में आसक्त,...** विषय और कषाय में आसक्त और **परिग्रहधारी...** परिग्रह रखे और माने मुनिपना, हम त्यागी हैं, ऐसा माने। पाखण्डी वेशी है, कहते हैं। समझ में आया ? यह तो बात तो आवे, तब जो स्पष्ट हो वह बात रखे न ? पण्डित जयचन्द्रजी अर्थ करते हैं।

कषायों में आसक्त, परिग्रहधारी... ऐसे रखे नहीं और ऐसे परिग्रह रखे। पेटी में साथ में। साथ रखे नहीं। शरीर पर रखे, तब तो माने जाए नहीं। पेटी में रखे कुछ पैसे का, अमुक का, एक व्यक्ति रखे। समझ में आया ? यह कहलाये निर्ग्रन्थ। 'अलोकातर'

थे। यह 'जसदण' नहीं ? 'जसदण' के दरबार थे। बहुत छग था। दरबार थे। यह 'जसदण' दरबार। बहुत होशियार थे। फिर एक बार स्वामी नारायण के साधु उसे समझाने आये। स्वामी नारायण यह स्वामी नारायण है न ? स्वामी नारायण। उसके साधु उन्हें समझाने आये। ऐसा कि बड़ा दरबार है। काठी बहुत समझाये हुए। इसलिए वह बड़ा दरबार। कहा, आ जाए तो ठीक। धीरे-धीरे उस साधु ने बात करना शुरु की कि ऐसा धर्म है... ऐसा धर्म है... ऐसा धर्म है। परिग्रह का त्यागी हो, अमुक ऐसा हो। फिर दरबार ने उसे प्रश्न किया कि महाराज ! यह तुम्हारे चरणों में कोई पैसा रखे तो उसका क्या करो ? कि हम नहीं लेते। लोग ले लेवे। तुम्हें चाहिए हो तो क्या करो ? उस मनुष्य को हम कहते हैं चाहिए हो तो। फिर उसके दीवान थे। कैसे वे भाई ? भगवानजी दीवान थे। लुहार एक उसके दरबार के। भगवानजी ! इन महाराज का मेरे जैसा त्याग है। क्योंकि मेरे यह पैसे आवे, तू रखता है। कामदार-दीवान थे। और मुझे चाहिए हो तो मैं तुम्हें कहता हूँ। अपने और ये दोनों एक समान हैं। ... थे। वह घर में समझाने आये न ? तो सब बात सुन ली। सुनकर पूछा कि तुम्हें चरण में पैसा रखे या नहीं तुमने किसी समय कोई तुम्हारे भगत ? उसका क्या करो ? तुम्हें तो परिग्रह चलता नहीं। तो कहे, हम ऐसे नहीं लेते। हमारे आदमी ले लेते हैं। आदमी साथ में हो, वह ले लेवे। फिर चाहिए हो तो ? उसे कहते हैं। तब कहे, भगवानजी ! मैं जेब में नहीं रखता इस राज के, पैसे को, हों ! यह भगवानजी सब ले लेता है, देता है; इसलिए मेरे जैसे त्यागी है यह। श्यामलालजी !

मुमुक्षु : बहुत धीरे बोलते।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, धीरे बोलते। वे तो भाग गये। हाय.. हाय.. । अपने समझाने आये। परन्तु किसके त्यागी ? पैसा रखो, काम कराओ दूसरे से। हम भी पैसा (रखते हैं परन्तु) मैं जेब में नहीं रखता। गुंजा समझे ? जेब। मैं जेब में पैसा नहीं रखता राज के। वैसे तू भी जेब में नहीं रखता। यह मेरा राज्य का व्यक्ति पैसा लेता है और मैं कहूँ तो प्रयोग करता है। ऐसे तू त्यागी ऐसा है। मेरा और तेरा त्याग समान है। वे बेचारे भाग गये। शरमा गये। ... था। जसदण दरबार।

यहाँ कहते है, एक तो परिग्रह रखे और फिर नाम धरावे ऊँचा। समझे ? ऐसे पाखण्डी वे धर्म के स्थान नहीं। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा ! वे **आयतन नहीं हैं...**

समझ में आया? **परिग्रहधारी धर्म के आयतन नहीं हैं तथा जैनमत में भी जो सूत्रविरुद्ध प्रवर्तते हैं,...** देखो! वीतराग धर्म में भी सिद्धान्त विरुद्ध की जिसकी श्रद्धा-ज्ञान और आचरण है, **वे भी आयतन नहीं, वे सब 'अनायतन' हैं।** वे धर्म के स्थान नहीं, अनायतन हैं। आहाहा! वीतरागमार्ग है, यह कहीं किसी के घर का नहीं। वीतरागस्वरूप ही स्वयं प्रभु है। उसमें कुछ भी परिग्रह रखकर साधु आदि नाम धरावे। समझ में आया? यह सब धर्म के अस्थान, अनायतन हैं।

बौद्धमत में... बौद्धमत में आयतन की व्याख्या आती है। अन्दर टीका का श्लोक है। **पाँच इन्द्रिय, उनके पाँच विषय,...** दस। **एक मन,...** ग्यारह और **एक धर्मायतन शरीर...** बारह को बौद्धमत में आयतन कहे हैं। परन्तु वह तो सब कल्पित है, कहते हैं। सच्चे की उसे खबर नहीं। **ऐसे बारह आयतन कहे हैं, वे भी कल्पित हैं,...** वे आयतन नहीं। आयतन तो आत्मा है, जिसके घर में आनन्द के कोहला पके। अतीन्द्रिय आनन्द के डुंडा पके। ऐसा जो आयतन, वह निजघर आत्मा आयतन है। समझ में आया? आहाहा! घर छोड़कर बात। सब परघर की बातें। और फिर माने कि यह जैनधर्म है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए जैसा यहाँ आयतन कहा, वैसा ही जानना,... जैसे यहाँ भगवान ने कहे, उसे आयतन (जानना)। वस्तु के स्वरूप का ध्यान आनन्द वर्ते और जिसे पाँच इन्द्रियाँ आधीन वर्ते, पाँच इन्द्रियों के आधीन स्वयं न हो। क्रोध, मान, माया जिसके वश वर्ते अर्थात् अभाव वर्ते। उनके आधीन न हो। ऐसे आत्मा को धर्म के स्थानक और धर्म के निवास के स्थान कहा जाता है। समझ में आया?

कहते हैं, **जैसा यहाँ आयतन कहा वैसा ही जानना, धर्मात्मा को उसी का आश्रय करना,...** धर्मात्मा को ऐसे जीवों का आश्रय करना। **अन्य की स्तुति, प्रशंसा, विनयादिक न करना,...** जो आत्मा के भान बिना के राग में धर्म माननेवाले, बाहर में परिग्रह रखकर मुनिपना माननेवाले, ऐसे को—अन्य की स्तुति नहीं करना, प्रशंसा नहीं करना, विनयादि नहीं करना। समझ में आया? जान कि उसे भगवान ने धर्मायतन कहा है। इसके अतिरिक्त के अन्यमत में तो है ही नहीं, परन्तु जैनमत में भी आज्ञा सूत्र से विरुद्ध श्रद्धा, विरुद्ध ज्ञान और आचरण जिसके सूत्र से, आगम से विरुद्ध है, आगम में जिसे मुनि

के लक्षण कहे। समझ में आया? धर्मात्मा के लक्षण कहे, वे हैं नहीं और बाहर में वेश में मुनिपना मानते हैं, वे सब स्तुति करनेयोग्य नहीं हैं। आहाहा!

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आता है न? 'गृहस्थो मोखमग्गो' गृहस्थी मोक्षमार्ग में है समकिती ज्ञानी और मोही अणगार संसारी है। मुनि हुआ होने पर भी जिसे राग का प्रेम है, राग की रुचि है, परवस्तु का-परिग्रह का संग्रह है। कहते हैं कि ऐसे मिथ्यादृष्टि उन्मार्ग में पड़े हैं और गृहस्थाश्रम में रहे समकिती और ज्ञानी हैं तो वह मार्ग में है। आता है न श्लोक? वह श्लोक आता है। निर्मोहो: समकिती निर्मोही है। संसार में होने पर भी, छह खण्ड के राज में दिखाई देने पर भी छह खण्ड के राज की ममता नहीं। समझ में आया? प्रवृत्ति की ममता है परन्तु वह राग और यह चीज़ मैं हूँ, ऐसी ममता दृष्टि छूटकर आत्मा का अनुभव हुआ है। ऐसे समकिती गृहस्थाश्रम में भी रहा हुआ मोक्षमार्ग में निर्मोही है। निर्मोही है न? समकिती मिथ्यात्वरहित। मोही अणगार। वह संसारमार्ग में पड़े हैं। आहाहा! ऐसी बात है। लोगों को बाह्य त्याग में ही इतना मान घुस गया है। अन्दर वस्तु... वे पण्डितजी नहीं कहते थे कि समकित में तो सर्व का त्याग हो गया। समकित में किसका त्याग नहीं हुआ? विकल्प का त्याग हुआ। शुभराग भी मेरा नहीं, ऐसा त्याग हो गया। सम्यग्दर्शन में आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, (उसके आश्रय से), जिसे तीर्थंकरगोत्र के भाव का त्याग हो गया है। नहीं। वह मेरी चीज़ ही नहीं न। पश्चात् प्रवृत्ति का राग आसक्ति है। वह स्वरूप की स्थिरता करेगा तो आसक्ति छूट जाएगी। समझ में आया? परन्तु पहले अभी सम्यग्दर्शन-ज्ञान में राग का त्याग नहीं, पहला मिथ्यात्व का त्याग नहीं, उसे पहले अव्रत का त्याग कहाँ से आया? पहले तो मिथ्यात्व का त्याग होना चाहिए।

मुमुक्षु : चारित्र का राग रह गया...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अस्थिरता का राग है। वह कहीं मिथ्यात्व का राग नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

धर्मात्मा को उसी का आश्रय करना, अन्य की स्तुति, प्रशंसा, विनयादिक न करना, यह बोधपाहुड ग्रन्थ करने का आशय है। समझ में आया? और **जिसमें...** बहुरि अर्थात् और अथवा **जिसमें इस प्रकार के निर्ग्रन्थ मुनि रहते हैं, इस प्रकार के क्षेत्र को भी 'आयतन' कहते हैं, जो व्यवहार है।** निश्चय अपना क्षेत्र आनन्द का

धाम, वह आयतन। पुण्य-पाप के विकल्परहित आत्मा, वह आयतन। व्यवहार से जहाँ मुनि बसे, उसे व्यवहार से धर्म का आयतन कहते हैं। सम्मेदशिखर, शत्रुंजय इत्यादि जहाँ मुनि थे और मोक्ष पधारे हैं, उसे व्यवहार से धर्म का आयतन कहा जाता है। क्योंकि वह भी एक शुभभाव में निमित्त है। शुद्धभाव में कारण आत्मा है और शुभभाव में यह धर्मायतन निमित्त है। क्या कहा? आत्मा की पवित्र दशा जो शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसका आश्रय-आधार आत्मा है और शुभभाव का निमित्त वे ऐसे बाहर के आचरण हैं। इसलिए उसे व्यवहार से धर्मायतन कहा जाता है। निश्चय से धर्मायतन जिसे भान में आया है, उसे वह व्यवहार से धर्मायतन कहा जाता है। परन्तु जहाँ निश्चय का भान नहीं, उसे व्यवहार धर्मायतन भी नहीं हो सकता। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से व्यवहार आया? व्यवहार तो अन्धा है। जगे बिना व्यवहार आया कहाँ से? समझ में आया? आहाहा!

यह बोधपाहुड ग्रन्थ करने का आशय है। जिसमें इस प्रकार के निर्ग्रन्थ मुनि रहते हैं, इस प्रकार के क्षेत्र को भी 'आयतन' कहते हैं, जो व्यवहार है। लो! यह व्यवहार डाला। मन्दिर, सम्मेदशिखर आदि हैं। जहाँ मुनि बसते, जहाँ मुनि मोक्ष पधारे हैं। क्योंकि जिस जगह से मोक्ष पधारे, उस स्थान में वहाँ विराजते हैं। ऊपर। जिस स्थान में से मोक्ष पधारे, सीधे उस स्थान में ऊपर (लोकाग्र में) भगवान विराजते हैं। जितने सिद्ध हुए वे। जिस स्थान से सिद्ध हुए वहाँ ऊपर विराजते हैं। इसलिए वह स्मृति का निमित्त स्थान है। समझ में आया? वास्तविक सिद्धायतन तो सिद्ध हैं वे। परन्तु वे जहाँ से सिद्ध हुए, वह व्यवहार सिद्धायतन शुभभाव का निमित्त कहा जाता है।

मुमुक्षु : प्रत्येक स्थान से हुए हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक स्थान है। जैसे कि नेमिनाथ भगवान तो यहाँ गिरनार से मोक्ष पधारे। गिरनार का शिखर है न? वहाँ ही हैं वे। वे वहाँ ही विराजते हैं। आगे-पीछे हो नहीं सकते। यह तो एक व्यक्ति का नाम है। तीर्थंकर 'नेमिनाथ' भगवान या 'महावीर' भगवान कहाँ पधारे? कि पावापुरी। तो जिस स्थान से मोक्ष पधारे, उस स्थान में ऊपर हैं।

और सादि-अनन्त (काल) वहाँ रहनेवाले हैं। वह निमित्त है, उसे स्मृति में। स्मृति करने में वह निमित्त है। इसलिए उसे व्यवहार आयतन कहा जाता है। पुण्यबन्ध के शुभभाव में वह निमित्त है। आहाहा! क्योंकि परक्षेत्र है न? तो परक्षेत्र का लक्ष्य जाता है तो उसे राग आये बिना नहीं रहता। परन्तु वह राग शुभ है। स्त्री, कुटुम्ब आदि, धन्धे में लक्ष्य जाए, वह राग अशुभ है। समझ में आया? आहाहा!

जहाँ राग से और निमित्त से भिन्न पड़ा हुआ आत्मा का ज्ञान है, उस वास्तविक आत्मा का निवासस्थान वह है परन्तु उसे जहाँ आगे सन्त मोक्ष पधारे, यहाँ शत्रुंजय लो! पाण्डव—भीम, अर्जुन और धर्मराजा—तीन वहाँ से मोक्ष पधारे हैं। जिस स्थान से गये, वहाँ ऊपर (लोकाग्र में) विराजते हैं। वहाँ जाए तो स्मृति में ख्याल आवे। ओहो! परमात्मा यहाँ ऊपर विराजते हैं। ऐसा शुभ का निमित्त है। यह शुभ करे तो। वह कहीं शुभ कराता नहीं। भगवानजीभाई! उसे व्यवहार से आयतन कहा जाता है। वह निश्चय होवे तो। जिसे निश्चय का भान नहीं है, उसे तो व्यवहार, व्यवहार कहने में नहीं आता। कहो, प्रकाशदासजी! वहाँ नहीं निश्चय की खबर, नहीं व्यवहार की खबर। वस्तुस्थिति ऐसी है। किसी व्यक्ति के लिये है यह?

भगवान अन्तर अनन्तानन्त आनन्द और गुण का धाम, ऐसा जिसे अन्तर में प्रगट हुआ है, उसे यहाँ आयतन और धर्म के स्थान कहा जाता है। वह धर्म का क्षेत्र। बाह्य धर्म का क्षेत्र, वह व्यवहार है। समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? पहले से कहा होता तो ऐसे मन्दिर होता? परन्तु वह होने के काल में होता है, उसे करे कौन? इसका भाव निमित्त कहने में आता है। उस भाव के कारण वहाँ होता है? मन्दिर के रजकण पुद्गल हैं। उसकी पर्याय का काल हो, तब वहाँ रचते हैं। उसे दूसरा कोई मन्दिर को रचे, इस बात में कुछ दम नहीं है। पुद्गल परावर्तन के परिणमन में उसमें जब पर्याय का काल होता है, (तब) मन्दिर रचता है। जड़ मन्दिर को रचता है, आत्मा नहीं। आहाहा! मात्र भाव बनाने का शुभभाव निमित्त कहलाता है। परन्तु शुभभाव है, इसलिए वहाँ रचता है और रचता है, इसलिए यहाँ शुभभाव उसके कारण से आता है, ऐसा नहीं है। तो वह कर्ता हो जाता है और शुभभाव कर्म हो जाए, ऐसा कर्ता-कर्म का सम्बन्ध पर के साथ नहीं हो सकता। ऐसा शुभभाव कर्ता और मन्दिर कार्य, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! गजब बात।

समझ में आया ? कर्ता-कर्म अभेद अपने में होते हैं। पर के साथ कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं हो सकता।

यह व्यवहार है। यह परक्षेत्र में सिद्ध भगवान विराजे, सिद्ध भगवान जिस क्षेत्र से हुए, जिस क्षेत्र से मुनि मोक्ष पधारे, अरे! कोई सर्वार्थसिद्धि आदि में गया, लो न! दो मुनि सर्वार्थसिद्धि में गये। पालीताणा से। सहदेव और नकुल। तीन गये मोक्ष। एक साथ पाँच (ध्यान में थे)। तीन को केवलज्ञान होकर मोक्ष पधारे और एक को जरा विकल्प आया कि, अरे! भाई को कैसे होगा ? लोहे के पहनाये न ? बाजुबन्ध पहनाये। नग्न मुनि ध्यान में, आनन्द में (थे)। तीन तो अन्दर उतर गये। इसलिए उसे क्या कहलाता है ? सिद्धक्षेत्र। सिद्धक्षेत्र कहलाता है न ? परन्तु वह व्यवहार सिद्धक्षेत्र है। यह पालीताणा सिद्धक्षेत्र कहलाता है। सिद्धक्षेत्र, परन्तु वह व्यवहार सिद्धक्षेत्र। निश्चय सिद्धक्षेत्र यह (निजात्मा)। समझ में आया ? लो! सिद्धक्षेत्र में अपन रहें तो अपनी मुक्ति होगी। धूल में भी नहीं होगी। वह तो परक्षेत्र है। वे कहते हैं न, काशी में करवत ले तो कल्याण हो। तो यह कहते हैं कि सिद्धक्षेत्र में जाए तो कल्याण हो। दोनों एक प्रकार की मान्यतावाले हैं। ऐई! पोपटभाई! मार्ग तो ऐसा है, भगवानजीभाई! आँख में मैल और सामने एक न्याय से विरुद्ध न सामने उसमें। मार्ग की पद्धति ऐसी है, उसे इसे बराबर मानना चाहिए। समझ में आया ?

गाथा-८

आगे चैत्यगृह का निरूपण करते हैं -

बुद्धं जं बोहंतो अप्पाणं चेदयाइं अण्णं च।
पंचमहव्वयसुद्धं णाणमयं जाण चेदिहरं॥८॥

बुद्धं यत् बोधयन् आत्मानं चैत्यानि अन्यत् च।
पंचमहाव्रतशुद्धं ज्ञानमयं ज्ञानीहि चैत्यगृहम्॥८॥

वे स्वात्मा पर-आत्मा जानें सदा चैतन्यमय।
जो ज्ञानमय पाँचों महाव्रत शुद्ध युत हैं चैत्यगृह॥८॥

_अर्थ_ – जो मुनि 'बुद्ध' अर्थात् ज्ञानमयी आत्मा को जानता हो, अन्य जीवों को 'चैत्य' अर्थात् चेतनास्वरूप जानता हो, आप ज्ञानमयी हो और पाँच महाव्रतों से शुद्ध हो, निर्मल हो, उस मुनि को हे भव्य ! तू 'चैत्यगृह' जान।

_भावार्थ_ – जिसमें अपने को और दूसरे को जाननेवाला ज्ञानी निष्पाप-निर्मल इस प्रकार 'चैत्य' अर्थात् चेतनास्वरूप आत्मा रहता है, वह 'चैत्यगृह' है। इस प्रकार का चैत्यगृह संयमी मुनि है, अन्य पाषाण आदि के मंदिर को 'चैत्यगृह' कहना व्यवहार है।।८।।

गाथा-८ पर प्रवचन

अब चैत्यगृह आया। लो, शोभालालजी! शोभालालजी का आया चैत्यगृह। चैत्यगृह बनाया है न इन्होंने? वह चैत्यगृह यह नहीं। है न? आठवीं गाथा। यह आयतन की व्याख्या हुई इन चार गाथा में आयतन। अब यह दूसरा बोल चैत्यगृह। चैत्यगृह किसे कहना?

बुद्धं जं बोहंतो अप्पाणं चेदयाइं अण्णं च।
पंचमहव्वयसुद्धं णाणमयं जाण चेदिहरं।।८।।

_अर्थ_ – जो मुनि 'बुद्ध' अर्थात् ज्ञानमयी आत्मा को जानता हो,... अकेला ज्ञानमय ही भगवान है। पुण्य-पाप विकल्प-फिकल्प उसमें है नहीं। व्यवहार का विकल्प उठे, वह भी उसमें नहीं है। वह तो ज्ञान की मूर्ति चैतन्य है। ऐसा **जो मुनि...** अपने आत्मा को ज्ञानमय ऐसा जाने। और **अन्य जीवों को 'चैत्य' अर्थात् चेतनास्वरूप जानता हो,...** ऐसा दूसरे को भी चैत्यस्वरूप है, वह भी ज्ञान की मूर्ति है – ऐसा जाने। समझ में आया? **अन्य जीवों को 'चैत्य' अर्थात् चेतनास्वरूप जानता हो,...** देखा! अपने को भी चैतन्यमय जाने और दूसरे आत्मा को भी चैतन्यमय जाने। दूसरे आत्मा को शरीरवाला, रागवाला जाने नहीं। और उपदेश भी चैतन्य को यह दे। दूसरे को कहे, तू चैतन्यमय है। राग नहीं, पुण्य नहीं, व्यवहार नहीं। तू चैतन्यमय आत्मा है। ऐसा उपदेश दे, ऐसा स्वयं अपने को माने और दूसरे के आत्मा को चैतन्यमय जाने और उपदेश चैतन्यमय तू है, ऐसा बतावे। समझ में आया?

आप ज्ञानमयी हो और पाँच महाव्रतों से शुद्ध हो,... पंच महाव्रत के परिणाम

से शुद्ध हो। संयम है। चारित्रदशा जहाँ वर्तती है। **निर्मल हो, उस मुनि को हे भव्य!** देखो! **'जाण'** है न? अन्दर **'जाण'** है न? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, **'जाण'**। **'जाण'** कहते हैं किसे? किसी भव्य जीव को। ऐसा। **'जाण'** शब्द पड़ा है न? **'णाणमयं जाण' 'जाण'** हे आत्मा! तू ज्ञानमय है। यह चैतन्यघर तेरा आत्मस्वरूप है। जिसमें चैत्य-ज्ञान बसता है। वह चैत्यघर तो आत्मा है। बाहर में पुस्तक-बुस्तक छोड़कर चैतन्यघर कहना, यह तो वह व्यवहार शुभभाव का निमित्त है, पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया?

उस मुनि को हे भव्य! तू 'चैत्यगृह' जान। ऐसा आता है न? पाठ में है **'जाण'**। आदेश करते हैं। उसे चैत्यगृह जान। यह पुस्तक रखी और भगवान के यह चैत्यगृह, प्रतिमा रखी। चैत्य अर्थात् प्रतिमा। उसका घर यह। यह तो व्यवहार है। परमार्थ से चैत्य आनन्दकन्द भगवान, जिसमें चैतन्यपना ही रहता है, चैतन्यपना ही है। ऐसे चैतन्यपने का जिसे ज्ञान है। तो दूसरे आत्माएँ चैतन्यमय है। समझ में आया? और पंच महाव्रतसहित है। साधुपना लेना है न? चारित्रसहित है। उसे तू चैत्यगृह जान। समझ में आया? विवाद उठता है न कितनो को कि चैत्यगृह हो। भगवान की प्रतिमा न हो। भई! दोनों होते हैं। सुन न! व्यवहार से दोनों होते हैं। निश्चय में एक भी नहीं होता। ले। समझ में आया?

मुमुक्षु : एक को जाने, वह सर्व को जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने, पंच महाव्रत आदि सर्व को जाने। महाव्रत विकल्प है, उसे जाने।

मुमुक्षु : ... सबको?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको चैतन्यमय ऐसा जाने। और अपने में विकल्प उठता है, उस महाव्रत को जाने। इससे महाव्रतसहित है, ऐसा कहने में आता है। उस समय महाव्रत का विकल्प उठे, उसे जाननेवाला है न? वास्तव में विकल्प का कर्ता नहीं है। महाव्रत तो विकल्प है। उसका कर्ता नहीं। तो उसे जाननेवाला है। महाव्रत है, उसे जाने। वह महाव्रत सहित, महाव्रत के ज्ञानसहित (है, इसलिए) उसे महाव्रत सहित कहा जाता है। समझ में आया? अरे! भाई!

महाव्रत है, वहाँ तो चारित्र है। अन्दर चारित्र-स्थिरता हो, तब उस महाव्रत के

विकल्प को व्यवहार कहा जाता है। चारित्र की स्थिरता न हो तो महाव्रत के विकल्प को व्यवहार कहे कौन? आनन्दस्वरूप में स्थिरता है, वीतरागी आनन्द बहुत प्रगट हुआ है, उसे चारित्र कहते हैं। और पंच महाव्रत के विकल्प को व्यवहारचारित्र कहते हैं। व्यवहारचारित्र अर्थात् चारित्र नहीं, उसे चारित्र कहना। उसे ज्ञानी जानता है कि यह है अवश्य। इस भूमिका में पंच महाव्रत होते हैं। जाने। माने नहीं कि मेरे हैं और अपने को आदरणीय है। मात्र जाने। समझ में आया?

मुमुक्षु : विकल्प का ज्ञान करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान ही जानता है। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। ऐसा (समयसार) बारहवीं गाथा में कहा न? जाना हुआ प्रयोजनवान है। जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा कहा।

जिसमें अपने को और दूसरे को जाननेवाला ज्ञानी निष्पाप-निर्मल इस प्रकार 'चैत्य' अर्थात् चेतनास्वरूप आत्मा रहता है,... देखो!

भावार्थ - जिसमें अपने को और दूसरे को जाननेवाला... अपने को और पर को जाननेवाला ज्ञानी, **निष्पाप-निर्मल...** चारित्रसहित है न। **इस प्रकार 'चैत्य' अर्थात् चेतनास्वरूप आत्मा रहता है, वह 'चैत्यगृह' है।** चेतनास्वरूप जिसमें बसता है, वह चैत्यगृह आत्मा है। **इस प्रकार का चैत्यगृह संयमी मुनि है,...** यहाँ तो वीतरागी चारित्रसहित लेना है न? निर्ग्रन्थमार्ग, मूल मोक्ष का मार्ग तो वीतराग है। और वीतरागदशा छठे-सातवें में प्रगट होती है। वहाँ से ही उसे मोक्ष का मार्ग गिनने में आया है। चौथे गुणस्थान में उपचार से मोक्षमार्ग है। क्योंकि अभी चारित्र आया नहीं। दो भाग आये— दर्शन-ज्ञान। स्वरूप के आचरण की स्थिरता का अंश है, परन्तु जो चारित्र वीतरागता जो तीन कषाय के अभाव की चाहिए, वह नहीं है। वहाँ तक उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहते हैं। वास्तव में छठे-सातवें में आनन्द में झूलनेवाले वीतरागी सन्त, उन्हें तू चैत्यगृह जान।

अन्य पाषाण आदि के मंदिर को 'चैत्यगृह' कहना व्यवहार है। लो! यह भगवान की प्रतिमा जो है, वह तो व्यवहार चैत्यगृह है। शुभभाव में निमित्त है। शुद्धभाव में निमित्त आत्मा है। शुद्धभाव में निमित्त अर्थात् कारण आत्मा है। शुभभाव में निमित्त यह है। समझ में आया? विशेष कहेंगे... अब चैतन्य की व्याख्या कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५१, गाथा-८ से १०, रविवार, आषाढ़ कृष्ण १५, दिनांक ०२-०८-१९७०

अष्टपाहुड़, बोधपाहुड की आठवीं गाथा। चैत्यगृह किसे कहना? जैनदर्शन में चैत्यगृह और प्रतिमा का जो घर कहलाता है, यह मन्दिर, वह तो व्यवहार है। निश्चय चैत्यगृह हो, उसे इस व्यवहार चैत्यगृह का शुभभाव हो, उसे व्यवहार कहा जाता है।

बुद्धं जं बोहंतो अप्पाणं चेदयाइं अण्णं च।
पंचमहव्वयसुद्धं णाणमयं जाण चेदिहरं।।८।।

अर्थ – जो मुनि 'बुद्ध' अर्थात् ज्ञानमयी आत्मा को जानता हो,... आत्मा तो ज्ञान-चैत्यस्वरूप है। चैत्य अर्थात् ज्ञान। ज्ञानस्वरूप आत्मा है। चैत्य का अर्थ, स्थानकवासी भी चैत्य का अर्थ ज्ञान करते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरे प्रकार से।

यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य चैत्य का अर्थ ज्ञान करते हैं और स्थानकवासी चैत्य का अर्थ ज्ञान करते हैं, दोनों में अन्तर है। समझ में आया? ऐई! त्रम्बकभाई! वहाँ तो चैत्य प्रतिमा है। उसका अर्थ वहाँ वह ज्ञान करते हैं। व्यवहार शब्द है चैत्य, वहाँ ३२ सूत्र में चैत्य आवे वहाँ, उसका अर्थ वे ज्ञान करते हैं। परन्तु वह मिथ्या बात है। वहाँ प्रतिमा है। और यहाँ चैत्य का अर्थ ज्ञान है। अभी चैत्यगृह।

जिसे यह आत्मा ज्ञानस्वरूप आत्मा है, ऐसा जिसे भान हुआ है, ऐसा आत्मा, उसे यहाँ चैत्यगृह कहा जाता है। ज्ञान का घर। यह चैत्यगृह तो बाद में। ऐसा चैतन्यगृह का भान हो कि चैतन्य ज्ञान तो मेरे स्वभाव में है। मैं चैतन्यगृह हूँ। ऐई! सेठ! तुम्हारा चैतन्यगृह वह नहीं, वापस वह पुस्तकवाला नहीं। समझ में आया? इसके बाद दूसरी बात।

भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञान की मूर्ति है। ऐसा जिसे भान हुआ है, अनुभव हुआ है, तदुपरान्त **अन्य जीवों को 'चैत्य' अर्थात् चेतनास्वरूप जानता हो,...** दूसरे जीव को वह चैतन्यस्वरूप ही जानता हो। दूसरे जीव रागवाले हैं और आस्रववाले हैं और बन्धवाले

हैं, ऐसा न जाने। समझ में आया? क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप है। उसे रागवाला, आस्रववाला, बन्धवाला जानना, वह विपरीत मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? लड़कों! आओ-आओ अन्दर। बाहर झोंके खाते हैं। देरी से आये। कहो, समझ में आया?

चैत्यगृह। चैत्य अर्थात् भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी वस्तु को आत्मा कहते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वे तो आस्रव हैं। उन सहित आत्मा है—ऐसा मानना, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? आओ-आओ अन्दर। घुस जाओ। यह तो जहाँ-तहाँ बैठ जायेंगे। जगह बहुत है। बड़े चने का बाजरा समा जाए बारीक-बारीक। ऐसा शास्त्र में लेख है, भाई! बड़ा फल हो, उसमें छोटा बारीक घुस जाए। समझ में आया?

क्या कहा यह? देखो, यह चैत्यगृह व्यवहार से। कितने ही तो प्रतिमा को मानते ही नहीं। वे तो व्यवहार को नहीं माननेवाले, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं। परन्तु अकेले व्यवहार को मानते है, चैत्यगृह वही है, मूर्ति और पूजा वही है, ऐसा माने और चैतन्य आत्मा का ज्ञान और भान से रहित नहीं। पर से रहित है, ऐसा आत्मा, ऐसा जिसे भान नहीं, वह भी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! शोभालालजी! यहाँ तो ऐसी बात है, भाई! कोई पक्ष-बक्ष की बात यहाँ है नहीं।

मुमुक्षु : सत्य बात का तो पक्ष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु वह पक्ष अर्थात् यह अमुक को सच्चा कहना, अमुक को बुरा लगेगा, यह नहीं। .... है।

चैत्यगृह भगवान अकेला ज्ञान। पुरुषार्थसिद्धियुपाय में १४वीं गाथा में लिया है न? कि यह आत्मा वस्तु आस्रव और कर्म दोनों से रहित है, तथापि **'बालिशानां'** अज्ञानियों को यह राग, आस्रव और अजीव सहित भासित होती है, यही भव का बीज है। समझ में आया? भगवान आत्मा... पुरुषार्थसिद्धियुपाय की १४वीं गाथा में है। समझ में आया? है? पुरुषार्थसिद्धि उपाय नहीं होगा।

मुमुक्षु : गुजराती समयसार में अन्तिम पृष्ठा...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थसिद्धि उपाय नहीं इसमें? लो! यहाँ आया। १४वीं गाथा है। अमृतचन्द्राचार्य पुरुषार्थसिद्धि उपाय।

एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमाहतोऽपि युक्त इव।
प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्।।१४।।

इस प्रकार यह आत्मा... भगवान आत्मा। यहाँ देखो! चैत्यगृह यह कहना है। आत्मा ज्ञानस्वभाव से भरपूर आत्मा है। उसे पुण्य-पाप, राग, शरीर-फरीर उसमें है नहीं। **इस प्रकार यह आत्मा कर्मकृत रागादि अथवा शरीरादि भावों से संयुक्त न होने पर भी अज्ञानी जीवों को संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है...** राग और शरीर सहितपना आत्मा को भासित होता है, **वह प्रतिभास ही निश्चय से संसार के बीजरूप है।** पण्डितजी! बहुत संक्षिप्त। समझ में आया? भगवान आत्मा... आस्रव है परन्तु वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। वह फिर ९वीं गाथा में आयेगा। समझ में आया?

आस्रव है, भावबन्ध है, द्रव्यबन्ध है परन्तु वह तो ज्ञान का ज्ञेय है; ज्ञान की चीज़ नहीं। समझ में आया? वह आत्मा की चीज़ नहीं। शोभालालजी! परवस्तु है। भगवान आत्मा ज्ञान चैतन्यस्वरूप, वह चैतन्य जिसमें बसता है, वह आत्मा चैत्यगृह है। निश्चय से चैत्यगृह भगवान आत्मा है। समझ में आया? और ऐसा ही अन्य जीव का चैत्य कहते हैं। दूसरे जीव को वह ऐसा जाने। दूसरे जीव को भी आस्रव और रागवाला वह आत्मा है, ऐसा न जाने। आहाहा! चैतन्यमूर्ति आत्मा को आत्मा कहते हैं। राग और पुण्य, वह तो सब ज्ञान का परज्ञेयरूप से विषय है। उसकी चीज़ नहीं। ऐसा जो जानता हो, तदुपरान्त...

आप ज्ञानमयी हो और पाँच महाव्रतों से शुद्ध हो,... भाषा देखो! 'शुद्ध' शब्द पड़ा है। महाव्रत है तो अशुद्ध विकल्प। परन्तु अन्दर वस्तु की-चारित्र की निर्मलता प्रगटी है, उसके साथ व्यवहार के विकल्प हैं, उसे व्यवहार से शुद्ध कहा जाता है। क्योंकि अन्दर शुद्धता, ज्ञानमय आत्मा हूँ, ऐसे स्वरूप के भानसहित है और स्वरूप में स्थिर हुआ है। चारित्ररूप से वीतरागभाव में अन्दर स्थिर हुआ है। उसे पंच महाव्रत के विकल्प को यहाँ शुद्ध कहा। क्यों? कि वह शुद्ध तो चारित्र है, परन्तु विकल्प का आरोप करके उसे शुद्ध कहा। ऐसा जो जीव, उसे चैत्यगृह कहते हैं। आहाहा! हीराभाई! यह फिर से लिया। जरा यह दो गाथा चैत्य की है सही न। ओहोहो!

ज्ञान भी एकान्त ज्ञान, वही आत्मा और चैत्यगृह है, यह तो निश्चय है। समझ में आया? और पंच महाव्रत के विकल्पसहित, शुद्धता की स्थिरतासहित वर्तता है, इसलिए

उसे शुद्ध कहा जाता है और वह चैत्य का घर है। लो! **आप ज्ञानमयी हो और पाँच महाव्रतों से शुद्ध हो, निर्मल हो, उस मुनि को हे भव्य! तू 'चैत्यगृह' जान।** ऐसे मुनि को ज्ञान का घर जान। वह चैत्य का घर, वह मुनि है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे चैत्यगृह को जाने नहीं और अकेले चैत्यगृह की प्रतिमा को चैत्यगृह व्यवहार अकेला माने, वह मिथ्यादृष्टि है। परन्तु चैतन्य को ऐसा मानकर इस चैत्यगृह का शुभभाव से उसे वन्दन आदि व्यवहारादि हो तो वह पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया?

स्थानकवासी जहाँ-तहाँ चैत्य आवे, वहाँ ज्ञान (अर्थ करते हैं)। परन्तु अकेला ज्ञान, ऐसा जब प्रतिमा दूसरी है, ऐसा व्यवहार कहाँ गया? और व्यवहार न हो तो वहाँ उसे निश्चय का भी भान नहीं है। और व्यवहार अकेला हो, उसे भी निश्चय का भान नहीं है। वह तो राग है, ऐसा व्यवहार बीच में आता है। जब तक पूर्ण वीतराग न हो, बीच में आता है, परन्तु वह तो व्यवहार है। व्यवहार का अर्थ ही परवस्तु है, ऐसा है वह। शुभराग वह व्यवहार अर्थात् परवस्तु; स्ववस्तु नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब!

शुद्ध हो, निर्मल हो, उस मुनि को हे भव्य! तू 'चैत्यगृह' जान। उसे तू चैत्य का घर जान। वे कितने ही लोग यहाँ के लिये क्या कहते हैं? कि ये लोग मूल स्थानकवासी थे; प्रतिमा को नहीं मानते थे, इसलिए अब अभी प्रतिमा को मानने से धर्म होता है, संवर-निर्जरा होती है, ऐसा नहीं मानते। ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! दूसरे पण्डित (ऐसा कहते हैं कि) ये लोग पहले स्थानकवासी थे, इसलिए मूर्ति को मानते नहीं थे। अभी वापस मूर्ति में संवर-निर्जरा नहीं मानते; इसलिए वास्तव में तो मानते ही नहीं।

मुमुक्षु : उससे संवर-निर्जरा माने तो माना कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो माना कहलाये। भगवान की प्रतिमा से धर्म हुआ, ऐसा माने (तो माना कहलाये)। परन्तु प्रतिमा के आश्रय से धर्म तो किसी को तीन काल में नहीं होता। सुन न। साक्षात् भगवान तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजते हों, उनकी भक्ति और उनकी वन्दन-पूजा, वह सब शुभभाव है, संवर-निर्जरा नहीं। परद्रव्य के आश्रय से जितना व्यवहार (होता है), उसमें शुभभाव है। आहाहा! समझ में आया? वह होता अवश्य है परन्तु उसमें ऐसा मान ले कि वहाँ संवर-निर्जरा है (तो ऐसा नहीं है)। ऐसा कितने ही आक्षेप करते हैं कि ये तो स्थानकवासी थे। फिर उस स्थानकवासी में मूर्ति मानते

नहीं। ऐई! तुम सब यह हो न? ये भी थे न वहाँ। कोई-कोई होंगे ऐसे मन्दिरमार्गी। मन्दिरमार्गी थे? मोहनभाई मन्दिरमार्गी थे। समझ में आया? बाकी तो बहुत स्थानकवासी थे। यह वीरचन्दभाई मन्दिरमार्गी थे। स्थानकवासी थे? हाँ, हाँ। स्थानकवासी थे। स्थानकवासी, हों। ऐसा अन्तर है। ये लोग भगवान की मूर्ति-प्रतिमा को वन्दन करे, चरणस्पर्श करे परन्तु धर्म नहीं मानते। पहले से धर्म के संस्कार नहीं थे इसलिए। स्थानकवासी में थे, इसलिए धर्म नहीं मानते। ऐई! भगवानजीभाई! लो! यह भी मन्दिरमार्गी है। यह पूर्व की अपेक्षा की बात है। आहाहा!

यहाँ तो मन्दिर यह है। आत्मारूपी देवल, उसमें चैतन्य बसता है वह देवल है, मन्दिर है। आहाहा! ऐसा जानकर अनुभव और सम्यग्दर्शन हो, उसे ऐसे प्रतिमा का वन्दन-भक्ति का शुभ व्यवहार आये बिना नहीं रहता। समझ में आया?

भावार्थ – जिसमें अपने को और दूसरे को जाननेवाला ज्ञानी... लो! अपने को-दूसरे को-स्वयं और पर। जाननेवाला जो ज्ञान जिसमें बसता है। **निष्पाप-निर्मल इस प्रकार 'चैत्य'...** कहते हैं। जिसमें कुछ पाप जरा भी नहीं। समझ में आया? पुण्य-पाप के विकल्प जिसमें नहीं। ऐसा जो चैत्य भगवान, **चेतनास्वरूप आत्मा रहता है, वह 'चैत्यगृह' है।** जिसमें चेतनास्वरूप... किसने गुजराती दिया? गुजराती है यह? कहा, यह चौड़ा कैसे लिया? कहो, समझ में आया? यह तो शब्द एक ही है। जिसमें भगवान स्व-पर को जाननेवाला गुण, चैत्य ऐसा बसे, उस मुनि को चैत्यगृह कहा जाता है।

इस प्रकार का चैत्यगृह संयमी मुनि है,... आहाहा! यह समकिती नहीं। तीनों का इकट्ठा लेना है न? दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीन की एकता हो, तब निर्ग्रन्थ मार्ग होता है। तब उसकी मुद्रा दिगम्बर नग्न होती है। उसे कोई वस्त्र-पात्र की मुद्रा हो, ऐसा नहीं रहता। ऐसी वस्तु की मर्यादा है। मुनिपना अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की तीन कषाय के अभाव की स्थिरता प्रगटे, उसे वस्त्र, पात्र, अध:कर्मी आहार, उनके लिये बनाया हुआ आहार का विकल्प, वह नहीं हो सकता। यह उद्देशिक-बुद्देशिक आहार लेते हैं न? चौका करावे। यह नहीं हो सकता। सच्चे मुनि को यह नहीं हो सकता। वे सच्चे मुनि यह चैत्यगृह है। आहाहा!

कल आया नहीं था उसमें? पिछली रात। पण्डितजी! छहढाला में। पिछली रात

में एकासन (सोवे)। पिछली रात में एक थोड़ी निद्रा आवे। एक पौन सेकेण्ड के अन्दर निद्रा। मुनि को इतनी दशा ही होती है। मुनि को पौन सेकेण्ड के अन्दर निद्रा (होती है)। छठवें गुणस्थान में जितनी निद्रा है। सातवें में आवे एकदम निद्रा उड़ जाये। ऐसी उनकी दशा है। साधु अर्थात् भावलिंग मुनि किन्हें कहें? समझ में आया? उसे यहाँ चैत्यगृह कहा जाता है। जिसकी निद्रा ही अल्प है। चैतन्य का जागृत भाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पौन सेकेण्ड के अन्दर। पिछली रात में एकासन (सोवे)। ऐसा है न? एकासन। एक करवट। ऐसे हो तो ऐसे और ऐसे हो तो ऐसे। एक करवट। अर्थात् सोवे। पहलू बदलकर सोवे, यह मुनि को नहीं होता।

मुमुक्षु : वह तो आकुलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आकुलता है। आहाहा! देखो तो सही! ऐई! पोपटभाई! ऐसे ज्ञानमय और वीतरागमय मूर्ति को चैतन्यगृह—वह प्रतिमा का मकान और घर और मन्दिर कहा जाता है। प्रतिमा का बाद में लेंगे। इसके पश्चात् तुरन्त प्रतिमा आयेगी। समझ में आया?

अन्य पाषाण आदि के मंदिर को 'चैत्यगृह' कहना व्यवहार है। देखो! भगवान की मूर्ति, चैत्य प्रतिमा, यह शास्त्र के मन्दिर, वह सब व्यवहार है। व्यवहार अर्थात् जब शुभभाव आवे, तब उनकी भक्ति, वन्दन आदि का भाव होता है। समकिती को होता है, ज्ञानी को होता है और मुनि को भी होता है। ऐसा व्यवहार होता है। कहाँ गये, प्रकाशदासजी? क्या कहते हैं सुनो! दो बात (करते हैं), दो।

अकेली प्रतिमा को न माने, व्यवहार न ही माने और अकेला निश्चय माने, वह भी निश्चयाभास अज्ञानी है। एक बात। और चैतन्य प्रतिमा को माने परन्तु निश्चय ज्ञानानन्द आत्मा है, उसे अनुभव करे और माने नहीं तो वह भी अकेला व्यवहाराभासी है। परन्तु चैतन्य आत्मा... घर तो आनन्द का घर और ज्ञान का घर तो आत्मा है। ऐसा अनुभव है, ऐसा मुनिपना है, ऐसा चैत्यगृह उसे जो ज्ञानी माने, तदुपरान्त फिर जब व्यवहार जिनप्रतिमा मन्दिर आदि का, भक्ति का भाव आता है, उसे व्यवहार कहा जाता है। केवली को व्यवहार नहीं होता, मिथ्यादृष्टि को नहीं होता, समकिती को होता है।

मुमुक्षु : व्यवहार समकिती को ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ही होता है। दूसरे अज्ञानी को व्यवहार कहाँ से आया? केवली को व्यवहार (होता नहीं)। समकिती को होता है, इसका अर्थ? यह तो सम्यग्दर्शन है, वह तो निश्चय में लीन है परन्तु उसे इस प्रकार का राग आता है, इसलिए उसे निमित्तरूप से होता है, ऐसा कहा जाता है। वास्तव में तो सम्यग्दर्शन में व्यवहार में वह लीन होता ही नहीं। आहाहा! परन्तु जिसे इस जाति का पर्याय में शुभराग का व्यवहार आता है। वह न आवे और न हो, ऐसा नहीं है और होता है, इसलिए संवर-निर्जरा है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! मोहनदासजी! ऐसी वस्तु है। आहाहा!

अन्य पाषाण आदि के मंदिर को 'चैत्यगृह' कहना व्यवहार है। व्यवहार है; नहीं -ऐसा नहीं। परन्तु व्यवहार पुण्यबन्ध का कारण है। शुभ उपयोग आता है। है अपराध। परन्तु अशुभ से बचने के लिये अथवा उस काल में उस प्रकार का राग ही उसे उस प्रकार का होता है। वह जानने के लिये है। वास्तव में आदरणीय अन्दर में दृष्टि में नहीं परन्तु आये बिना रहता नहीं। अब दूसरी गाथा।

गाथा-९

आगे फिर कहते हैं -

चेइयं बंधं मोक्खं दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स।
चेइहरं जिणमग्गे छक्कायहियंकरं भणियं।।९।।

चैत्यं बंधं मोक्षं दुःखं सुखं च आत्मकं तस्य।
चैत्यगृहं जिनमार्गे षड्कायहितंकरं भणितम्।।९।।

वह बंध-मुक्ति दुःख-सुखमय आतमा ही चैत्य है।
जिन-मार्ग में षट्काय हितकर चैत्यगृह जिन-कथित हैं।।९।।

अर्थ **- जिसके बंध और मोक्ष, सुख और दुःख हो उस आत्मा को चैत्य कहते हैं अर्थात् ये चिह्न जिसके स्वरूप में हो उसे 'चैत्य' कहते हैं, क्योंकि जो चेतनास्वरूप हो उसी के बंध, मोक्ष, सुख, दुःख संभव हैं। इस प्रकार चैत्य का जो गृह हो**

वह 'चैत्यगृह' है। जिनमार्ग में इस प्रकार चैत्यगृह छहकाय का हित करनेवाला होता है वह इस प्रकार का 'मुनि' है। पाँच स्थावर और त्रस में विकलत्रय और असैनी पंचेन्द्रिय तक केवल रक्षा ही करनेयोग्य है इसलिए उनकी रक्षा करने का उपदेश करता है तथा आप उनका घात नहीं करता है, यही उनका हित है और सैनी पंचेन्द्रिय जीव हैं, उनकी रक्षा भी करता है, रक्षा का उपदेश भी करता है तथा उनको संसार से निवृत्तिरूप मोक्ष प्राप्त करने का उपदेश करते हैं। इस प्रकार मुनिराज को 'चैत्यगृह' कहते हैं।

***भावार्थ* – लौकिक जन चैत्यगृह का स्वरूप अन्यथा अनेक प्रकार मानते हैं, उनको सावधान किया है कि जिनसूत्र में छह काय का हित करनेवाला ज्ञानमयी संयमी मुनि है वह 'चैत्यगृह' है; अन्य को चैत्यगृह कहना मानना व्यवहार है। इस प्रकार चैत्यगृह का स्वरूप कहा।।९।।**

गाथा-९ पर प्रवचन

अब दूसरी (९) गाथा। **आगे फिर कहते हैं –**

चेइयं बंधं मोक्खं दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स।
चेइहरं जिणमग्गे छक्कायहियंकरं भणियं।।९।।

अर्थ – जिसके बंध और मोक्ष, सुख और दुःख हो, उस आत्मा को चैत्य कहते हैं... इसका मूल तो अर्थ ऐसा है जो अपने ३२० गाथा में आ गया है। बन्ध और मोक्ष, सुख और दु:ख, उन्हें जानता है। बन्ध को जाननेवाला ज्ञान है, मोक्ष को जाननेवाला ज्ञान है, कल्पना-सुख को जाननेवाला ज्ञान है, कल्पना-दु:ख को जाननेवाला (ज्ञान) है, उसे चैत्य कहते हैं। समझ में आया? **सुख और दुःख हो, उस आत्मा को चैत्य कहते हैं अर्थात् ये चिह्न जिसके स्वरूप में हो...** स्वरूप में हो, इसका अर्थ? उसके ज्ञान में यह होता है।

मुमुक्षु : उस प्रकार का ज्ञान।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान। बन्ध का ज्ञान, मोक्ष का ज्ञान। यह अपने समयसार की ३२० गाथा में आ गया है। **'जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं'** ज्ञानी बन्ध-मोक्ष को

जाने और उदय तथा निर्जरा को जाने। निर्जरा करता नहीं, उदय करता नहीं। होवे उसे जाने, निर्जरा हो उसे जाने। बन्ध विकल्प है, ऐसा जाने। और विकल्परहित हो, तब मोक्ष है-ऐसा जाने। ऐसा जाननेवाला स्वरूप जिसके घर में है, ऐसा आत्मा, उसे चैत्यगृह कहा जाता है। समझ में आया?

'बंधं मोक्खं, दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स' जो आत्मा को जानने में आवे, ऐसा लेना। ऐई! उसे चैत्य कहते हैं। इन्होंने और दूसरा अर्थ किया कि चेतनस्वरूप ऐसा चैत्य... उनने और यह चैत्य का अर्थ किया बाहर में प्रतिमा। इस प्रतिमा से जो विरुद्ध हो, वह बन्ध को पाता है और बन्ध के फल दु:खरूप पावे, ऐसा लिखा है। और चैतन्य प्रतिमा और यह प्रतिमा दोनों को भलीभाँति जाने-माने, उसे मोक्ष होता है और उसके मोक्ष के फलरूप से सुख होता है। समझ में आया? क्या कहा यह?

एक तो भगवान आत्मा चैतन्य प्रतिमा, चैतन्य घर और यह चैत्यघर-मन्दिर (इन) दो के जो विरुद्ध होता है, वह बन्ध को पाता है और बन्ध के फल को दु:ख को पाता है। और यह भगवान चैतन्य घर और यह चैतन्य प्रतिमा अर्थात् चैत्य प्रतिमा, इससे अविरुद्ध अर्थात् जैसा है, वैसा स्वरूप चैतन्य को जाने और यह भी व्यवहार से प्रतिमा है, ऐसा भी जाने, उसे मोक्ष होता है और उसके मोक्ष के फलरूप से सुख होता है। समझ में आया?

'चेइयं बंधं' ऐसे बन्ध को चेतता है। ऐसी मूल बात तो है। **'चेइयं बंधं'** बन्ध को जानता है। **'चेइयं बंधं मोक्खं'** जानता है मोक्ष को। **'दुक्खं चेइयं'** दु:ख है, उसे जानता है। **'सुक्खं च अप्पयं तस्स'** अपने स्वरूप में उसे जानता है। ऐसा चैत्यगृह भगवान आत्मा है। समझ में आया? यह तो एकान्त प्रतिमा और जिनमन्दिर और चैत्यगृह, उसे मानकर उसमें चौबीस घण्टे रुके और उसमें हैरान हो जाए, उससे कहते हैं कि बापू! यह तो व्यवहार है, पुण्यबन्ध है। यह धर्म नहीं। शोभालालजी! वहीं का वहीं भगवान की प्रतिमा और पूजा किया ही करे। छह-छह घण्टे, आठ-आठ घण्टे। परन्तु यह भगवान आत्मा है, उसे तो जाने नहीं। लक्ष्य भी नहीं। चैतन्य भगवान ज्ञान का सागर जगत के तीन काल, तीन लोक को जिसकी ज्ञान की एक समय की पर्याय जान ले, ऐसा उसका स्वभाव है। श्रुतज्ञान की एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक को जाने। ऐसा जानने का घर वह चैतन्यघर, वह आत्मा है। समझ में आया?

चेतनास्वरूप हो उसी के बंध, मोक्ष, सुख, दुःख संभव हैं। जाननेवाला हो उसे बन्ध, मोक्ष और सुख-दुःख का ज्ञान होता है। जाननेवाला न हो, उसे बन्ध-मोक्ष और सुख-दुःख का ज्ञान (नहीं होता)। जड़ को है कुछ? समझ में आया? जिसके स्वरूप में भावबन्ध जो विकल्प उठते हैं, उन्हें भी भिन्नरूप से जानता है। वह भावबन्धसहित हूँ, ऐसा नहीं। समझ में आया? ऐसे राग व्यवहार से पुण्य का, दया, भक्ति का आता है, उसे जानता है। उस रागसहित मैं आत्मा हूँ, ऐसा नहीं। समझ में आया? और जरा दुःख की कल्पना असहनशीलता के कारण होती है, परन्तु वह दुःखसहित आत्मा हूँ, ऐसा नहीं जाने। उस दुःख का मैं जाननेवाला हूँ, उसके ज्ञानसहित मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया?

चेतनास्वरूप हो... वह तो चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... जागृत ज्योति प्रभु। किसी समय में वह जानने का कार्य न हो, ऐसा है नहीं। उसे राग का काम है और अमुक का कर्तव्य है, वह चैतन्य में नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसे चैत्यगृह को तो जाने नहीं। अकेला चैत्यगृह बाहर में मानकर, धर्म मानकर बैठे। न माने ऐसी तो बात ही नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो गृहीत मिथ्यादृष्टि है। व्यवहार नहीं ही, प्रतिमा नहीं ही, पूजा, प्रतिमा, भक्ति जैनशासन में व्यवहार नहीं, ऐसा माने, वह तो गृहीत मिथ्यादृष्टि है। परन्तु वह है, वह धर्म है, यह भगवान की पूजा निर्जरा है—ऐसा उन लोगों में आता है। आस्रव टले अरु संवर चाल वधे जी। भगवान की पूजा से आस्रव टले। आता है या नहीं? ऐई! चेतनजी! आस्रव टले और संवर बढ़े। बिल्कुल आस्रव टले नहीं। वह तो स्वयं आस्रव है। भगवान की प्रतिमा, वन्दन आदि पूजा-भक्ति शुभभावरूप आस्रव है। होता अवश्य है, परन्तु वह स्वयं धर्म है, ऐसे माननेवाले को चैत्यगृह तेरा यहाँ है, वहाँ नहीं—ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : वह तो रागभाव, पाप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह रागभाव है। निश्चय से तो पाप है। आहाहा! गजब। न करें तो? परन्तु न करे क्या, आये बिना रहता नहीं। शुभभाव, वह चैतन्य के शुद्ध उपयोग में जब तक रमे नहीं, तब तक ऐसा भाव होता है। उस भाव को चैतन्य जानता है। ऐसे जाननेवाले

चैतन्य के घर में वह चैत्यगृह है। कहो, भगवानजीभाई ! गजब बात, भाई ! व्यवहार माने मुश्किल से कि हम मूर्ति में नहीं मानते थे और अब मानने लगे। मानने लगे, तो कहते (हैं, वह तो शुभभाव है)। ऐई !

इस प्रकार चैत्य का जो गृह हो, वह 'चैत्यगृह' है। लो ! **जिनमार्ग में इस प्रकार चैत्यगृह छहकाय का हित करनेवाला होता है...** छह काय का हित करनेवाला। अर्थात् किसी भी प्राणी को यह दु:ख देने का या सुख देने का विकल्प नहीं होता। **वह इस प्रकार का 'मुनि' है। पाँच स्थावर और त्रस में विकलत्रय और असैनी पंचेन्द्रिय तक केवल रक्षा ही करनेयोग्य है...** ऐसा उपदेश करे। उसकी रक्षा करने का उपदेश करे। छह काय का हित करनेवाला कहना है न ? ऐसे मुनि छह काय का हित करनेवाले (होते हैं)। कोई भी प्राणी असंज्ञी आदि को नहीं मारना, इस प्रकार का उनका उपदेश होता है।

केवल रक्षा ही करनेयोग्य है... रक्षा का अर्थ ? नहीं मारनेयोग्य। भाषा तो व्यवहार से ऐसी करे न ? रक्षा कहाँ कर सकता है ? पर की कहीं रक्षा नहीं कर सकता। परन्तु पर को न मारना, यह व्यवहार से रक्षा कही जाती है। आहाहा ! परद्रव्य की रक्षा कहाँ आत्मा करता है ? उसकी स्वतन्त्र पर्याय है। उसका रक्षण करे ? छह काय को बचावे ? बचा कौन सके ? परन्तु दूसरे को न मारने का विकल्प है, वह रक्षा की, ऐसा कहा जाता है।

तथा आप उनका घात नहीं करता है,... एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय मनरहित, उनका स्वयं घात न करे, **यही उनका हित है...** ऐसा। उनका इतना हित। दूसरे को दु:ख नहीं दिया। एकेन्द्रिय से मनरहित। इतना उनका हित कि नहीं मारना। यह छह काय के हित के करनेवाला है, यह सिद्ध करते हैं। **और सैनी पंचेन्द्रिय जीव हैं, उनकी रक्षा भी करता है, रक्षा का उपदेश भी करता है...** पंचेन्द्रिय को न मारे और पंचेन्द्रिय को उपदेश भी करे। भगवान आत्मा की रक्षा करो। पर को मारना नहीं, ऐसा उपदेश पंचेन्द्रिय मनवाले को करे। यह छह काय का हित हो गया। एकेन्द्रिय से (लेकर) मनरहित प्राणी को, उसको न मारने का उपदेश, यह उनका हित कहलाता है। पंचेन्द्रिय को नहीं मारने का उपदेश और स्वयं न मारे, ऐसा एक (प्रकार)। छह काय के हित करनेवाले इस प्रकार मुनि को कहा जाता है। समझ में आया ?

तथा उनको संसार से निवृत्तिरूप मोक्ष प्राप्त करने का उपदेश करते हैं। पंचेन्द्रिय जो क्षयोपशमवाले जीव हैं, उन्हें मोक्ष का उपदेश करे। **इस प्रकार मुनिराज को 'चैत्यगृह' कहते हैं।** आहाहा! समझ में आया? **संसार से निवृत्तिरूप मोक्ष प्राप्त करने का उपदेश करते हैं।** राग से निवृत्तरूप भगवान आत्मा का स्वभाव है, उसे पहिचानकर स्थिर होओ। यह मोक्ष का कारण है। ऐसा उपदेश चैत्यगृह दे। चैत्यगृह ऐसा उपदेश दे। यह चैत्यगृह कहीं उपदेश दे नहीं सकते।

मुमुक्षु : यह मूक उपदेश दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मूक अर्थात् व्यवहार हुआ यह। यह तो निश्चय है। चैत्यगृह जानकर जागृत होकर, भान से उपदेश करते हैं। होता है, उसे उपदेश करते हैं-ऐसा कहा जाता है। लो! **मुनिराज को 'चैत्यगृह' कहते हैं।**

भावार्थ – लौकिक जन चैत्यगृह का स्वरूप अन्यथा अनेक प्रकार मानते हैं,... अकेली यह मूर्ति को धर्म माने या यह माने कि पुस्तक रखकर भगवान है, ऐसा माने या शास्त्र लिखकर पधरावे, उसे चैत्यगृह है, ऐसा माने। परन्तु जितना इतना माने, वह चैत्यगृह खोटा है, ऐसा कहते हैं। पधराया है यहाँ देखो। समयसार। यह और बड़ा होता है वापस। परमागम (मन्दिर)। भगवान की-सन्तों की वाणी, वीतरागी की वाणी। देखो! परमागम है। व्यवहार होता है। शुभभाव-भक्ति का भाव होता है। परन्तु उसकी मर्यादा पुण्यबन्ध जितनी है। उसकी मर्यादा संवर-निर्जरा में डाल देना, (वह विपरीतता है)।

मुमुक्षु : पाप न हो इतना तो संवर होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, जरा भी नहीं। यह तो सम्यग्दृष्टि की दृष्टि शुद्ध स्वभाव पर है, इसलिए अशुभ से बचता है, इतने शुभ का आरोप उसमें दिया जाता है। शुभ है, वह अशुभ को टालता है। इतना अशुभराग; सम्यग्दर्शन द्रव्य पर दृष्टि है, इसलिए उसे शुभभाव में अशुभ टलता है, ऐसा आरोप दिया जाता है।

सम्यग्दर्शन की दृष्टि द्रव्य पर है, इसलिए उसे अशुभ टलने से जो शुभ होता है, इसलिए शुभ ने अशुभ को टाला, इतना राग टला, उस ज्ञानी के राग को ऐसे टला – ऐसा कहा जाता है। अज्ञानी के राग में अशुभ टला, यह नहीं हो सकता। क्योंकि दृष्टि ही अकेली

राग पर है और ज्ञानी की दृष्टि द्रव्य पर है, वीतरागी स्वभाव पर है। इसलिए वीतरागी स्वभाव पर दृष्टिवन्त को जो शुभभाव आवे, उस शुभभाव ने अशुभ से बचाया है, ऐसा कहा जाता है।

मुमुक्षु : निश्चय से या व्यवहार से?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से। वहाँ इतना व्यवहार है न? निश्चय तो यहाँ आश्रय है। इतना व्यवहार है न? अशुभ से बचा है शुभराग के कारण बचा है। वास्तव में तो स्वभाव के आश्रय से ही बचा है। क्योंकि शुभ के समय स्वभाव का आश्रय अधिक है और अशुभ के समय स्वभाव का आश्रय थोड़ा है। बात तो ऐसी है। समझ में आया? आता है न प्रतिक्रमणादि? अमृतचन्द्राचार्य। वह अशुभराग क्रम-क्रम से शुभराग से घटता है। मोक्ष अधिकार में है अपडिकमण... क्रम-क्रम से राग घटता है। सम्यग्दृष्टि है द्रव्य पर; वस्तु वीतरागस्वरूप है, उसकी दृष्टि है, इसलिए जो शुभ हुआ, उसमें शुभ स्वयं अशुभ को बचाता है, ऐसा वहाँ (व्यवहार है)। आत्मा शुभ-अशुभ दोनों को बचाता है और शुभ, अशुभ को बचाता है। इतना वहाँ कहने में-जानने में है। समझ में आया? आहाहा! गजब भाई! निश्चय और व्यवहार के झगड़े! निश्चय-व्यवहारनय में जगत भरमाया है। बनारसीदासजी के समयसार नाटक में आता है।

अज्ञानी **चैत्यगृह का स्वरूप अन्यथा अनेक प्रकार मानते हैं, उनको सावधान किया है कि जिनसूत्र में छह काय का हित करनेवाला ज्ञानमयी संयमी मुनि है, वह 'चैत्यगृह' है;...** इस चैतन्यगृह का भान किये बिना अकेले प्रतिमा और मूर्ति को मानकर धर्म माने, वह मिथ्यादृष्टि है। कहो, प्रकाशदासजी! कहो, यह स्थानकवासी को ठीक पड़े, ऐसा उपदेश, हों! ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : अरे! उससे तो अत्यन्त विरुद्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे दोनों विरुद्ध जाते हैं। उससे निश्चय विरुद्ध है और व्यवहार विरुद्ध है। निश्चय तो वहाँ है ही कहाँ? राग बिना आत्मा निर्मलानन्द चैतन्य है, वह चैत्यगृह है, वह निश्चय से तो है ही नहीं। और व्यवहार की बात जो प्रतिमादि का शुभभाव है, उसे तो मानते ही नहीं। वे तो व्यवहार और निश्चय दोनों से भ्रष्ट हैं। ऐई! बात तो ऐसी है। समझ में

आया ? और इस सम्प्रदाय में रहे हुए... यहाँ तो दिगम्बर की ही बात है न। दिगम्बर सम्प्रदाय में रहे हुए अकेले चैत्यगृह भगवान की प्रतिमा को और घर को ही माने और वह चैत्यगृह भूल जाए, वे मिथ्यादृष्टि हैं। ऐ... ! नागरभाई ! ऐसा मार्ग है। लो ! मुश्किल से अभी प्रतिमा और मन्दिर में आये, वहाँ कहते हैं धर्म नहीं। ऐई ! नेमिदासभाई ! यह हमारे सेठ भी वहाँ थे। वहाँ सम्मेदशिखर। पण्डितजी ! जब सम्मेदशिखर में चौबीस तीर्थंकर के चरण बदले, अपने दिगम्बर के थे, हों ! रात्रि में बदले। तब यह सेठ वहाँ थे। वहाँ उपस्थित थे। ये रात्रि में वहाँ उपस्थित थे। परन्तु उस समय ये स्थानकवासी थे। अभी दिगम्बर हुए। अभी तो पोरबन्दर में ४५ हजार का मन्दिर बनाया। तब तुम तो स्थानकवासी थे। रात्रि में बदलाये तो उसमें क्या ? हम तो मूर्ति को मानते नहीं। श्वेताम्बर-दिगम्बर मूर्ति को चाहे जैसे किया हो। रात्रि में इनके सेठ का फोन था। सेठ था न कोई ? उस ट्रस्टी को पूछा कि यहाँ क्यों आये हो ? यह तो तब स्थानकवासी (थे)। इसलिए कहे कि आज रात्रि में चरण बदलना है।

मुमुक्षु : देवीदासभाई साथ में थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : देवीदासभाई थे वे। कहे, यहाँ किसलिए आये हो ? यहाँ गुप्तरूप से श्वेताम्बर के। यह दिगम्बर के चरण हैं, वे रात्रि में बदल डाले। श्वेताम्बर के कर दिये। सवेरे देखने आये वहाँ श्वेताम्बर के। ये वहाँ उपस्थित थे। परन्तु ये स्थानकवासी ढूंढीया इसलिए उन्हें कहे कि तुम चाहे जैसे करो दोनों। अब फिर दिगम्बर में आये, अब। अभी घर में ४५ हजार का मन्दिर बनाया है। पोरबन्दर। अकेले ने। तब ऐसा कहे कि जो हुआ हो वह तुम्हारा। हमें क्या है ? हम तो मूर्ति को मानते नहीं। श्वेताम्बर के हो या दिगम्बर के हो, हमें क्या है। आहाहा ! लोग पक्ष के कारण क्या करते हैं ? सत्य बात, अनादि का सनातन मार्ग तो यह है। आहाहा ! निश्चय स्वभाव के भानसहित ऐसी वीतरागी प्रतिमा, वीतरागी चरण आदि के मुनियों के होते हैं, पंच परमेष्ठी के होते हैं। होते हैं। उसे व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! क्या हो ? लोगों को पक्ष के कारण अन्धता आ जाती है। सत्य सूझता नहीं।

अन्य को चैत्यगृह कहना, मानना व्यवहार है। देखो ! है न ? दूसरे चैत्यगृह भगवान की प्रतिमा के... घर को माने, वह व्यवहार है। **इस प्रकार चैत्यगृह का स्वरूप कहा।** लो !

गाथा-१०

(३) आगे जिनप्रतिमा का निरूपण करते हैं -

सपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं।
णिग्गंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा ।।१०।।

स्वपरा जंगमदेहा दर्शनज्ञानेन शुद्धचरणानाम्।
निर्ग्रन्थवीतरागा जिनमार्गे ईदृशी प्रतिमा ।।१०।।

दृग-ज्ञान से सुविशुद्ध चारित्री का तन निर्ग्रन्थ हो।
जिन-मार्ग में जंगम सु प्रतिमा वीतरागी वंद्य हो।।१०।।

अर्थ - जिनका चारित्र दर्शन ज्ञान से शुद्ध निर्मल है, उनकी स्व-परा अर्थात् अपनी और पर की चलती हुई देह है वह जिनमार्ग में 'जंगम प्रतिमा है' अथवा स्वपरा अर्थात् आत्मा से 'पर' यानी भिन्न है - ऐसी देह है। वह कैसी है ? जिसका निर्ग्रन्थ स्वरूप है, कुछ भी परिग्रह का लेश भी नहीं है, ऐसी दिगम्बरमुद्रा है। जिसका वीतराग स्वरूप है, किसी वस्तु से राग-द्वेष-मोह नहीं है, जिनमार्ग में ऐसी 'प्रतिमा' कही है। जिनके दर्शन-ज्ञान से निर्मल चारित्र पाया जाता है, इस प्रकार मुनियों की गुरु-शिष्य अपेक्षा अपनी तथा पर की चलती हुई देह निर्ग्रन्थ वीतरागमुद्रा स्वरूप है, वह जिनमार्ग में 'प्रतिमा' है, अन्य कल्पित है और धातु-पाषाण आदि से बनाये हुए दिगम्बरमुद्रा स्वरूप को 'प्रतिमा' कहते हैं, जो व्यवहार है। वह भी बाह्य आकृति तो वैसी ही हो वह व्यवहार में मान्य है ।।१०।।

गाथा-१० पर प्रवचन

आगे जिनप्रतिमा का निरूपण करते हैं - जैनदर्शन में सच्ची जिनप्रतिमा किसे कहना ? समझ में आया ?

सपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं।
णिग्गंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा ।।१०।।

भाषा देखो! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, जैनमार्ग में तो इसे प्रतिमा कही है। इस बाहर की प्रतिमा को तो व्यवहार कहा है। यह निश्चय जिनमार्ग में नहीं है। यह व्यवहार में है। आहाहा! देखो न, भाषा कैसी है! उसमें ऐसा था। देखो! **'चेइहरं जिणमग्गे, छक्कायहियंकरं'** नौवीं (गाथा) में। आहाहा! गजब।

अर्थ – कहते हैं **जिनका चारित्र दर्शन ज्ञान से शुद्ध निर्मल है, उनकी स्व-परा अर्थात् अपनी और पर की चलती हुई देह है वह जिनमार्ग में 'जंगम प्रतिमा है'...** यह गुरु और शिष्य दोनों ज्ञानानन्द में रमनेवाले। स्व और पर। है? चलती देह। दोनों—गुरु और शिष्य दोनों जंगम प्रतिमा है। आहाहा!

मुमुक्षु : जंगम प्रतिमा अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीरसहित। शरीरसहित जो चैतन्यबिम्ब है न चैतन्यबिम्ब? उसका भान। स्थिर प्रतिमा सिद्ध आदि को स्थिर कहते हैं। सिद्ध भगवान है न स्थिर? उन्हें स्थावर प्रतिमा, स्थिर प्रतिमा (कहते हैं)। यह चलती... चलते हैं न! है अन्दर महान वीतरागता। तीन कषाय का अभाव, सम्यग्दर्शनसहित वीतरागता, अपना आत्मा, उसका चलता देह और अपना शिष्य। शिष्य ऐसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

'सपरा जंगमदेहा' अपनी और पर की चलती हुई देह है... इसका अर्थ कि अपना जो शासन है न? उसमें शिष्य है न? साधु हो या सब हो, वे चैत्यगृह है, जिनप्रतिमा है। वे वीतरागभाव से है। इसलिए उन्हें यहाँ चलते देहवाले को जंगम प्रतिमा कहा जाता है। समझ में आया? लो! यह स्वरूपचन्दभाई आये। यह प्रतिमा किसे कहना, उसका है, स्वरूपचन्दभाई! कहते हैं, यहाँ तो दर्शन, ज्ञान से शुद्ध आत्मा और रागरहित वीतरागदशा, ऐसा आत्मा, उसे जैन की जैन प्रतिमा कहा जाता है। यह तो व्यवहार प्रतिमा है। आहाहा! यह मन्दिरमार्गी है न? कहो, समझ में आया? यह तो पूर्व की अपेक्षा से बात है।

यहाँ तो प्रतिमा भगवान के मार्ग में उसे कहा, चैतन्य प्रतिमा भगवान। कैसी? कि दर्शन-ज्ञान से शुद्ध निर्मल चारित्र वापस। चारित्र बिना क्या? वीतरागदशा... महामुनि सन्त दिगम्बर बाह्य देह नग्न दिगम्बर, अन्दर में दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागता। उसे जंगम देह कहा जाता है। जंगम प्रतिमा। आहाहा! हिलती-चलती। बात यह कि अकेले बाहर

में लग पड़े थे न, उनके लिये यह कहते हैं। अकेली जिनप्रतिमा और जिन मन्दिर और जिन गृह और यही धर्म है, और यही संवर-निर्जरा है, ऐसा नहीं। जितना परद्रव्य आश्रय लक्ष्य जाता है, उसमें आस्रव ही उत्पन्न होता है। स्वद्रव्य आश्रय निश्चय, परद्रव्य आश्रय व्यवहार। ऐसी बात है। तीन लोक के नाथ साक्षात् समवसरण में विराजे, उनका वन्दन, पूजन, भक्ति, आरती वह सब शुभभाव है।

मुमुक्षु : थोड़ी शुद्धता सही?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी शुद्धता नहीं। रतिभाई!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५२, गाथा-१० से १३, सोमवार, श्रावण शुक्ल १, दिनांक ०३-०८-१९७०

यह अष्टपाहुड़-बोधपाहुड़ की व्याख्या है। जिनप्रतिमा का कथन है। सच्ची जिनप्रतिमा किसे कहना? जैनमार्ग में वीतरागदेव ने जिनप्रतिमा इसे कहा है।

श्रोता : किस नय से?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस सच्चे नय से। यह प्रतिमा है, वह तो व्यवहार है। मन्दिर आदि प्रतिमा व्यवहार है अर्थात् ऐसा निश्चय हो, वहाँ विकल्प उठे, तब लक्ष्य वहाँ जाए, इतना। समझ में आया?

जिनप्रतिमा का निरूपण :

सपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं।
णिग्गंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा।।१०।।

आचार्य स्वयं (कहते हैं) कि जिनमार्ग में इसे प्रतिमा कहते हैं। वीतरागी आत्मा की पर्याय, राग और पुण्य के विकल्प से भिन्न जैसा चैतन्य का स्वरूप, राग से भिन्न है, वैसा भान और उसमें संयम की स्थिरता, वीतरागता—ऐसे आत्मा को जिनप्रतिमा कहा जाता है। शोभालालजी! यह क्रिया, जिनप्रतिमा और देरासर और मन्दिर और भक्ति-पूजा

करे और माने कि हमें धर्म हो गया।

मुमुक्षु : वह तो मनोभावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मानसिक कल्पना आवे, तब यह बात है। आत्मिक में यह बात नहीं। समझ में आया? ऐ..! स्वरूपचन्दभाई! तत्त्वार्थसार में यह है कि मानसिक विकल्प उठता है, वहाँ तक इसे स्थापना निक्षेप के प्रति लक्ष्य जाता है, शुभभाव हो, इसलिए (लक्ष्य जाता है)। आत्मिक भावना में इसका अवकाश नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा **जिनका चारित्र दर्शन-ज्ञान से शुद्ध निर्मल है, उनकी स्व-परा...** जिसे अन्तर में दर्शन-सम्यक् अनुभव है और जिसे स्व का स्वसंवेदनज्ञान है और स्व में लीनता है... समझ में आया? ऐसे जो संयमी मुनि और धर्मात्मा, उन्हें यहाँ जिनप्रतिमा कहा है। जिनमार्ग में उन्हें जिनप्रतिमा कहा है। पहला फिर कहाँ गया? जिनमार्ग-बाहर होगा? वास्तव में वह जिनमार्ग ही नहीं है। वह तो व्यवहारमार्ग है, रागमार्ग है। व्यवहार जिनमार्ग है, निश्चय जिनमार्ग नहीं। समझ में आया? वस्तु जरा ऐसी है।

अपनी और पर की चलती हुई देह है, वह जिनमार्ग में 'जंगम प्रतिमा है'... यहाँ तो गुरु और शिष्य दोनों को जिनप्रतिमा कहा। शिष्य भी ऐसा होता है कि जो विकल्परहित श्रद्धा-ज्ञान और संयमवाला है—ऐसा शिष्य और स्वयं गुरु, दोनों की देह-जंगम देह को जिनप्रतिमा कहते हैं। समझ में आया?

पहले प्रतिमा मानते नहीं थे, और वापस ऐसा निकला। आहाहा! वास्तव में तो यह व्यवहार विकल्प है, वह परद्रव्य है, वह वस्तु ही परद्रव्य है। स्वद्रव्य के आश्रय से दृष्टि-ज्ञान और स्थिरता (हुए), वह स्वद्रव्य है और वह जैनमार्ग है। पण्डितजी! आहा! ऐसा मार्ग है।

कल रात्रि में एक बात कही थी कि परद्रव्य का कर्ता आत्मा क्यों नहीं?-जिसकी सत्ता भिन्न है, वह भिन्न सत्ता पर का कर नहीं सकती। समझ में आया? चैतन्य और जड़ आदि भिन्न सत्तावान पदार्थ हैं न? यह चैतन्य और दूसरा चैतन्य भिन्न सत्तावान पदार्थ, भिन्न सत्ता का करे-ऐसा नहीं होता - एक बात। समझ में आया? दूसरी बात—आस्रवतत्त्व है और स्वभावतत्त्व है, वे भिन्न तत्त्व हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम-राग उठता है, वह

परतत्त्व है; स्वभाव, वह चैतन्यतत्त्व है। स्वभाव चैतन्यतत्त्व और विभाव आस्रव परतत्त्व अर्थात् परसत्ता है; इसलिए स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से आस्रव परसत्ता (है); इसलिए आस्रव का कर्ता स्वभावदृष्टिवन्त नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

जैसे परद्रव्य, परसत्ता है, वह स्थूल परसत्ता है। इससे एक सत्ता दूसरी सत्ता का कुछ करे-ऐसा नहीं। वैसे भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव सत्तावान पदार्थ है और आस्रव है, वह भिन्न सत्तावाली चीज़ है; इससे दो पदार्थ के बीच में स्वभावदृष्टिवन्त, परसत्तावाले आस्रव-दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प का वह कर्ता नहीं है। समझ में आया? सूक्ष्म बातें, भाई! तीसरी बात आगे लें तो द्रव्य और पर्याय दो सत्ता भिन्न है। जैसे परसत्ता भिन्न है, आस्रव सत्ता भिन्न है; इसलिए कर्ता नहीं; वैसे एक द्रव्य त्रिकाली (और) एक समय की निर्मल वीतरागी पर्याय -दो सत्ता भिन्न है; इसलिए द्रव्य, पर्याय का कर्ता नहीं। वीतरागी पर्याय का भी आत्मा कर्ता नहीं! आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! ऐसा स्वरूप है।

भिन्न सत्ता के तीन प्रकार किये। रात्रि को कहा था। समझ में आया? आहाहा! ऐसी वस्तु है। इसे यह श्रद्धा और ज्ञान में न ले और बाहर का झगड़ा.. झगड़ा.. झगड़ा.. (खड़ा करता है)। यह मूर्ति होती है। वह हो, उसके घर में। वह तो परद्रव्य है। यह उसकी ओर का विकल्प उठा, वह भी परद्रव्य है; स्वद्रव्य नहीं। इससे उस परद्रव्य का कर्ता, स्वद्रव्य की श्रद्धावाला नहीं है; और आगे जाने पर द्रव्य और पर्याय दो भिन्न सत्ता सिद्ध करनी है। दोनों भिन्न सत्ता है।

मुमुक्षु : तो सात द्रव्य हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं भले जो हो वह। परन्तु द्रव्य और पर्याय दो सत्ता भिन्न है। सामान्य सत्ता और विशेष सत्ता पर्याय-ये दोनों भिन्न हैं। इस अपेक्षा से भिन्न हैं; इसलिए भिन्न द्रव्य, पर्याय का कर्ता है नहीं। मोक्षमार्ग की पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं। ऐई! यह गाथा आयेगी। अपने ३२० वीं चलेगी। लोग इकट्ठे होंगे, तब (लेंगे)। समझ में आया? हिन्दी, हिन्दी। ये हिन्दी लोग आयेंगे न! ३२० (गाथा की) जयसेनाचार्यदेव की टीका है। बहुत सूक्ष्म विषय है, वह चलेगा। अधिक लोग आवे और जरा सुने। पन्द्रह सौ पन्ने छपाये हैं। ३२० वीं जयसेनाचार्यदेव की टीका सूक्ष्म। जो आत्मा, मोक्ष का मार्ग और मोक्ष की पर्याय से भी भिन्न है। मोक्ष की पर्याय का कर्ता आत्मा नहीं है, ध्रुव नहीं है। अरे! अरे! क्योंकि

कर्ता हो तो दो एक हो जाते हैं। जैसे एक सत्तावाला द्रव्य दूसरी सत्तावाले का कुछ करे तो दोनों एक हो जाते हैं। ऐ... हिम्मतभाई! रात्रि को थोड़ी बात की थी। इन बहिनों को भी ख्याल आवे न!

भगवान आत्मा की स्वभाव की सत्ता और विभाव की (सत्ता)-दो सत्ता ही भिन्न है, दो होनेरूप से भिन्न है; इसलिए भिन्न होनेरूप से वह स्वभाव उस विभाव को कैसे करे? स्वभाव की पर्याय उस विभाव को कैसे करे? क्या कहा, समझ में आया? स्वभाव और द्रव्य एक ओर रखो, स्वाभाविक पर्याय जो है... जरा सूक्ष्म पड़े परन्तु सुनना। समझ में आया? जो आत्मा वस्तु स्वभाव द्रव्य, गुण और पर्याय, यह निर्मल स्वभाव, वह आत्मा-वस्तु। अब, पुण्य और पाप के विकल्प, जो विकार दोषरूप भाव है, उसकी सत्ता ही भिन्न है। समझ में आया? ऐई! सूक्ष्म तो आवे। चिमनभाई! भाई! मार्ग ते यह वीतराग का है। वीतराग का अर्थात् वीतरागभाव का।

भगवान आत्मा, आस्रवसत्ता के अस्तित्व के उदयभाव से तो वस्तु भिन्न है। उदयभाव तो आस्रवतत्त्व—भावबन्धतत्त्व है और स्वभाव ज्ञायकभाव है, वह निर्मल अबन्धतत्त्व है। आहा! वह अबन्धतत्त्व (और) भावबन्धतत्त्व दोनों भिन्न हैं; इसलिए इसका (विकार का) वह कर्ता नहीं; और यदि कर्ता हो तो दोनों एक हो जाते हैं।

अब तीसरी बात। जो वीतरागी पर्याय हुई, वह आस्रव की कर्ता नहीं, परन्तु वीतरागी पर्याय और वीतरागी द्रव्य त्रिकाल, वह द्रव्य-वीतरागी द्रव्य है। दोनों की सत्ता भिन्न सिद्ध करने से एक सत्ता—द्रव्य सत्ता, (वह) पर्याय की कर्ता नहीं। यदि एक पर्याय कर्ता हो जाए तो द्रव्य और पर्याय दोनों एक हो जाएँ।

मुमुक्षु : एक-दूसरे का आलिंगन करते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : आलिंगन करते ही नहीं-स्पर्श ही नहीं करते-ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्वभाव की पर्याय, विभाव / दोष की पर्याय को स्पर्श ही नहीं करती। आहाहा! समझ में आया? पोपटभाई! रात्रि को कहा था। तुम देरी से आये थे? भाई जरा देरी से आये थे। यह बात पहले हो गयी थी। समझ में आया? वस्तु स्वयं जो है... लड़कों को पूछना था, पर का करे उसका (क्या) कारण? क्रियावतीशक्ति उसमें है इसलिए (-ऐसा जवाब

दिया)। लड़के शाम को आये न! सबने सीखा है न! अगुरुलघु की पर्याय पर में जाये नहीं इसलिए। यह भी कहा। इसका मूल सिद्धान्त तो यह है कि जिसका अस्तित्व भिन्न हो, उसे दूसरा अस्तित्व कहीं छूता नहीं। छूता नहीं, इसलिए कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए तीन सत्ता भिन्न हुई। एक पूरी दूसरी चीज़ भिन्न और द्रव्य भिन्न; इसलिए पर का कर्ता नहीं। एक स्वाभाविक वस्तु और उसकी निर्मल पर्याय, उससे आस्रव पर्याय अत्यन्त भिन्न है, परद्रव्य है। उदयभाव, परद्रव्य है; इसलिए स्वद्रव्य की निर्मल पर्याय भी परद्रव्य को करती नहीं, आस्रव को करती ही नहीं। समझ में आया? यह बात है।

व्यवहार को 'जाना हुआ प्रयोजनवान है'—ऐसा जो कहा है, अर्थात् उसकी ज्ञान की पर्याय अल्प है, उसे वह जानता है। उसमें दोष सम्बन्धी का ज्ञान, दोष के कारण नहीं, दोष है, इसलिए नहीं। दोष परद्रव्य है। इसके ज्ञान की पर्याय में स्व और पर को जानने का अपनी पर्याय का अस्तित्व एक है, दो अस्तित्व नहीं। पर का जानना और स्व का जानना—ऐसे दो भाग नहीं है। दो हैं, वे एकरूप हैं। समझ में आया?

ऐसे अस्तित्व की पर्याय में आस्रव की पर्याय जानने में आवे-ऐसा जो कहा था, बारह (गाथा समयसार) में, परन्तु उससे विशेष तो ऐसा आया कि ज्ञात हुआ ऐसा। वह ज्ञेय, ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो जाता है, जानना-ऐसा नहीं। ज्ञानचन्दजी! (बात) जरा सूक्ष्म पड़ेगी, हों! परन्तु अब सुनो तो सही! ऐसी बात है। अभी एक ने विरोध किया है कि तुमने 'जाना हुआ' - ऐसा कैसे लिखा इसमें? तब (कहा), 'ज्ञात होता है' यह तो भाई! हमारे अधिक पसन्द है।

मुमुक्षु : हमारे कबूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कबूल क्या, यह तो ऐसा ही है। यह तो भाई! पण्डित जयचन्दजी ने 'जाना हुआ प्रयोजनवान'—१२वीं गाथा कहा है, इसलिए उसका अर्थ ऐसा होता है। वह तो जाना हुआ कहो, ज्ञात होता कहो या ज्ञात हो जाता है-ऐसा (कहो) ज्ञात हो जाता है (अर्थात्) स्वसन्मुख की दृष्टि है, वहाँ उसकी पर्याय में 'यह है'-ऐसा जानना भी नहीं पड़ता। जानना पड़े कहाँ? यह तो उसे (पर को) जानता है? जैसे केवलज्ञान में लोकालोक को जानते हैं? जानना पड़ता है? वह ज्ञान की पर्याय ही अपनी ऐसी है कि परसम्बन्धी

का अपना ज्ञान, स्व सम्बन्धी का अपना (ज्ञान) उसे-एकरूप को स्वयं जानता है। समझ में आया? गजब काम, भाई! पर्याय को जानना, वह भी अभी व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया?

वह पर्याय-वीतरागी पर्याय और द्रव्य, दो की सत्ता एक नहीं है। एक सामान्य सत्तारूप धर्म है और एक विशेष सत्तारूप धर्म है। दोनों एक सत्तारूप नहीं; दो की सत्ता भिन्न है। भिन्न सत्ता है, इसलिए द्रव्य, पर्याय का कर्ता नहीं। मोक्षमार्ग की पर्याय का भी द्रव्य कर्ता नहीं। मोक्ष की पर्याय का द्रव्य कर्ता नहीं। आहाहा! गजब काम, भाई! समझ में आया? ऐई! नेमिदासभाई! यह सब समझने जैसा है।

यहाँ कहते हैं (कि) मुनि (को) अन्दर आत्मा का दर्शन, आत्मा का स्व-आश्रय (वर्तता है), पराश्रय जितना भाव है, उसे तो परद्रव्य गिनकर यहाँ जैनमार्ग में गिना नहीं है। निश्चयमार्ग में-परमसत्यमार्ग में व्यवहार को गिनने में आया ही नहीं है। समझ में आया? इसलिए आचार्य क्या कहते हैं? **'णिग्गंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा।'**— जिनमार्ग में ऐसी प्रतिमा कही है। तीर्थंकरों ने, अनन्त केवलियों ने जिनमार्ग में स्वरूप की दृष्टि, स्वरूप का ज्ञान-स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप में संयमवाली रमणता को जिनमार्ग में जिनप्रतिमा तीर्थंकरों ने कही है। वह अन्य दूसरा मार्ग कहाँ (गया?) जिनमार्ग में नहीं होता? दूसरा मार्ग, वह जिनमार्ग निश्चय नहीं; वह व्यवहार है। इस ज्ञान में, ज्ञान की पर्याय अपने को जानते हुए, वह है—उसका जानना भी साथ में स्वयं के कारण उत्पन्न हो जाता है, उसे वह जानता है। समझ में आया?

केवलज्ञानी अपनी पर्याय को जानते हैं। लोकालोक का जानना, वह असद्भूत-व्यवहारनय का कथन है। ऐई! भाई! ऐसे यह सम्यग्दृष्टि सद्भूत व्यवहारनय से अपनी पर्याय को जानता है, यह बराबर है, परन्तु दोष का जानता है, यह असद्भूत व्यवहारनय है। समझ में आया? मार्ग कोई ऐसी चीज़ है। समझ में आया? श्रीमद् ने कहा है न कि 'नहीं दे उपदेश को, प्रथम ले उपदेश, सबसे न्यारा अगम है, वह ज्ञानी का देश।' ऐई!

मुमुक्षु : जानना तो पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने के लिये तो यह बात कही। यह बोधपाहुड़ है न? ऐसी

प्रतिमा को जान-ऐसा यहाँ पाठ है। बोध का अर्थ ऐसा है। ऐसी प्रतिमा को जान-ऐसा यहाँ कहते हैं। वह प्रतिमा ? वह तो बीच में होती है। उसका ज्ञान भी अपना ज्ञान है। समझ में आया ? ऐसी बात है।

कहते हैं (कि) **जिनका चारित्र दर्शन ज्ञान से शुद्ध निर्मल है, उनकी स्व-परा...** स्व-परा। स्व अर्थात् अपनी और पर अर्थात् शिष्य की। दोनों की वीतरागभावरूप प्रतिमा है, उसे जिनप्रतिमा जिनमार्ग में कही है। कहो, तब यह सब यह देरासर और मन्दिर और यह क्या है ? सब व्यवहार है, अवस्तु है। स्ववस्तु की अपेक्षा से अवस्तु है। समझ में आया ?

जैसे स्वद्रव्य की अपेक्षा से भगवान परमात्मा स्वयं अवस्तु है; वैसे द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से आस्रव अवस्तु है; वैसे द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय अवस्तु है। ऐई ! आहाहा ! पर्याय की अपेक्षा से पर्याय वस्तु है।

मुमुक्षु : दो नय आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है, भाई ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा... यहाँ तो मात्र सत्ता की भिन्नता, वह भिन्न को करे नहीं। ऐसा जो अन्दर वीतराग प्रतिमा-भाव, उसे जैनमार्ग में जिनप्रतिमा कही है। यहाँ तो जिनमार्ग में (जिनप्रतिमा) उसे कही है। वह व्यवहार-फ्यवहार जैनमार्ग में नहीं। वह तो बाहर की बात है, वह जैनमार्ग नहीं ! गजब भाई ! उपचारिक विकल्प है। वह होता है, जानो (कि) उपचार है। उसमें आया है न ?

अपने उसमें—कलश-टीका में आया है। 'पर्याय का कर्ता (द्रव्य है, वह) उपचार है।' ऐसा आया है। खबर है ? शुरुआत में (आता है) पर्याय का कर्ता जीव (है, वह) उपचार है। उसका अर्थ यह। उन्होंने लिखा है। है न ? पहले में है। पर का कर्ता तो कहाँ रहा परन्तु पर्याय का कर्ता उपचार से है। उपचार कहो या व्यवहार कहो या अभूतार्थ कहो। अरे... अरे... गजब बात ! इस मार्ग में यह अगम्य प्याला है, बापू ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : अगम्य प्याला है परन्तु गम्य तो कराओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : गम्य करने के लिये तो यह बात चलती है। अगम्य को जिसने

गम्य किया, आहा! देखो न! इस बोध की पहली व्याख्या यह है कि ऐसा है... ऐसा है... ऐसा है... उसे तू जिनप्रतिमा जान। जिनप्रतिमा तो जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्रसहित है, वह जिनप्रतिमा है परन्तु यह सुननेवाले को कहते हैं कि ऐसा हो, उसे तू जिनप्रतिमा जान। समझ में आया? मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। 'अगम्य प्याला पिवो मतवाला, इन्हीं अध्यात्म वासा, आनंदघन चेतन ह्वै खेले, देखे लोक तमाशा!' कहते हैं (कि) यह इसे निर्णय करना पड़ेगा। जिसे धर्म करना हो, उसे इस प्रकार की वस्तु है—ऐसा उसे ज्ञान में निर्णय करना पड़ेगा।

अपनी और पर की चलती हुई देह है, वह जिनमार्ग में 'जंगम प्रतिमा है'... देखो, अपना आत्मा और साथ में देह; शिष्य का आत्मा और देह-ऐसे दो, चलती-चलती यह जंगम प्रतिमा है। जिनमार्ग में इसे प्रतिमा कहा है। **अथवा स्वपरा अर्थात् आत्मा से 'पर' यानी भिन्न है – ऐसी देह है।** देखो! देह को कहा। देह में निर्ग्रन्थदशा है न! एक वस्त्र का ताना नहीं, धागा नहीं; अत्यन्त नग्नमुनि, जैसा माता ने जन्म (दिया) वैसी देह।

जिसका निर्ग्रन्थ स्वरूप है, कुछ भी परिग्रह का लेश भी नहीं है, ऐसी दिगम्बरमुद्रा है। आहाहा! उसे भी व्यवहार से प्रतिमा कहने में आता है, देह को, हों! पहली निश्चय (प्रतिमा कही)। **जिसका वीतराग स्वरूप है, किसी वस्तु से राग-द्वेष-मोह नहीं है,...** विकल्प ही जहाँ वस्तु में नहीं, निर्विकल्प चीज़ ही है। द्रव्य-गुण पूरे और पर्याय भी जिनकी निर्विकल्प है—ऐसी प्रतिमा को जिनप्रतिमा, जैनशासन में सच्ची जिनप्रतिमा उसे कही है। कहो, समझ में आया? फिर व्यवहार है, उसे बतलायेंगे, परन्तु तू वहाँ अकेला मान बैठे कि इसके कारण धर्म होता है और इसके कारण मोक्ष होता है, भगवान की प्रतिमा पूजने से और देने से संवर-निर्जरा होते हैं-उसमें एक भी अंश में माल नहीं है। शोभालालजी! विवाद ही यह उठा। उनको धर्म मनाया, तब उन्होंने (प्रतिमा) उड़ा दी।

मुमुक्षु : दोनों खोटे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों मिथ्या हैं। (संवत्) १९८२ में कहा था, तब हम सम्प्रदाय में थे, परन्तु प्रतिष्ठा बहुत थी, इसलिए हमारे ऊपर कोई शंका नहीं करता। हमारे ऊपर भरोसा बहुत था न! इसलिए (मानते थे कि) कुछ कहते होंगे। १९८२ में सम्प्रदाय में कहा

था, हों! नौ वर्ष पहले कहा, देखो! दो मित्र थे। एक ने सौ रुपये दूसरे को दिये। सौ रुपये समझे न? एक मित्र ने अपने मित्र को सौ रुपये दिये। दोनों मित्र (थे), पश्चात् वे दोनों मर गये। जिसके पिता ने दिये थे उसने देखा कि मेरे पिता ने इसके पिता को सौ रुपये दिये थे। (उसने) दो मिंडा (शून्य) चढ़ाये। मींडा समझे? शून्य। सौ के ऊपर दो शून्य चढ़ाई (इसलिए) दस हजार (हो गये।) उसने कहा कि भाई! मेरे पिता ने तुम्हारे पिता को दस हजार रुपये दिये हैं, इसलिए लाओ। तुम अभी पैसेवाले हुए हो। पहले ने देखा कि सौ रुपये तो दिये (लगते हैं) परन्तु यदि स्वीकार करूँगा तो दस हजार माँगेगा। (इसलिए कहा)-सौ रुपये भी नहीं (दिये) पहले ने दो शून्य चढ़ाये, इसने निकाल डाले।

इसी प्रकार मन्दिरमार्गी श्वेताम्बरों ने किया कि भगवान के सिर पर मुद्रा और यह और यह चढ़ाकर दो शून्य चढ़ाये। स्थानकवासी ने देखा कि शास्त्र में मूर्ति तो है परन्तु यदि स्वीकार करेंगे तो फिर यह अधिक माँगते हैं - ये दस हजार। (इसलिए उन्होंने कहा) मूर्ति ही नहीं है। एक ने निकाल दी (निषेध कर दिया) और एक ने चढ़ा दिया। शोभालालजी!

उस भूमिका के योग्य ऐसा शुभभाव होता है। उस शुभ के असंख्य प्रकार हैं, उस प्रकार का शुभभाव हो, तब इसका लक्ष्य वहाँ जाता है। दया के प्रकार का शुभलक्ष्य हो तो पर को न मारूँ—ऐसा विकल्प होता है। वह असंख्य प्रकार के सहज शुभभाव होते हैं। समझ में आया? उनका यह कर्ता नहीं है। आहाहा!

ज्ञानी शुभभाव का कर्ता नहीं है। जैसे केवलज्ञानी लोकालोक के कर्ता नहीं परन्तु लोकालोक है अवश्य; इसी प्रकार समकिती शुभभाव का कर्ता नहीं परन्तु शुभभाव है अवश्य। जैसे लोकालोक है, वैसे शुभ है। इतना बस! पररूप से है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि तो व्यवहार से मुक्त है। व्यवहार उसकी पर्याय में नहीं है। गजब बात है न! व्यवहार परद्रव्य में गिन दिया है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि स्व-पर शिष्य ऐसी इसकी प्रतिमा है। **जिसका वीतरागस्वरूप है,...** उसे प्रतिमा कही है। **जिनके दर्शन-ज्ञान से निर्मल चारित्र पाया जाता है, इस प्रकार मुनियों की गुरु-शिष्य अपेक्षा अपनी तथा पर की चलती हुई...** स्पष्टीकरण किया। ऊपर जो स्व-पर कहा था न? **निर्ग्रन्थ वीतरागमुद्रा स्वरूप है, वह जिनमार्ग**

में 'प्रतिमा' है,... वीतरागमार्ग में तो सच्ची-सत्य प्रतिमा यह कही है। फिर उपचरितरूप से निक्षेप में डालते हैं। वह कहते हैं, देखो! **अन्य कल्पित है...** अन्य में दूसरे कल्पित मार्ग कहकर प्रतिमा स्थापित की है, वह तो कल्पित है। **और धातु-पाषाण आदि से बनाये हुए दिगम्बरमुद्रा स्वरूप को 'प्रतिमा' कहते हैं,...** देखो! धातु-पाषाण जो परद्रव्य है, उनकी आकृति को मूर्ति कहते हैं, वह व्यवहार है।

वह भी बाह्य आकृति तो वैसी ही हो वह व्यवहार में मान्य है। अर्थात् क्या कहा? कि जैसी दिगम्बरमुद्रा है, वैसी हो तो व्यवहार मान्य है। उसे कोई वस्त्र को लगा दे और टीका-टपला कर दे... यह क्या कहते हैं? बाजूबंध और गहने और (आंगी लगा दे), वह तो व्यवहार भी नहीं है। व्यवहार भी नहीं है। समझ में आया? देखो! है इसमें? **धातु-पाषाण आदि से बनाये हुए दिगम्बरमुद्रा स्वरूप को 'प्रतिमा' कहते हैं, जो व्यवहार है।** लोकालोक है, केवलज्ञान जानता है अपनी पर्याय को... पर को जानता है—ऐसा कहना, वह असद्भूतव्यवहारनय है। इसी प्रकार ज्ञानी को राग है—ऐसा कहना, वह असद्भूतव्यवहारनय है। ज्ञानी को राग है ही नहीं। ज्ञानी को तो स्व और पर का ज्ञान स्वस्वरूप में अपने कारण से उत्पन्न हुआ है, वह है।

कहते हैं कि **धातु-पाषाण आदि से बनाये हुए दिगम्बरमुद्रा स्वरूप को 'प्रतिमा' कहते हैं, जो व्यवहार है। वह भी बाह्य आकृति तो वैसी ही हो वह व्यवहार में मान्य है।** समझ में आया? भगवान ऐसे प्रभु की अचिन्त्य वीतराग मुद्रा। स्वयं वीतराग थे न! ऐसा वीतरागपना जहाँ भासित हो... समझ में आया? तिलक-विलक करे तो वह वीतराग मुद्रा नहीं रही। समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रतिमा को तिलक करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रतिमा को तिलक करो, ऐसा यहाँ कहा। यह प्रतिमा वीतराग मुद्रित प्रतिमा नहीं रही। समझ में आया? ये वीतराग प्रतिमा है; इसलिए यहाँ शुभभाव होते हैं-ऐसा नहीं है। उस काल में जब शुभभाव होते हैं, तब इसका लक्ष्य वहाँ जाता है, इतनी बात है, इतनी मर्यादा है। उसे देखकर शुभभाव होता है—ऐसा नहीं है, वह तो परवस्तु है। पर को देखकर शुभ या अशुभ हो-ऐसा है नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **धातु-पाषाण आदि से बनाये हुए दिगम्बरमुद्रा स्वरूप को 'प्रतिमा' कहते हैं, जो व्यवहार है। वह भी बाह्य आकृति तो वैसी ही हो, वह व्यवहार में मान्य है।** आकृति अर्थात् बाह्यस्वभाव। समझ में आया? ऐसा जिसका स्वभाव। मुद्रा ऐसी 'जिनप्रतिमा जिनसारखी, वन्दै बनारसी....' बनारसीदास ने (कहा है) 'रंचमात्र दूषण लगे तो वह वन्दन योग्य नाहीं'। उसे टीका-टपला करे और उसे केसर लगावे, (ऐसा तो) व्यवहार से भी नहीं हो सकता। ऐसी बात है, भाई! यह तो सत्य की बात है। यह कहीं कोई पक्ष की बात नहीं है।

बाह्य आकृति तो वैसी ही हो... आकृति अर्थात् जैसा उसका स्वभाव, वैसा ऐसे दिखाव। अत्यन्त (वीतराग) मुद्रा! शुभभाव में वहाँ लक्ष्य जाये, बस इतना! वह भी समकिती तो शुभभाव से भी मुक्त है। समझ में आया? क्योंकि वह तो आस्रवतत्त्व है। आस्रव से तो भिन्न तत्त्व है और भिन्न है, वह आस्रवतत्त्व का भी कर्ता नहीं तो प्रतिमा और मन्दिर को करे, वह तो इसके शुभविकल्प में भी नहीं है। गजब बातें, भाई! समझ में आया? हीराभाई! बहुत दूर बैठे।

आगे फिर कहते हैं- देखो! यह जिनप्रतिमा। आहा! यहाँ पाठ में तो (ऐसा लिया है) **'जिणमग्गे एरिसा पडिमा।'** वीतरागमार्ग में तो अन्दर वीतरागी प्रतिमा को जिनप्रतिमा कहा है। अन्य तो व्यवहार है, व्यवहार का ज्ञान कराते हैं। ज्ञान स्वयं से हो जाता है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है!

गाथा-११

आगे फिर कहते हैं -

जं चरदि सुद्धचरणं जाणइ णिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।
सा होई वंदणीया णिग्गंथा संजदा पडिमा।।११।।

यः चरति शुद्धचरणं जानाति पश्यति शुद्धसम्यक्त्वम्।
सा भवति वंदनीया निर्ग्रन्था संयता प्रतिमा।।११।।

जो शुद्ध चारित्र आचरें दृग-ज्ञान-समकित शुद्धयुत।
निर्ग्रंथ संयममयी प्रतिमा कही वन्दन-योग्य नित।।११।।

अर्थ – जो शुद्ध आचरण का आचरण करते हैं तथा सम्यग्ज्ञान से यथार्थ वस्तु को जानते हैं और सम्यग्दर्शन से अपने स्वरूप को देखते हैं इस प्रकार शुद्धसम्यक्त्व जिनके पाया जाता है – ऐसी निर्ग्रन्थ संयमस्वरूप प्रतिमा है, वह वन्दन करनेयोग्य है।

भावार्थ – जाननेवाला, देखनेवाला, शुद्धसम्यक्त्व, शुद्धचारित्र स्वरूप निर्ग्रन्थ संयमसहित इस प्रकार मुनि का स्वरूप है वही 'प्रतिमा' है, वही वन्दन करनेयोग्य है; अन्य कल्पित वन्दन करनेयोग्य नहीं है और वैसे ही रूपसदृश धातुपाषाण की प्रतिमा हो वह व्यवहार से वन्दनेयोग्य है।।११।।

गाथा-११ पर प्रवचन

जं चरदि सुद्धचरणं जाणइ णिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।
सा होई वंदणीया णिग्गंथा संजदा पडिमा।।११।।

***अर्थ* – जो शुद्ध आचरण का आचरण करते हैं...** शुद्ध आचरण। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह शुद्ध आचरण है। वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी स्थिरता (हुई), उसे शुद्ध आचरण कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? **जो शुद्ध आचरण का आचरण करते हैं तथा सम्यग्ज्ञान से यथार्थ वस्तु को जानते हैं...** आचरण करते हैं और जैसा है, वैसा जानते हैं। **और सम्यग्दर्शन से अपने स्वरूप को देखते हैं...** लो! देखे अर्थात् माने। शुद्ध चैतन्यवस्तु निर्मल, निर्विकल्प वीतराग है, ऐसी दृष्टि से वस्तु को देखे-श्रद्धा करे।

इस प्रकार शुद्धसम्यक्त्व जिनके पाया जाता है... 'सुद्धसम्मत्तं' है न? **'जं चरदि सुद्धचरणं जाणइ णिच्छेइ'** और तदुपरान्त **'सुद्धसम्मत्तं'** ऐसा। यह अलग लिया है। **इस प्रकार शुद्धसम्यक्त्व जिनके पाया जाता है – ऐसी निर्ग्रन्थ संयमस्वरूप प्रतिमा है, वह वंदन करनेयोग्य है। शुद्धसम्यक्त्व जिनके पाया जाता है...** शुद्धसम्यक्त्व का अर्थ ही पूरा तत्त्व, द्रव्य की दृष्टि, द्रव्य का ज्ञान और द्रव्य में संयम-यह सम्यक्।

शुद्धसम्यक्त्व जिनके पाया जाता है... आहाहा! समझ में आया?

ऐसी निर्ग्रन्थ संयमस्वरूप प्रतिमा है,... निर्ग्रन्थ संयमस्वरूप प्रतिमा है। जैसे भगवान को ग्रन्थ नहीं, वैसे बाह्य प्रतिमा को ग्रन्थ-वस्त्र का ताना या कुछ होता नहीं तो उसे व्यवहार मानते हैं, ढीला करके कहते हैं। ढीला ही है। समझ में आया? ऐसी प्रतिमा वन्दन योग्य है। यह (अन्य) प्रतिमा वंदन योग्य नहीं है, ऐसा आया, इस हिसाब से तो। निश्चय से, हों! ऐई! नहीं तो दो भेद कैसे पड़ जायें? यह प्रतिमा आयी। आहाहा!

तब वे बहुत से स्थानकवासी कहते हैं न? ३१ वीं गाथा आती है कि भगवान की व्यवहार स्तुति, वह स्तुति ही नहीं है। निश्चयस्तुति अपनी है। देखो! इसमें कहाँ प्रतिमा आयी? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो! इसमें आत्मा की स्तुति को भक्ति कहा है। भगवान की स्तुति भक्ति (की) ना की है। परन्तु वह तो निश्चय की बात है। ऐसा बीच में होता है, बीच में विघ्नरूप एक दशा (आती है)। राग है, वह विघ्नरूप है, कषाय है, अग्नि है, भट्टी है। हाय... हाय...! आया न यह? छहढाला में आया न? 'यह राग आग दाह दहै सदा।' अन्दर जलता है। अन्तिम बोल है। राग चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, अग्नि है, कषाय है। भगवान के प्रति उपयोग है न? उपयोग भगवान के प्रति है, इसलिए ही वह राग है और कषाय है, इसलिए वह अग्नि है। आहाहा! गजब बातें! ऐई!

ऐसी निर्ग्रन्थ संयमस्वरूप प्रतिमा है, वह वन्दन-करने योग्य है। आहाहा! ऐ वजुभाई! बहुत ऐसा करेंगे तो फिर यह कोई भगवान की प्रतिमा को मानेंगे नहीं। यह तो शुभराग आवे, उस काल में तब इसका लक्ष्य होता है, यह इतनी भूमिका है, बस इतना। समझ में आया? (शुभराग में) बहुत जोर देने जाये तो दृष्टि में से हट जायेगा। समझ में आया? दृष्टि का विषय नहीं। पर्याय, वह (भी जहाँ) दृष्टि का विषय नहीं तो फिर प्रतिमा और भगवान का मन्दिर, (वह) दृष्टि का विषय कहाँ से आया? निर्मल वीतरागी पर्याय भी दृष्टि का विषय नहीं है। समझ में आया? आहाहा! बात तो ऐसी है कि वस्तु के घर की यह बात है। समझ में आया?

वह वन्दन-करने योग्य है। ऐसा कहा न पाठ में? **'सा होई वंदणीया'** ऐसा है न पाठ? वह वन्दनीय है। तब उसमें से यह निकलता है कि यह जिनप्रतिमा मन्दिर वह

वन्दनीय नहीं। निश्चय से वन्दनीय है ही नहीं। व्यवहार का अर्थ अभूतार्थनय से-उपचार से कहने में आवे। ऐसी बात है। ऐई! आहाहा!

भावार्थ – जाननेवाला, देखनेवाला, शुद्धसम्यक्त्व, शुद्धचारित्रस्वरूप... जाननेवाला, देखनेवाला, शुद्धसमकित, शुद्धचारित्रस्वरूप। दोनों शुद्ध। शुद्ध निश्चय सम्यग्दर्शन और निश्चयस्वरूप में स्थिरता शुद्धचारित्र हो, **निर्ग्रन्थ संयमसहित इस प्रकार मुनि का स्वरूप है वही 'प्रतिमा' है,...** वह प्रतिमा है-वीतरागभाव। अट्ठाईस मूलगुण प्रतिमा है—ऐसा यहाँ नहीं कहा। उनका व्यवहार है, वह जिनप्रतिमा है-ऐसा नहीं कहा। उनका व्यवहार, हों! अन्य व्यवहार बाहर गया। विकल्प है, वह जिनप्रतिमा है-ऐसा यहाँ नहीं कहा। जिन अर्थात् वीतराग। वीतरागमार्ग में वीतराग में से शुरु होता है। समझ में आया?

निर्ग्रन्थ संयमसहित, इस प्रकार मुनि का स्वरूप है, वही 'प्रतिमा' है,... वही 'प्रतिमा' है,... ऐसा है न? **'सा होई वंदणीया णिग्गंथा' 'सा होई'** ऐसा है न अन्दर? पाठ में है न? **'सा होई वंदणीया'** इसका अर्थ किया है। यही होती है, ऐसा। **(वही वन्दन करनेयोग्य है;) अन्य कल्पित वन्दन करनेयोग्य नहीं है...** समझ में आया? वास्तव में वीतराग की प्रतिमा और मन्दिर भी निश्चय से वन्दन योग्य नहीं है। अरे! गजब भगवान! पण्डितजी! ऐसी बात है। ऐई! ईश्वरचन्दजी! ऐसा कि यह सवेरे शाम भक्ति करे, (इसलिए) हो गया धर्म, जाओ! अपना स्वरूप क्या है, (उसकी खबर नहीं)। भक्ति तो उसे कहते हैं-वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र, वह भक्ति है। आहा! फिर उस समय व्यवहार आता है। व्यवहारनय है न? तो आता है। उसमें इसे व्यवहार का उत्साह वर्ते (कि) हाँ, आवे न! आवे न! (ऐसा होता हो तो) इसका अर्थ कि व्यवहार का उत्साह वर्तता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ऐई! उदासभाव से बीच में आता है, आता है, बात ऐसी है।

और वैसे ही रूपसदृश... वैसे ही रूपसदृश धातुपाषाण की प्रतिमा हो, वह व्यवहार से वन्दनेयोग्य है। देखो! शुभभाव है; इसलिए व्यवहार से वन्दन कहने में आता है। व्यवहार ही पूरा हेय है। आहाहा! हेय को वन्दनयोग्य कहना, वह व्यवहार से कहने में आता है। व्यवहार से पूज्य है-ऐसा भी कहते हैं। व्यवहारनय से-अभूतार्थनय से

व्यवहार पूज्य है। आहाहा! है पद्मनन्दिपंचविंशतिका में है। ये लोग सब यह डालते हैं। तेरे स्व के जागे बिना और स्व के आश्रय बिना उस व्यवहार को व्यवहार को व्यवहार जाननेवाला जगे नहीं तो उसे व्यवहार भी कहने में नहीं आता। आहाहा! क्या हो?

मुमुक्षु : वहाँ व्यवहार नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार भी कहाँ से आया? आहाहा! क्या हो?

अन्दर भगवान महाप्रभु चैतन्यमूर्ति है। वीतराग का कन्द है। अनन्त सिद्ध भगवान अन्दर पेट में स्थित हैं। आत्मा में अनन्त सिद्ध स्थित हैं। ऐसी सिद्ध की दृष्टि, सिद्ध का ज्ञान और सिद्ध का चारित्र (हो), उसे यहाँ वास्तव में जिनमार्ग में चैतन्यप्रतिमा, जिनप्रतिमा और उसे वन्दनयोग्य निश्चय से कहने में आता है। समझ में आया?

वैसे ही रूपसदृश धातुपाषाण की प्रतिमा हो, वह व्यवहार से वन्दनेयोग्य है। देखो, उसमें वन्दनयोग्य का इनकार किया था न? (यहाँ कहते हैं) वह व्यवहार से वन्दनयोग्य है, परन्तु उसमें उत्साह आ जाये (कि) हाँ, इतना आता है न! परन्तु जो राग है, वह खेद का कारण है, दु:ख का कारण है, उसका उत्साह है, उसे द्रव्यस्वभाव का अनादर है। समझ में आया?

गाथा-१२-१३

आगे फिर कहते हैं –

दंसणअणंतणाणं अणंतवीरिय अणंतसुक्खा य।
सासयसुक्ख अदेहा मुक्का कम्मट्ठबंधेहिं ।।१२।।
णिरुवममचलमखोहा णिम्मिविया [1]जंगमेण रूवेण।
सिद्धट्ठाणम्मि ठिया वोसरपडिमा धुवा सिद्धा ।।१३।।

---

१. सं. प्रति में निर्मापिता: 'अजगमेन रूपेण' ऐसी छाया है।

दर्शनानन्तज्ञानं अनन्तवीर्या: अनंतसुखा: च।
शाश्वतसुखा अदेहा मुक्ता: कर्माष्टकबंधै:।।१२।।
निरुपमा अचला अक्षोभा: निर्मापिता जंगमेन रूपेण।
सिद्धस्थाने स्थिता: व्युत्सर्गप्रतिमा ध्रुवा: सिद्धा:।।१३।।

निस्सीम दर्शन ज्ञान सुख निस्सीम वीर्य शरीर बिन।
शाश्वत सुखी कर्माष्ट-बन्धन से रहित निरुपम अचल।।१२।।
अक्षोभ जंगमरूप से सुव्यक्त सिद्ध-स्थान में।
स्थित स्थायी अतन सिध व्युत्सर्ग प्रतिमा जैन में।।१३।।

अर्थ – जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख सहित हैं; शाश्वत अविनाशी सुखस्वरूप है; अदेह है–कर्म नोकर्मरूप पुद्‌गलमयी देह जिनके नहीं है; अष्टकर्म के बन्धन से रहित है; उपमारहित है, जिसकी उपमा दी जाय ऐसी लोक में वस्तु नहीं है; अचल है, प्रदेशों का चलना जिनके नहीं है; अक्षोभ है, जिनके उपयोग में कुछ क्षोभ नहीं है, निश्चल है; जंगमरूप से निर्मित है, कर्म से निर्मुक्त होने के बाद एक समयमात्र गमनरूप होते हैं, इसलिए जंगमरूप से निर्मापित है; सिद्धस्थान जो लोक का अग्रभाग उसमें स्थित हैं; इसीलिए व्युत्सर्ग अर्थात् कायरहित है, जैसा पूर्व शरीर में आकार था वैसा ही प्रदेशों का आकार चरम शरीर से कुछ कम है; ध्रुव है, संसार से मुक्त हो (उसी समय) एकसमयमात्र गमन कर लोक के अग्रभाग में जाकर स्थित हो जाते हैं, फिर चलाचल नहीं होते हैं – ऐसी प्रतिमा 'सिद्धभगवान' है।

भावार्थ – पहिले दो गाथाओं में तो जंगम प्रतिमा संयमी मुनियों की देहसहित कही। इन दो गाथाओं में 'थिरप्रतिमा' सिद्धों की कही, इस प्रकार जंगम थावर प्रतिमा का स्वरूप कहा। अन्य कई अन्यथा बहुत प्रकार से कल्पना करते हैं, वह प्रतिमा वन्दन करने योग्य नहीं है।

यहाँ प्रश्न यह तो परमार्थस्वरूप कहा और बाह्य व्यवहार में पाषाणादिक की प्रतिमा की वन्दना करते हैं, वह कैसे ? इसका समाधान – जो बाह्य व्यवहार में मतान्तर के भेद से अनेक रीति प्रतिमा की प्रवृत्ति है, यहाँ परमार्थ को प्रधान कर कहा है और व्यवहार है वहाँ जैसा प्रतिमा का परमार्थरूप हो उसी को सूचित करता हो वह निर्बाध

है। जैसा परमार्थरूप आकार कहा वैसा ही आकाररूप व्यवहार हो वह व्यवहार भी प्रशस्त है; व्यवहारी जीवों के यह भी वन्दन करनेयोग्य है। स्याद्वाद न्याय से सिद्ध किये गये परमार्थ और व्यवहार में विरोध नहीं है।।१२-१३।।

इस प्रकार जिनप्रतिमा का स्वरूप कहा।

गाथा-१२-१३ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं -

दंसणअणंतणाणं अणंतवीरिय अणंतसुक्खा य।
सासयसुक्ख अदेहा मुक्का कम्मट्ठबंधेहिं।।१२।।
णिरुवममचलमखोहा णिम्मिविया जंगमेण रूवेण।
सिद्धट्ठाणम्मि ठिया वोसरपडिमा धुवा सिद्धा।।१३।।

अब यहाँ सिद्ध की प्रतिमा को कहते हैं। यह सिद्ध प्रतिमा स्थापित करे, वह सिद्ध नहीं, हों! सिद्ध भगवान, वह चैतन्य प्रतिमा, सिद्ध भगवान वह चैतन्य प्रतिमा है। श्रीमद् में आता है, श्रीमद् में आता है न? चैतन्य प्रतिमा हो, चैतन्य प्रतिमा हो। श्रीमद् राजचन्द्र (ग्रन्थ में) पीछे आता है। जिन चैतन्य प्रतिमा हो। समझ में आया?

अर्थ - जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुखसहित हैं;... ऐसे सिद्ध भगवान **शाश्वत् अविनाशी सुखस्वरूप हैं;...** लो! अधिक लिया, पहले में अनन्त सुख आ गया था परन्तु कैसा सुख है? वह शाश्वत् सुख है। अतीन्द्रिय आनन्द का सुख, स्व का सुख। अपने में सुख है, यह मान्यता छोड़कर कहीं भी शुभविकल्प है, उसमें सुख है (-ऐसा माने तो) दृष्टि मिथ्यात्व है। व्यवहार का जो विकल्प आवे, उसमें वह सुख है अथवा ठीक है अर्थात् वह है तो मुझे लाभ होगा, वह है तो ज्ञान होता है-ऐसा भी नहीं है। व्यवहार आता है, इसलिए इसका यहाँ ज्ञान होता है-ऐसा नहीं है। उसके आश्रय से यहाँ ज्ञान हुआ है, वह तो पराधीन ज्ञानपर्याय हुई। वह ज्ञानपर्याय ऐसी पराधीन है नहीं। ऐई! ऐसा मार्ग है। वह अपना ज्ञानगुण स्व को-द्रव्य-गुण को जाने और राग को जानने सम्बन्धी का जो ज्ञान (हुआ), वह अपने सम्बन्धी का, अपने कारण से उत्पन्न हुआ

(ज्ञान) है। राग के कारण वह ज्ञान उत्पन्न हुआ है-ऐसा नहीं है। लोकालोक के कारण से केवलज्ञान हुआ है-ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐई! यह कहते हैं, देखो!

सुख और अधिक डाला वापस, शाश्वत् सुख है। शाश्वत् सुख हुआ, अन्दर से आत्मा प्रस्फुटित हुआ! आनन्द का घन, आनन्द की मूर्ति में से प्रगट हुआ सुख, उसे सुख कहते हैं। बाकी धूल में भी कहीं (सुख) नहीं है, पुण्य में भी सुख नहीं है, व्यवहाररत्नत्रय में सुख नहीं है। दोस्त में सुख नहीं है, पैसे में सुख नहीं है। समझ में आया? जब तक आत्मा में सुख है—ऐसा भास न हो और पर में सुख है—ऐसा भास रहे, तब तक उसने आत्मा का अनादर किया है। समझ में आया?

शाश्वत अविनाशी सुखस्वरूप है; अदेह है-कर्म नोकर्मरूप पुद्गलमयी देह जिनके नहीं है;... जिन्हें कर्म और नोकर्म दोनों नहीं हैं। नोकर्म अर्थात् शरीरादि, भावकर्म आदि तीनों नहीं हैं। समझ में आया? **पुद्गलमयी देह जिनके नहीं है; अष्टकर्म के बन्धन से रहित है;...** ऐसी चैतन्य देह-अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द की प्रगट हुई अनन्त चैतन्य देह, वह जिनप्रतिमा है। आहाहा! निचली श्रेणी में अट्ठाईस मूलगुण आवे, उसे जिनप्रतिमा नहीं कहा। दोष है, उसे जिनप्रतिमा कहे? पण्डितजी! दोषरहित जो दर्शन-ज्ञान की वीतरागी दशा प्रगट हुई है, उसे जिनप्रतिमा कही है। वीतराग प्रतिमा चाहिए न? उसमें राग आवे, वह जिनप्रतिमा कहाँ है। आहाहा! समझ में आया? यह तो धीरे-धीरे पचाने जैसा है, भाई! ऐसी बातें हैं, भगवान!

मुमुक्षु : दुकान का संचालन कब करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : संचालन कब किया था? ऐई! दुकान का संचालन कब करता था यह? विकल्प आवे, बस! यह सब सेठ रहे, करोड़ों रुपये इकट्ठे करते हैं। खानपुर में लाखों रुपये सवेरे आवे, इकट्ठे करे। इकट्ठे कर सकते हैं? ले सकते हैं? ऐ... सेठ! परन्तु सवेरे ये शोभालालजी आये थे। इन्हें एक महीने में इतने-दस लाख, बीस लाख कर देना पड़ेगा। बीड़ी में जितना आवे। प्रतिदिन आवे, प्रतिदिन आवे। पच्चीस हजार, पचास हजार।

मुमुक्षु : लेना हो तो आवे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कहते हैं, लेना किसका और देना किसका? पैसा ले कौन और छोड़े कौन? आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ तो उसमें जो अशुभ विकल्प आया, वह भी वस्तु में नहीं है। यह शुभ आया –इसे दान में देने का शुभभाव आया, लो न! वह विकल्प आत्मा में नहीं है। उसे जिनप्रतिमा नहीं कहते। आहाहा! समझ में आया? कहो, हिम्मतभाई! यह तुम्हारे मन्दिर तो हो गया अब। लोग कहते हैं, बहुत लोग कहते हैं कि भावनगर में लोगों का उत्साह बहुत है।

मुमुक्षु : प्रतिकूल संयोग होने पर भी...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिकूल संयोग कुछ नहीं। लाईनसर सब काम चलते हैं। वहाँ जला उसके घर में। यहाँ तो शोभायात्रा की जगह शोभायात्रा और दीक्षा और बीक्षा बनावे, उसमें कुछ नहीं। वह तो सब होना हो, वह होता है। उसमें क्या है? आहाहा! कहा नहीं?

श्रीकृष्ण और बलदेव जैसे योद्धा समकिती और ऐसे द्वारिका जले–सुलगे। उसमें रानियाँ सुलगें, जिनमन्दिर सुलगे, द्वारिका में जिनमन्दिर थे न? जिनमन्दिर। द्वारिका सुलगी न! जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर, रानियाँ, राजकुमार, राजकुमार की स्त्रियाँ, हाथी, घोड़ा जलहल... जलहल... जलहल... (सुलगते हैं)। उसका काल हो, वह न हो तब कहाँ होगा? अन्यत्र होगा? देखकर खड़े रहे। बस! भाई! अब कहाँ जायेंगे? अरे! जिनके आदेश से हजारों राजा खड़े हों, खम्भा अन्नदाता! समझ में आया? जिन्हें कदाचित् किसी समय कफ निकले, वह तो निरोगी शरीर हो, परन्तु बर्तन न हो तो राजा ऐसे हाथ धरे, ऐई! कहाँ गये परन्तु ये सब पुण्य? माँ–बाप सुलगते हैं। अरे रे! हमारे बैठे माँ–बाप (सुलगेंगे)! निकालो रे निकालो! बाहर निकालने जाते हैं, वहाँ हुकम हुआ, नहीं निकलेंगे। तुम्हारे दो का कहा था न!

मुमुक्षु : दो को कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दो का कहा था। द्वीपायन बहुत क्रोध में आ गया था न! फिर इन्होंने (श्रीकृष्ण–बलदेव ने) माफी माँगी (तो) 'तुम दो बचोगे, तुम्हारे अतिरिक्त कोई नहीं बचेगा'–ऐसा कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : द्वीपायन मुनि कोई सम्यग्दृष्टि नहीं होंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि थे।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि को लब्धि होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मिथ्यादृष्टि को तेजो लब्धि हो (सकती है)। वीतराग के वचन मिथ्या सिद्ध करने।

यहाँ तो कहना है कि कैसे योद्धा खड़े (रहे)। रत्न के कंगूरे-स्वर्ण के गढ़, वे घास की तरह सुलगने लगे। बापू! उसकी पर्याय का काल हो, वैसा होता है। परन्तु उदास हैं, जगत से उदास हैं! वह यह विकल्प आवे, उससे भी तू उदास है। ऐसे स्वरूप को भगवान ने यहाँ जिनस्वरूप और जिनप्रतिमा कही है। आहाहा! **अष्टकर्म के बन्धन से रहित है; उपमारहित है,...** विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५३, गाथा-१२ से १४, मंगलवार, श्रावण शुक्ल २, दिनांक ०४-०८-१९७०

यह अष्टपाहुड़ में बोधपाहुड़ चलता है। १२-१३ गाथा है न? १२-१३ गाथा। जिन प्रतिमा किसको कहते हैं? जैनमार्ग में जिनप्रतिमा (किसे कहते हैं?)

अर्थ – जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख सहित हैं;... जिसको अनन्त ज्ञान प्रगट हुआ है, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, ऐसी दशा प्रगट हुई है, वह जिनप्रतिमा है। जिन अर्थात् वीतरागी प्रतिमा। वास्तविक। **शाश्वत अविनाशी सुखस्वरूप है;...** आत्मा ध्रुव शाश्वत अनन्त आनन्दस्वरूप है, उसकी पर्याय में अनन्त आनन्द ध्रुवपने प्रगट हुआ, उसको जिन वीतराग प्रतिमा कहते हैं। समझ में आया?

अदेह है–कर्म नोकर्मरूप पुद्गलमयी देह जिनके नहीं है;... जिन्हें कर्म नहीं है, नोकर्म—शरीर नहीं है और अकेला आत्मा चैतन्यघन, चैतन्य पिण्ड चित्स्वरूप है, उसे यहाँ जिन प्रतिमा कहने में आया है। बाहर की जिनप्रतिमा जो मन्दिर आदि है, वह तो व्यवहार है। वह कोई वास्तविक प्रतिमा नहीं। वजुभाई! आहाहा! वह कहते हैं, आगे कहेंगे।

अष्टकर्म के बन्धन से रहित है;.... ऐसा भगवान आत्मा—जैसा स्वभाव वीतरागभाव था, ऐसा पर्याय में वीतरागभाव पूर्ण प्रगट हुआ, उसको जिनप्रतिमा कहते हैं। समझ में आया? कहते हैं, भगवान आत्मा वीतराग जिनप्रतिमा त्रिकाल ध्रुव तो

जिनप्रतिमा ही आत्मा है। उसका आश्रय करके पर्याय में वीतरागता पूर्ण प्रगट हो, उसे यहाँ जैनदर्शन में निश्चय से सत्य जिनप्रतिमा कहने में आयी है। समझ में आया? मात्र बाहर की प्रतिमा, मन्दिर उसे माने और उसमें रुक जाए, वह कोई वास्तविक तत्त्व नहीं। वह तो बीच में आनेवाला शुभ विकल्प है, शुभराग है। पर के ऊपर लक्ष्य जाता है परन्तु वह वास्तविक प्रतिमा नहीं। आहाहा! जिनप्रतिमा न? जिनप्रतिमा का अर्थ क्या? शोभालालजी!

भगवान आत्मा जिनस्वरूपी आत्मा त्रिकाली—ऐसा ध्रुव, उस पर दृष्टि करके स्थिरता करके जैसी शक्तिरूप जिनप्रतिमा ध्रुव है, ऐसी पर्याय में वीतरागता पूर्ण प्रगट होना, उसका नाम भगवान जिनप्रतिमा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी जिनप्रतिमा की खबर नहीं और बाहर की मात्र जिनप्रतिमा और मन्दिर, यात्रा और पूजा में रुक जाए, उसे धर्म नहीं होता। पुण्य हो जाए थोड़ा विकल्प (है तो)। समझ में आया? वह धर्म नहीं। धर्म तो आत्मा का स्वभाव वीतरागस्वरूप, जिनबिम्ब चैतन्य जिनप्रतिमा ही है ध्रुव तो। उसके आश्रय से वीतरागी पर्याय पूर्ण अनन्त आनन्द आदि प्रगट होना, उसका नाम भगवान (जिनप्रतिमा कहते हैं)।

उपमारहित है,... उसकी उपमा क्या? जिनप्रतिमा ऐसी पर्याय प्रगट हुई, सिद्ध की दशा (प्रगट हुई), उसकी उपमा क्या? उसकी उपमा उसको लगे। उसकी उपमा दूसरे से लगे, ऐसे होता नहीं। आहाहा! **ऐसी लोक में वस्तु नहीं है;...** ऐसी जगत में कोई चीज़ नहीं कि सिद्ध प्रतिमा के साथ उपमा दे सके। समझ में आया? आहाहा! देखो! इस बोधपाहुड़ में अकेले निश्चय जिनमार्ग में उसको प्रतिमा है, ऐसा लिखा है। **'जिणमग्गे'** जिनप्रतिमा उसको कहा है। ऐसा लिखा है कुन्दकुन्दाचार्य ने। समझ में आया? ऐसी जिनप्रतिमा की अन्तर में पहिचान नहीं, प्रतीति नहीं और स्वरूप की ओर की एकाग्रता नहीं और मात्र बाह्य प्रतिमा की पूजा-भक्ति आदि (करे), यात्रा में... सम्मेदशिखर की यात्रा लाख करोड़, अरब बार करे, उसमें कोई धर्म है नहीं।

मुमुक्षु : ऐसी प्रतिमा के वन्दन करने से निकाचित कर्मबन्ध नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी प्रतिमा। धवल में आता है न? धवल में। जिनबिम्ब का दर्शन। जिनबिम्ब बाद में लेंगे। जिनबिम्ब बाद में लेंगे। जिनमुद्रा, जिनबिम्ब। यहाँ तो जिनबिम्ब कहो या जिनप्रतिमा कहो।

भगवान आत्मा, शुभ विकल्प जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, उस भाव से भी रहित वस्तु है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी जिनप्रतिमा नहीं। वह तो राग है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, जिसकी कोई उपमा नहीं। और **अचल है, प्रदेशों का चलना जिनके नहीं है;...** कम्प छूट गया, अकम्प हो गये। वहाँ असंख्य प्रदेश सिद्ध करते हैं। भगवान चैतन्यघन के असंख्य प्रदेश वहाँ अकम्प हो गये। ऐसे चलना जिनके नहीं है।

अक्षोभ है, जिनके उपयोग में कुछ क्षोभ नहीं है,... जिसकी उपयोग परिणति में कोई राग का, विकल्प का क्षोभ नहीं है। ऐसी वीतराग दशा (प्रगट हुई है)। ऐसे (क्षोभ) नहीं। **निश्चल है; जंगमरूप से निर्मित है,...** क्या कहते हैं? यहाँ सिद्ध भगवान एक समय गमन करते हैं न? उसे जंगम प्रतिमा कहते हैं। एक समय में मुक्त तो यहाँ होते हैं, मुक्त वहाँ नहीं होते। और एक समय में गमन होता है, इतने काल में उसे जंगम प्रतिमा, वीतराग प्रतिमा कहने में आती है। कहो, समझ में आया? **कर्म से निर्मुक्त होने के बाद एक समयमात्र गमनरूप होते हैं, इसलिए जंगमरूप से निर्मापित है;...** देखो! पण्डित जयचन्द्र ने ऐसा अर्थ लिया है। एक समय में वीतराग अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द पर्याय में प्रगट हुआ तो एक समय में गमन होता है। तब तक उसे जंगम प्रतिमा, जिनप्रतिमा, जंगमजिनप्रतिमा कहने में आती है। आहाहा! दुनिया से अलग बात है। कहो, प्रकाशदासजी! वह कहते हैं, स्थानकवासी ऐसा सुने तो उसे अच्छा लगे। परन्तु उसको निश्चय था कब?

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, ऐसा हम मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हम मानते हैं, ऐसा कहे। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, वह मानते कहाँ है? वह तो पंच महाव्रत के विकल्प को चारित्र कहते हैं।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, व्यवहार नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु व्यवहार होता है, वह बात तो ठीक परन्तु वह तो आगे कहेंगे। व्यवहार है सही। है। जानने में व्यवहार आ जाता है। बस इतना। उसकी बहुत खींचातानी नहीं।

मुमुक्षु : आशय पकड़ लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ लिया। समझ में आया? जणाया हुआ-वह है, ऐसा राग है, ऐसा जणाया हुआ। बस। इतनी बात। आदरणीय है नहीं। राग आदरणीय है नहीं। व्यवहार है। वन्दन के योग्य जो भगवान को कहा, वह व्यवहार से आगम में कहने में आता है। अभूतार्थनय से। अरे! असत्यार्थनय से ऐसा कहने में आता है। वह कहेंगे।

जंगमरूप से निर्मापित है;... एक समय में यहाँ से सिद्ध चलते हैं। **सिद्धस्थान जो लोक का अग्रभाग उसमें स्थित हैं; इसीलिए व्युत्सर्ग अर्थात् कायरहित है, जैसा पूर्व शरीर में आकार था, वैसा ही प्रदेशों का आकार चरम शरीर से कुछ कम है; ध्रुव है,...** यहाँ असंख्य प्रदेश शरीरप्रमाण जो भिन्न दिखते हैं, उसमें थोड़ा कम। ऐसा घातिया के कम ऐसे वहाँ असंख्य प्रदेश स्थिर बिम्ब भगवान है।

संसार से मुक्त हो (उसी समय) एकसमयमात्र गमन कर लोक के अग्रभाग में जाकर स्थित हो जाते हैं, फिर चलाचल नहीं होते हैं – ऐसी प्रतिमा 'सिद्धभगवान' है। आहाहा! यह स्थावर प्रतिमा भगवान की स्थावर प्रतिमा... भगवान की प्रतिमा, वह स्थिर प्रतिमा स्थावर? नहीं। यहाँ तो वीतराग बिम्ब चैतन्य अनन्त ज्ञान आनन्द सहित असंख्य प्रदेशी स्थिर हो गये, वह स्थिर प्रतिमा, स्थावर प्रतिमा। गति करे, वह जंगम प्रतिमा। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ – पहिले दो गाथाओं में तो जंगम प्रतिमा संयमी मुनियों की देहसहित कही। संयमी मुनि, वीतरागी मुनि, हों! अन्तर ध्रुव के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ है। जिसकी दृष्टि में पर्याय और गुणभेद भी दृष्टि में नहीं। ऐसी दृष्टि ध्रुव में पसरकर ध्रुव की प्रतीति, ज्ञान का ज्ञेय करके हुई है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। तो सम्यग्दर्शनसहित, स्वरूप के ज्ञानसहित और स्वरूप में यम सम सम्यक् प्रकार से स्थिरता, अतीन्द्रिय आनन्द में स्थिरता (हुई है), वह चारित्र। वह चारित्र है। ऐसी दोनों प्रतिमा संयमी मुनि की देहसहित हैं। देह था और अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की प्रतीति, अतीन्द्रिय आनन्द का ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द की प्रगट वीतरागी आनन्द का स्वाद (आया)। समझ में आया? उसको यहाँ जंगम प्रतिमा कहा।

इन दो गाथाओं में 'थिरप्रतिमा' सिद्धों की कही, इस प्रकार जंगम–थावर

प्रतिमा का स्वरूप कहा। उसमें वह समय की जंगल लेनी। **अन्य कई अन्यथा बहुत प्रकार से कल्पना करते हैं, वह प्रतिमा वन्दन करने योग्य नहीं है।**

यहाँ प्रश्न... अब प्रश्न उठाया। **यह तो परमार्थस्वरूप कहा...** यह तो वास्तविक तत्त्व की स्थिति बतायी। परमार्थ सत्य, निश्चय भूतार्थ जो है, वह सत्यार्थ बात कही। **और बाह्य व्यवहार में पाषाणादिक की प्रतिमा की वन्दना करते हैं, वह कैसे?** प्रतिमा पत्थर की है।

मुमुक्षु : अरहन्त की प्रतिमा को जंगम प्रतिमा कही।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरहन्त की प्रतिमा गति करती है, तब जंगम प्रतिमा। समझ में आया? अवस्थान लिया है, वहाँ स्थावर प्रतिमा... ४३ पृष्ठ पर है। वहाँ स्थावर लिया है। ... विहार करके विराजे, वह स्थावर प्रतिमा है। ४२ पृष्ठ है। ४२ पृष्ठ पर है। दूसरा। देखो! 'स्थावर प्रतिमा कहने... तीर्थंकर को केवलज्ञान होने के बाद अवस्थान बताया है।' इतनी बात। उतने काल रहती है, उस अपेक्षा से। केवलज्ञान होने के बाद कुछ काल रहती है, उस अपेक्षा से स्थावर प्रतिमा कहते हैं। इस ओर है। 'गमन विषे एक समय लगे उस काल जंगम प्रतिमा कहते हैं। सिद्ध को। वह भी पहले आ गया है। अरिहन्त की नहीं। सिद्ध की एक समय गमन करे, वह जंगम प्रतिमा और वीतरागी मुनि की जंगम प्रतिमा और अरिहन्त की केवलज्ञान होकर अल्प काल रहते हैं, उस अपेक्षा से उसको स्थावर प्रतिमा कहते हैं। इस अपेक्षा से। केवलज्ञान होने के बाद कुछ काल रहते हैं न? अवस्थान रहते हैं न? रहते हैं न? उस अपेक्षा से स्थिर रहे तो स्थावर प्रतिमा (कहा)। वह निश्चय की बात हुई।

अब व्यवहार है या नहीं? **जो बाह्य व्यवहार में मतान्तर के भेद से अनेक रीति प्रतिमा की प्रवृत्ति है, यहाँ परमार्थ को प्रधान कर कहा है...** वास्तव में बाह्य प्रतिमा और यह, वह, ऐसा करो, वैसा करो, अमुक करो, ऐसे अनेक प्रकार बाह्य में चलते हैं। जैन में जब यह अधिकार निकला था, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, तब श्वेताम्बर पन्थ निकल चुका था। श्वेताम्बर पन्थ सौ वर्ष पहले निकल चुका था। उसने प्रतिमा में थोड़ा अन्तर कर दिया। मुकुट ऐसा, वैसा। लगाते हैं न सोने-चाँदी का? वह विकृत प्रतिमा है। वह व्यवहार जिनप्रतिमा भी नहीं है। समझ में आया? मुकुट लगाते हैं न? आँगी करते हैं, कपड़ा लगाते हैं, अत्तर लगाते हैं, टीका-टपका करते हैं। वह जिनप्रतिमा नहीं। जिनप्रतिमा

तो वीतरागी (होती है)। जैसे वीतराग थे, ऐसी वीतरागी प्रतिमा हो, उसको जिनप्रतिमा व्यवहार से कहने में आती है। मार्ग ऐसा है। गड़बड़ चलती है ऐसी गड़बड़ वीतरागमार्ग में गड़बड़ चलती नहीं। समझ में आया?

वह कहते हैं। बाह्य प्रवृत्ति अनेक हैं, **यहाँ परमार्थ को प्रधान कर कहा है और व्यवहार है, वहाँ जैसा प्रतिमा का परमार्थरूप हो, उसी को सूचित करता हो...** ऐसी प्रतिमा हो कि जैसे भगवान की वीतराग प्रतिमा है, ऐसा सूचित करे। उस पर कोई डोरा का धागा नहीं और कपूर और केसर भी नहीं। ऐसी बात है। पण्डितजी! समझ में आया? वह वीतराग बिम्ब का प्रतिबिम्ब वह नहीं। प्रतिबिम्ब तो जैसे वीतराग हैं, वैसा प्रतिबिम्ब हो तो व्यवहार प्रतिमा कहने में आती है। समझ में आया? मार्ग तो अनादि का ऐसा है, भैया! कोई गड़बड़ करे तो वीतरागमार्ग में तो चले नहीं। समझ में आया? आज तुमको देखकर हिन्दी हो गया। नहीं तो यहाँ तो गुजराती चल रहा था। तुम्हारे हिन्दी है इसमें। समझ में आया?

जैसा प्रतिमा का परमार्थरूप हो, उसी को सूचित करता हो... वीतराग अक्रिय बिम्ब दिखे। उसे व्यवहार प्रतिमा शुभभाव से वन्दन करनेयोग्य कहने में आती है। समझ में आया? बनारसीदास ने वह कहा न? 'लेश दूषण लगे तो वन्दनीक नांही।' बनारसीदास ने बनारसी विलास में कहा। परन्तु अभी पक्षापक्ष में कुछ सत्य बात... वास्तविक तत्त्व क्या है, उसकी खबर नहीं। पक्ष में बँध गये। हम तो ऐसा मानते हैं, तुम तो ऐसा मानते हैं। आहाहा!

जैसा प्रतिमा का परमार्थरूप हो, उसी को सूचित करता हो, वह निर्बाध है। तो उसको विरोधरहित व्यवहार प्रतिमा कहने में आती है। **जैसा परमार्थरूप आकार कहा, वैसा ही आकाररूप व्यवहार हो...** आकार भी वैसा हो। वीतराग... वीतराग। **वह व्यवहार भी प्रशस्त है;...** यह व्यवहार, व्यवहार प्रशस्त। शुभभाव में निमित्त है। इसके अलावा दूसरी व्यवहार प्रतिमा माने, विकृत करे, ऐसा करे, वह व्यवहार भी प्रशस्त नहीं।

व्यवहारी जीवों के यह भी वन्दन करनेयोग्य है। जब तक स्वरूप में पूर्ण स्थिरता वीतरागता नहीं आती है, तबतक स्वरूप की अनुभवदृष्टि राग को हेय मानता होने पर भी ऐसा राग आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? **व्यवहारी जीवों के यह भी**

वन्दन करनेयोग्य है। स्याद्वाद न्याय से सिद्ध किये गये परमार्थ और व्यवहार में विरोध नहीं है। निश्चय में तो अपनी वीतरागी प्रतिमा को मानना। सिद्ध समान मेरा स्वरूप है, ऐसी अन्तर्दृष्टि ध्रुव पर करके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् शान्ति (प्रगट करना) । और यहाँ तो अविरति श्रावक हो या प्रतिमाधारी श्रावक हो, वह भी दर्शन का रूप है, ऐसा कहने में आया है। अभी आयेगा। समझ में आया ? जिसमें सम्यग्दर्शन—रागरहित दशा प्रगट हुई हो, वह भी एक जैनदर्शन का रूप है। पूर्ण रूप तो वीतरागदर्शन प्रगट हो, वह सत्‌दर्शन—जैनदर्शन का रूप है। वह अभी कहेंगे।

स्याद्वाद न्याय से सिद्ध किये गये परमार्थ और व्यवहार में विरोध नहीं है। अपेक्षा से व्यवहार है, अपेक्षा से निश्चय स्वआश्रय वह निश्चय है। बस, यह दो ज्ञान करना। ज्ञान करने की बात है। यह भी ज्ञान तो अपने में आ जाता है। थोड़ी सूक्ष्म बात लम्बी करे तो कठिन है। समझ में आया ? राग आता है, उसका ज्ञान भी परावलम्बी ज्ञान अकेलाा है। स्व का आश्रय करके जो ज्ञान हुआ, उसमें राग सम्बन्धी अपनी ज्ञान की पर्याय अपने से प्रगट हुई। राग है तो प्रगट हुई है, ऐसा नहीं। बहुत सूक्ष्म विषय है। राग है, सम्यग्दृष्टि को अपने ध्रुव पर दृष्टि निरन्तर रहती है। पर्याय का जोर उसको कभी होता नहीं। पर्याय पर जोर आ जाए तो दृष्टि द्रव्य से छूट जाए। समझ में आया ?

मुमुक्षु : निरन्तर दृष्टि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव पर निरन्तर परिणमन ही है। दृष्टि का अर्थ ? ध्रुव चैतन्य भगवान आत्मा की रुचि का परिणमन ही निरन्तर है। दृष्टि के विषय में शरीर तो आता नहीं, राग आता नहीं, राग सम्बन्धी का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान की पर्याय भी दृष्टि के विषय में आती नहीं। समझ में आया ? ऐसी बात है। समझ में आया ? आहाहा !

सोगानीजी ने लिखा है न ? कि 'मैं ध्यान किसका करूँ ? पर्याय मेरा ध्यान करे तो करो, मैं तो त्रिकाल वस्तु ही हूँ।' लोगों को कठिन पड़ता है।

मुमुक्षु : पर्याय ध्यान करे...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय ध्यान करे तो करो। मैं तो ध्रुव हूँ। अखण्ड निरावरण अखण्डानन्द प्रभु पर्याय से खाली और स्वभाव से परिपूर्ण भरा, वह मैं हूँ। समझ में आया ? भैया ! सोगानीजी का नाम सुना है ? कलकत्ता में रहते थे। एक बार ऐसा कहा था। मैं किसका

ध्यान करूँ? पर्याय मेरा ध्यान करे तो करो, मैं तो ध्रुव हूँ। यह दृष्टि का जोर है। समझ में आया? ऐई! हीराभाई! लोगों को पर्याय अन्दर में कहीं-कहीं रुक जाती है। है न, अन्दर घुस जाती है। वहाँ से निकलना, ध्रुव पर आना, वह बड़ा पुरुषार्थ है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि वह राग आया तो राग का ज्ञान हुआ। राग है तो ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। अपने ज्ञान की पर्याय से ज्ञान हुआ। वह भी पर्याय है। उस पर दृष्टि का विषय नहीं। ज्ञान-ज्ञान साथ में है तो राग का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान की पर्याय को ज्ञान जाने। बस। समझ में आया? उसको असद्भूतव्यवहार से ऐसा कहते हैं कि वह दोष को जानता है। समझ में आया? ऐई! पोपटभाई! ऐसा मार्ग है। वहाँ ढुँढ़िया में (सम्प्रदाय में) कहीं सुना नहीं होगा।

मुमुक्षु : गन्ध भी नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : गन्ध भी नहीं होती। प्रतिमा नहीं है, प्रतिमा नहीं ऐसा कहकर... प्रकाशदासजी! सामने पुस्तक है या नहीं? आहाहा!

स्याद्वाद न्याय से... भगवान आत्मा, जिसमें गुण-गुणी के भेद का विषय भी, भेद परद्रव्य हो जाता है। विकल्प व्यवहार तो परद्रव्य होता है। व्यवहार, व्यवहार कहा है न? तो व्यवहार परद्रव्य हो गया। आहाहा! गुण-गुणी का भेद विकल्प करते हैं, वह भी परद्रव्य है। गुण और गुणी एकरूप, एक ही आधार परम स्वभाव भगवान आत्मा है। और परम स्वभाव का आधार और आधेय, ऐसा जिसमें भेद नहीं। ऐसा दृष्टि का अनुभव हुआ, तब राग आता है, उसे (जाननेवाली) ज्ञान की पर्याय अपने से है, राग के कारण से नहीं। अपने कारण से पर्याय उत्पन्न हुई स्व-परप्रकाश की योग्यता से, तो जाने। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। सूक्ष्म और मोहरहित होने पर समझ में आये ऐसा है। समझ में आता है? ऐसा है, नाथ!

परमार्थ और व्यवहार में विरोध नहीं है। है, जाने। आदरणीय नहीं। समझ में आया? **इस प्रकार जिनप्रतिमा का स्वरूप कहा।** अब दर्शन का स्वरूप। दर्शन किसको कहते हैं? जैनदर्शन किसको कहते हैं? वह जिनप्रतिमा की व्याख्या थी। अब जैनदर्शन किसको कहते हैं?

गाथा-१४

आगे दर्शन का स्वरूप कहते हैं –

दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजमं सुधम्मं च।
णिग्गंथं णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं।।१४।।

दर्शयति मोक्षमार्गं सम्यक्त्वं संयमं सुधर्मं च।
निर्ग्रन्थं ज्ञानमयं जिनमार्गे दर्शनं भणितम्।।१४।।

सम्यक्त्व संयम धर्म–युत निर्ग्रन्थ ज्ञानमयी सदा।
जो नित प्रदर्शक मुक्ति–मग जिन–मार्ग में दर्शन कहा।।१४।।

अर्थ – जो मोक्षमार्ग को दिखाता है वह 'दर्शन' है, मोक्षमार्ग कैसा है ? सम्यक्त्व अर्थात् तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण सम्यक्त्वस्वरूप है, संयम अर्थात् चारित्र–पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति – ऐसे तेरह प्रकार चारित्ररूप है, सुधर्म अर्थात् उत्तमक्षमादिक दशलक्षण धर्मरूप है, निर्ग्रन्थरूप है, बाह्य–अभ्यन्तर परिग्रह रहित है, ज्ञानमयी है, जीव अजीवादि पदार्थों को जाननेवाला है। यहाँ 'निर्ग्रन्थ' और 'ज्ञानमयी' ये दो विशेषण दर्शन के भी होते हैं, क्योंकि दर्शन है सो बाह्य तो इसकी मूर्ति निर्ग्रन्थ है और अन्तरंग ज्ञानमयी है। इस प्रकार मुनि के रूप को जिनमार्ग में 'दर्शन' कहा है तथा इस प्रकार के रूप के श्रद्धानरूप सम्यक्त्व स्वरूप को 'दर्शन' कहते हैं।

भावार्थ – परमार्थरूप 'अन्तरंग दर्शन' तो सम्यक्त्व है और 'बाह्य' उसकी मूर्ति, ज्ञानसहित ग्रहण किया निर्ग्रन्थ रूप, इस प्रकार मुनि का रूप है सो 'दर्शन' है, क्योंकि मत की मूर्ति को दर्शन कहना लोक में प्रसिद्ध है।।१४।।

गाथा-१४ पर प्रवचन

आगे दर्शन का स्वरूप कहते हैं –

दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजमं सुधम्मं च।
णिग्गंथं णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं।।१४।।

चौथे पद में बहुत जगह यह डालते हैं न? भाई! जिनमार्ग में यह कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे (कहते हैं)। जिनमार्ग में दर्शन तो इसको कहते हैं कि **मोक्षमार्ग को दिखाता है, वह 'दर्शन' है,...** भगवान आत्मा ध्रुव चैतन्यबिम्ब, उसकी श्रद्धा में प्रसरकर, श्रद्धा द्रव्य में प्रसरकर जो दर्शन हुआ और जो आत्मा का स्वसंवेदन ज्ञान हुआ और आत्मा की रमणतारूप संयम अर्थात् चारित्र हुआ, वह जैनदर्शन है। वह जैनदर्शन है। समझ में आया? समझ में आया? आहाहा!

भगवान! यह तो सर्वज्ञ का मार्ग है। परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकनाथ ने केवलज्ञान में जाना, ऐसी इन्द्र और गणधर के समक्ष भगवान की वाणी आयी। इच्छा बिना। दर्शन किसको कहते हैं? जैनदर्शन किसको कहते हैं? अन्दर मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, उसे दिखाये, वह जैनदर्शन है। जैनदर्शन आत्मा की पर्याय से बाहर नहीं रहता, दूर नहीं रहता। व्यवहार -रत्नत्रय के विकल्प को भी यहाँ जैनदर्शन कहने में आया नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जो मोक्षमार्ग को दिखाता है, वह 'दर्शन' है, मोक्षमार्ग कैसा है? सम्यक्त्व अर्थात् तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण सम्यक्त्वस्वरूप है,... त्रिकाल भगवान आत्मा ज्ञायकभाव, उसे पर्याय में पकड़कर पर्याय में शुद्धता आयी तो यह पूरा द्रव्य शुद्ध है, ऐसी दृष्टि हुई उसको यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? **संयम अर्थात् चारित्र-पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति - ऐसे तेरह प्रकार चारित्ररूप है,...** विकल्प है, ऐसा बताया है। समझ में आया? कि ऐसा विकल्प जब है, उसके पीछे वीतरागता है, वह जैनदर्शन है। पाठ तो ऐसा लिया है न? चारित्र। परन्तु चारित्र का प्रकार ऐसा लिया है। संयम शब्द पड़ा है न? उसका अर्थ यहाँ ऐसा किया। समझ में आया?

निश्चय से तो पंच महाव्रत अपने में वीतराग पर्याय है, वह पंच महाव्रत है। व्यवहार में पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, वह राग है। वह जैनदर्शन नहीं। यहाँ तो जैनदर्शन सिद्ध करना है न? समझ में आया? पंच समिति, यह भी (जैनदर्शन नहीं)। वास्तव में तो स्वरूप आनन्द में सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करके रमना, वह समिति है। निश्चय समिति वही वीतरागदर्शन है। व्यवहार विकल्प, वह तो राग है। समझ में आया? आहाहा!

मूल तो इतनी बात है। **'दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजमं सुधम्मं च।'** वास्तव में तो यह संयम है। अन्तर स्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द में लीनता होना, अतीन्द्रिय आनन्द

का प्रगट होना, वह संयम है। ऐसे सम्यग्दर्शन और संयमसहित **ऐसे तेरह प्रकार चारित्ररूप है, सुधर्म अर्थात् उत्तमक्षमादिक दशलक्षण धर्मरूप है,...** उत्तमक्षमादि। उत्तम क्षमा। क्षमा करनी नहीं। वह जानना। प्रतिकूलता आयी तो विकल्प उठे, उसको भी जानना। जानना, उसका नाम क्षमा कहने में आता है। समझ में आया? **उत्तमक्षमादिक दशलक्षण धर्मरूप है,...** और कैसा है?

निर्ग्रन्थरूप है, बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह रहित है,... लो! अभ्यन्तर वीतरागदशा कैसी है? बाह्य में दिगम्बर नग्नदशा। उसको जैनदर्शन कहने में आता है। उसके सिवा कोई वस्त्र रखकर मुनिपना माने, वह जैनदर्शन नहीं है। समझ में आया? इसलिए तो यह गाथायें ली हैं। समझ में आया? साधु को पंच महाव्रत का विकल्प हो और दर्शन-ज्ञान अन्तर की दृष्टि हुई नहीं तो वह जैनदर्शन नहीं है। और वस्त्र, पात्र रखकर हम मुनि हैं, ऐसी मान्यता, वह जैनदर्शन की मान्यता नहीं। समझ में आया? यह वीतराग की मान्यता नहीं। जैनदर्शन की मान्यता तो अन्दर वीतरागदर्शन, वीतरागज्ञान और वीतरागचारित्र (हो), और शरीर में मात्र नग्न दिगम्बरदशा (हो)। मात्र दिगम्बरदशा नहीं परन्तु वीतरागभाव सहित। मात्र नग्नपना और पंच महाव्रत की क्रिया, वह जैनदर्शन नहीं।

मुमुक्षु : ...में तो ऐसा लिखा है महाव्रत का...

पूज्य गुरुदेवश्री : महाव्रत का अर्थ अन्दर स्थिरता (होती है), वह महाव्रत। यही तकरार उठती है न? पंच महाव्रत तो विकल्प है, राग है, वह तो आस्रव है। आस्रव जैनदर्शन है? वीतरागी अभिप्राय, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र और बाह्य में दिगम्बर नग्नदशा दिखे। अन्तर में माल और बाह्य में उसका बारदान। बारदान समझे? थैला। थैला भी नग्न और अन्दर विकल्प बिना का भाव नग्न, वीतरागी नग्न। उसको जैनदर्शन कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? मात्र नग्नपना और पंच महाव्रत का विकल्प जैनदर्शन नहीं। यह तो अभव्य भी ऐसा करते हैं। पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण पालकर नौवीं ग्रैवेयक जाता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' छहढाला में आता है या नहीं? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' वह जैन ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! स्वरूपचन्दजी! ऐसा है, भाई! वस्त्र-पात्र रखकर साधु मानते हैं, वह जैनदर्शन नहीं है, ऐसा कहते हैं। अब तो बाधा नहीं

है, अब तो यहाँ आये हैं न? नये हो तब थोड़ी (तकलीफ हो)। आहाहा! भगवान! मार्ग तो ऐसा है, भाई! जैनदर्शन... आहाहा!

निर्ग्रन्थरूप है, बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह रहित है,... पहले तो मिथ्यात्व के परिग्रह रहित (हो), तब किसी भी विकल्प, सब विकल्प का तयाग होकर सम्यग्दर्शन हो गया। सम्यग्दर्शन में, चाहे तो शुभभाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव का भी त्याग है। समझ में आया? ऐसी स्वभाव की दृष्टि होने से विकल्पमात्र का दृष्टि में त्याग है। ऐसा दृष्टि में त्याग हुए बिना प्रवृत्ति में स्थिरता (चारित्रदोष) का त्याग हो सके नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह रहित। बाह्य में (परिग्रह) बिल्कुल नहीं। अभ्यन्तर मिथ्यात्व और अव्रत, प्रमाद आदि जो तीव्र कषाय है, उसका अभाव। बाह्य में वस्त्र, पात्र, शरीर में शृंगार करना, शोभा करना, स्नान करना, इन सबका त्याग (होता है)। उसको भगवान जैनदर्शन कहते हैं। ऐसी जैनदर्शन की मान्यता अन्तर में करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? ऐसे जैनदर्शन की (श्रद्धा), वीतरागभाव आत्मा के साथ लगाकर, ध्रुव के साथ लगाकर श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन है। परन्तु यह जैनदर्शन ऐसा है, उसकी श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन है। उसमें कुछ भी विरोध हो तो उसको जैनदर्शन की सच्ची श्रद्धा नहीं है। समझ में आया?

पुन: कैसा है? **ज्ञानमयी है,...** यह तो ज्ञानमयी जैनदर्शन है। आहाहा! विकल्प उठते हैं, उसका भी ज्ञान अपनी पर्याय में अपने कारण से उत्पन्न (होता है), ऐसा ज्ञानमयी जैनदर्शन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **ज्ञानमयी है, जीव अजीवादि पदार्थों को जाननेवाला है।** राग है, वह ज्ञान है नहीं। राग जो व्यवहार राग आता है, वह ज्ञान नहीं, वह तो अज्ञान है। ज्ञान का उसमें अभाव है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठता है, वह भी ज्ञान नहीं, वह तो अज्ञान है। वह अज्ञान जैनदर्शन नहीं। आहाहा! शोभालालजी! भगवान का स्मरण करना, वह राग है, अज्ञान है—ऐसा कहते हैं। अज्ञान अर्थात् मिथ्यात्व नहीं। उस राग में ज्ञान की चैतन्यज्योति का अभाव है। राग अन्धा है, जड़ है। चाहे तो तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी अन्धा, जड़, अचेतन है। आहाहा! समझ में आया? अचेतन से अचेतन प्रकृति का बन्ध पड़ता है। क्या चैतन्य से अचैतन्य प्रकृति का बन्ध पड़ता है? समझ में आया? आहाहा!

भगवान ज्ञानमय है, ऐसा कहते हैं, देखो! पाठ में है न? जैनदर्शन **'णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं।'** ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। ज्ञानमयी वस्तु मात्र ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... स्व का ज्ञान, पर का ज्ञान। वह पर का ज्ञान है, वह पर का नहीं, वह स्व-पर का ज्ञान आत्मज्ञान है। समझ में आया? आत्मज्ञानमयी स्व-पर का ज्ञान, वह अपना ज्ञान। बस, यह ज्ञानमयी आत्मा, वह जैनदर्शन है। समझ में आया? यह तो जैनदर्शन की... चिमनभाई! यहाँ तो जैनदर्शन उसको कहते हैं। यह तो कहे दया पालना, व्रत पालना, तपस्या करना जैनदर्शन। हरित नहीं खाना, कन्दमूल नहीं खाना, रात्रि को आहार नहीं करना। यह क्रिया तो नहीं परन्तु अन्दर विकल्प उठे, वह भी जैनदर्शन नहीं। होता है। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय का ऐसा स्वभाव है, उस समय में। स्व-परप्रकाश की पर्याय अपनी पर्याय, पर और द्रव्य उसको (जानती हुई) स्व-परप्रकाशक पर्याय होती है। समझ में आया? उसको व्यवहार से पर का ज्ञान, ऐसा कहने में आता है। ऐसा ज्ञानमयी आत्मा, उसको यहाँ जैनदर्शन कहते हैं। पण्डितजी! आहाहा! अभी तो तकरार चले कि विकल्प में राग की क्रिया और यह करो, यह लिया, यह रखो, लेना, देना, नहीं खाना, ऐसा नहीं खाना, नहीं पीना, वह जैनदर्शन। वह जैनदर्शन नहीं। ऐसा चले, ऐसा नहीं चले, वह तो सब विकल्प है। और परद्रव्य चले, नहीं चले, वह तो दृष्टि मिथ्या है। पर का ग्रहण-त्याग आत्मा में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? !

कहते हैं, **ज्ञानमयी है, जीव अजीवादि...** नौ (तत्त्व) का ज्ञान है। बस। **यहाँ 'निर्ग्रन्थ' और 'ज्ञानमयी' ये दो विशेषण दर्शन के भी होते हैं,...** समझ में आया? जैनदर्शन के होते हैं, ऐसा कहते हैं। **क्योंकि दर्शन है, सो बाह्य तो इसकी मूर्ति निर्ग्रन्थ है...** दर्शन का अर्थ निर्ग्रन्थ मुद्रा। नग्न मुद्रा, वह बाह्य दर्शन। समझ में आया? **और अन्तरंग ज्ञानमयी है।** अन्तर मात्र ज्ञानमयी है, बाह्य में निर्ग्रन्थ है। यहाँ दूसरी बात है। वह निर्ग्रन्थ दशा शरीर की है। उस समय का ज्ञान भी स्व को और उसे जानने की पर्याय ऐसी होती है। भाई! समझ में आता है? शरीर निर्ग्रन्थ है, वह तो जड़ है। परन्तु उसकी उस समय की ज्ञान की पर्याय उस तरह है, ऐसा अपने ज्ञान से जाने; इसलिए ज्ञानमयी पूरा तत्त्व है, उसको जैनदर्शन कहने में आता है। इसमें क्या कहा, समझ में आया? नग्न दशा है, वह तो जड़ की है। परन्तु उस जड़ की नग्नदशा का यहाँ ज्ञान होता है। वह नग्न दशा है तो ज्ञान होता है—ऐसा नहीं। परन्तु नग्नदशा ऐसी है उसका, स्व के ज्ञान के साथ उस ओर का ज्ञान

अपनी पर्याय में उसके अवलम्बन बिना प्रगट होता है तो ज्ञानमयी आत्मा है, उस ज्ञान में बाह्य निर्ग्रन्थ दशा होती है, ऐसा निमित्त ख्याल में आ गया। समझ में आया? अरे!

मुमुक्षु : इसलिए ज्ञानमयी मार्ग कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानमयी मार्ग है। ज्ञान की पर्याय उस समय उस प्रकार की जो शरीर की निर्ग्रन्थदशा है, उस सम्बन्धी का ज्ञान ही अपने में अपने कारण से है। वह है, इसलिए नहीं। स्वयं ज्ञान की सत्ता है, ज्ञान का अस्तित्व है उसमें उसका आश्रय हुआ; इसलिए ज्ञान में ऐसी ही पर्याय अपने को जाननेवाली और वह है, ऐसी जाननेवाली पर्याय अपने कारण से अपने में उत्पन्न होती है। ऐसा ज्ञानमयी मार्ग है, वह जैनदर्शन है। समझ में आया?

शरीर पर वस्त्रादि हो तो उसका यहाँ ज्ञान होता है। ज्ञान तो होता है, परन्तु वह निर्ग्रन्थ ज्ञान नहीं। समझ में आया? निर्ग्रन्थ ज्ञान नहीं है। वह तो राग है, शरीर है, उसका ज्ञान हुआ। यहाँ तो ज्ञान में निर्ग्रन्थता आनी चाहिए। राग और शरीर की अस्ति होने पर भी उस सम्बन्धी का ज्ञान वीतरागी ज्ञान अन्दर होता है। मात्र ज्ञानमयी निर्ग्रन्थमार्ग है। समझ में आया?

दर्शन है, सो बाह्य तो इसकी मूर्ति निर्ग्रन्थ है और अन्तरंग ज्ञानमयी है। इस प्रकार मुनि के रूप को जिनमार्ग में 'दर्शन' कहा है... यहाँ सम्यग्दर्शन की बात नहीं है। जैनदर्शन इसको कहते हैं। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय उस समय अपनी सत्ता के अवलम्बन से प्रगट हुआ है। परन्तु वह ज्ञान ऐसा प्रगट हुआ है कि सामने शरीर की निर्ग्रन्थ दशा है, उस प्रकार का ज्ञान अपने अवलम्बन से प्रगट हुआ; इसलिए पूरा ज्ञानमयी मार्ग है, उसको यहाँ जैनदर्शन कहते हैं। उस ज्ञान में निर्ग्रन्थता शरीर में होती है, यह आ जाता है। आहाहा! समझ में आया? भारी बोधपाहुड़। ऐसा तुम जानो, ऐसा कहते हैं। ऐसा जैनदर्शन है, उसको तुम जानो। समझ में आया?

इस प्रकार मुनि के रूप को जिनमार्ग में 'दर्शन' कहा है... देखो! **'दंसेइ मोक्खमग्गं'** वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र और परिग्रहरहित नग्नदशा, इन तीनों का ज्ञान और इसका ज्ञान, उस सम्बन्धित अपना ज्ञान, ऐसी जो ज्ञानमयी वस्तु है, उसको यहाँ जैनदर्शन कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? लॉजिक से तो बात हो रही है, परन्तु सूक्ष्म बात तो सूक्ष्म ही होगी। मोह से हटे, कम करे तो समझ में आवे ऐसी

चीज़ है। मात्र धारणा में आये, तब तक उसका वास्तविक तत्त्व ख्याल में नहीं आता। ऐसी बात है।

लोकालोक है। उस सम्बन्धित का ज्ञान लोकालोक के कारण से नहीं होता। उस ज्ञान में भी अपना लोकालोक सम्बन्धी ज्ञानपर्याय अपने से अपने कारण से उत्पन्न हुई। समझ में आया? परन्तु कैसी पर्याय आयी? जितना लोकालोक है, ऐसा जानने की पर्याय प्रगट हुई है। उस प्रकार की। वैसे निर्ग्रन्थदशा शरीर में है तो ज्ञान की पर्याय ऐसी अन्दर में अपने से प्रगट हुई। समझ में आया?

इस प्रकार मुनि के रूप को जिनमार्ग में 'दर्शन' कहा है तथा इस प्रकार के रूप के श्रद्धानरूप सम्यक्त्व स्वरूप को 'दर्शन' कहते हैं। ये तो उसका स्पष्टीकरण है। ऐसा वीतरागी ज्ञान, वीतरागी दर्शन, वीतरागी चारित्र और निर्ग्रन्थदशा का भी उस प्रकार के अजीव का ज्ञान अपनी पर्याय में अपने कारण से होता है, ऐसा जो जैनदर्शन, उसकी जो श्रद्धा करता है। उसका श्रद्धान कब करे? वह जैनदर्शन तो पर्याय है। द्रव्य की श्रद्धा करे, तब पर्याय की श्रद्धा यथार्थ होती है। क्योंकि वीतरागी दर्शन जब उसको कहा, तब ऐसी सर्व पर्याय का पिण्ड ऐसा निर्ग्रन्थ भगवान आत्मा ही उतना है। ऐसी अनन्त वीतरागी पर्याय... समझ में आया? यहाँ अभी निर्ग्रन्थदशा की अपेक्षा से बात है। इस प्रकार जब-जब शरीर क्रश हो, स्थूल हो, उस प्रकार का ज्ञान वहाँ समय-समय में अपने अवलम्बन से प्रगट होता है। ऐसा जो ज्ञानमयी मार्ग अर्थात् जैनदर्शन, उसकी जो अन्दर श्रद्धा, उसे सम्यग्दर्शन कहने में आता है। समझ में आया? अरे! भारी बातें।

तथा इस प्रकार के रूप के श्रद्धानरूप... ऐसे रूप अर्थात्? आत्मा का ज्ञान, आत्मा का दर्शन, आत्मा का चारित्र और निर्ग्रन्थ शरीर है, उसका ज्ञान—ऐसा जो अपना ज्ञान। आहाहा! समझ में आया? ऐसे दर्शन को श्रद्धे, उसे सम्यग्दर्शन कहने में आता है। आहाहा! ऐसे दर्शन के अलावा अधिक, कम और विपरीत जहाँ होता है, उसकी श्रद्धा करे तो मिथ्याश्रद्धा है। कहो, समझ में आया? कठिन मार्ग... ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली। कुन्दकुन्दाचार्य हुए, न होंगे। लिखा है न वृन्दावनदास ने? कुन्दकुन्दाचार्य ने केवली के पेट खोलकर रखा है। सर्वज्ञ परमात्मा अनादि सनातन मार्ग है, उसको खोलकर रखा है कि यह मार्ग है। सादी भाषा में ऊँचा तत्त्व।

भावार्थ – परमार्थरूप 'अन्तरंग दर्शन' तो सम्यक्त्व है और 'बाह्य' उसकी मूर्ति, ज्ञानसहित ग्रहण किया निर्ग्रन्थ रूप, इस प्रकार मुनि का रूप है... देखो! परमार्थरूप अन्तरंग दर्शन तो समकित। बाह्य इसकी मूर्ति। जैनमूर्ति वीतराग ली। दूसरी मूर्ति नहीं, हाँ! मुनि की मूर्ति। **ज्ञानसहित ग्रहण किया निर्ग्रन्थ रूप, इस प्रकार मुनि का रूप है, सो 'दर्शन' है, क्योंकि मत की मूर्ति को दर्शन कहना लोक में प्रसिद्ध है।** लो! ऐसे मत की मूर्ति को दर्शन कहना, वह प्रसिद्ध है। जैनदर्शन की मूर्ति अर्थात् वीतरागी भाव, निर्ग्रन्थ शरीर, उसका यहाँ ज्ञान, वैसी वीतराग मुद्रा, वह जैनदर्शन की मूर्ति है, वह जैनदर्शन है। समझ में आया? कठिन बात है, भाई! कुन्दकुन्दाचार्य की।

यह पहले से चला आता है। **'दंसणमग्गं वोच्छामि'** ऐसा आया था न? दर्शनपाहुड़ की पहली गाथा। **'दंसणमग्गं वोच्छामि'** ऐसा है। दर्शन का मार्ग कहेंगे। समझ में आया? ऐसा परम सत्यस्वरूप आत्मा, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें चारित्र की वीतरागता और बाह्य में भी निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा, उस सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान, ऐसा जो वीतरागी दर्शन-ज्ञान और चारित्र, यह जैनदर्शन मूर्ति। जैनदर्शन की मूर्ति अर्थात् जैनदर्शन का वास्तविक स्वरूप। मूर्ति अर्थात् (स्वरूप)। आहाहा!

मुमुक्षु : दया की मूर्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न कि यह दया की मूर्ति है, सत्य की मूर्ति है। ऐसा नहीं कहते? अर्थात् उसका स्वरूप। आहाहा!

इस प्रकार मुनि का रूप है, सो 'दर्शन' है, क्योंकि मत की मूर्ति को दर्शन कहना लोक में प्रसिद्ध है। आगे फिर कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न। इसमें नहीं लिया है। परन्तु उसमें लेंगे। इसमें उत्कृष्ट श्रावक आर्यिका को लिया है। ... दूसरे में आता है। कलश टीका है। अविरति आदि सम्यग्दृष्टि जैनदर्शन के रूप में आता है। यहाँ अर्थ में है। उत्कृष्ट श्रावक और आर्यिका भी उसमें आते हैं। तीन नाम आये थे न जैनदर्शन में? विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५४, गाथा-१५ से १७, बुधवार, श्रावण शुक्ल ३, दिनांक ०५-०८-१९७०

अष्टपाहुड़ में बोधपाहुड़ चलता है। १४वीं गाथा। दर्शन, दर्शन किसको कहते हैं। दर्शन अर्थात् समकित नहीं। जैनदर्शन किसको कहते हैं? वीतरागस्वरूपी आत्मा त्रिकाली है, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणतारूप वीतरागता, वह जैनदर्शन है। आत्मा वस्तु है, वह आत्मा स्वयं निजस्वरूप वीतरागस्वरूप ही है। उसकी दृष्टि वीतरागी दृष्टि, उसका वीतरागी ज्ञान और उसमें रागरहित चारित्र—वीतरागी चारित्र और बाह्य में नग्न दिगम्बर दशा, उसको यहाँ जैनदर्शन कहने में आता है। ऐसे दर्शन की श्रद्धा करनी। अन्तर स्वरूप का आश्रय करके जैनदर्शन ऐसा है, ऐसे जैनदर्शन की श्रद्धा स्वभाव के आश्रय करे, उसको यथार्थ सम्यग्दर्शन कहने में आता है। समझ में आया? कोई वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना माने, वह जैनदर्शन है ही नहीं। उसकी मान्यता करनी कि वह साधु है और मोक्षमार्ग में आरूढ़ है और वस्त्र रखते हैं, ऐसी मान्यता करना, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? जैनदर्शन का रूप अनादि का ऐसा है।

अब उसको यहाँ दृष्टान्त देकर सिद्ध करते हैं। १५वीं गाथा।

गाथा-१५

आगे फिर कहते हैं –

जह फुल्लं गंधमयं भवति हु खीरं स घियमयं चावि।
तह दंसणं हि सम्मं णाणमयं होइ रूवत्थं।।१५।।

यथा पुष्पं गंधमयं भवति स्फुटं क्षीरं तत् घृतमयं चापि।
तथा दर्शनं हि सम्यक् ज्ञानमयं भवति रूपस्थम्।।१५।।

ज्यों पुष्प गन्धमयी तथा घृतमय कहा है क्षीर सब।
त्यों ज्ञानमय रूपस्थ है सम्यक्त्व दर्शन जैनमत।।१५।।

अर्थ – जैसे फूल गन्धमयी है, दूध घृतमयी है वैसे ही दर्शन अर्थात् मत में सम्यक्त्व है। कैसा है दर्शन ? अन्तरंग तो ज्ञानमयी है और बाह्य रूपस्थ है–मुनि का रूप है तथा उत्कृष्ट श्रावक, अर्जिका का रूप है।

भावार्थ – 'दर्शन' नाम मत का प्रसिद्ध है। यहाँ जिनदर्शन में मुनि, श्रावक और आर्यिका का जैसा बाह्य भेष कहा सो 'दर्शन' जानना और इसकी श्रद्धा सो 'अन्तरंग दर्शन' जानना। ये दोनों ही ज्ञानमयी हैं, यथार्थ तत्त्वार्थ का जाननेरूप सम्यक्त्व जिसमें पाया जाता है इसीलिए फूल में गन्ध का और दूध में घृत का दृष्टान्त युक्त है, इस प्रकार दर्शन का रूप कहा। अन्यमत में तथा कालदोष से जिनमत में जैनाभास भेषी अनेक प्रकार अन्यथा कहते हैं, जो कल्याणरूप नहीं है, संसार का कारण है।।१५।।

गाथा-१५ पर प्रवचन

जह फुल्लं गंधमयं भवति हु खीरं स घियमयं चावि।
तह दंसणं हि सम्मं णाणमयं होइ रूवत्थं।।१५।।

अर्थ – जैसे फूल गन्धमयी है,... फूल में गन्ध है। जैसे **दूध घृतमयी है...** दूध में घी है। घीमय दूध है। **वैसे ही दर्शन अर्थात् मत में सम्यक्त्व है। कैसा है दर्शन? अन्तरंग तो ज्ञानमयी है...** क्या कहते हैं? सम्यग्दर्शन ज्ञानमयी, सम्यग्ज्ञान ज्ञानमयी, चारित्र ज्ञानमयी। विकल्प और रागमयी नहीं। ऐसा बताते हैं। समझ में आया? जैसे फूल में गन्ध है और दूध में घी है, वैसे सम्यग्दर्शन में सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्दर्शन में राग और व्यवहार है नहीं। समझ में आया? अन्तर भगवान आत्मा ज्ञानमयी है, ऐसी उसकी प्रतीति भी ज्ञानमयी है। और उसका चारित्र–स्थिरता, वह भी ज्ञानमयी स्थिरता है। समझ में आया? उसको यहाँ ज्ञानमयी दर्शन कहते हैं। विकल्प नहीं, इतना कहते हैं।

वस्तु ज्ञानस्वरूप आत्मा ज्ञायकभाव है तो उसकी श्रद्धा–ज्ञान–चारित्र तीनों ज्ञानमयी हैं। रागमयी या विकल्पमयी वह वस्तु है नहीं। सूक्ष्म बात है। समझ में आया? अन्तरंग तो ज्ञानमयी है। वस्तु स्वरूप जो ज्ञानस्वरूप है, ऐसी श्रद्धा–ज्ञान–चारित्र, वह तीनों ज्ञानमयी हैं। पंच महाव्रतादि विकल्प है, वह ज्ञानमयी नहीं। समझ में आया? चैतन्य की

किरण, श्रद्धा-ज्ञान आदि ज्ञान, निर्विकल्प ज्ञान, वीतरागी ज्ञान, राग बिना का ज्ञान, ऐसा ज्ञानमयी वह चैतन्य, ऐसी श्रद्धा-ज्ञान उसका भी ज्ञानमयी है। समझ में आया?

और बाह्य रूपस्थ है... निर्ग्रन्थ मुनि की बाह्य दिगम्बरदशा हो **तथा उत्कृष्ट श्रावक,...** रूप हो। या **अर्जिका का रूप है**। टीका में जरा अविरत भी लिया है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन जिसको प्रगट हुआ, वह भी जैनदर्शन का एक रूप है। समझ में आया? अर्यिका अन्तर आनन्द का भान होकर, सम्यग्ज्ञान, दृष्टि-रुचि और परिणति हो गयी है, ऐसी आर्यिका भी जैनदर्शन का एक रूप है। समझ में आया? बाहर में... एक साड़ी आदि हो। मुनि को तो कपड़े का टुकड़ा भी नहीं होता। ऐसी वस्तु की जो अन्दर स्थिति है, उसको परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव दर्शन, जैनदर्शन, जैनदर्शन की मूर्ति, जैनदर्शन का रूप, जैनदर्शन का स्वरूप उसको कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? टीका में अविरति लिया है। बाद में यहाँ भी लिया है।... अविरति। सम्यग्दृष्टि अविरति भी जैनदर्शन का रूप है। भले छोटा रूप है। पाठ में लिया है, टीका में है। सम्यग्दर्शन अर्थात्...

मुमुक्षु : वह भी जैनदर्शन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनदर्शन है। जिसको समयसार की १५वीं गाथा में कहा न? **'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं'** भगवान आत्मा कर्म और राग से बन्धन और स्पर्श में है ही नहीं। वह तो भिन्न भगवान है। ऐसा जिसका चैतन्यरूप जिसकी दृष्टि अबद्ध और सामान्य पर होकर परिणमी है, उसको यहाँ भावश्रुतज्ञान उपयोग हुआ है, उसको यहाँ जैनशासन कहने में आया है। समझ में आया? जैनशासन कोई आत्मा की पर्याय को छोड़कर दूर नहीं रहता। समझ में आया? अरे! यह शरीर, वाणी, मन तो जड़ है। अन्दर राग विकल्प उठते हैं, वह तो विकार है, वह कोई जैनशासन नहीं। पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, व्यवहार समकित का विकल्प, शास्त्र पढ़ने का विकल्प है, वह कोई जैनशासन नहीं। समझ में आया? भगवान की बात बहुत सूक्ष्म है, भाई! वीतरागमार्ग। समाज बाह्य क्रिया-प्रवृत्ति में घुस गया है। उसमें ही सब मान लिया है। ऐसी चीज़ है नहीं।

यहाँ तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर सौ इन्द्रों से पूजनीक और सौ इन्द्रों के समक्ष और गणधरों के बीच में भगवान की ऐसी वाणी आयी थी। त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर की

दिव्यध्वनि में ऐसी बात आयी कि भगवान! तेरा स्वरूप तो राग, कर्म और शरीर तीनों से भिन्न है। ऐसा अनुभव होना, ऐसी दृष्टि होना और उसमें लीनता का अंश भी प्रगट होना, उसका नाम परमेश्वर जैनशासन कहते हैं। शोभालालजी! कठिन बात, भाई! ये जैन के सम्प्रदाय में जन्मे हैं, इसलिए जैन है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। कि भाई! यह दिगम्बर में जन्मा तो जैन हो गया, ऐसा है नहीं।

जैनशासन और जैनधर्म वह तो आत्मा का वीतरागी स्वभाव है, उसमें से रागरहित पर्याय प्रगट हो, सम्यग्दर्शन रागरहित, सम्यग्ज्ञान रागरहित, स्वरूप में स्थिरता भी रागरहित हो, ऐसी दशावन्त को जैनशासन को माननेवाले जैन कहते हैं। जैन नाम धराया, थेली मैं चिरायता भरा हो और ऊपर लिखे शक्कर। उसमें चिरायता मीठा नहीं हो जाता। समझ में आया? ऐसे हम जैन हैं, हम श्रावक हैं, दिगम्बर हैं, ऐसा नाम रखा, परन्तु अन्दर में तो राग ही एकता की बुद्धि है कि राग मेरा है और राग ही मेरी चीज़ है, राग से मुझे लाभ होगा, ऐसी दृष्टि है तो मिथ्यात्व की कड़वाहट तो भरी है।

मुमुक्षु : राग से तो लाभ नहीं माने परन्तु पुण्य से लाभ माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पुण्य कहो या राग कहो, एक ही बात है। राग पुण्य है और पुण्य से अपने को लाभ माने, वह जैन नहीं। समझ में आया? बात ऐसी है। लोगों को (मालूम नहीं)। वीतरागदर्शन में है, वैसी चीज़ अन्य कोई दर्शन में होती नहीं। सर्वज्ञ के अलावा किसी भी स्थान में ऐसी चीज़ तीन काल-तीन लोक में है नहीं। परन्तु उसके सम्प्रदायवाले को भी पता नहीं कि सम्प्रदाय में क्या चीज़ है। यहाँ तो क्रिया की, पंच महाव्रत किये, भक्ति-पूजा की और हो गया जैनधर्म। शोभालालजी! वह तो अनुपचार प्रगट हो, तब उसको उपचार कहने में आता है। समझ में आया?

अपना वीतरागी मूर्ति प्रभु अनादि अनन्त चैतन्य का-आत्मा का स्वरूप ही अनादि-अनन्त वीतराग है। स्वभाव अकषायभाव कहो, वीतरागभाव कहो, चारित्रगुण सम्पन्न त्रिकाल है। ऐसा भगवान आत्मा, उसके अन्तर्मुख होकर राग और शरीर, कर्म से भिन्न होकर अपने आत्मा का स्वभाव अभिन्न है, ऐसी अनुभव में दृष्टि होना और उसका ज्ञान और लीनता (होना), उसको जैन और उसको जैनशासन कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ – 'दर्शन' नाम मत का प्रसिद्ध है। देखो! मत का प्रसिद्ध है। भावार्थ में है न? दर्शन अर्थात मत। मत कहो या दर्शन कहो। तो जैनदर्शन का मत क्या है? जो वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र, वह जैनदर्शन का मत है, जैनदर्शन का रूप यह है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। तीनों होकर जैनदर्शन है। श्रद्धा भिन्न। जैनमत इसको कहते हैं। यहाँ तो दर्शन की बात चलती है न? कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप दशा (हो), उसका नाम जैनमत। यह जैनमत की मूर्ति। स्वभाव के आश्रय से अन्दर उसकी श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु : अभिप्राय।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिप्राय अन्दर में करना। तीनों ऐसा ही जैनदर्शन है। ऐसा ही अन्तर वीतरागी दर्शन, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र, वह जैनमत है। यह जैन का दर्शन है, यह जैन की मूर्ति है। मूर्ति अर्थात् स्वरूप। उसकी श्रद्धा करना। उससे विरुद्ध की श्रद्धा (मिथ्यात्व है)। समझ में आया? आचार्य की कथन करने की यही शैली है। क्योंकि उस समय श्वेताम्बर पन्थ निकल चुका था। कुन्दकुन्दाचार्य जब निकले थे। सौ वर्ष पहले निकल चुका था। और वह भी कहते थे कि हम जैनदर्शन हैं। वस्त्र रखे, पात्र रखे और मुनिपना माने, वह चारित्र है। वह जैनदर्शन नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

दर्शनपाहुड़ मुख्यपने यह पूरा अष्टपाहुड़ उसने बनाया है। तब वह पन्थ निकल चुका था। जैनदर्शन की रीति से विपरीत है। समझ में आया? मार्ग थोड़ा सूक्ष्म है। पक्षकार को कठिन पड़े। पक्ष जहाँ बँध जाता है, वहाँ अन्दर ऐसा हो जाता है... आहाहा! क्या ऐसा होता है? बापू! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। भगवान ने कहा तो वस्तु का स्वरूप जैसा है, वैसा कहा। समझ में आया?

'दर्शन' नाम मत का प्रसिद्ध है। यहाँ जिनदर्शन में मुनि, श्रावक और आर्यिका का जैसा बाह्य भेष कहा, सो 'दर्शन' जानना और इसकी श्रद्धा, सो 'अन्तरंग दर्शन' जानना। आहाहा! समझ में आया? वस्तु भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप त्रिकाल विराजमान

आत्मा है। उसकी राग बिना की निर्विकल्प श्रद्धा और उसका स्वसंवेदनज्ञान राग बिना का और उसमें मुनिपना की स्थिरता—चारित्र, राग पंच महाव्रत विकल्प बिना का चारित्र, ऐसी जो मूर्ति है, उसको यहाँ जैनमत कहने में आया है। उसकी श्रद्धा करना कि यही मोक्षमार्ग है और यही जैनदर्शन है। ऐसी अन्तर में श्रद्धा करना, आश्रय करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। उससे विपरीत की श्रद्धा करे, वह मिथ्यादर्शन है। ऐसी बात है। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

यह पक्ष से तो नहीं कहते होंगे न? पक्ष नहीं, वस्तु ऐसी है, भगवान! तेरी चीज़ में भरी है वीतरागता। तो वीतरागता शक्तिरूप है, वह व्यक्तरूप दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, वह जैनशासन-जैनदर्शन है। समझ में आया? उसमें कोई भी गड़बड़ करे, वह जैनदर्शन नहीं है, यह सिद्ध करना है। समझ में आया? जिसके शास्त्र में मुनि को वस्त्र, उपकरण लिखे, वह शास्त्र नहीं है।

मुमुक्षु : अभाव हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभवा हो जाये तो क्या करे? वस्तु तो ऐसी है।

मुमुक्षु : न बने।

पूज्य गुरुदेवश्री : न बनने की कहाँ बात है? शोभालालजी! ये सेठ लोग रहे। आहाहा! यह भी सब को मानते थे। घूमकर यहाँ आ गये।

भगवान का मार्ग, बापू! सत्य मार्ग अनादि-अनन्त, वीतराग का अनादि-अनन्त मार्ग तो रागरहित वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र, वह वीतराग का मार्ग है। उसमें कुछ भी गड़बड़ कर दी, वह जैनदर्शन में चले नहीं। समझ में आया? ऐसी बात है। शास्त्र में तो पहले कहा न कि एक तिलतुषमात्र भी परिग्रह रखकर मुनि माने तो निगोद में जायेगा। यहाँ तो कुछ ठिकाना नहीं। तिलतुष क्या। नाम धरावे साधु का और बड़ा नाम और बड़ा परिग्रह रखे तो उसका फल क्या है? वह तो जब सोचे तब पता चले। समझ में आया?

यहाँ तो आचार्य कहते हैं... आ गया न? पहले दर्शनपाहुड़ में आ गया है। एक तिल के छिलके जितना भी वस्त्र का टुकड़ा रखे, (वह निगोद में जायेगा)। वस्त्र तो नहीं रखे परन्तु दूसरी चीज़ रखे, उसका कुछ नहीं। परन्तु दूसरी कोई भी चीज़, उसके लिये पैसे

रखे, रखावे, अनुमोदन करे, यह सब परिग्रह की दृष्टि है। समझ में आया? और परिग्रह की दृष्टि है और मिथ्यादृष्टि है और मानते हैं कि हम समकिती हैं। मार्ग दूसरी चीज़ है। यहाँ जैन मार्ग में किसी की सिफारिश चले नहीं। सिफारिश को क्या कहते हैं? सिफारिश। मार्ग तो ऐसा है। इसलिए तो शास्त्र बनाना पड़ा। कुन्दकुन्दाचार्य अनादि सनातन मार्ग... भगवान के पास गये। आठ दिन रहे। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९। दिगम्बर सन्त भगवान के पास गये। सीमन्धर परमात्मा त्रिलोकनाथ वर्तमान में विराजते हैं। वही उस समय थे। उनके पास गये, आठ दिन रहे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया। समझ में आया? भगवान का मार्ग ऐसा है, भैया! हम ऐसा सन्देश लाये हैं। समझ में आया? इसको बनाया, देखो!

और इसकी श्रद्धा सो 'अन्तरंग दर्शन' जानना। देखो! बाह्य दर्शन में तो मुनिपना यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र और बाह्य वेश नग्न आदि है। श्रावक हो तो कुछ टुकड़ा रखे। उत्कृष्ट श्रावक कहा न? उत्कृष्ट श्रावक। क्षुल्लक या ऐलक। उत्कृष्ट श्रावक एक टुकड़ा रखे। कपड़े की लंगोठी। दूसरा कुछ होता नहीं। और अन्दर में दो कषाय का अभाव। वीतरागी दर्शन, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र का अंश। वह भी जैनदर्शन का एक रूप है। आर्यिका, वह पंचम गुणस्थान में भी होती है। समझ में आया? आर्यिका को छठा गुणस्थान होता नहीं। जिसका देह स्त्री का हो, उसको मुनिपने की दशा तीन काल में आती नहीं। समझ में आया?

अन्तर में उसको अन्तर अनुभव हो। वह पहले आ गया है। ... सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित हो। इच्छाकार करने लायक है। परन्तु अन्तर अनुभवरूप समकित, ज्ञान का समकित, राग का देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का समकित, वह समकित नहीं है। समझ में आया? ऐसा जैन का रूप, उसको जो अन्तर में माने तो यह दोनों ज्ञान ही है। क्या कहा? कि जो जैनदर्शन है, दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय मूर्ति, वह भी ज्ञानमयी है। उसमें कोई राग या वस्तु है नहीं। और उसको माननेवाला सम्यग्दर्शन भी ज्ञानमयी दर्शन है। वह राग और विकल्प नहीं है। भारी बात भाई! समझ में आया?

ये दोनों ही ज्ञानमयी हैं, यथार्थ तत्त्वार्थ का जाननेरूप सम्यक्त्व जिसमें पाया जाता है... यथार्थ तत्त्व का ज्ञानमयी समकित। ऐसे। ऐसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ

तत्त्व की श्रद्धा, वह तो सब विकल्प है, राग है; वह ज्ञानमयी श्रद्धा नहीं हुई। समझ में आया? परन्तु लोगों को सत्य बात सुनने मिलनी मुश्किल हो गयी। आहाहा! ऐसी चीज़ अनादि सनातन वीतराग मार्ग में चली आती है। वह कोई नयी नहीं है। अनादि की चीज़ है यह तो।

तत्त्वार्थ का जाननेरूप सम्यक्त्व जिसमें पाया जाता है, इसीलिए फूल में गन्ध का और दूध में घृत का दृष्टान्त युक्त है,... फूल में जैसे गन्ध, दूध में घी और सम्यग्दर्शन में ज्ञानरूप सम्यग्दर्शन। ऐसे। ज्ञानमयी सम्यग्दर्शन। आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! ऐसा है, भाई! आहाहा! भगवान आत्मा कहते हैं कि बापू! तेरा ज्ञानस्वरूप है न? तो ज्ञानस्वरूप का समकित ज्ञानमयी हो। विकल्पमयी समकित, वह समकित ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

फूल में गन्ध का और दूध में घृत का दृष्टान्त युक्त है, इस प्रकार दर्शन का रूप कहा। देखो! यह दर्शन का रूप कहा। दो प्रकार समझ में आये? जो जैनदर्शन है, वह आत्मा ज्ञानमय है तो उसकी श्रद्धा ज्ञानमयी, उसका ज्ञान ज्ञानमयी, चारित्र ज्ञानमयी; राग के विकल्पमयी नहीं। ऐसा जो मार्ग दर्शन है, वह भी ज्ञानमयी है और उसकी श्रद्धा करनेवाला समकित है, वह भी ज्ञानमयी समकित है। समझ में आया? क्या कहा वह?

ऐसा कहते हैं कि वह विकल्प (ज्ञानमयी) नहीं। भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति प्रभु आत्मा चैतन्य भगवान, उसकी अन्तर चैतन्यमयी ज्ञान की प्रतीति, ज्ञानमयी प्रतीति, उसमें ज्ञानमयी प्रतीति। राग नहीं। ज्ञानमयी ज्ञान और ज्ञानमयी चारित्र। पंच महाव्रत राग, वह रागमयी नहीं। ऐसे तीनों ज्ञानमयी हैं। और उसकी श्रद्धा करनेवाला समकिती भी ज्ञानमयी समकित है। समझ में आया? देखो! यह आया। श्रद्धा करनी अर्थात् ऐसा करो, तब ऐसा होवे। समझ में आया कुछ? लोगों को ऐसा लगे कि यह मार्ग तो कठिन है जरा। कठिन नहीं, मार्ग ही ऐसा है। कठिन कहे। आकरा को क्या कहते हैं? कठिन। कठिन कहो या सरल कहो, मार्ग ऐसा है। दूसरा है नहीं। आहाहा! और सम्यग्दर्शन माने बात पूरी हो गयी। अन्तर में उदय मात्र का विकल्प का भी स्वभाव की दृष्टि में त्याग है। ऐसा सम्यग्दर्शन ज्ञानमयी है। यहाँ ऐसा कहते हैं न? जिसमें विकल्पमात्र का त्याग है। उदयभाव का सम्यग्दर्शन में त्याग है। यदि उदयभाव का आदर हो तो वह सम्यग्दर्शन नहीं, वह तो

मिथ्यादर्शन हुआ। समझ में आया ? प्रशस्त राग का भी सम्यग्दर्शन में त्याग है।

एक अनन्त आनन्दकन्द प्रभु पूर्णानन्द नाथ, उसकी रागमयी (प्रतीति) छोड़कर, ज्ञानमयी प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। कहो, समझ में आया ? दूसरी-दूसरी तरह से किन्तु कैसे कहा है, देखो न, ओहोहो ! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली तो केवलज्ञानी का पेट खोलकर रख दिया है। ऐसी गम्भीर भाषा, गम्भीर भाव, गूढ़ भाव। भाई ! जैनशासन और जैनदर्शन और जैन का मत, वह सब ज्ञानमयी होता है। उसमें विकल्प और राग नहीं होता, हों ! आहाहा !

कब हो ? कि ज्ञानस्वभावी आत्मा, उसकी अन्तर-सन्मुख होकर शक्ति में से व्यक्तता, ज्ञान-श्रद्धा की शान्ति प्रगट हुई, वह सब ज्ञानमयी आत्मा है तो ज्ञानमयी तीनों दशा प्रगट हुई। उसमें रागमयी और विकल्पमयी है नहीं। थोड़ा-थोड़ा गुजराती आ जाता है। समझ में आया ? पंचमी से हिन्दी शुरु करना था, ये तो कल से हिन्दी शुरु हो गया। ठीक है, भाई ! गुजराती समझते हैं। आहाहा !

क्या कहते हैं ? आहाहा ! शरीर, वाणी तो नहीं, पाप परिणाम नहीं परन्तु पुण्य परिणाम भी जैनशासन नहीं। जैनमत नहीं और वह जैन का समकित नहीं। समझ में आया ? क्योंकि वह जैनस्वरूप ही आत्मा है। 'जिन सोही है आत्मा, अन्य सोही है कर्म, जिनवचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म'। 'कर्म कटे जिनवचन से। कर्म कटे जिनवचन से यही जैनधर्म का मर्म।' ऐसा श्रीमद में है। श्रीमद् का वाक्य है। 'जिन सोही है आत्मा अन्य सोही कर्म, कर्म कटे जिन वचन से...' जिनवचन अर्थात् वाणी। परन्तु वाणी में वीतरागता है, वह जिनवचन का भाव है। जिनवाणी वीतरागभाव पोषक है। जिनवाणी राग की पोषक नहीं। राग की पोषक हो, वह जिनवाणी नहीं। समझ में आया ? जिनवाणी अर्थात् वचन-वाक्य भी ऐसे हो कि जो वीतरागभाव का पोषण करे। जिसमें शुभ रागादि हो परन्तु पोषण नहीं। उससे लाभ है और धर्म है, ऐसा जिनवाणी में आता नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं, **इस प्रकार दर्शन का रूप कहा। अन्यमत में तथा कालदोष से जिनमत में जैनाभास भेषी...** जैनाभास। जैन है नहीं और जैनाभास है। समझ में आया ? **अनेक प्रकार अन्यथा कहते हैं, जो कल्याणरूप नहीं है, संसार का कारण**

है। समझ में आया? वीतराग भगवान हुए, वे अल्प ज्ञान और राग का अभाव करके हुए। उनकी वाणी में भी राग का अभाव और वीतरागता कैसे प्रगटे, वह बात उनकी वाणी में आती है। समझ में आया? जिनवाणी उसको कहे कि जो वीतरागभाव को पोषे। जो वाणी राग का आदर बतावे, राग को ठीक कहे, वह जिनवाणी ही नहीं, वह जैनशास्त्र नहीं। समझ में आया?

यह कहते हैं, **जैनाभास भेषी...** ओहोहो! वस्त्र रखकर साधु माने, आचार्य माने, उपाध्याय माने, साध्वी माने, वह सब जैनाभास भेषी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? किसी को दु:ख लगे, न लगे उसके साथ यहाँ बात नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है, भगवान! समझ में आया? यह कोई पक्ष की बात नहीं है। परन्तु लोगों को वास्तविक तत्त्व मिला नहीं। आचार्य भगवन्तों... किसको कहे आचार्य भगवन्त, भाई! सम्यग्दर्शन में कैसा वेश होता है और मुनि को कैसा भाव अन्दर होता है, वह भी खबर नहीं तो आचार्य कहाँ से आया? समझ में आया? ऐई! पोपटभाई! आहाहा!

देखो! लिया है न? **अन्यमत में तथा कालदोष से जिनमत में जैनाभास भेषी अनेक प्रकार अन्यथा कहते हैं,...** वह सब झूठ बात है। वह कल्याण का मार्ग नहीं। सबको रुचे, ऐसा मार्ग तो कैसे कहें? सबको चैन पड़े, ऐसी बात तो है नहीं। समझ में आया? वह जैनदर्शन का रूप कहा। अब जिनबिम्ब। कहते हैं न धवल में? पण्डितजी! आपने कल नहीं कहा? जिनबिम्ब के दर्शन से निद्धत निकाचित कर्म का नाश होता है, ऐसा धवल में आता है। कौन-सा जिनबिम्ब? यह जिनबिम्ब। बाहर के जिनबिम्ब का दर्शन करे, वह तो विकल्प है, वह तो राग है।

मुमुक्षु : वह तो धवल में लिखा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धवल में यह लिखा है। उसका लक्ष्य करके अन्दर जिनबिम्ब मैं ऐसा हूँ। अन्तर दृष्टि में वीतराग का बिम्ब, वज्रमयी मैं, मैं वीतरागमय हूँ। वज्र की वीतराग मूर्ति मैं हूँ। चैतन्यमयी, वज्रमयी मूर्ति हूँ। ऐसा जिनबिम्ब। ऐसी अन्तर में दृष्टि करने से निद्धत निकाचित कर्म का नाश होता है। मात्र भगवान के दर्शन करने से, वहाँ लक्ष्य करने से तो परद्रव्याश्रित विकल्प उठते हैं।

मुमुक्षु : धर्म नहीं होगा, वह तो बन्ध होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बन्ध होगा, पुण्यबन्ध होगा। पण्डितजी! कहते हैं, देखो! उसमें लिखा है। भगवान! जहाँ अपूर्वकरण, अध:करण और अनिवृत्तिकरण आदि करना है तो इस ओर लक्ष्य रखकर वह करेगा? पर ऊपर लक्ष्य करेगा? सम्यग्दर्शन होने से मिथ्यात्व का नाश होता है ... है। परन्तु अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण का परिणाम स्वलक्ष्य से होता है वह तो यहाँ लक्ष्य करते हैं, तब परिणाम होता है। यहाँ लक्ष्य करने से परिणाम होते हैं? समझ में आया? परलक्ष्य छोड़कर शुद्धात्म सन्मुख परिणाम, शुद्धात्मा सन्मुख परिणाम करते हैं, तब स्थिरता होकर सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! समझ में आया?

समवसरण में साक्षात् तीन लोक के नाथ हो तो भी क्या? भगवान कहते हैं कि हमारे सन्मुख देखना छोड़ दे। तेरे सन्मुख देख। ऐई! साक्षात् तीर्थंकर, हों! केवलज्ञानी समवसरण में विराजमान (हों, वे कहते हैं कि) हमारे सन्मुख देखता है, किन्तु हम तो तेरे से परद्रव्य हैं। तो परद्रव्य के आश्रय से तो तुझे विकल्प ही उत्पन्न होगा, सम्यग्दर्शन नहीं होगा। आहाहा! आता है न? जिनबिम्ब के दर्शन से होता है, देवदर्शन से होता है। वेदनीय (वेदना) से होता है। वह तो सब निमित्त के कथन हैं। स्वभाव का आश्रय करते हैं तो कौन-से निमित्त से लक्ष्य छूट गया था, वह बताना है। समझ में आया?

गाथा-१६

आगे जिनबिम्ब का निरूपण करते हैं -

जिणबिंबं णाणमयं संजमसुद्धं सुवीयरायं च।
जं देह दिक्खसिक्खा कम्मक्खयकारणे सुद्धा ।।१६।।

जिनबिंब ज्ञानमयं संयमशुद्धं सुवीतरागं च।
यत् ददाति दीक्षाशिक्षे कर्मक्षयकारणे शुद्धे ।।१६।।

सुविशुद्ध संयम वीतरागी ज्ञानमय हैं कर्म-क्षय।
कारण सुपावन दीक्षा-शिक्षा-प्रदा जिन-बिम्ब यह।।१६।।

अर्थ – **जिनबिम्ब कैसा है? ज्ञानमयी है, संयम से शुद्ध है, अतिशयकर वीतराग है, कर्म के क्षय का कारण और शुद्ध है – इस प्रकार की दीक्षा और शिक्षा देता है।**

भावार्थ – **जो 'जिन' अर्थात् अरहन्त सर्वज्ञ का प्रतिबिम्ब कहलाता है। उसकी जगह उसके जैसा ही मानने योग्य हो, इस प्रकार आचार्य हैं, वे दीक्षा अर्थात् व्रत का ग्रहण और शिक्षा अर्थात् व्रत का विधान बताना, ये दोनों भव्यजीवों को देते हैं। इसलिए १. प्रथम तो वह आचार्य ज्ञान मयी हो, जिनसूत्र का उनको ज्ञान हो, ज्ञान बिना यथार्थ दीक्षा–शिक्षा कैसे हो ? और २. आप संयम से शुद्ध हो, यदि इस प्रकार न हो तो अन्य को भी संयम से शुद्ध नहीं करा सकते। ३. अतिशय–विशेषतया वीतराग न हो तो कषायसहित हो तब दीक्षा, शिक्षा यथार्थ नहीं दे सकते हैं, अत: इसप्रकार आचार्य को जिन के प्रतिबिम्ब जानना।।१६।।**

गाथा–१६ पर प्रवचन

आगे जिनबिम्ब का निरूपण करते हैं– भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जिनबिम्ब किसको कहें? जिनबिम्ब न? तो वीतरागी बिम्ब होता है न? प्रतिमा में कहाँ वीतरागता है? समझ में आया? वाणी में कहाँ वीतरागता है? वाणी में तो जड़ की पर्याय है। शोभालालजी! आपके उसमें कहते हैं कि जिनवाणी में तो वीतराग का भाव भरा है। मूर्ति में क्या है? ऐसा कहते हैं। बिल्कुल झूठ बात है। वाणी में तो वाणी है। वाणी में वीतरागभाव कहाँ से आ गया? चाहे तो दिव्यध्वनि हो तो वाणी है, वह तो जड़ है। वीतरागभाव जड़ में आ जाता है? वाणी वाचक है। किसको बतानेवाली? वीतरागभाव को बतानेवाली। समझ में आया? परन्तु वाणी में वीतरागता है और जिनप्रतिमा मूर्ति में वीतरागता है, ऐसा है नहीं। सेठ! यह सब तो तारणपन्थी के बड़े सेठ हैं। एक सेठ तो नहीं आये हैं। कहो, समझ में आया? पण्डितजी कहते कि भाई जल्दी आओ, यहाँ हिन्दी चलता है। सेठ को पत्र लिखना है। भगवानदास को चिट्ठी लिखी न? तुम कहते थे न चिट्ठी लिखनी है। हिन्दी चलेगा तो। समझ में आया? ... हिन्दी ठीक पड़ते हैं। आहाहा!

'जिणबिंबं णाणमयं' देखो! पहला शब्द। प्रतिमा कहाँ ज्ञानमयी प्रतिमा कहाँ है? चैतन्य ज्ञायकभाव है, उसकी सब बात है। ज्ञायकभाव। मैं तो ज्ञायकभाव हूँ। आचार्य

समयसार की ६वीं गाथा में कहते हैं न? **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।'** मैं प्रमत्त-अप्रमत्त कोई पर्याय में नहीं हूँ। पर्याय मैं नहीं। वीतरागी पर्याय और रागी पर्याय दोनों मैं नहीं। आहाहा! **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।'** मैं तो ज्ञायकभाव, ज्ञानमय अकेला भाव, भूतार्थ शुद्धभाव, वह मैं हूँ। पर्याय भी मैं नहीं, राग मैं हूँ या निमित्त के सम्बन्ध में मैं हूँ, (ऐसा तो नहीं)। भैया! इन्दौर! ऐसी बात है। मार्ग प्रभु का ऐसा है। ऐसी पक्की श्रद्धा तो करे, कि मार्ग ऐसा है; दूसरा है नहीं। समझ में आया? ऐसी पक्की श्रद्धा किये बिना अनुभव होगा नहीं। अनुभव बिना मोक्ष का मार्ग है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जिणबिंबं णाणमयं संजमसुद्धं सुवीयरायं च।
जं देह दिक्खसिक्खा कम्मक्खयकारणे सुद्धा ।।१६।।

दीक्षा-शिक्षा दे। जिनप्रतिमा कहाँ दीक्षा देती है? आहाहा!

अर्थ – **जिनबिम्ब कैसा है? ज्ञानमयी है,...** यह तो जिन ज्ञानस्वरूप चैतन्यबिम्ब, चैतन्यपुंज, भगवान आत्मा चैतन्यपुंज। उसका ज्ञान, वह ज्ञानमयी है। उसका ज्ञान प्रगट, हों! समझ में आया? **संयम से शुद्ध है,...** ऐसा ज्ञानमयी है और ज्ञान में स्थिरता, रमणतारूप वह भी ज्ञान में संयम से शुद्ध है। रागरहित अतीन्द्रिय आनन्द में रमना, ऐसा जो संयम, उससे सहित है। वह सब ज्ञानमयी हुआ।

अतिशयकर वीतराग है,... ओहो! देखो तो जरा! जिनप्रतिमा में वीतरागता क्या है? ज्ञानमयी कहाँ हैं? संयम क्या है? आहाहा! आचार्य की कथनी! समझ में आया? व्यवहार है। ऐसा निश्चय अनुभव सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, भगवान की प्रतिमा आदि का व्यवहार है। पूजनीक, वन्दनीक ऐसा शुभभाव है, वह व्यवहार है। निश्चय नहीं। समझ में आया? व्यवहार का अर्थ ही पुण्य परिणाम है। पर के आश्रय से। आहाहा! स्व के आश्रय से जो प्रगट हुआ, वह वीतरागमय भाव है। उसे जिनबिम्ब कहने में आता है।

आनन्दघनजी कहते हैं 'जेनो पक्ष लईने बोलुं ते मनमां सुख माणे, जेनो पक्ष मूकीने बोलुं ते मनमां मन ताणे।' उसे ठीक पड़े वैसा बोले तो हाँ... यह बात ठीक लगती है और उससे विरुद्ध बात कहे तो... ऊं..हूं... (करता है)। आनन्दघनजी श्वेताम्बर में हुए हैं। वे

कहते हैं, जिसके मत में बोलूँ कि ऐसा मार्ग है। तो उसको ठीक पड़े, मार्ग में ठीक पड़े तो कहे, हाँ यह सच्चा है। उसके विरुद्ध कहे तो कहे, नहीं। राग से धर्म होगा। जिनबिम्ब से भी समकित होगा। (तो कहे), हाँ, यह बराबर है।

यहाँ कहते हैं, राग से और बाह्य जिनबिम्ब से समकित नहीं होगा। जिनबिम्ब भगवान आत्मा वीतरागी बिम्ब, उसका आश्रय करने से समकित होगा। यह तो व्यवहार को उत्थापते हैं। ऐई... ! शोभालालजी !

मुमुक्षु : व्यवहार को उड़ाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उड़ाते हैं। भाई ! व्यवहार उड़ाये बिना तुझे निश्चय प्रगट होगा नहीं। व्यवहार है। बीच में आता है। जब तक वीतराग न हो, तब तक ऐसा शुभभाव, प्रतिमा का वन्दन, भक्ति-यात्रा ऐसा भाव आता है। परन्तु वह पुण्यभाव है, वह वीतरागभाव नहीं। मार्ग ऐसा है। उसमें गड़बड़ कुछ करेगा तो घर में नुकसान होगा। पोपटभाई !

पुनः कैसा है ? **कर्म के क्षय का कारण और शुद्ध है – इस प्रकार की दीक्षा और शिक्षा देता है।** देखो ! आचार्य में जो आचार्य भगवान। वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्रवाले आचार्य, उनको यहाँ जिनबिम्ब कहने में आया है। जिन की जगह जिन नहीं परन्तु जिनसरीखे। वीतराग नहीं परन्तु वीतराग सरीखे आचार्य। अन्तर आनन्दकन्द में झूलते हो। आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ हो। जिनको नींद भी पौन सैकेण्ड के अन्दर आती हो, एक सेकेण्ड भी नींद आ जाए तो मुनिपना रहता नहीं। ऐई ! जिसको विकल्प बहुत होते हैं, उसको नींद भी बहुत आती है। जिसको विकल्प बहुत घट गये, महा वीतरागीदशा प्रगट हुई, (उसकी) नींद तो कम हो जाती है, बहुत कम हो जाती है। समझ में आया ? पौन सेकेण्ड के अन्दर मुनि को नींद आती है। ऐसी उसकी दशा है। उसको यहाँ जैनदर्शन में जैनमुनि, आचार्य और उपाध्याय कहने में आया है। आहाहा ! जिसका बहुत जागृत भाव, उसकी नींद भी बहुत थोड़ी। समझ में आया ? वह तो सिद्धान्त का न्याय है। भगवान कहते हैं कि पौन सेकेण्ड। परन्तु क्या कारण ? छठे गुणस्थान की अवधि है, उतनी जरा नींद आती है। बाकी अप्रमत्त आनन्द। आचार्य है, उनकी दशा ऐसी होती है। उनको वीतराग के स्थान में जिनबिम्ब कहने में आता है। समझ में आया ? **कर्म**

के क्षय का कारण... निमित्त है। **और शुद्ध है – इस प्रकार की दीक्षा और शिक्षा देता है।** शुद्ध की दीक्षा और शुद्ध की शिक्षा, ऐसा लेना। आहाहा!

भावार्थ – **जो 'जिन' अर्थात् अरहन्त सर्वज्ञ का प्रतिबिम्ब कहलाता है।** देखो! यह प्रतिबिम्ब जो भगवान की प्रतिमा है, वह तो व्यवहारबिम्ब है। व्यवहार प्रतिबिम्ब है। निश्चय प्रतिबिम्ब तो जैसे वीतराग है, वैसी वीतरागता अन्दर प्रगट हुई हो, उसको बिम्ब का प्रतिबिम्ब कहने में आता है। आहाहा! और सामने जिनप्रतिमा भी ऐसी होनी चाहिए। जैसे वीतराग थे, ऐसा व्यवहार प्रतिबिम्ब भी वैसा होना चाहिए। उसके लिये कोई फूल, फल, हार लगाते हैं, अरे! भगवान! वह तो जिनप्रतिमा व्यवहार से भी नहीं है, जिनबिम्ब व्यवहार से भी नहीं है। समझ में आया?

जो 'जिन' अर्थात् अरहन्त सर्वज्ञ का प्रतिबिम्ब... देखो! सर्वज्ञ का प्रतिबिम्ब, हों! **उसकी जगह उसके जैसा ही मानने योग्य हो,...** अरिहन्त के स्थान में जिसको माननेयोग्य हो, **इस प्रकार आचार्य हैं, वे दीक्षा अर्थात् व्रत का ग्रहण...** अट्ठाईस मूलगुण आदि ग्रहण कराये, दीक्षा। **और शिक्षा अर्थात् व्रत का विधान बताना,...** उसकी रीति, विधि बताये। **ये दोनों (कार्य) भव्यजीवों को देते हैं।** आचार्य दोनों कार्य भव्यजीवों को दे ऐसे आचार्य जिनबिम्ब, वीतरागी बिम्ब हैं। वीतरागी दीक्षा और वीतरागी शिक्षा दे और वीतरागी भाव जिसको प्रगट हुआ है, उसे जैनदर्शन में जिनबिम्ब कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए १. प्रथम तो वह आचार्य ज्ञानमयी हो,... देखो! ज्ञानमयी। वह चर्चा आती है न? समयसार की १५५ गाथा। **'जीवादिसद्दहणं सम्मत्तं'** पुण्य-पाप अधिकार में। वो विद्यानन्दजी है न दिल्ली से? विद्यानन्दजी। उसने गुप्त में कोई अन्दर नहीं था, तब प्रश्न किया था। इस गाथा का क्या अर्थ है? सब साथ में थे। बहुत लोग आये थे। सबको निकाल दिया। हम दो रहे। बाद में यह गाथा निकाली। **'जीवादिसद्दहणं'** समयसार में आता है न? १५५ गाथा है।... १५५ गाथा में आता है। १६० तो वो। पुण्य-पाप अधिकार है न?

१५५ गाथा। **'जीवादिसद्दहणं'** समकित। परन्तु उसकी परिभाषा ऐसी है कि **मोक्ष का कारण वास्तव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। उसमें सम्यग्दर्शन तो जीवादि**

पदार्थों के श्रद्धानस्वभावरूप ज्ञान का होना–परिणमन करना है;... ऐसे जीवादि श्रद्धा... जीवादि श्रद्धा... करे, ऐसे नहीं। तब कहा था, देखो! यह है। **जीवादि पदार्थों के श्रद्धानस्वभावरूप ज्ञान का होना–परिणमन करना...** राग नहीं। समझ में आया? बहुत कठिन जगत को! देखो! भाषा कैसी है! यह बात कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ कहते हैं। जीवादि पदार्थों का श्रद्धानस्वभाव, वह ज्ञान का परिणमन होकर श्रद्धास्वभाव। नौ तत्त्व का विकल्प है, वह श्रद्धानस्वभाव है ही नहीं, वह ज्ञान का परिणमन है ही नहीं। वह ज्ञान परिणमन है ही नहीं। समझ में आया?

जीवादि पदार्थों के ज्ञानस्वभावरूप ज्ञान का होना–परिणमन करना ज्ञान है;... ज्ञान भी उसको कहे कि ज्ञानरूप ज्ञान का परिणमन हो जाना। और **रागादि के त्यागस्वभावरूप ज्ञान का होना–परिणमन करना, सो चारित्र है।** तीनों में ज्ञान है। ज्ञान वस्तु ज्ञायकभाव है। समझ में आया? विकल्प का परिणमना, विकल्प का होना, वह आत्मा नहीं; वह तो आस्रव है। समझ में आया? वीतरागमार्ग अलौकिक है, भाई! देखो! है? **अतः इस प्रकार सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र तीनों एक ज्ञान का ही भवन (परिणमन) है।** आखिरी पद का अर्थ किया है। समयसार में। **तीनों एक ज्ञान का ही भवन (परिणमन) है।** ज्ञान अर्थात् ज्ञायकभाव, उसका परिणमन है। उसमें विकल्प–बिकल्प, राग–व्यवहार–फ्यवहार उसमें है नहीं। सम्यग्दर्शन वह ज्ञान का परिणमन, आत्मा ज्ञानस्वरूप विकल्परहित, उसका परिणमन, सम्यग्ज्ञान भी रागरहित ज्ञान का परिणमन, चारित्र भी रागरहित ज्ञान का होना। समझ में आया? वह शैली यहाँ ली है। !

१. प्रथम तो वह आचार्य ज्ञानमयी हो, जिनसूत्र का उनको ज्ञान हो,... परन्तु जिनसूत्र का अर्थ? वीतरागी ज्ञान उसने कहा, वैसा ज्ञान आत्मा का हो। **ज्ञान बिना यथार्थ दीक्षा–शिक्षा कैसे हो?** सच्चे ज्ञान बिना, अपने ज्ञान का परिणमन और शास्त्र का सच्चे ज्ञान बिना... शास्त्र का ज्ञान इसमें लिया, भाई! दूसरे को शिक्षा–दीक्षा देते हैं न? वीतरागी शास्त्र ज्ञान का ज्ञान और अपना ज्ञान, ऐसा जिसको हो। ऐसा न हो वह शिक्षा–दीक्षा की वीतरागता किस तरह समझेगा? वीतरागता वह दीक्षा है और वीतरागता वह शिक्षा है। समझ में आया?

२. आप संयम से शुद्ध हो, यदि इस प्रकार न हो तो... यदि संयम से शुद्ध

न हो वह **अन्य को भी संयम से शुद्ध नहीं करा सकते।** अपना बचाव करने के लिये गड़बड़ करे। संयम शुद्ध हो, निरतिचार। समझ में आया? देखो न, प्रतिमा में भी ऐसा आता है न प्रतिमा में? पहली प्रतिमा में दर्शनप्रतिमा में पाँच अणुव्रत तो है। निरतिचार नहीं हो तो व्रतप्रतिमा नाम नहीं धरावे। दर्शनप्रतिमा है न, दर्शनप्रतिमा? तो दर्शनप्रतिमा पंचम गुणस्थान है, वह चौथा नहीं। पंचम गुणस्थान। दर्शनप्रतिमा है, समकित है, निरतिचार समकित है। परन्तु व्रत है और निरतिचार नहीं है तो व्रतप्रतिमा नाम नहीं दिया। दूसरी प्रतिमा में निरतिचार व्रत हो तो व्रतप्रतिमा नाम देते हैं। समझ में आया? ऐसे आचार्य निरतिचार दर्शन-ज्ञान-चारित्र उनको कहते हैं। समझ में आया?

यदि अपना संयम शुद्ध न हो तो दूसरो को संयम शुद्ध किस तरह करावे? **अतिशय-विशेषतया वीतराग न हो...** जो वीतराग न हो... आहाहा! और कषायसहित हो **तब दीक्षा, शिक्षा यथार्थ नहीं दे...** गड़बड़ करे कि ऐसा भी होता है, ऐसा मार्ग है, पंचम काल है। मूलमार्ग नहीं होता। मार्ग तो जो है, वह पंचम काल का और चौथे काल का, मार्ग तो जो है वही है। उसमें कोई काल के कारण मार्ग नीचे उतर जाये, ऐसा है नहीं। **अतः इस प्रकार आचार्य को जिन के प्रतिबिम्ब जानना।** ऐसे आचार्य को वीतराग का प्रतिबिम्ब-बिम्ब जानना। सच्चा प्रतिबिम्ब यह है। समझ में आया? भगवान की प्रतिमा व्यवहार है, उपचार है, आरोप से जिनबिम्ब है। अनारोप / अनुपचार से जिनबिम्ब मुनि आचार्य स्वयं है। उसका जिसको भान नहीं और मात्र भगवान की प्रतिमा की पूजा, वन्दन करे तो उसमें कोई धर्म-बर्म है नहीं। शुभभाव होगा। समझ में आया? धर्मी को भी ऐसे जिनबिम्ब का दर्शन करना, वीतराग का दर्शन करना, ऐसा यहाँ कहते हैं। है न? ऐसा कहते हैं, देखो!

गाथा-१७

आगे फिर कहते हैं –

तस्स य करह पणामं सव्वं पुज्जं च विणय वच्छल्लं।
जस्स य दंसण णाणं अत्थि धुवं चेयणाभावो।।१७।।

तस्य च कुरुत प्रणामं सर्वां पूजां च विनयं वात्सल्यम्।
यस्य च दर्शनं ज्ञानं अस्ति ध्रुवं चेतनाभावः।।१७।।

जिसके सुदर्शन ज्ञानमय ध्रुव चेतना सद्भाव है।
वात्सल्य सविनय सकल पूजा नमन नित करना उन्हें।।१७।।

***अर्थ* – इस प्रकार पूर्वोक्त जिनबिम्ब को प्रणाम करो और सर्व प्रकार पूजा करो, विनय करो, वात्सल्य करो, क्योंकि उसके ध्रुव अर्थात् निश्चय से दर्शन-ज्ञान पाया जाता है और चेतनाभाव है।**

***भावार्थ* – दर्शन-ज्ञानमयी चेतनाभावसहित जिनबिम्ब आचार्य हैं, उनको प्रणामादिक करना। यहाँ परमार्थ प्रधान कहा है, जड़ प्रतिबिम्ब की गौणता है।।१७।।**

गाथा-१७ पर प्रवचन

'तस्स य करह पणामं' १७ वीं गाथा। देखो! जैसे जिनबिम्ब का दर्शन कर आचार्य, वीतरागी मुनि... आहाहा! **'सव्वं पुज्जं'** उसको पूजो। सर्व प्रकार से पूजनेयोग्य वह है। **'वच्छल्लं। जस्स य दंसण णाणं अत्थि धुवं चेयणाभावो।'** ऐसे आचार्य को वन्दन करो, **पूर्वोक्त जिनबिम्ब को प्रणाम करो...** आहाहा! भगवान को प्रणाम करो, वह तो व्यवहार है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसे जिनबिम्ब प्रणाम करो और सर्व प्रकार पूजो। **'सव्वं पुज्जं'** उसमें पाठ है न? **'सव्वं पुज्जं'** सर्व प्रकार से पूजनेयोग्य वीतरागभाव है। वीतरागभाव जिनबिम्ब आचार्य हो, वे तो परमेष्ठी हैं। जिन्हें गणधर भी नमस्कार करते हैं। णमो लोए आईरियाणं। नवकार कहते हैं, उसमें आचार्य के चरण में गणधर का

नमस्कार (पहुँचे), वह आचार्यपद कैसा ? गणधर पाँच नवकार लिखते हैं न ? णमो लोए सव्व आईरियाणं। गणधर तो चौदह पूर्व और बारह अंग को पढ़नेवाले और लाखों-करोड़ों वर्ष से दीक्षित हुए हो। परन्तु (कहते हैं), णमो लोए सव्व आईरियाणं। अरिहन्त-सिद्ध तो है ही। पाँचों पद में णमो लोए है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं। लोए आखिर में अन्त्यदीपक है। बाकी है पाँचों में। णमो लोए अन्तदीपक है। परन्तु है सब में, पाँचों में। णमो लोए सव्व आईरियाणं। लोक में जितने आचार्य हैं, उनको मेरा नमस्कार। गणधर कहते हैं। गणधर कहते हैं, मेरा नमस्कार। ऐसा साधुपद-आचार्यपद कैसा है ! णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। समझ में आया ? गणधर का भी जिसको नमस्कार पहुँचे... आहाहा ! ऐसे आचार्य को सर्व प्रकार से पूजो। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-५५, गाथा-१७ से २०, गुरुवार, श्रावण शुक्ल ४, दिनांक ०६-०८-१९७०

अष्टपाहुड़, उसमें बोधपाहुड़ चलता है। १७वीं गाथा। जैनदर्शन में, जैनमार्ग में यथार्थ जिनबिम्ब किसको कहते हैं, वह बात चलती है। वास्तविक जिनबिम्ब किसको कहते हैं, वह चलता है। देखो ! जो आचार्य हैं... अपना निज आनन्द विज्ञानघन स्वभाव, उसका स्पर्श होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो प्रगट हुआ हो, वीतरागी भाव जिसको प्रगट हुआ हो, ऐसे आचार्य जिनबिम्ब कहने में आते हैं। समझ में आया ? यह पत्थर का जिनबिम्ब है, उसमें तो गौणता है, मुख्यता नहीं। व्यवहार की मुख्यता नहीं। निश्चय की मुख्यता भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वर्णन करते हैं।

जिनबिम्ब अर्थात् वीतरागीबिम्ब। जैसे सर्वज्ञ परमेश्वर हैं, ऐसा आत्मा वस्तु रूप से जिनबिम्ब ही है। वस्तु रूप से, द्रव्य रूप से, सत्त्व रूप से, सत् ऐसा आत्मा, उसका सत्त्व स्वरूप से वीतरागभाव का बिम्ब ही आत्मा है। इस जिनबिम्ब को स्पर्श करके दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय उत्पन्न हो, ऐसे आचार्य को, ऐसे उपाध्याय को, ऐसे साधु को जिनबिम्ब कहने में आता है। समझ में आया ?

ऐसे **जिनबिम्ब को प्रणाम करो...** ऐसा कहते हैं कि ये जिनबिम्ब है, वह तो व्यवहार है। उसको प्रणाम करना, वन्दन करना, वह तो गौणपन है। समझ में आया? बाहर लोक में प्रवृत्ति करते हैं और वहाँ रुक जाते हैं, उसको कहते हैं कि भैया! तेरा जिनबिम्ब तो तेरे पास है। तुम्ही जिनबिम्ब हो। चैतन्य विज्ञानघन जो है, उसको वन्दन करो। ऐसे आचार्य को वन्दन करो, उसका अर्थ यह है कि वीतरागी दशा जिसको प्रगट हुई है, ऐसे आचार्य जिन के स्थान पर जिनबिम्ब है। ऐसी दृष्टि करनेवाला अपने आत्मा में जिनबिम्ब देखता है। समझ में आया? यहाँ तो शुभादि विकल्प जो आते हैं, वह कोई मूल चीज़ नहीं है, वह तो राग है।

यहाँ तो जिनबिम्ब और वीतराग ऐसा जो आत्मा, उसमें श्रद्धा-ज्ञान और लीनता (होनी), विज्ञानघन भगवान आत्मा है, उसमें पहुँचकर आनन्द का अनुभव होना, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव उग्रपने हो, ऐसे आचार्य-उपाध्याय-साधु को मुख्यरूप से जिनबिम्ब गिनने में आया है। गौणरूप से उत्कृष्ट श्रावक, आर्यिका और सम्यग्दृष्टि भी गौणरूप से जिनबिम्ब में गिनने में आया है। प्रतिमा तो कहीं गौण रह गयी। समझ में आया?

कहते हैं, प्रसयतर, ऐसा शब्द है, भाई! उसको प्रणाम करो। उसमें वजन है, जोर है। भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति जिसको आत्मा प्रगट हुई, उसको प्रणाम करो, उसको आदर करो। समझ में आया? और **सर्व प्रकार पूजा करो,...** सर्व प्रकार से पूजनीक हो तो वीतरागीभाव सम्पन्न आत्मा है। बात ऐसी है।

चैतन्यबिम्ब भगवान आत्मा विकल्प-फिकल्प पुण्यादि वह कोई आत्मा नहीं और वह कोई जैनधर्म नहीं। आहाहा! वह भावपाहुड़ में आया है न? भावपाहुड़ में आया है वह। कल कोई प्रश्न करता था न, उसमें आया है। नयी दुनिया में। हिम्मतभाई कहते थे। कहा था, उसने कहा था। समझ में आया? है उसमें? देखो! भावपाहुड़ की गाथा देखो। ८३। ८३ गाथा है। ८० और ३। भावपाहुड़।

शिष्य पूछता है कि जिनधर्म को उत्तम कहा, तो धर्म का क्या स्वरूप है? है? ८० और ३। 'भावपाहुड़' में, 'मोक्षपाहुड़' पहले। 'बोधपाहुड़' के तुरन्त बाद 'भावपाहुड़' है।

शिष्य पूछता है कि जिनधर्म को उत्तम कहा, तो धर्म का क्या स्वरूप है? उसका स्वरूप कहते हैं कि 'धर्म' इस प्रकार है:- क्या?

पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो।।८३।।

अर्थ - जिनशासन में जिनेन्द्रदेव ने इस प्रकार कहा है... जिनशासन में जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ने ऐसा कहा है **कि-पूजा आदिक में और व्रतसहित होना है वह तो 'पुण्य' ही है...** पूजा, वैयावृत्य, भक्ति आदि तो पुण्य है। आहाहा! वह धर्म नहीं, जैनधर्म नहीं। समझ में आया? है? श्लोक है ऐसा देखो। भावपाहुड़। भावपाहुड़ का अर्थ—जो वीतरागभाव आत्मा में है, वह जैनधर्म है। जो भाव पुण्य है व्रत, तप आदि बहुत लिया है देखो। **मोह के क्षोभ से रहित जो आत्मा का परिणाम, वह 'धर्म' है।** बात तो ऐसी है। पुण्य और व्रत का, दान का, दया का, पूजा का, भक्ति का, नाम स्मरण का जो विकल्प राग है, वह तो पुण्य है, वह कोई धर्म नहीं। आहाहा! धर्म तो रागरहित अपना शुद्ध चैतन्य विज्ञानघन आनन्द का पिण्ड, उसमें स्पर्श कर एकाग्रता होना, जिसमें मिथ्यात्व और राग का अभाव है, जिसमें सम्यग्दर्शन और वीतरागी पर्याय का सद्भाव है, उसको जैनधर्म कहते हैं।

लौकिक जन... भावार्थ में है। **लौकिक जन तथा अन्यमती कई कहते हैं कि पूजा आदिक शुभ क्रियाओं में और व्रतक्रियासहित है वह जिनधर्म है,...** लौकिक जैन सम्प्रदाय में रहनेवाला भी लौकिक और अन्यमति ऐसा कहते हैं, भगवान की पूजा, व्रत, शुभक्रिया, व्रतक्रिया, वह जैनधर्म है—ऐसा लौकिक अन्यमति कहते हैं। आहाहा! **परन्तु ऐसा नहीं है।** ऐसा है नहीं। आहाहा!

जिनमत में जिनभगवान ने इस प्रकार कहा है कि- जिनमार्ग के विषय में। देखो! यहाँ भी जिनमार्ग में ऐसा जिनबिम्ब कहा। जिनमार्ग में ऐसा आयतन कहा। ऐसा-ऐसा शब्द आचार्य लेते हैं। बापू! वीतरागमार्ग है, भाई! वीतराग स्वरूप का अर्थ ही तुम वीतराग हो, तेरा स्वभाव ही वीतराग है। समझ में आया? ऐसे वीतरागस्वभाव के अलावा **पूजादिक में और व्रतसहित होना है, वह तो 'पुण्य' है, इसमें पूजा और आदि शब्द से भक्ति, वन्दना, वैयावृत्य आदिक समझना, यह तो देव-गुरु-शास्त्र के**

लिये होता है... क्या कहते हैं ? यह तो देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य के लक्ष्य से होता है। वह धर्म नहीं। है उसमें ?

मुमुक्षु : उसमें तो लिखा है परन्तु कठिन लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन लगे, न लगे, भगवान! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा! तेरी महिमा अन्दर में वीतरागभाव की महिमा है। समझ में आया ? रागादि की महिमा है नहीं। जैनधर्म में उसकी महिमा नहीं है। (राग) हो, आओ, (परन्तु) महिमा नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

पूजादिक और व्रतसहित होता है, वह तो 'पुण्य' है, इसमें पूजा और आदि शब्द से भक्ति, वन्दना, वैयावृत्य... परद्रव्य के लक्ष्य से जितना भाव हो, **यह तो देव-गुरु-शास्त्र के लिये होता है...** वह कोई आत्मा के आश्रय से नहीं होते। वह तो परद्रव्य के आश्रय से पूजा, भक्ति, वन्दन आदि होता है। वह तो राग है। समझ में आया ? आहाहा! **और उपवास आदिक व्रत हैं, वह शुभक्रिया है, इनमें आत्मा का रागसहित शुभपरिणाम है...** व्रत में तो शुभराग है, वह जैनधर्म नहीं। वह तो पुण्य है। आहाहा! है उसमें ? ८३ गाथा। ८३।

उपवास आदिक व्रत हैं, वह शुभक्रिया है, इनमें आत्मा का रागसहित शुभपरिणाम है, उससे पुण्यकर्म होता है; इसलिए इनको पुण्य कहते हैं। इसका फल स्वर्गादिक भोगों की प्राप्ति है। उससे तो संयोग की प्राप्ति है। पूजा, भक्ति, शुभभाव संयोगी भाव है तो उससे संयोग मिलते हैं। स्वभावभाव नहीं (मिलता)। समझ में आया ? लोगों को मार्ग कठिन पड़ता है। व्यवहार थोड़ा होता है, व्यवहार होता है, (इस प्रकार) व्यवहार पर इतना जोर जाता है! इसलिए आचार्य ने यहाँ निश्चय का जोर दिया है। समझ में आया ?

मोह के क्षोभ से रहित आत्मा के परिणाम को धर्म समझिये। मिथ्यात्व तो अतत्त्वार्थश्रद्धान है, क्रोध-मान-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा ये छह... आदि। **इनके निमित्त से आत्मा का ज्ञान-दर्शनस्वभाव विकारसहित, क्षोभरूप, चलाचल, व्याकुल होता है, इसलिए इन विकारों से रहित हो, तब शुद्धदर्शनज्ञानरूप निश्चय हो वह**

आत्मा का धर्म है। देखो! विवाद करते हैं कि अरे! व्रत आदि में पुण्य बताते हैं और शुभभाव कहते हैं। पण्डितजी! भगवान यह क्या कहते हैं? देखो! भावपाहुड़ की ८३वीं गाथा। ८३ को हिन्दी में क्या कहते हैं? तिरासी। समझ में आया? आहाहा! यह शिष्य को कहते हैं। पंचम काल के मुनि पंचम काल के जीव को तो कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य कोई चौथे काल में नहीं हुए। वे तो पंचम काल के मुनि हैं। पंचम काल के हो या चौथा काल के हो, मुनिपने में क्या फर्क है? काल-फाल कोई लागू नहीं पड़ता। स्वरूपचन्दजी! आहाहा! स्वरूपचन्द को कुछ लागू पड़े? शुद्ध चिदानन्द प्रभु! उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान, उसकी रमणता, वह वीतरागीभाव, मोक्ष, क्षोभरहित परिणाम, वह जैनधर्म है। समझ में आया? ८३ गाथा में ऐसा कहा है। लोग उसकी टीका करते हैं कि अन्यमति कहते हैं। लेकिन अर्थ में अन्यमति लिखा है या नहीं? जुगलकिशोर ने टीका की थी। दिल्लीवाले। खबर है न? अन्यमति हैं, ऐसा कहते हैं। लेकिन उसमें लिखा क्या है? उसमें लिखा ऐसा है। जो कोई पुण्य को धर्म माने, वह अन्यमति ही है। जैनधर्म-जैनमति है ही नहीं।

मुमुक्षु : पुण्य से धर्म मनाते हैं, वह अन्यमति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्य अन्य धर्म पुण्य से मनाते हैं, ऐसा जैन में भी जो पुण्य से धर्म मानते हैं, वे जैनमत नहीं, अन्यमति है।

मुमुक्षु : इतने मानते हैं तो जैन नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जैन कब थे? किसको जैन कहना?

मुमुक्षु : अन्यमति है अर्थात् अधर्मी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठी भाषा में कहते हैं, वह जैनधर्म नहीं। मीठी भाषा में वह अन्यमति है। वह थोड़ी कड़क भाषा हो जाये। समझ में आया?

यहाँ तो अन्यमति लिया है। आहाहा! जैनमत तो वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र, वह जैनमत है। भारी कठिन। व्यवहार के माननेवाले को तो अन्दर से चोट लगे। आहाहा! बापू! मार्ग ऐसा है, प्रभु! तेरा चैतन्य भगवान परमात्मा विराजता है। तेरा स्वरूप ही परमात्मा है। परमात्मा और सिद्ध परमात्मा में किंचित् अन्तर नहीं। द्रव्य में किंचित् अन्तर नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, जिनबिम्ब को प्रणाम करो। **'तस्स य करह पणामं'** यहाँ तो थोड़ा जोर आया है न? उसको प्रणाम करो। वीतरागी मुनि... यह बात गौण है। समझ में आया? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तीसरे पद पर आये। पहले आया न? मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के समीप गये थे, आठ दिन रहे थे। अपने समीप में तो गये थे। भगवान आत्मा निमित्त, राग और पर्याय की अंश बुद्धि की रुचि छोड़कर भगवान परमात्मा के समीप में आत्मा कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। और समकिती भी उसके पास, आत्मा के पास जाते हैं तो समकित होता है। समझ में आया? विकल्प और पर्याय का लक्ष्य करने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

कुन्दकुन्दाचार्य अपने समीप में गये थे, बाहर में त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के समीप में गये थे। आठ दिन भगवान के पास रहे थे। और वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया है। वे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भैया! जिसकी दृष्टि वीतराग हुई है, जिसका ज्ञान वीतरागी हुआ है... ये शास्त्र का अभ्यास वह भी ज्ञान नहीं। समझ में आया? परलक्ष्मी जितना सुनने में आता है और ज्ञान होता है, वह ज्ञान नहीं है। आहाहा! ज्ञान तो वीतरागी बिम्ब भगवान आत्मा, उसमें दृष्टि लगाने से जो निर्मल झरना पर्याय में आता है, उसको ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? ऐसे ज्ञानवन्त, ऐसी दृष्टिवन्त और ऐसे स्वरूप में स्थिरता –चारित्रवन्त। पंच महाव्रतादि सब विकल्प है। वह नहीं। यह तो कहा। पंच महाव्रत तो पुण्य है। यहाँ कहा न? व्रत तो पुण्य है, उपवास पुण्य है। वह धर्म नहीं। ये उपवास-बुपवास करना, वह भी धर्म नहीं। वह मन्द राग का परिणाम हो तो पुण्य है। उप-वास। भगवान आनन्दमूर्ति उप अर्थात् समीप में वास करने से जो अन्तर में वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति उत्पन्न होती है, उसका नाम यथार्थ में उप-वास कहने में आता है। बाकी दूसरे को अप-वास कहने में आता है। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

निश्चय अर्थात् सत्य और व्यवहार अर्थात् आरोपित कथन यह तो है। जगत में सब आरोपित कथन हो गया। परमात्मा त्रिलोकनाथ... देवाधिदेव महाविदेह में साक्षात् भगवान विराजते हैं। उनके पास गये थे और उनके पास से यह सब (लाये)। भगवान ऐसा कहते थे। जैनमार्ग में ऐसा जिनबिम्ब कहने में आया है। तब यह जिनबिम्ब कहाँ रहा? वह यहाँ

कहेंगे। **जड़ प्रतिबिम्ब की गौणता है।** मुख्यता नहीं। समझ में आया ? स्वरूप में उपयोग स्थिर नहीं होता, तब ऐसा शुभभाव बिम्ब का दर्शन का आ जाये। परन्तु वह सब पुण्यभाव है। पुण्य अर्थात् रागभाव। रागभाव, वह जैनशासन नहीं। जिसको वीतरागी दृष्टि-ज्ञान प्राप्त हुआ हो, उसको ऐसा शुभभाव हो, उसको उपचार से जैनशासन; निश्चय से जैनशासन, जैनधर्म, वीतरागी परिणाम (प्रगट हुआ है), उसको व्यवहार राग आता है तो व्यवहार से, उपचार से, आरोप से जैनशासन कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया ?

जिनबिम्ब को प्रणाम करो... ऐसे। **सर्व प्रकार पूजा करो,...** पूजनीक तो वीतरागभाव है, ऐसा कहते हैं। रागभाव पूजनीक नहीं। आहाहा! **विनय करो,...** ऐसे वीतरागी सन्तों का विनय करो। विनय से नम्रता प्रगट होती है और उससे अपने स्वभाव के आश्रय से धर्मपर्याय उत्पन्न होती है। समझ में आया ? उसका विनय करो, ऐसा कहते हैं। प्रतिमा, जिन का विनय है, वह तो गौण-गौण-गौण विकल्प है। वह पुण्यभाव है। जैनधर्म नहीं। उपचार से राग आता है तो उपचार से जैनधर्म कहने में आता है। आरोपित।

वात्सल्य करो,... आहाहा! देखो! जैसे गाय अपने बछड़े को प्रेम करती है, वैसे वीतरागभाव दृष्टिवन्त वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्रवन्त को प्रेम करो। भगवान की जिनप्रतिमा के प्रति का प्रेम तो शुभराग है। समझ में आया ? आहाहा! सारा बोधपाहुड़ निश्चय में ले लिया है। **क्योंकि उसके ध्रुव अर्थात् निश्चय से दर्शन-ज्ञान पाया जाता है...** आहाहा! जिसमें भगवान चेतनाभाव, चेतनाभाव... उसका दर्शन और ज्ञान, वह चेतनाभाव भाव जिसमें पाया जाता है, उसको वन्दन-आदर करो। रागभाव, वह चेतनाभाव नहीं। आहाहा! देखो! यह चेतना लिया। जिनप्रतिमा, वह अचेतन है। उसमें चेतनभाव नहीं है। समझ में आया ?

निश्चय से दर्शन-ज्ञान पाया जाता है और चेतनाभाव है। वह वास्तव में चेतनाभाव है। ज्ञान में चेतना, ज्ञान की प्रतीति, ज्ञान में लीनता, वह सब चेतनाभाव है। यह चेतनाभाव, वह जिनबिम्ब है। परमात्मा के स्थान पर जिन के विरह में उसको जिनबिम्ब कहने में आता है। समझ में आया ? ध्रुव शब्द पड़ा है न ? ध्रुव—निश्चय से, निश्चय से चेतनाभाव, उसका दर्शन-ज्ञानभाव, वही जिनबिम्ब है। समझ में आया ? मार्ग ऐसा है, भगवान! क्या करें ? लोगों की दृष्टि बाह्य पर टिकी है और शास्त्र में व्यवहार की लिखावट

भी बहुत। बहुत लिखावट। उन सबका फल–व्यवहार का फल संसार है।

मुमुक्षु : कठिन लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन लगता है ? वह आता है न ? समयसार में आया न ? समयसार में ११वीं गाथा में आया है। जयचन्द्र पण्डित ने लिखा है। ११वीं गाथा है। देखो ! ११वीं निकली। ११वीं गाथा का भावार्थ है, देखो ! कहते हैं, **प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है...** पण्डित जयचन्द्र लिखते हैं। भूतार्थ भगवान आत्मा ध्रुव चैतन्य निष्क्रिय परिणाम की पर्याय बिना की चीज़, ऐसा निष्क्रिय भगवान ध्रुव भूतार्थ, सत्यार्थ, सत्यार्थ साहेब, ऐसे भगवान का आश्रय करके सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया ? तो कहते हैं कि यह सब व्यवहार कहाँ गया ? उसमें मात्र भूतार्थ सत्य त्रिकाल को कहा। तो कहते हैं, व्यवहार है। शास्त्र में व्यवहार का कथन भी बहुत है।

प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है... उसमें क्या आया ? यह पर्यायरूप भेद, उसका पक्ष तो अनादि का है। **और उसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं।** पर्यायबुद्धिवालों का परस्पर वही उपदेश चलता है। समझ में आया ? **और जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्बन (सहायक) जानकर बहुत किया है,...** शास्त्र में भी शुद्धनय में ऐसे निमित्त का ज्ञान कराने को कि ऐसा निमित्त है, ऐसा बहुत आया है। परन्तु उसका फल संसार है। ११वीं गाथा। पण्डित जयचन्द्र।

मुमुक्षु : बहुत जगह पर ... लाभ होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहा न ? बहुत जगह लाभ नहीं। व्यवहार का कथन है। उससे कोई लाभ है नहीं। ऐई ! कठिन बातें, भाई !

उसका फल संसार ही है। एक ही बात है। देखा ! **संसार ही है।** ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : तीनों का फल संसार ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों का। कौन तीनों ? भेद का कथन है, उसका आश्रय जिसको है, उसका फल संसार है और प्राणी परस्पर कहते हैं कि बहुत अनुकूल पड़ता है तो वे परस्पर कहते हैं। भेद की, व्यवहार की बात। समझ में आया ? और जिनवाणी में

भी उसका निमित्तपने का व्याख्यान बहुत आया है। देखो! जिनवाणी में भी पर व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का सहायक, सहायक अर्थात् निमित्त, साथ में है, ऐसा जानकर बहुत हुआ है परन्तु उसका फल संसार ही है। आहाहा! ११वीं गाथा में इतना स्पष्ट किया है। व्यवहार है, इतनी हद है। परन्तु है, उसका उसमें जोर देते हैं (तो) कहते हैं कि ध्रुव की दृष्टि छूट जाती है। समझ में आया? पण्डित जयचन्द्रजी ने जहाँ चाहिए, वहाँ बहुत स्पष्ट किया है। **उसका फल संसार ही...** 'ही' नहीं होता है न, जैन सिद्धान्त में स्याद्वाद होना चाहिए न? अरे! सुन तो सही। स्याद्वाद का अर्थ वह है। जितना पर्याय का भेद से कथन शास्त्र में हो तो उसका फल भी संसार ही है; धर्म नहीं। उसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि ध्रुव, दर्शन-ज्ञान-चेतनाभाव... चेतनाभाव... गहराई में भगवान विराजता है, वहाँ जा। विकल्प से पार एक समय की पर्याय में भी वह आता नहीं। शोभालालजी! मार्ग तो ऐसा है। पैसेवाले का कोई दूसरा मार्ग है? गरीब लोगों के लिये दूसरा मार्ग है? पढ़ा-लिखा है, इसलिए दूसरा है और थोड़ा पढ़ा है, उसके लिये कोई दूसरा मार्ग है। ऐसा है क्या? तेरा पढ़ा-लिखा एक ओर पड़ा रहा। समझ में आया? भगवान आत्मा विज्ञानघन, जिनबिम्ब, वीतरागी बिम्ब, उसका आश्रय करने से ही वीतरागपर्याय जैनधर्म उत्पन्न होता है। परद्रव्य का जितना आश्रय ले, उसमें राग ही उत्पन्न होता है।

दर्शन-ज्ञानमयी चेतनाभावसहित जिनबिम्ब आचार्य हैं,... मुख्यपने आचार्य है। गौणपने उपाध्याय, साधु (भी हैं)। वह अपने आ गया है। आर्यिका इत्यादि भी आ गया है। **उनको प्रणामादिक करना। यहाँ परमार्थ प्रधान कहा है,...** यहाँ तो मुख्यरूप से परमार्थ वस्तु है, वह कही है। **जड़ प्रतिबिम्ब की गौणता है।** यह जो अजीव की जिनप्रतिमा है, उसमें चेतनाभाव नहीं, उसकी यहाँ गौणता है। है, परन्तु उसकी गौणता है। उस पर जोर देना, ऐसा नहीं। समझ में आया? **आगे फिर कहते हैं** - १८ गाथा।

गाथा-१८

आगे फिर कहते हैं –

तववयगुणेहिं सुद्धो जाणदि पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।
अरहन्तमुद्द एसा दायारी दिक्खसिक्खा य।।१८।।

तपोव्रतगुणैः शुद्धः जानाति पश्यति शुद्धसम्यक्त्वम्।
अर्हन्मुद्रा एषा दात्री दीक्षाशिक्षाणां च।।१८।।

तप व्रत गुणों से शुद्ध जानें देखते सद्समकिती।
दातार दीक्षा सुशिक्षा अरहंत मुद्रा है यही।।१८।।

अर्थ – जो तप, व्रत और गुण अर्थात् उत्तरगुणों से शुद्ध हों, सम्यग्ज्ञान से पदार्थों को यथार्थ जानते हों, सम्यग्दर्शन से पदार्थों को देखते हों, इसीलिए जिनके शुद्ध सम्यक्त्व है – इस प्रकार जिनबिम्ब आचार्य है। यही दीक्षा-शिक्षा की देनेवाली अरहन्त की मुद्रा है।

भावार्थ – इस प्रकार जिनबिम्ब है वह जिनमुद्रा ही है, इस प्रकार जिनबिम्ब का स्वरूप कहा है।।१८।।

गाथा-१८ पर प्रवचन

तववयगुणेहिं सुद्धो जाणदि पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।
अरहन्तमुद्द एसा दायारी दिक्खसिक्खा य।।१८।।

अर्थ – जो तप,... अर्थात् इच्छानिरोधरूपी अमृत की डकार आती हो। समझ में आया? जिसको अन्तर में तप अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द की डकार आती हो, उसका नाम तप है। समझ में आया? जैसे सुवर्ण को गेरु लगाते हैं। गेरु कहते हैं न? गेरु। तो सोने का ओप होता है, गेरु लगने से सोना में ओप लगता है। वैसे भगवान आत्मा चिदबिम्ब वीतरागी मूर्ति, उसमें इच्छा की उत्पत्ति न होकर अतीन्द्रिय आनन्द की उत्पत्ति हो, वह

आत्मा का ओप है। इस ओप को यहाँ आत्मा की तपस्या कहने में आयी है। समझ में आया?

तप, व्रत और गुण... व्रत अर्थात् स्वरूप की स्थिरता करना, निश्चय से तो व्रत वह है। विकल्प हो, वह जानने लायक है। **गुण अर्थात् उत्तरगुणों से शुद्ध हों,....** उत्तरगुण आदि जितना उसमें भी वीतरागता की उत्कृष्टता हो, **सम्यग्ज्ञान से पदार्थों को यथार्थ जानते हों,...** ज्ञानमार्ग रहा दूर, धमाधम चली धर्म के नाम पर। 'धामधूमे धमाधम चली, ज्ञानमार्ग रह्यो दूर।' भगवान ज्ञानस्वरूप, वह मार्ग दूर रह गया। धमाधम विकल्प की क्रिया की... यह क्रिया की। आहाहा! वीतरागमार्ग तो स्वरूप में समाना, वह मार्ग है। उसकी जगह उथल-पुथल विकल्प है, उसमें धर्म मानते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, **सम्यग्ज्ञान से पदार्थों को यथार्थ जानते हों,...** सम्यग्ज्ञान हो, तब पदार्थ को यथार्थ जान सकते हैं। सम्यग्ज्ञान आत्मा से स्वसंवेदन उत्पन्न हो, उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति प्रभु, उसमें स्पर्श करके, दृष्टि करके जो ज्ञान शक्तिरूप था, उस समय वह ज्ञान की वीतरागी पर्याय प्रगट होनेवाली थी, वह आयी, उसका नाम सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? यह सम्यग्ज्ञान पदार्थ को यथार्थ जाने। सम्यग्ज्ञान में पदार्थ की व्यवस्था है, ऐसा ज्ञान जाने। तो ज्ञान कहने में आता है न? ऐसा है नहीं, वैसा जाने तो ज्ञान कैसा? यहाँ तो यहाँ से लिया है। सम्यग्ज्ञान है, वह पदार्थ को यथार्थ जानता है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन से पदार्थों को देखते हों,... देखे अर्थात श्रद्धे। भगवान परिपूर्ण प्रभु सम्यग्दर्शन द्वारा द्रव्यस्वरूप भगवान परमात्मा को देखे। **इसीलिए जिनके शुद्ध सम्यक्त्व है...** इसलिए जिसको शुद्ध समकित है, ऐसा जिनबिम्ब आचार्य है। लो। ऐसा जिनबिम्ब समकिती श्रावक, मुनि, उपाध्याय और आचार्य है। उनकी मर्यादा अनुसार वह जिनबिम्ब है। समझ में आया?

यही दीक्षा-शिक्षा की देनेवाली अरहन्त की मुद्रा है। जिनबिम्ब की मुद्रा है न, मुद्रा? मुद्रा यहाँ से ली है। यह जिनबिम्ब ही मुद्रा है। उसकी साथ है। निवृत्त होकर स्वरूप में अन्तर में जाना, भगवान के दरबार को निहारना। परमात्मा की सामग्री सब अन्दर पड़ी है। समझ में आया? भगवान आत्मा में सब सिद्ध होने की सामग्री और सिद्ध

होने का भाव सब अन्दर पड़ा है। ऐसे भगवान में अन्दर जाकर वीतरागभाव जिसको प्रगट हुआ हो, वह अरहन्त की मुद्रा है। वह अरिहन्त के स्थान पर उसको अरिहन्त की मुद्रा गिनने में आती है। ऐसा जिनबिम्ब है, वह जिनमुद्रा है। **इस प्रकार जिनबिम्ब है, वह जिनमुद्रा ही है, इस प्रकार जिनबिम्ब का स्वरूप कहा है।** लो।

अब जिनमुद्रा। एक गाथा है। जिनमुद्रा की एक ही गाथा है। यह छठवाँ बोल है।

गाथा-१९

आगे जिनमुद्रा का स्वरूप कहते हैं -

दढसंजममुद्दाए इन्दियमुद्दा कसायदिढमुद्दा।
मुद्दा इह णाणाए जिणमुद्रा एरिसा भणिया।।१९।।

दृढसंयममुद्रया इन्द्रियमुद्रा कषायदृढमुद्रा।
मुद्रा इह ज्ञानेन जिनमुद्रा ईदृशी भणिता।।१९।।

दृढ़ संयमी इन्द्रिय-कषाय-निरोधमय मुद्रा कही।
यों ज्ञान से निष्पन्न जिन-मुद्रा सदा ऐसी कही।।१९।।

अर्थ - दृढ़ अर्थात् वज्रवत् चलाने पर भी न चले ऐसा संयम-इन्द्रिय मन का वश करना, षट्जीव निकाय की रक्षा करना, इस प्रकार संयमरूप मुद्रा से तो पाँच इन्द्रियों को विषयों में न प्रवर्ताना; उनका संकोच करना यह तो इन्द्रियमुद्रा है और इस प्रकार संयम द्वारा ही जिसमें कषायों की प्रवृत्ति नहीं है ऐसी कषायदृढ़मुद्रा है तथा ज्ञान को स्वरूप में लगाना, इस प्रकार ज्ञान द्वारा सब बाह्यमुद्रा शुद्ध होती है। इस प्रकार जिनशास्त्र में ऐसी 'जिनमुद्रा' होती है।

भावार्थ - १. जो संयमसहित हो, २. जिसकी इन्द्रियाँ वश में हों, ३. कषायों की प्रवृत्ति न होती हो और ४. ज्ञान को स्वरूप में लगाता हो - ऐसा मुनि हो सो ही 'जिनमुद्रा है।।१९।।

गाथा-१९ पर प्रवचन

दढसंजममुद्दाए इन्दियमुद्दा कसायदिढमुद्दा।
मुद्दा इह णाणाए जिणमुद्रा एरिसा भणिया।।१९।।

देखो! जिनमुद्रा ऐसी भगवान ने कही है। आचार्य स्वयं ऐसा जोर देते हैं। '**एरिसा भणिया**' भगवान ने जिनमुद्रा (कही है)। **दृढ़ अर्थात् वज्रवत् चलाने पर भी न चले ऐसा संयम–इन्द्रिय मन का वश करना,...** अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव लेना। समझ में आया? मुद्रा लिया है न? तो इन्द्रिय को वश करना वहाँ से लिया है। पाँच इन्द्रिय और मन की ओर के विकल्प को नाश कर दिया। और **षट्जीवनिकाय की रक्षा करना,...** वह तो रक्षा एक शब्द है। लेकिन छहकाय की ओर का मारने का या जीवित रखने का विकल्प जिसको नहीं। उसका नाम अपनी रक्षा में सभी जीव की रक्षा कहने में आता है। छह जीवनिकाय में अपना भी आत्मा है या नहीं? आहाहा!

'सम्यग्ज्ञान दीपिका' में कहा था। क्षुल्लक हुए न? 'धर्मदास क्षुल्लक' 'सम्यग्ज्ञान दीपिका' 'स्वात्मानुभव मनन' दो ग्रन्थ बनाये हैं। ४८ के वर्ष में हुए हैं। सम्यग्ज्ञानी। क्षुल्लक... कैसे? धर्मदासजी। धर्मदासजी हुए हैं। उन्होंने लिखा है कि अरे! आत्मा एक और बारह प्रकार का संयम कहाँ से आया? भाई! आत्मा एक और बाईस परीषह कहाँ से आया? भेद। आत्मा एक और दस प्रकार का धर्म कहाँ से आया? भेद का तो मजाक उड़ाया है। समझ में आया? ऐसा लिखा है 'सम्यग्ज्ञान दीपिका' में। धर्मदासजी क्षुल्लक ने। उनके दो ग्रन्थ हैं। 'स्वआत्मानुभव मनन' और 'सम्यग्ज्ञान दीपिका'। यहाँ सब है। हम तो बहुत पहले से पढ़ते हैं न। (संवत्) १९७८ की साल में देखा। 'सम्यग्ज्ञान दीपिका' ७८ की साल में पढ़ा था। कितने साल हुए? ऐई! ४८। पचास में दो कम। सम्यग्ज्ञान दीपिका और एक स्वआत्मानुभव मनन। वह ८२ की साल में देखा था। वढवाण में एक मिलवाले के पास था। उसको इसकी कुछ खबर नहीं। यह पुस्तक आपके पास है और आपको तो कुछ मालूम नहीं। लाओ। स्वआत्मानुभव मनन कांप में था। एक 'चत्रभुजभाई' थे। 'चत्रभुजभाई'। मील में थे, मील में। ८२ की साल की बात है। उसको कुछ मालूम

नहीं। पुस्तक रखा था। ... उसमें ऐसा लिखा है (कि) एक में इतने भेद कहाँ से आये? दस प्रकार के धर्म, बारह प्रकार के संयम, बारह प्रकार के तप।

एकरूप भगवान अभेद चैतन्य की दृष्टि–ज्ञान और रमणता, उसमें अभेद में दृष्टि करना है तो उसमें भेद कहाँ से आया? यह कहते हैं। यह तो भेद से बतलाते हैं। समझ में आया?

इन्द्रिय मन का वश करना, षट्जीव निकाय की रक्षा करना, इस प्रकार संयमरूप मुद्रा से तो पाँच इन्द्रियों को विषयों में न प्रवर्तना;... निषेध से बात कही है। अतीन्द्रिय आनन्द में प्रवर्तना। **पाँच इन्द्रियों को विषयों में न प्रवर्तना; उनका संकोच करना...** वश करने का अर्थ अतीन्द्रिय आनन्द में आना। अतीन्द्रिय आनन्द में आना, वह संयम है।

मुमुक्षु : अतीन्द्रिय आनन्द में आ जाये तो विकल्प छूट जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो छूट जायेगा, छोड़ना नहीं पड़ता। छोड़ता है, ऐसा कहना वह कथन है। ऐसा है ही नहीं। छोड़ना क्या? विकल्प को कौन छोड़े? समझ में आया? विकल्प को क्या छोड़ना? उत्पन्न हुआ, उसको क्या छोड़ना? नहीं उत्पन्न हुआ, उसको क्या छोड़ना? वह तो स्वभाव पर एकाग्र होता है, तो विकल्प उत्पन्न नहीं होता है तो छोड़ा ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? 'ऐसा मार्ग वीतराग का कहो श्री भगवान।' समझ में आता है?

इन्द्रियमुद्रा... मुद्रा अर्थात् वश किया। ऐसा शब्द लेना है न? **और इस प्रकार संयम द्वारा ही जिसमें कषायों की प्रवृत्ति नहीं है...** कषाय की प्रवृत्ति नहीं, विकल्प नहीं, शुभराग नहीं। सब में वीतरागभाव के गीत गाये हैं। परन्तु जिनबिम्ब ... मूल तो दूसरी चीज़ है, भाई! यह तो वीतरागभाव का वर्णन है। कषाय का अंश नहीं। शुभराग, भगवान की भक्ति या व्रत–तप का विकल्प, वह भी वस्तु नहीं। आहाहा! कहते हैं कि निश्चय एकान्त हो जाता है, ऐसा (लोग) कहते हैं। अरे! भगवान! वीतराग एकान्त है। राग से भी धर्म होता है और वीतराग से भी धर्म होता है, वह अनेकान्त है? बिल्कुल नहीं।

भगवान आत्मा विज्ञानघन के आश्रय से वीतरागता उत्पन्न हुई, वह धर्म है; राग से

नहीं। उसका नाम अनेकान्त है। स्याद्वाद। फुदड़ीवाद ऐसे भी है और ऐसे भी है, ऐसे भी है और ऐसे भी है। समझ में आया ? मार्ग कठिन बहुत है, बापू!

मुमुक्षु : कठिन होने पर भी वह राजमार्ग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत् आनन्द और ज्ञान का दल, गठरी है यह तो। खोल, इतनी शान्ति और आनन्द उसमें से निकलेगा।

मुमुक्षु : फिर भी अन्दर में शान्ति पूरी-पूरी रहेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें तो रहेगी ही रहेगी। निकले तो भी रहेगी। वहाँ कहाँ घटता है। केवलज्ञान हुआ तो वहाँ ज्ञानगुण में कमी हो गयी है ? और अक्षर के अनन्तवें भाग में ज्ञान निगोद में रह गया, तो वहाँ ज्ञान में पुष्टि है ? बाहर में अल्प है तो वहाँ पुष्टि है, बाहर में बहुत है तो वहाँ अन्दर में... क्या कहते हैं ? कमी हो गयी। कमी हो गयी ? कमी नहीं होती है। केवलज्ञान हो तो भी ज्ञान में कमी नहीं होती है और अक्षर के अनन्तवें भाग में रह जाये तो भी ज्ञान में विशेष नहीं होता। वह तो ज्ञान की गठरी ध्रुव त्रिकाल एकरूप रहा है। आहाहा!

ऐसी कषायदृढ़मुद्रा है तथा ज्ञान को स्वरूप में लगाना, इस प्रकार ज्ञान द्वारा सब बाह्यमुद्रा शुद्ध होती है। ज्ञान को स्वरूप विषे लगाना, उसका नाम ज्ञान है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वाणी में ज्ञान नहीं आता। विकल्प में ज्ञान नहीं आता। बाह्य प्रतिमा ऐसे जिनवाणी। वाणी भी एक ही है या नहीं ? आहाहा! अन्तर भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसके अन्तर में दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वही जिनमुद्रा, जैनशासन में (कही गयी है)। देखो!

ज्ञान द्वारा सब बाह्यमुद्रा शुद्ध होती है। वह भी ज्ञान जिसका हो ऐसी पर्याय भी शुद्ध हो। और बाह्य मुद्रा भी उसको नग्न दशा आदि जो भूमिका योग्य हो वैसी (होती है)। **इस प्रकार जिनशास्त्र में ऐसी 'जिनमुद्रा' होती है।** देखो! ऐसी दूसरी जिनमुद्रा कहाँ गयी ? गौण है। अभाव नहीं। जानने लायक है। जानने लायक है। समझ में आया ? **इस प्रकार जिनशास्त्र में ऐसी 'जिनमुद्रा'**... वीतरागीबिम्ब भगवान आत्मा, उसको जिनमुद्रा कहा है।

जो संयमसहित हो, २. जिसकी इन्द्रियाँ वश में हों, ३. कषायों की प्रवृत्ति

न होती हो... विकल्प में आता नहीं। भगवान तो जहाँ विकल्प में आता नहीं और अपनी एक समय की पर्याय में भी भगवान ध्रुव आता नहीं। समझ में आया? विकल्प की तो यहाँ गन्ध भी नहीं है। यहाँ तो कहते हैं।

मुमुक्षु : जैनधर्म...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह धर्म नहीं है, भाई! समझ में आया? लोगों को अभ्यास नहीं। अनादि से बाह्य का अभ्यास है। भेद का, व्यवहार का, निमित्त का अभ्यास तो अनादि का है। उसमें नयी क्या चीज़ आयी? समझ में आया? वस्तु अपनी परमात्मशक्ति सम्पन्न भगवान तो अपने पास है। वह दूर नहीं। दूर जितना लगे, उतनी भ्रान्ति है। समझ में आया?

कहते हैं, **ज्ञान को स्वरूप में लगाता हो – ऐसा मुनि हो, सो ही 'जिनमुद्रा है।** जैनशासन के विषय में ऐसा कहा। आहाहा! छहढाला में भी आता है या नहीं? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो। छोड़ी जगत द्वंद्व-फंद निज आतम उर ध्याओ।' सम्यग्ज्ञान बिना ध्यान भी सच्चा होता नहीं। समझ में आया? जिसके ज्ञान में भी यथार्थता नहीं वह ज्ञान स्वज्ञेय की ओर मुड़ सकता नहीं। आहाहा!

गाथा-२०

आगे ज्ञान का निरूपण करते हैं –

संजमसंजुत्तस्स य सुझाणजोयस्स मोक्खमग्गस्स।
णाणेण लहदि लक्खं तम्हा णाणं च णायव्वं ।।२०।।

संयमसंयुक्तस्य च [1]सुध्यानयोग्यस्य मोक्षमार्गस्य।
ज्ञानेन लभते लक्षं तस्मात् ज्ञानं च ज्ञातव्यम् ।।२०।।

संयम-सहित सुध्यान-योग्य सु मोक्ष-मग हो ज्ञान से।
लक्षित अतः ये जानने वह ज्ञान भी ज्ञातव्य है।।२०।।

***अर्थ* – संयम से संयुक्त और ध्यान के योग्य इस प्रकार जो मोक्षमार्ग उसका**

१. 'सुध्यानयोगस्य' का श्रेष्ठ ध्यान सहित सं. टीका प्रति में ऐसा भी अर्थ है। २. 'वेधकह्न' 'वेध्यक' पाठान्तर है।

लक्ष्य अर्थात् लक्षणे योग्य-जाननेयोग्य निशाना जो अपना निजस्वरूप वह ज्ञान द्वारा पाया जाता है, इसलिए इस प्रकार के लक्ष्य को जानने के लिए ज्ञान को जानना।

***भावार्थ* – संयम अंगीकार कर ध्यान करे और आत्मा का स्वरूप न जाने तो मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं है, इसीलिए ज्ञान का स्वरूप जानना चाहिए, उसके जानने से सर्वसिद्धि है।।२०।।**

गाथा-२० पर प्रवचन

आगे ज्ञान का निरूपण करते हैं – ज्ञान किसको कहना? लोग कहते हैं न कि शास्त्र का अभ्यास और वकीलात का अभ्यास। वह तो कहाँ रह गया। ऐई! पोपटभाई! यह बाप के टाईल्स के धन्धे को ज्ञान कहते हैं? वह तो कहाँ रह गया। यहाँ तो कहते हैं कि शास्त्र पढ़ने से जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान नहीं। भगवान आत्मा... परलक्ष्य से जितना राग मन्द होकर ज्ञान का विकास देखने में आता है, वह ज्ञान नहीं। समझ में आया?

संजमसंजुत्तस्स य सुझाणजोयस्स मोक्खमग्गस्स।
णाणेण लहदि लक्खं तम्हा णाणं च णायव्वं।।२०।।

***अर्थ* – संयम से संयुक्त...** यहाँ चारित्र लेना है न? वीतरागभाव लेना है न? जैनदर्शन ही उसको कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और वीतरागीचारित्रसहित (हो), वह जैनदर्शन। उसका नाम वस्तुदर्शन कहो या जैनदर्शन कहो। समझ में आया? जैनदर्शन कोई बाहर में नहीं रहता। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं है। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय-वाड़ा नहीं है। जैनदर्शन वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? वीतरागी स्वभाव, उसकी श्रद्धा-ज्ञान की लीनता, वह तो वस्तु का स्वभाव है। इसको यहाँ जैनदर्शन कहने में आया है। समझ में आया? व्यावहारिक बातों में मिठास आ जाती है तो उसको यह निश्चय कठिन लगता है। आहाहा! समझ में आया?

संयम से संयुक्त और ध्यान के योग्य इस प्रकार जो मोक्षमार्ग... लो! ध्यान के योग्य ऐसा जो मोक्षमार्ग। दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो अन्तर में झुके वह। समझ में आया? ध्रुव का ध्येय पकड़कर जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र (प्रगट हुआ), वह ध्यान के योग्य हुआ।

उस ओर के ध्यान के योग्य मार्ग हुआ। दर्शन-ज्ञान-चारित्र ध्येय को पकड़ने में ध्यान के योग्य वह है। जो श्रद्धा-ज्ञान आदि ध्येय को पकड़ता नहीं, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं है। बात तो ऐसी है। लोग तो अभी चारों ओर चिल्लाते हैं, अरे! यह तो एकान्त है। भगवान! एकान्त है या नहीं, थोड़े दिन सुन तो सही। समझ में आया? व्यवहार का तो लोप करते हैं। तो क्या करते हैं भगवान? व्यवहार का बिल्कुल नाम नहीं लेते हैं। समझ में आया?

जो मोक्षमार्ग उसका लक्ष्य अर्थात् लक्षणे योग्य... लक्षणेयोग्य अर्थात्? वेद **जाननेयोग्य निशाना जो...** मोक्षमार्ग। **ध्यान के योग्य इस प्रकार जो मोक्षमार्ग उसका लक्ष्य अर्थात् लक्षणे योग्य-जाननेयोग्य निशाना...** निशान वहाँ है—ध्रुव (पर)। जैसे बाण मारने में निशाना होता है या नहीं? तो निशाना तो ध्रुव है। भगवान आत्मा परमात्मा ध्रुवस्वरूप वह निशाना है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निशाना वह है। समझ में आया? जगत को कठिन लगे, इसलिए मार्ग दूसरा व्यवहार का मार्ग बतानेवाला हो वह ठीक लगे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यही ... है। एक तो रुक गया हो और कहनेवाले ऐसे मिले। हाँ, यह बराबर है। वहाँ तो निश्चय... निश्चय... निश्चय (कहते हैं)। यहाँ क्या कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य? यह कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है। समझ में आया? ... जिनप्रतिमा, मन्दिर के वन्दन का भाव न हो, ऐसा नहीं है। होता है, वह कोई मूल चीज़ नहीं। आरोपित है। समझ में आया?

मोक्षमार्ग का लक्ष्य, वेद-निशाना कौन? **अपना निजस्वरूप वह ज्ञान द्वारा पाया जाता है,...** वह ज्ञान ऐसा है कि जिसका ध्रुव पर लक्ष्य गया है। इस ज्ञान का निशाना ध्रुव है। उस ज्ञान को ज्ञान कहते हैं। जिस ज्ञान का लक्ष्य निमित्त पर, विकल्प और पर्याय पर है, वह ज्ञान का निशाना है ही नहीं। समझ में आया? आता है नहीं? ऐई! मनसुख! अष्टपाहुड़ है या नहीं तुम्हारे पास? वहाँ भी नहीं है? वहाँ पालेज में भी नहीं है? पैसे इकट्ठे किये परन्तु यह पुस्तक कहाँ मिलता उसका पता नहीं?

मुमुक्षु : उसके पिताजी को मिल गया...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके पिताजी को कहाँ था। वह तो ... वह तो समझने जैसा है।

पैसे ... पैसा... उसके बदले यह ... है। पुण्य को लेकर, हाँ! आत्मा को लेकर कुछ नहीं। वह तो पुण्य को लेकर बाहर में दिखे। उसमें धूल में भी कुछ नहीं।

मुमुक्षु : पैसे मिले...

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले किसको ? उसे मिलता है ? पैसे मिलते हैं ? मिले तो तब कहें कि जब आत्मा के साथ पर्याय में एकता हो जाये, तब मिला कहने में आता है। वह चीज़ तो दूर रह जाती है। यहाँ उसका ज्ञान होता है। ज्ञान उपरान्त कहे कि मेरा। वह मिथ्यात्वभाव है।

मुमुक्षु : मेरा कहा, इसमें दण्ड हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें है क्या ? जड़ उसका है ? यहाँ तो विकल्प मेरा है, ऐसी मान्यता भी मिथ्यात्वभाव है। पैसा-बैसा तो कहीं दूर धूल रह गयी। समझ में आया ? अरे! भाई!

मुमुक्षु : यह शास्त्र है घर में इसे वाँचने का मौका नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मौका नहीं। थोड़ा-थोड़ा पढ़ते हैं। लेकिन यह पुस्तक नहीं है इसलिए... कहो, समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं **'सुझाणजोयस्स मोक्खमग्गस्स'** जो मोक्ष का मार्ग ध्यान के योग्य है, उसे मोक्षमार्ग कहा। अन्दर निशान करे, निशान। आहाहा!

मुमुक्षु : ध्येय बनाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उसको ज्ञान कहे कि जो ध्रुव को ध्येय बनावे। उसको दर्शन कहे जो ध्रुव को ध्येय बनाये। चारित्र उसे कहे कि ध्रुव पर लक्ष्य होकर स्थिर हो। ऐसा जिसको ज्ञान हो... समझ में आया ? उसको ज्ञान कहने में आता है।

अपना निजस्वरूप वह ज्ञान द्वारा पाया जाता है,... विकल्प, राग और व्यवहार से अपना निजस्वरूप प्राप्त होता है। समझ में आया ? आहाहा! **इसलिए इस प्रकार के लक्ष्य को जानने के लिए ज्ञान को जानना।** भावार्थ विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५६, गाथा-२० से २२, शुक्रवार, श्रावण शुक्ल ५, दिनांक ०७-०८-१९७०

अष्टपाहुड़ चलता है, उसमें बोधपाहुड़। उसमें २०वीं गाथा चलती है। ज्ञान किसको कहते हैं? जिस ज्ञान से आत्मा का परमात्मस्वरूप त्रिकाली ध्रुव स्वरूप लक्ष्य में आता है, ऐसे ज्ञान को ज्ञान कहने में आता है। जिसको ऐसा ज्ञान नहीं है, वह **संयम से संयुक्त...** हो। २०वीं।

संजमसंजुत्तस्स य सुझाणजोयस्स मोक्खमग्गस्स।
णाणेण लहदि लक्खं तम्हा णाणं च णायव्वं ।।२०।।

अर्थ – संयम से संयुक्त... पाँच इन्द्रिय का दमन हो और छह काय का जीव और मन का निरोध करने की इच्छा हो, ऐसा संयम हो **और ध्यान के योग्य इस प्रकार जो मोक्षमार्ग...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान जो अपना ध्रुव, जो ध्येय भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप, जिन शुद्ध ध्रुव स्वरूप, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और लीनता **इस प्रकार जो मोक्षमार्ग उसका लक्ष्य अर्थात् लक्षणे योग्य-जाननेयोग्य निशाना...** थोड़ी सूक्ष्म बात है। कहते हैं कि सम्यग्ज्ञान बिना जहाँ जिसको बाण मारना है, वह क्या चीज़ है, उसके ज्ञान बिना बाण मार सकते नहीं। निशाना नहीं मार सकते। वैसे भगवान आत्मा अन्तर ध्रुव चैतन्य परमात्मस्वरूप ध्रुव चैतन्य है। वस्तु है, अस्ति है, सत्ता है और त्रिकाल सत्ताभाव रखनेवाली वह चीज़ है। उस चीज़ का ज्ञान नहीं है तो ज्ञान का लक्ष्य-ध्यान तो उसका करना है। समझ में आया? ऐसा ज्ञान ध्रुव चैतन्य भगवान परम आनन्द है। राग भी नहीं, निमित्त भी नहीं, एक समय की वर्तमान प्रगट अवस्था, वह भी ध्यान के योग्य नहीं। समझ में आया?

'सुझाणजोयस्स' मोक्षमार्ग का लक्ष्य। क्या कहते हैं? सम्यग्दर्शन, जो शुद्ध चैतन्य द्रव्य वस्तु, पदार्थ, आनन्दधाम, अपना निज पूर्ण स्वरूप, उसकी प्रतीति, उसका ज्ञान और उसमें लीनता, ऐसा दर्शन-ज्ञान-चारित्र मार्ग। **अर्थात् लक्षणे योग्य-जाननेयोग्य निशाना...** लक्ष्य करने लायक तो ध्रुव चीज़ द्रव्य है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र में यदि ज्ञान यथार्थ न हो तो ध्येय को पकड़ सकते नहीं। सूक्ष्म बात है, भगवान! समझ में आया? दुनिया की शिक्षा से यह शिक्षा दूसरी है। समझ में आया?

चैतन्य है न ? सत्ता। जैसे यह जड़ पदार्थ है। यह तो मिट्टी है, अजीवतत्त्व है। ऐसे उसको जाननेवाला आत्मा कोई पदार्थ है, अस्ति है, मौजूदगी-सत्तापने की चीज़ है। उस चीज़ में दो भाग हैं। एक त्रिकाली ध्रुव और एक वर्तमान अवस्था-हालत-दशा। तो कहते हैं कि जिसको सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहा, ध्येय जो ध्रुव, उसका जिसको ज्ञान नहीं, वह ध्रुव पर दृष्टि कर सकते नहीं। भाषा समझ में आती है ? साधारण हिन्दी भाषा है। हमारी तो गुजराती (भाषा) है। समझ में आया ? आहाहा!

भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा, जिसमें अपना स्वभाव सर्वज्ञपद जो निजपद जो अन्तर पड़ा है। निजपद सर्वज्ञ का अर्थ ? आतम वस्तु है, उसका ज्ञानस्वभाव है। तो ज्ञान अर्थात् पूर्ण उसका द्रव्य का स्वभाव, एकरूप ज्ञ स्वभाव। ऐसी शक्तिरूप ज्ञानसर्वज्ञशक्तिवाला आत्मा, उस पर दृष्टि-ध्यान करके, पर्याय अर्थात् वर्तमान दशा में जैसी सर्वज्ञशक्ति थी, ऐसी पर्याय में व्याक्तता सर्वज्ञपर्याय प्रगट हुई, उसको परमात्मा अरिहन्त और सर्वज्ञदेव कहते हैं। समझ में आया ?

सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं कि जिसको अपना ध्रुवस्वरूप भगवान, जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र का ध्येय, उसका ज्ञान नहीं है और साधारण बाहर का शास्त्र पढ़ ले, दुनिया का विद्वान कहलाते हैं न ? वकालत की विद्या, क्या कहते हैं तुम्हारे ? इनकमटेक्स की विद्या। ये वकालत की विद्या। हमारे रामजीभाई बहुत विद्यावाले थे न। तीस साल पहले पाँच घण्टे के २०० रुपये लेते। तीस साल पहले, हों! कोई में जाते थे। ये विद्या-बिद्या सब मूढ़ विद्या है, कुविद्या है। ऐ... स्वरूपचन्दभाई! यह विद्या विद्यमान पदार्थ को विद्या लक्ष्य में ले, विद्यमान पदार्थ त्रिकाल ध्रुव वस्तु... समझ में आया ? जो विद्या... वैसे भी कहते हैं न, या विद्या सा ज्ञान... वह स्कूल में आता है। हमको तो बड़ी-बड़ी स्कूल में ले जाते थे न। ५००-५०० लोग में (जाते थे)। (हम कहते), यहाँ क्या लिखा है ? देखो! या विद्या सा विमुक्तये। विद्या इसको कहते हैं कि जिसमें आत्मा की मुक्ति मिले। वह विद्या। बाकी सब कुविद्या है। समझ में आया ? ऐसा होगा ज्ञानचन्दजी ? ये आप सबकी विद्या कौन-सी है ? बैंक में हो ? किसमें हो आप ?

मुमुक्षु : विद्या खाते में।

पूज्य गुरुदेवश्री : शिक्षा विभाग में है। समझ में आया ? वह विद्या नहीं। समझ में

आया ? रामजीभाई के लड़के के पास भी विद्या है न ? क्या कहते हैं ? ऐसो पेट्रोल। मासिक ८००० का वेतन है। उसका लड़का। सुमनभाई है न, सुमनभाई ? ऐसो आता है न ? ऐसो। वोरा था। मासिक ८००० का वेतन। वह विद्या क्या है ? कुविद्या है। जिस विद्या में आत्मा ध्येय में पकड़ने में न आवे, उस विद्या को विद्या और ज्ञान कहने में नहीं आता। समझ में आया ? शोभालालजी ! आप तो बीड़ी के बहुत अभ्यासी हो।

मुमुक्षु : बीड़ी में तो कुशल हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी कुशल नहीं है। धूल में अर्थात् अपना ध्रुव ध्येय का ज्ञान करके फिर शुभ का कोई विकल्प आता है, उसको जो पुण्यबन्ध (होता) है, ऐसा पुण्यबन्ध अज्ञानी को अपने ध्येय की दृष्टि बिना मात्र पुण्य करते हैं, वह पुण्य, जैसा ज्ञानी को होता है, वैसा अज्ञानी को नहीं होता। ज्ञानी को जैसा पुण्य होता है, वैसा अज्ञानी को नहीं होता क्योंकि ज्ञानी का ज्ञान अपना द्रव्य-वस्तु त्रिकाल ज्ञायक भगवान (के आश्रित हुआ है)। शरीर, वाणी, मन नहीं। पुण्य-पाप का विकल्प राग भी नहीं। और राग को जानने की ज्ञान की पर्याय, वह ज्ञान की पर्याय भी ध्येय नहीं। समझ में आया ? ध्येय अर्थात् ध्यान करने योग्य, निशाना मारने लायक वह चीज़ नहीं। बाण होता है तो निशाना मारते हैं न ? यह पुलिस लोग। उस पर बाण मारो। पत्ते को छेद डालो। पत्ता होता है न ? उसकी आखिर की... क्या कहते हैं ? शेड हमारी काठियावाड़ी भाषा में। पत्ता होता है न पत्ता ? उसकी पतली नोंक होती है न ? तुम्हारी भाषा में क्या कहते हैं ? पीपल का पत्ता होता है न ? उसकी नोंक पतली। नोंक कहते हैं, वहाँ से उस नोक पर गोली जानी चाहिए। ऊपर नहीं, आगे-पीछे नहीं। उस नोंक पर जानी चाहिए। ऐसे भगवान कहते हैं, अपनी नोंक ध्रुव है। स्वरूपचन्दभाई ! उस नोंक पर निशान होना चाहिए। जो ज्ञान...

संयम से संयुक्त और ध्यान के योग्य इस प्रकार जो मोक्षमार्ग, उसका लक्ष्य... सूक्ष्म बात है, भगवान ! मोक्षमार्ग का लक्ष्य ध्येय। **अर्थात् लक्षणे योग्य-जाननेयोग्य निशाना जो अपना निजस्वरूप...** देखो ! आहाहा ! पर का जानना भी नहीं, राग का भी जानना नहीं। राग को जानने की वर्तमान पर्याय, वह राग को जानती है, वह भी निशाना नहीं। सूक्ष्म बात है, भगवान ! यह बात कभी उसने जानी नहीं। चौरासी के अवतार में अनन्त काल हुआ, परन्तु भगवान आत्मा चैतन्य सच्चिदानन्द प्रभु, ऐसा सर्वज्ञ

परमेश्वर तीर्थंकरदेव, उसने जैसा आत्मा कहा, देखा, जाना और दुनिया को प्रसिद्ध किया कि भगवान! तेरी चीज़ तो ऐसी अन्तर में है। महाप्रभु चैतन्य ध्रुव, ज्ञायकभाव, जिसमें वर्तमान राग-द्वेष तो नहीं, परन्तु जिसमें वर्तमान राग की पर्याय जानने में आयी, वह पर्याय भी ध्रुव में नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा दर्शन-ज्ञान-चारित्र। उसका निशाना ध्रुव चीज़ है, नित्यानन्द प्रभु है, अविनाशी है। जिसकी आदि नहीं, जिसका अन्त नहीं, ऐसी चीज़ जो ध्रुव है, वह अविनाशी चीज़ है। जिसमें अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान आदि शान्ति का सागर आत्मा है। ऐसी ध्रुव चीज़ को जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निशाना है, उसको जो नहीं जानते हैं, उसका श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र सब व्यर्थ है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! साधारण बात, अभ्यास होता तो अनन्त बार किया था। ग्यारह अंग का अभ्यास भी अनन्त बार हुआ है। उसमें क्या चीज़ है? वह कोई नई चीज़ नहीं।

भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब, चैतन्यबिम्ब ध्रुव है। स्वभाव सामान्य, एकरूप, आदि-अन्त बिना की चीज़ जो है, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निशाना है। ऐसा ज्ञान न करे और मात्र दर्शन-श्रद्धा-ज्ञान करे और उसको ध्येय न बनावे तो वह श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र है नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो अपूर्व विद्या है। दुनिया की विद्या तो अनन्त बार की और अनन्त बार भूल गया।

हमारे यहाँ एक लड़का है न, वह कहता है। ग्यारह वर्ष का लड़का है न? जादवजीभाई का लड़का है। गृहस्थ हैं कलकत्ता में। दिलीप है। गृहस्थ है न, बहुत लाखोंपति। तो उसके पिताजी कहते हैं कि चलो भैया! पढ़ने को। पढ़ाई करने को। ऐई! स्वरूपचन्दभाई! आता है तब यहाँ बैठता है। समयसार लेकर। ग्यारह साल पूरे हुए, बारहवें साल में प्रवेश किया है। चलो पढ़ने को। है हमारा गुजराती, हों! यहाँ का। तो कहता है, अरे! पप्पा! अरे! दादा! यह पढ़ाई इसका नाम कि जो पढ़ाई अनन्त बार की और भूल गये, वह पढ़ाई? भणतर समझे? पढ़ना हुआ न? इस पढ़ने को पढ़ाई कहते हैं? जो पढ़ा और भूल गया, वह पढ़ाई? पण्डितजी! ऐसा लड़का है। बहुत वीर्यवान है। जोर देता है। बोले तो बराबर, हों! शरीर-बरीर ठीक है। ये पढ़ाई? भणतर को तुम्हारी भाषा में क्या कहते हैं? पढ़ाई-पढ़ाई। ऐसी पढ़ाई? कि जो पढ़ाई एक बार हुई, अनन्त बार हुई और अभी रही नहीं। वह पढ़ाई किस काम की? ऐई! शोभालालजी! पढ़ाई तो इसको कहे कि यह

महाराज कहते हैं ऐसे आत्मा की पढ़ाई करना, वह पढ़ाई है। वह लड़का ऐसा कहता है, हों! छोटा है। बारह साल का... समझ में आया?

यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ऐसा कहते हैं। संवत् ४९ में भरतक्षेत्र में दिगम्बर सन्त मुनि भावलिंगी अल्पकाल में केवलज्ञान लेकर मुक्ति को जानेवाले हैं। और यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य संवत् लगभग ४९ में यहाँ भरतक्षेत्र में थे, भगवान के पास गये थे। भगवान महाविदेह क्षेत्र में श्री सीमन्धर परमात्मा तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ विराजते हैं। समझ में आया? वहाँ अभी भी हैं। वह तो दो हजार साल पहले गये थे। अभी भी भगवान तो विराजते हैं। सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर महाविदेहक्षेत्र में मनुष्य देह हैं। आठ दिन रहकर वहाँ से आये और यह शास्त्र बनाये। समझ में आया? वह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, अरे! भगवान! यहाँ तो आत्मा को भगवान कहकर बुलाते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा को कहते हैं। भगवान होनेवाली शक्ति है न उसमें? है। शक्ति उसमें है। भग अर्थात् ज्ञान और दर्शन-लक्ष्मी, वान अर्थात् स्वरूप उसका है। ज्ञान और दर्शन और आनन्द लक्ष्मी का वान अर्थात् जिसका स्वरूप है। ऐसा भगवान आत्मा। कहते हैं कि, उस भगवान को ध्येय बनाने का ज्ञान न हो और दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ध्येय का आश्रय न हो तो वह मोक्षमार्ग नहीं, वह ज्ञान ही नहीं। समझ में आया?

अपना निजस्वरूप वह ज्ञान द्वारा पाया जाता है,... आहाहा! देखो! थोड़े शब्दों में कितना लिया है! भगवान आत्मा नित्यानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, सत् सत् चिद् आनन्द। ऐसा वस्तु का स्वरूप अपने **ज्ञान द्वारा पाया जाता है,...** उसका यह अर्थ होता है। २०वीं गाथा का। इसका अर्थ होता है। यह कोई किताब नहीं कि बात जल्दी-जल्दी चली जाये। एक-एक शब्द में बहुत गम्भीरता भरी है। इतना पढ़ा ठर गया होगा। समझ में आया? यह तो गम्भीर है।

जैसे 'जगत' शब्द में तीन अक्षर हैं तो उस शब्द में—वाचक में पूरा जगत समा जाता है। समझ में आया? वैसे यह आत्मा, प्रत्येक आत्मा अन्दर पूर्णानन्द का नाथ प्रभु है, ध्रुव अस्ति है, वस्तु है और उसका गुण भी एकरूप परिपूर्ण अखण्ड अभेद है। ऐसी चीज़ का निशाना, ध्येय बनाना। ऐसा दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निशाना, उसको यदि ज्ञान न जाने तो इसके निशाने बिना तेरी श्रद्धा-ज्ञान... सब निरर्थक है। ये व्रत पालते हैं और ये

करते हैं न नग्न होकर और पंच महाव्रत पाले, वह सब निरर्थक है, धूल है। समझ में आया? अपने द्रव्य को ध्येय बनाकर अनुभव न किया तो ये सब महाव्रत पालना, नग्न होना, वह सब एक के बिना शून्य हैं। कहो, पोपटभाई! आहाहा!

इसलिए इस प्रकार के लक्ष्य को जानने के लिए ज्ञान को जानना। इस प्रकार के लक्ष्य को जानने के। भगवान आत्मा ध्रुव, वह लक्ष्य करने लायक है। उसको जानने के लिये ज्ञान को यथार्थ सत्समागम से, गुरुगम से आत्मा का लक्ष्य करके (जाने, उसे) यथार्थ ज्ञान जानना। ... उस ओर उसका भावार्थ।

भावार्थ – संयम अंगीकार कर ध्यान करे... अन्दर में। परन्तु किसका? अभी तो वस्तु का यथार्थ भान नहीं, एकाग्र कहाँ से होगा? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिसके ज्ञान में ही भूल है, (वह ध्यान कहाँ से करेगा?) ऐसा करे तो क्या पता लगेगा। समझ में आया? वह कहते हैं। **संयम अंगीकार कर...** इन्द्रिय दमन, स्त्री-कुटुम्ब छोड़ दे, जंगल में चला जाये, उससे क्या हुआ? और ध्यान करे अन्दर में। अभी वस्तु का पता नहीं। **आत्मा का स्वरूप न जाने...** भगवान चिदानन्द का अस्ति तत्त्व महाप्रभु, उसका अन्दर ज्ञान न करे और उसको जाने नहीं **तो मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं है,...** उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होती नहीं। समझ में आया? ये बाह्य क्रियाकाण्ड और प्रवृत्ति से कोई मोक्षमार्ग नहीं है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षमार्ग नहीं है। व्रतादि, नियमादि, ये बाह्य क्रिया, व्रत वह तो राग है, पुण्य है। वह कोई धर्म-बर्म नहीं। समझ में आया? धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। धर्म तो आत्मा त्रिकाली आनन्दकन्द चिदानन्द प्रभु, उसको ध्येय बनाकर जो निर्मल वीतरागी पर्याय हो, उसका नाम परमात्मा धर्म कहते हैं। यह धर्म कभी सुनने में भी आया नहीं। समझ में आया?

आत्मा का स्वरूप न जाने तो मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं है, इसीलिए ज्ञान का स्वरूप जानना चाहिए, उसके जानने से सर्वसिद्धि है। ठीक आया यह पहला श्लोक। बराबर द्रव्य वस्तु क्या है? शक्ति क्या है? शक्तिवान कौन है? शक्ति अर्थात् गुण क्या है? और उसकी पर्याय-अवस्था-हालत क्या है? और हालत में भी निशान करनेयोग्य

तो ध्रुव है। समझ में आया? ऐसा ज्ञान बराबर यथार्थरूप से जानना चाहिए। इस ज्ञान के बिना एक भी सच्ची श्रद्धा और चारित्र, व्रत उसको कभी होता नहीं। व्रत नियम करके मर जाये, सूख जाये। महीने-महीने के उपवास करके मर जाये। अनन्त बार किया उसमें क्या हुआ? भगवान आत्मा आनन्दकन्द चिदानन्द ध्रुव, उसे ध्येय बनाकर जो श्रद्धा-ज्ञान प्रगट होता है, वह हुए बिना मोक्ष का मार्ग है नहीं।

गाथा-२१

आगे इसी को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं -ह्र

जह णवि लहदि हु लक्खं रहिओ कंडस्स वेज्झयविहीणो।
तह णवि लक्खदि लक्खं अण्णाणी मोक्खमग्गस्स ।।२१।।

तथा नापि लभते स्फुटं लक्षं रहितः कांडस्य [२]वेधकविहीनः।
तथा नापि लक्षयति लक्षं अज्ञानी मोक्षमार्गस्य ।।२१।।

ज्यों वाण-बिन संधान-विरहित लक्ष्य को पाता नहीं।
त्यों ज्ञान-बिन अज्ञानि शिव-मग लक्ष्य को पाता नहीं।।२१।।

अर्थ – जैसे बेधनेवाला (वेधक) जो बाण उससे रहित ऐसा जो पुरुष है वह कांड अर्थात् धनुष के अभ्यास से रहित हो तो लक्ष्य अर्थात् निशाने को नहीं पाता है, वैसे ही ज्ञान से रहित अज्ञानी है, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग उसका लक्ष्य अर्थात् स्वलक्षण से जानने योग्य परमात्मा के स्वरूप, उसको नहीं प्राप्त कर सकते।

भावार्थ – धनुषधारी धनुष के अभ्यास से रहित और 'वेधक' बाण से रहित हो तो निशाने को नहीं प्राप्त कर सकते, वैसे ही ज्ञानरहित अज्ञानी मोक्षमार्ग का निशाना जो परमात्मा का स्वरूप है, उसको न पहिचाने तब मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं होती है, इसलिए ज्ञान को जानना चाहिए। परमात्मारूप निशाना ज्ञानरूपबाण द्वारा वेधना योग्य है।।२१।।

---

२. 'वेधकह्र' 'वेध्यक' पाठान्तर है।

गाथा-२१ पर प्रवचन

आगे इसी को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं–इस बात को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं।

जह णवि लहदि हु लक्खं रहिओ कंडस्स वेज्झयविहीणो।
तह णवि लक्खदि लक्खं अण्णाणी मोक्खमग्गस्स ।।२१।।

अर्थ – जैसे बेधनेवाला (वेधक)... बाण मारनेवाला बाणावली। बाणावली कहते हैं न? बाणावली। बाणावली का अर्थ? कि बाणावली। आवली (अर्थात्) एक के बाद एक... एक के बाद एक... एक के बाद एक... बाण छूटे, उसका नाम बाणावली। समझ में आया? एक के बाद एक बाण छूटे, वह मारना, उसे बाणावली कहते हैं। बाणावली **जो बाण उससे रहित ऐसा जो पुरुष है...** बाण तो है नहीं। समझ में आया? और **उससे रहित ऐसा जो पुरुष है, वह कांड अर्थात् धनुष के अभ्यास से रहित हो...** एक तो बाण नहीं और धनुष में कैसे लगाना और कैसे चढ़ाना, उसकी खबर नहीं। अपने को यहाँ था न। बाण यहाँ रखा था न? यहाँ हमको खबर नहीं तो डोर इस ओर रखी थी। लेकिन डोर यहाँ नहीं रखते। बाण में लम्बी डोरी—पणछ होती है न? डोरी इस ओर नहीं होनी चाहिए। सामने चाहिए। उसमें बाण लगाकर धक्का मार दे तो छूट जायेगा। समझ में आया? यहाँ एक बार हुआ था। यहाँ बाण रखा था न। किसने? श्रीचन्दजी! बाण है या नहीं? होगा।...

बेधनेवाला (वेधक) जो बाण उससे रहित ऐसा जो पुरुष है, वह कांड अर्थात् धनुष के अभ्यास से रहित हो तो लक्ष्य अर्थात् निशाने को नहीं पाता है,... धनुष नहीं, बाण नहीं। किसको मारना? कहाँ मारना? निशाने की खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? देखो! कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दिगम्बर सन्त महामुनि भावलिंगी। अल्प काल में परमात्मा होने की योग्यता से अभी स्वर्ग में गये हैं। वहाँ से मनुष्य होकर परमात्मा होनेवाले हैं। ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त वनवासी थे। समझ में आया? मद्रास से अस्सी मील दूर एक छोटी पहाड़ी 'पोन्नूर हिल' है। वहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य रहते थे। वहाँ से भगवान के पास गये थे। यहाँ आकर यह शास्त्र बनाया। अस्सी मील दूर है, मद्रास

के पास 'वन्देवास' नामक छोटा गाँव है। दस हजार की बस्ती है। और वहाँ से पाँच मील दूर 'पोन्नूर हिल' नाम की छोटी पहाड़ी है। हम तो वहाँ हजार-हजार लोगों के साथ दो बार गये हैं। वहाँ है वह सबको बताया कि, यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य रहते थे। दिगम्बर सन्त। वहाँ से भगवान के पास गये और आठ दिन (वहाँ रहकर), यहाँ आकर यह शास्त्र बनाया।

मुमुक्षु : शिलालेख है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शिलालेख नहीं। हमारा शिलालेख अन्दर का है। समझ में आया ? वहाँ गये थे। दो बार गये थे। हजार-हजार लोग, मोटरें साथ में थीं। बहुत लोग थे। दो बार गये। ... यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य रहे थे और यहाँ से भगवान के पास गये थे। वह तो पण्डित कहते थे। वहाँ के पण्डित लोग है न। मद्रास के। वह कहते थे, यहाँ आचार्य महाराज रहते थे। नीचे दो हजार वर्ष (पुराना) मन्दिर है। गाँव का नाम क्या है ? मंगला ? सतमंगला गाँव है। नीचे। कुन्दकुन्दाचार्य ऊपर रहते थे तो नीचे दर्शन करने को आते थे। यह दो हजार साल पहले की बात है। दर्शन करने को जाते थे। वह मन्दिर है, गाँव है। सब हमने देखा है। सब देखकर आये हैं। गये तो सब जाँच तो करे या नहीं ? समझ में आया ? बहुत पुराना मन्दिर है। दो हजार वर्ष पहले का। किला भी पुराना हो गया।

मुमुक्षु : ससमंगल।

पूज्य गुरुदेवश्री : ससमंगलं। बहुत नाम है। वहाँ गये थे। रहे थे। वहाँ भजन-भक्ति की थी। वहाँ रहते थे और वहाँ पहाड़ पर यह बनाया।

खबर नहीं थी तो (बाण) ऐसा लगाया था। पहले ऐसे लगाया था। ऐसे नहीं होता, ऐसे होता है। क्योंकि उसको धक्का मारने की तो डोरी है। ऐसे छोड़ दे तो ? उसे ऐसे लगाया था पहले। हाथ में पकड़ने की खबर नहीं थी। तो कहते थे कि यह डोरी ऐसे छोड़ दे।

कहते हैं कि जिसके पास धनुष नहीं, जिसके पास बाण नहीं, वह बाणावली किसका निशाना करके बाण छोड़ते हैं ? समझ में आया ? किस पर बाण छोड़ना उसका तो पता नहीं। और खबर हो फिर भी यह साधन नहीं हो तो क्या करे ? उसका ज्ञान भी

यथार्थ नहीं है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? सप्तभंगी चलती है तो उसमें यह काम आता है। अपने से है और पर से नहीं। सप्तभंगी है न बड़ी ? सूक्ष्मतत्त्व। उस पर काम आता है। इसलिए यह बनाया है।

यहाँ कहते हैं, **अभ्यास से रहित हो तो लक्ष्य अर्थात् निशाने को नहीं पाता है,...** बाण नहीं, धनुष नहीं। तो निशाने में जिसको मारना हो, वह निशाना नहीं कर सकता। **वैसे ही ज्ञान से रहित अज्ञानी है,...** अपना स्वरूप जो ध्रुव चैतन्यस्वरूप परमात्मा, उसका जिसको ज्ञान नहीं, वह अपने ध्येय को पकड़कर के मोक्षमार्ग प्रगट कर सकता नहीं। न्याय समझ में आता है ? न्याय नाम नि धातु है न्याय में। लॉजिक से नि धातु (अर्थात्) ले जाना। जैसी स्वरूप की स्थिति है, (वहाँ) उसको ले जाना, ले जाना, उसका नाम न्याय। नि धातु उसमें है।

यहाँ कहते हैं, भगवान! **ज्ञान से रहित...** अपना ध्रुव चैतन्यबिम्ब है, उसका तो ज्ञान है नहीं और अज्ञानी संयम, व्रत, नियम और क्रियाकाण्ड करते हैं, उसको निशाना हाथ लगे बिना ध्येय पकड़ में आता नहीं। समझ में आया ? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें हैं, भाई! साधारण समाज ऐसा पकड़ सके ? अरे! समाज क्या, आत्मा है या नहीं ? समाज तो बहुत होकर समाज हुआ है। परन्तु स्वतन्त्र एक-एक आत्मा है या नहीं ?

मुमुक्षु : भगवान तो सचेतन...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। भगवान होने की योग्यता उसमें है। ...

मुमुक्षु : संज्ञी पंचेन्द्रिय...

पूज्य गुरुदेवश्री : संज्ञी पंचेन्द्रिय अपने क्षयोपशम में ऐसा जानकर अनुभव कर सकते हैं और परमात्मा होने की ताकत उसमें है। समझ में आया ? छोटी पीपर है या नहीं ? छोटी पीपर होती है या नहीं ? वह छोटी पीपर नहीं होती ? छोटी पीपर। उसमें चौसठ पहरी चरपराई भरी है। तो घूंटने से प्रगट होती है। वह कोई घूंटने से पत्थर से प्रगट हो, फिर तो कोयला घिसना चाहिए। परन्तु उस पीपर में चौसठ पहरी, चौसठ अर्थात् एक रुपया, सोलह आना पूर्ण चरपराई भरी है। उसमें है। प्राप्त की प्राप्ति है। है उसमें से आती है। ऐसे चौसठ पहरी... वह तो अभी सौ पैसे का रुपया हो गया न ? पहले तो चौसठ पैसे का रुपया

था। अभी सौ पैसे का हो गया। चौसठ पहरी समझते हैं ? सौ। चौसठ पहरी प्रगट हुई वह कहाँ से प्रगट हुई ? पत्थर में से ? पत्थर घिसने से हो तो कोयला घिस डाले न। जिसमें है नहीं तो कहाँ से आयेगी ? पीपर में सत्त्वरूप-सत्त्वरूप सत् का भावरूप शक्तिरूप चौठस पहरी चरपराई-तीखाश हमारी गुजराती भाषा में तीखाश कहते हैं। आपकी भाषा में चरपराई कहते हैं। चरपराई पूरी पड़ी है अन्दर। इतनी छोटी चीज़ में।

ऐसे भगवान आत्मा देहदेवल में इस परमाणु जड़ मिट्टी से भिन्न है, पुण्य-पाप विकल्प से भिन्न है, अपने स्वभाव में चौठस-पूरा ज्ञान और पूरा आनन्द अन्दर भरा है। समझ में आया ? ऐसा आनन्द और ज्ञान का ध्येय ज्ञान न हो। कौन कर सकता है ? किसी को कोई उलझन, किसी को (कुछ है)। या तो पर्याय को बनाओ, या तो राग को बनाओ, गुण-गुणी के भेद को बनाओ। परन्तु वह सब व्यवहार हुआ। वह निशाना नहीं। आहाहा ! पण्डितजी ! आहाहा ! बहुत कठिन है, भाई ! मार्ग, अलौकिक मार्ग है, बापू ! जिसका फल सादि-अनन्त आनन्द ! सादि-अनन्त आनन्द। जब से आनन्द प्रगट हुआ तो अनन्त काल रहे। ऐसा मोक्ष, उसका मार्ग तो अलौकिक होना चाहिए न ! साधारण जनता और साधारण लोग लौकिक मानते हैं, ऐसा तो अनन्त बार किया है। समझ में आया ?

कहते हैं कि अरे ! जिसके पास बाण और धनुष नहीं है, ऐसे **धनुष के अभ्यास से रहित हो तो लक्ष्य अर्थात् निशाने को नहीं पाता है, वैसे ही ज्ञान से रहित अज्ञानी है, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग उसका लक्ष्य अर्थात् स्वलक्षण से जानने योग्य परमात्मा...** देखो ! आहाहा ! परमात्मा अपना, हों ! भगवान नहीं। भगवान उसका परमात्मा है। पण्डितजी ! ... थोड़ा सा तो उसमें होगा। थोड़ा सा, हों ! बोधपाहुड़। ऐसा ... रखा था। यह अलग है। दूसरी है। २१वीं गाथा। २१वीं है न ?

कहते हैं कि दर्शन-चारित्ररूप मोक्षमार्ग। देखो ! भाषा ऐसी ली है। सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र जो मोक्षमार्ग, उसका लक्ष्य। ज्ञान तो ज्ञान कहा है न ? इसलिए दर्शन-चारित्र दो लिये। सार में सार चीज़ है। बारह अंग का सार। शास्त्र का सार। जिसमें सर्वज्ञपद पड़ा है, पूर्ण आनन्द पड़ा है, ऐसा ध्रुव स्वरूप, वह श्रद्धा-ज्ञान में, श्रद्धा-चारित्र में जो मोक्षमार्ग है, **उसका लक्ष्य अर्थात् स्वलक्षण से जानने योग्य परमात्मा...** है। सम्यग्ज्ञान बिना उसका लक्ष्य होता नहीं। किसी और को लक्ष्य बना दे, कोई पर्याय को बना दे, कोई राग

को बना दे, कोई गुण-भेद को लक्ष्य बना दे, उसमें आत्मा का कुछ लाभ होता नहीं। समझ में आया? अरे! ऐसा सूक्ष्म। कुछ करने को कहे कि ऐसा करो, दया पालो, व्रत पालो, भक्ति करो (तो कुछ समझ में तो आये)। वास्तविक तत्त्व क्या है, उसका ज्ञान करना, वह करना नहीं है? लेकिन ये तो कोई विकल्प करे, कोई व्रत करे, कोई तप करे, कोई अपवास करे। वह तो विकल्प है, सुन न! वह तो राग है। धूलधाणी है। पण्डितजी! आहाहा!

भगवान! तेरी हमेशा रहनेवाली असली चीज़ जो ध्रुव है, वह दर्शन और चारित्र के मार्ग में ध्येय करने लायक वह है। उसका ज्ञान किया नहीं तो ध्येय हुआ नहीं, तो ध्येय बिना अपनी शुद्धि प्रयोजन की सिद्धि ध्येय बिना होती नहीं। धर्म की सिद्धि ध्येय के ध्यान बिना होती नहीं। समझ में आया? शान्ति और सम्यग्दर्शन आदि प्रगट करना है, ऐसी जो प्रयोजन की सिद्धि है, वह ध्येय त्रिकाल ध्रुवस्वरूप है, ऐसी ज्ञान और श्रद्धा किये बिना अपनी पर्याय में शान्ति की सिद्धि होती नहीं। लाख अपवास करे, व्रत करे, तप करे, दान करे, करोड़ों (रुपये का) मन्दिर बनवा दे तो इससे आत्मा में कोई लाभ नहीं। समझ में आया? वह तो बाहर की चीज़ है। तुझ से कहाँ बनी है? वह तो जड़ से बनती है। तुझे अन्दर में कदाचित शुभभाव हो तो वह पुण्य है, वह कोई धर्म नहीं, वह कोई आत्मा नहीं। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात है, भाई! कठिन माने अलौकिक बात है। लौकिक से भिन्न लोकोत्तर है।

सच्चे ज्ञान बिना... **दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग उसका लक्ष्य अर्थात् स्वलक्षण से जानने योग्य...** लक्ष्य में लेनेयोग्य। लक्षणयोग्य अर्थात् लक्ष्य में लेनेयोग्य। लक्षणयोग्य अर्थात् ध्यान में ध्येय करनेयोग्य। **परमात्मा के स्वरूप, उसको...** आहाहा! समझ में आया? पुण्य-पाप आदि विकल्प है, वह मेरा है—ऐसा माने वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? पुण्य-पाप का विकल्प जो है, यह मेरी चीज़ है, मेरे में है, मैं हूँ—ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है, (वह) बहिरात्मा है। और पुण्य-पाप का विकल्प नहीं, एक समय की पर्याय भी मैं नहीं, मैं पूर्णानन्द प्रभु (हूँ), ऐसी दृष्टि होने से बहिरात्मबुद्धि का नाश होकर अन्तर परमात्मास्वरूप है, उसे अन्तरात्मा की दृष्टि प्रगट होती है। समझ में आया? और उसमें लीन होकर, एकाग्र होकर, स्वरूप में ध्यान में एकाग्र होकर केवलज्ञान होता है तो वह बहिर्-पर्याय में परमात्मा होता है। परन्तु वह द्रव्य परमात्मा है

तो पर्याय में परमात्मा होता है। आहाहा! यह द्रव्य परमात्मा का स्वरूप उसको... ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कठिन बात है, भाई!

कहते हैं कि जिसको ज्ञान नहीं। किसका? कि श्रद्धा और चारित्र का जो ध्येय, ऐसा ध्रुव भगवान नित्यानन्द प्रभु, उसका जिसको ज्ञान नहीं, उसको प्रयोजन की सिद्धि कभी होती नहीं। उसको परमात्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसकी दृष्टि में प्राप्ति होती नहीं। समझ में आया?

भावार्थ – धनुषधारी धनुष के अभ्यास से रहित... लो! धनुषधारी कहे और धनुष का अभ्यास नहीं। **'वेधक' बाण से रहित हो...** बाण भी हाथ में नहीं। बाण हाथ में नहीं, धनुष हाथ में नहीं और कहलाये धनुषधारी। **तो निशाने को नहीं प्राप्त कर सकते,...** जिस पर बाण चलाना हो, जिस पर बाण छोड़ना हो, वह बाण और धनुष नहीं है तो निशाना उसको है ही नहीं। समझ में आया? कहाँ बाण छोड़ना है। बाण नहीं है, धनुष नहीं है तो निशाना कहाँ है? वह तो है नहीं।

वैसे ही ज्ञानरहित अज्ञानी.... ओ..हो..! भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में वस्तु-वस्तु, जिसमें अनन्त आनन्दादि ज्ञान बसते हैं, ऐसी वस्तु। वस्तु उसको कहें, भगवान आत्मा वस्तु (उसे कहें कि) जिसमें बेहद ज्ञान, बेहद आनन्द, बेहद शान्ति, वीतरागता ऐसी अनन्त शक्ति बसती है-रहती है, ऐसी चीज़। ऐसी चीज़ का ज्ञान नहीं... समझ में आया? तो मोक्षमार्ग का निशाना न पावे। **वैसे ही ज्ञानरहित अज्ञानी मोक्षमार्ग का निशाना जो परमात्मा का स्वरूप है, उसको न पहिचाने...** बाहर में अटक जाये। पुण्य-पाप की क्रिया, एक समय की पर्याय मेरी है और उसमें लक्ष्य करके अटक जाये उसको सच्चा-ज्ञान है नहीं। उसका नाम ज्ञान। मात्र शास्त्र पढ़ना उसका नाम ज्ञान नहीं है, ऐसा कहते हैं। जिस ज्ञान में ध्रुव ध्येय दृष्टि में आवे, उस ज्ञान को ज्ञान कहने में आता है। जिस ज्ञान में ध्रुव ध्येय भगवान पूर्णानन्द प्रभु, नित्यानन्द प्रभु आत्मा ध्येय में आवे जिस ज्ञान में, उसको यहाँ ज्ञान कहने में आता है। कहो, शोभालालजी! बहुत कठिन बात ऐसी, भाई!

मुमुक्षु : बहुत कठिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : .... क्या करे? वस्तु तो ऐसी है।

मुमुक्षु : सरल-सरल।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल तो ऐसे करते हैं। भाषा में तो सरल आता ही है। लॉजिक-न्याय से तो बात आती है। कभी अभ्यास ही नहीं किया। अनादि से विपरीत अभ्यास ही किया है। जैन का साधु हुआ, दिगम्बर 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पे आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' छहढाला में आता है। छहढाला है न। छहढाला? दौलतरामजी की छहढाला है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पे आत्मज्ञान बिन...' आत्मा क्या चीज़ है, उसके ध्येयपने के ज्ञान बिना आनन्द का स्वाद नहीं आया। 'लेश सुख न पायो।' उसका अर्थ यह हुआ, नग्नपना और अट्ठाईस मूलगुण अनन्त बार पाले, तो सुख नहीं हुआ, वह तो दु:ख है, ऐसा कहा। ऐसा कहा या नहीं? पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण के परिणाम, वह दु:ख है, राग है। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो...' दौलतरामजी छहढाला में कहते हैं। पहले के पण्डित भी बहुत ज्ञानी थे। अभी बहुत गड़बड़ हो गयी। पण्डितजी! अब गड़बड़ निकलने का काल आया है।

मुमुक्षु : निकल रही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निकल रही है। देखो! हमारे पण्डितजी कहते हैं। समझ में आया?

भगवान! ओहो! कहते हैं कि तेरी चीज़ का, ध्येय का ज्ञान किये बिना ये पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, मन्दिर बहुत किये। शास्त्र का स्वाध्याय भी विकल्प से बहुत किया। वह विकल्प था, वह तो दु:ख था, आकुलता थी। समझ में आया? तो आत्मा का आनन्द आये बिना वह सब आकुलता थी, दु:खी था। उसने दु:ख का वेदन किया। आहाहा! समझ में आया? अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ऐसा भाव विकल्प जो है वह राग है, वह दु:ख है। भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति की दृष्टि किये बिना ऐसा दु:ख का परिणाम अनन्त बार किया। (फिर भी) आत्मा के आनन्द का स्वाद आया नहीं। समझ में आया? और आत्मा के आनन्द का स्वाद बिना दु:खी होकर दु:ख से चार गति में भटकता है। आहाहा!

अज्ञानी मोक्षमार्ग का निशाना जो परमात्मा का स्वरूप है,... अपना स्वरूप, हों! परमात्मा। पर भगवान नहीं। भगवान परमात्मा अरिहन्त सिद्ध तो उनके परमात्मा हैं, यहाँ के नहीं। समझ में आया? आहाहा! 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया, अपने को आप भूल के हैरान हो गया,' तुम परमात्मस्वरूप निजानन्द भगवान, जिसमें अनन्त केवलज्ञान की पर्याय पड़ी है। जिसमें अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त आनन्द जो भगवान को प्रगट हुआ, ऐसा अनन्त... अनन्त... अनन्त आनन्द जिसकी अन्तर सत्ता शक्ति में पड़ा है। ऐसा अनन्त सिद्धालय ऐसा अपना आत्मा, वह परमात्मा है। उसका ज्ञान अन्तर में ध्येय बनाकर श्रद्धा-चारित्र में ज्ञान से स्व को ध्येय नहीं किया तो कुछ लाभ नहीं हुआ। उसने कुछ नहीं पहचाना। आहाहा! ग्यारह अंग पढ़ा-पढ़ डाला। पढ़कर छोड़ दिया। छोड़ दिया। पढ़ लिया। धूल में भी पढ़ा नहीं। समझ में आया?

भगवान एक समय में पूर्णानन्द प्रभु... देखो द्रव्यदृष्टि! निमित्त दृष्टि छोड़कर जो ज्ञान ध्रुव का ज्ञान करे, वह निमित्त की दृष्टि छोड़कर, राग की दृष्टि छोड़कर, व्यवहार विकल्प की दृष्टि छोड़कर, एक समय की पर्याय की दृष्टि छोड़कर ध्रुव की दृष्टि करे, वह ज्ञान सच्चा है। समझ में आया? आहाहा! देखो! यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य! बाकी मनुष्यपना अनन्त बार मिला (फोगट) गया। क्या आत्मा है और क्या चीज़ (है, उसकी) प्राप्ति कैसे होती है, उसकी खबर बिना सब धूलधाणी है। पाँच-पच्चीस करोड़ मिले हो। मिले क्या, उसको तो मिलता नहीं। उसको तो देखने में आता है कि यह है। मानता है कि मुझे मिला। यह ममता उसको मिली है। चीज़ तो मिलती नहीं। चीज़ तो बाहर दूर रहती है।

मुमुक्षु : बहिर् लौटती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहिर लौटती है। लक्ष्मी तो आत्मा से बाहर लौटती है। अन्दर प्रवेश नहीं करती। आहाहा! अरे! पुण्य-पाप का विकल्प भी आत्मा के स्वभाव से बाहर लौटता है। भगवान आत्मा के स्वभाव में पुण्य-पाप का विकल्प-राग है नहीं। समझ में आया? आहाहा! ज्ञानचन्दजी! कैसा है भगवान? मार्ग तो ऐसा है। परन्तु खबर नहीं। धर्म के नाम पर गलत जगह में फँस जाये।

मुमुक्षु : वह तो भूतकाल का...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो जानने में क्या है ? आहाहा !

तेरी ज्ञान की वर्तमान दशा-प्रगट जानने की पर्याय जो राग को जानती है, और पर को जानती है, वह जाननेवाली ज्ञान की अस्तित्व वर्तमान पर्याय है। इस ज्ञान में ध्रुव का ज्ञान करे बिना उस ज्ञान को ज्ञान नहीं कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! कठिन विद्या भाई ! विद्यमान त्रिकाल परमात्मा अपना निज स्वरूप, उसका ज्ञान वह विद्या और उस विद्यमान पदार्थ का आश्रय लिया तो विद्या कहने में आती है और यह विद्या भव से मुक्ति कराती है। समझ में आया ? तुम्हारी बाहर की संसार की लौकिक की पदवी में पाँच-पाँच हजार का वेतन और दस-दस हजार का वेतन (मिले) । क्या कहा ? एक अंक बिना के शून्य हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु एक अंक का शून्य भी दूसरी तरह का होता है। मात्र शून्य अलग होता है। एक अंक का शून्य तो ऐसा करके ऐसा (करते हैं) । एक अंक में प्रथम तो शून्य होता है। लेकिन उस शून्य में ऐसा करके ऐसा करते हैं। वैसे भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द का ध्येय बिना का ज्ञान, दूसरे को ध्येय बनाकर ज्ञान (होता है), वह ज्ञान है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! आपका एल.एल.बी. । ... है। एल.एल.बी. हुआ है। सब एल.एल.बी. की पदवी (पूंछड़ा) है। लिखते हैं न ? उपाधि लिखते हैं न। यह उपाधि है। ऐसा नहीं लिखते ? आपके यहाँ लिखते हैं। डिग्री कहो, उपाधि कहो। लिखते हैं। हमारी यह उपाधि है। डिग्री अर्थात् उपाधि।

मुमुक्षु : समाधि नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : समाधि नहीं। आधि, व्याधि, उपाधि रहित नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं। यहाँ तो कठिन बात है। **वैसे ही ज्ञानरहित अज्ञानी मोक्षमार्ग का निशाना जो परमात्मा का स्वरूप है, उसको न पहिचाने, तब मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं होती है, इसलिए ज्ञान को जानना चाहिए।** लो ! यह आया न ? **इसलिए ज्ञान को जानना चाहिए। परमात्मारूप निशाना ज्ञानरूपबाण द्वारा वेधना योग्य है।** ज्ञान

की पर्याय उसको कहते हैं कि जिसका निशाना ध्रुव पर लगे। समझ में आया? सामान्य स्वरूप जो ध्रुव है, नित्य है, ज्ञान की पर्याय वहाँ जुड़ जाये, उसको बाण का निशाना लग गया। निशाना लग गया। परमात्मा का ज्ञान हो गया। समझ में आया? ऐसे ज्ञान को सम्यग्ज्ञान, ऐसी दृष्टि को सम्यग्दर्शन और ऐसे दर्शन-ज्ञानसहित स्वरूप में रमता है, उसका नाम चारित्र है। चारित्र कोई क्रियाकाण्ड, बाह्य का भेष वह चारित्र है नहीं। चारित्र अर्थात् चरना, चरना अर्थात् रमना, रमना अर्थात् आनन्द की दृष्टि करके आनन्द का अनुभव भोगना, उसका नाम चारित्र है। लोगों ने बाहर से और ही कुछ चारित्र मान लिया है। समझ में आया? **परमात्मारूप निशाना ज्ञानरूपबाण द्वारा वेधना योग्य है।**

गाथा-२२

आगे कहते हैं कि इस प्रकार ज्ञान-विनय-संयुक्त पुरुष होवे, वही मोक्ष को प्राप्त करता है -

णाणं पुरिस्स हवदि लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्तो।
णाणेण लहदि लक्खं लक्खंतो मोक्खमग्गस्स ।।२२।।

ज्ञानं पुरुषस्य भवति लभते सुपुरुषोऽपि विनयसंयुक्तः।
ज्ञानेन लभते लक्ष्यं लक्षयन् मोक्षमार्गस्य ।।२२।।

नित पुरुष के ही ज्ञान सविनय पुरुष ही पाता उसे।
उस ज्ञान से शिव-मार्ग लक्षित लक्ष्य से पाता उसे।।२२।।

अर्थ - ज्ञान पुरुष के होता है और पुरुष विनयसंयुक्त हो तो ज्ञान को प्राप्त करता है, जब ज्ञान को प्राप्त करता है, तब उस ज्ञान द्वारा ही मोक्षमार्ग का लक्ष्य जो 'परमात्मा का स्वरूप' उसको लक्षता-देखता-ध्यान करता हुआ, उस लक्ष्य को प्राप्त करता है।

भावार्थ - ज्ञान पुरुष के होता है और पुरुष ही विनयवान होवे, सो ज्ञान को प्राप्त करता है, उस ज्ञान द्वारा ही शुद्ध आत्मा का स्वरूप जाना जाता है, इसलिए विशेष ज्ञानियों के विनय द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करनी, क्योंकि निज शुद्ध स्वरूप को जानकर

मोक्ष प्राप्त किया जाता है। यहाँ जो विनयरहित हो, यथार्थ सूत्र पद से चिगा हो, भ्रष्ट हो गया हो, उसका निषेध जानना।।२२।।

गाथा-२२ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि इस प्रकार ज्ञान-विनय-संयुक्त पुरुष होवे, वही मोक्ष को प्राप्त करता है – ऐसा ज्ञान तो विनयवन्त को मिलता है। समझ में आया? विनयवन्त हो, नरम हो, उद्धताई का अभाव हो। समझ में आया? ऐसा दृष्टान्त आता है। श्रीमद् में भी आता है। श्रेणिक राजा के पास कोई आदमी आया था। आम लेने। आम होते हैं न? उसने कहा, मुझे आम खाना है। उसके पास हाथ लम्बा करने की विद्या थी। उसने हाथ लम्बाया। श्रेणिक राजा के बाग में आम (बहुत थे)। आम समझे? हमारे गुजराती में केरी कहते हैं। उसने कहा कि हमारी स्त्री को आम खाना है। आपके पास विद्या है या नहीं? ... श्रेणिक राजा के बाग में है, लाना कैसे? मैं हाथ लम्बा करूँ और कोई जान जाये तो? जाऊँ तो सही। हाथ लम्बा करने की विद्या थी। उस आदमी ने बाहर खड़े होकर हाथ लम्बा किया। और पेड़ पर से आम तोड़ लिया। दूसरे को पता चला कि ये किसी ने आम तोड़ा है। श्रेणिक राजा को पता चला। उसने कहा, कौन हो तुम? उसने कहा, ... महल में आया। ऐसी विद्या कहाँ से आयी? हमें सिखाओ। अभयकुमार साथ में बैठे थे। उनका पुत्र था। बहुत विवेकी था। बहुत विवेकी, बहुत विवेकी। मोक्षगामी जीव। वह भी मोक्षगामी। श्रेणिक राजा अभी तो नरक में है। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में हैं और आगामी काल में तीर्थंकर होंगे। श्रेणिक राजा का जीव अभी पहली नरक में है। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में। वहाँ से निकलकर आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। जैसे महावीर भगवान हैं, वैसे तीर्थंकर होंगे। श्रेणिक राजा सिंहासन पर बैठे और वहाँ से ऊपर। सिखाओ। अभयकुमार ने कहा, पिताजी! ऐसे विद्या हाथ नहीं लगती। नीचे बैठे जाओ। लेकिन वह मामूली इंसान है न? मामूली है तो क्या हुआ, आपको विद्या सीखनी है कि नहीं? उसे सिंहासन पर बैठाओ। तब विद्या चढ़ेगी वरना चढ़ेगी नहीं। ऐसा विनय है। विनय का दृष्टान्त है।

मुमुक्षु : ज्ञान की महिमा होनी चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान की महिमा बिना ज्ञान कैसे आये ? उसकी पर्याय में महिमा आनी चाहिए न ? वास्तव में तो उसकी महिमा में उसकी महिमा है। ज्ञान की महिमा अपने में महिमा है। ओहो ! ऐसी चीज़ विनय बिना कभी मिलती नहीं।

विनय-संयुक्त पुरुष होवे, वही मोक्ष को प्राप्त करता है -

णाणं पुरिस्स हवदि लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्तो।
णाणेण लहदि लक्खं लक्खंतो मोक्खमग्गस्स ।।२२।।

आहाहा ! अमृत झरता है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने शास्त्र में अमृतधारा बहाई है। पंचम काल में केवली का विरह भुलाये, ऐसी बात कही है।

अर्थ - ज्ञान पुरुष के होता है... क्या कहते हैं ? ज्ञान आत्मा को होता है। क्योंकि आत्मा ज्ञानमय है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आत्मा ज्ञानमय है तो आत्मा... पुरुष शब्द से आत्मा। स्त्री का भी आत्मा है न वह ? देह स्त्री का है। ये देह तो जड़ है, मिट्टी। उसमें कहाँ आत्मा घुस गया है ? यह तो जड़, मिट्टी, धूल, है। अन्दर भगवान आत्मा तो भिन्न है। आत्मा कोई स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, नपुंसक नही, हीजड़ा नहीं, नारकी नहीं, देव नहीं, मनुष्य नहीं। वह तो भिन्न भगवान आत्मा है। आहाहा !

ज्ञान पुरुष को होता है... अर्थात् ज्ञान है, वह पुरुष में है—आत्मा में है, आत्मा में है। **और पुरुष विनयसंयुक्त हो तो ज्ञान को प्राप्त करता है,...** अब पर्याय को पाना है न ? समझ में आया ? आहाहा ! भगवान आत्मा अन्दर ज्ञानस्वरूपी चैतन्यबिम्ब वस्तु है न ? वस्तु। तो वस्तु का स्वभाव होता है न ? स्व-भाव, अपना भाव, निज भाव। ज्ञान और आनन्द उसका निज भाव त्रिकाल है। ऐसा जो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी पर्याय में ज्ञान प्राप्त अवस्था में होता है, वह विनयवन्त प्राणी को होता है। ऐसे-वैसे को बैठे, उसको होता नहीं, ऐसा कहते हैं।

देखो ! कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। पाँचवीं गाथा में आता है। हमारे गुरु ने, हमारे गुरु ने हम पर करुणा करके शुद्धात्मा का उपदेश दिया है। ऐसा आता है। समयसार की पाँचवीं गाथा में। कुन्दकुन्दाचार्य हों ! हमारे गुरु ने हम पर करुणा करके। ऐसा नहीं कहते

हैं कि हम पात्र हैं, इसलिए दिया। हम पर गुरु ने कृपा की। शुद्धात्मा ध्रुव चिदानन्द प्रभु, उसका ज्ञान हमारे गुरु ने हमको दिया। पाँचवीं गाथा में (है)। जिनचन्द्र गुरु। कुन्दकुन्दाचार्य के गुरु। वह सब तो महासन्त, वीतरागी मुनि सब थे। भाव (लिंगी)। यह तो अब गड़बड़ हो गयी। वे तो भावलिंगी चैतन्य को स्पर्श कर आनन्द का भान अनुभव करके श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र प्रगट किया है तो मुनि ऐसे भावलिंगी सन्त थे। वे कहते हैं कि विनय से ज्ञान मिलता है, विनय बिना मिलता नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५७, गाथा-२२-२३, शनिवार, श्रावण शुक्ल ६, दिनांक ०८-०८-१९७०

अष्टपाहुड़, उसमें बोधपाहुड़, उसमें २२वीं गाथा। उसका भावार्थ। विषय तो सूक्ष्म ही है। अनादि काल से आत्मा क्या है और उसको कैसे लक्ष्य में लेना? और उसका पूर्ण स्वरूप क्या है? ऐसी दृष्टि का कभी अभ्यास किया नहीं। बाकी शास्त्र आदि का बहुत अभ्यास किया। यहाँ कहते हैं कि किसको ज्ञान कहते हैं?

भावार्थ - ज्ञान पुरुष के होता है... आत्मा, पुरुष अर्थात् आत्मा। आत्मा को ज्ञान होता है। क्योंकि आत्मा में ज्ञान है। आत्मा, ज्ञानस्वभाव चैतन्यस्वरूप आत्मा है, तो आत्मा में ज्ञान है। **और पुरुष ही विनयवान होवे, सो ज्ञान को प्राप्त करता है,...** ऐसा कहते हैं। मूल में तो जरा बात ऐसी है, सूत्र और शास्त्र से भ्रष्ट होकर निकले हैं, उनकी थोड़ी बात है। श्वेताम्बर पन्थ उसमें से जब निकला तो सिद्धान्त शास्त्र जो सर्वज्ञ का था, उससे उल्टा होकर निकला। वह बात थोड़ी कहते हैं। आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य। जो ज्ञान विनय से प्राप्त हो, उसका नाम ज्ञान है। सर्वज्ञ परमात्मा अथवा उनके सन्त-धर्मात्मा, जो परम्परा से सत्यमार्ग का शरण लेकर अनुभव करते हैं, ऐसे पुरुष का विनय करने से दर्शन-ज्ञान प्राप्त होता है। ऐसा कहते हैं। कठिन है, भाई!

विनयवान होवे, सो ज्ञान को प्राप्त करता है,... ज्ञानस्वभाव तो अपने में है ही। परन्तु प्राप्ति कब हो? कि विनयवन्त जब हो और ज्ञान का अनुभव परमात्मा को हो,

उसके पास विनय करके ज्ञानप्राप्ति होती है। समझ में आया? और वह ज्ञान किसको कहते हैं? कि **उस ज्ञान द्वारा ही शुद्ध आत्मा का स्वरूप जाना जाता है,...** ये ज्ञान। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द आत्मा है। पवित्रता का पिण्ड, अनन्त गुण का पवित्र पिण्ड है। वह जिस ज्ञान में लक्ष्य में आवे, ध्यान में आवे, उस ज्ञान को ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म। अनादि काल से अभ्यास किया नहीं। ऐसी बात यथार्थ सुनने में भी अनन्त काल में आती है। ऐसी बात है, भगवान! दुनिया का तो अभ्यास बहुत किया। अरे! शास्त्र का अभ्यास (किया)।

परन्तु यहाँ तो कहते हैं, जिस ज्ञान में ज्ञानमय जो ज्ञान हो, वह विनयवन्त पुरुष को ज्ञानी का विनय करने से हुआ, वह तो लक्ष्य बाहर का था। परन्तु उसने कहा, धर्मात्मा ने कहा, भगवान! तेरी चीज़ अन्दर परमात्मस्वरूप है। उसको जान। ऐसा उसने कहा तो उसका लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञानपरिणाम में आत्मा त्रिकाल शुद्ध स्वरूप है, ऐसा लक्ष्य किया तो उसको ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! भगवान जाने ये सब क्या होगा? कुछ दया पालने को कहे, व्रत पालने को कहे, भक्ति करने को कहे, चलो! दो बार, पाँच बार शत्रुंजय की यात्रा कर आओ। भगवान! वह तो बाहर की चीज़ है। बाहर की चीज़ का विनय आदि करने से तो शुभ विकल्प पुण्य है, शुभराग है; वह धर्म नहीं।

अपना निज आत्मा सिद्धक्षेत्र आत्मा पड़ा है। आहाहा! असंख्यप्रदेशी, अनन्त गुण का सिद्धस्वरूप ध्रुव, नित्य जो ज्ञान में नित्य लक्ष्य में आवे, उस ज्ञान को ज्ञान कहते हैं। नवनीतभाई! बात तो ऐसी है, भाई! आहाहा! जगत की विद्या तो व्यर्थ एक ओर पड़ी रही। लेकिन यह शास्त्र की विद्या, शास्त्र सीखे फिर भी जिस शास्त्र में से परलक्ष्य सीखे, वह ज्ञान नहीं। आहाहा!

गुरु ने ऐसा बताया। भाई! ऐसा कहा न? ज्ञानस्वभाव चैतन्यबिम्ब तो अपने में है। जैसे शक्कर मिठास का पिण्ड है, अफीम कड़वाहट का दल है, कलई सफेदी का तत्त्व है; वैसे भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का तत्त्व है। आहाहा! समझ में आया? पुरुष का विनय करके ज्ञान पाया, उसका अर्थ क्या हुआ? वह ज्ञान किसको कहते हैं? कि जो ज्ञान अपने नित्य ध्रुव स्वरूप परमात्मा को लक्ष्य करे, उसे ज्ञान कहते हैं। (जिसका) विनय किया, उस पुरुष ने भी ऐसा कहा था, भाई! क्या कहा? जिसका विनय किया, उसने ऐसा

कहा था। समझ में आया? जिसके पास ज्ञान था, आत्मा का भान था, रागादि मैं नहीं, पुण्यादि मैं नहीं। अरे! तो ये पुत्र-पुत्री तो कहाँ रहते हैं? उसके घर में रहते हैं। उसका द्रव्य होकर रहा है कि तेरी पर्याय में आकर रहा है? ऐई! शोभालालजी! यह तो भाई, ऊँचे दर्जे की बात है। ऊँचा नहीं, पहले सत् के एक अंक की बात है। आहाहा! भगवान! अनन्त काल में ऐसा मनुष्यदेह मिला। उसमें करने लायक तो यह है। बाकी तो सब थोथा है।

ज्ञान में भी क्या ज्ञान करना? और गुरु ने भी कैसा ज्ञान बताया? समझ में आया? गुरु ने, धर्मात्मा ने, अनादि सनातन सत्य वीतराग मार्ग चला आया है। उसमें ज्ञानी धर्मात्मा का दूसरे जीव ने विनय किया, उसको ऐसा बताया। भगवान! तेरी चीज़ अन्दर ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण पड़ी है, प्रभु! तेरी वर्तमान ज्ञान की दशा उस ओर झुका दे। उस ज्ञान को ज्ञान कहने में आता है।

मुमुक्षु : फिर स्पष्ट कीजिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से। बराबर है। वह तो दो बार, तीन बार कहे तो उसमें कोई (पुनरुक्ति दोष नहीं है)। चीज़ तो ऐसी है न।

कहते हैं... यह तो बोधपाहुड़ कुन्दकुन्दाचार्य का है। सर्वोत्कृष्ट सन्त! और उसके एक-एक शब्द के अन्दर में मर्म भरा है। कहते हैं कि '**ज्ञानं पुरुषस्य भवति**' मूल पाठ। '**ज्ञानं पुरुषस्य भवति लभते सुपुरुषोऽपि विनयसंयुक्तः**' '**सुपुरुषोऽपि**' सत्पुरुष जो यथार्थ विनय करनेवाला है। वह ज्ञान प्राप्त करता है किसके पास? सुपुरुष के पास, सत्पुरुष के पास। आहाहा! जिसको आत्मा का ज्ञान, आनन्द प्राप्त हुआ है, उस पुरुष का विनय करने से विनयवन्त प्राणी ज्ञान को प्राप्त करते हैं तो वह ज्ञान कैसे प्राप्त करते हैं? कि उस ज्ञान में ध्रुव चैतन्य का लक्ष्य करते हैं, ऐसा ज्ञान। तो गुरु ने ऐसा कहा था।

मुमुक्षु : जैसा गुरु ने कहा था, उसे उसने लक्ष्य किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा लगाया। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : विनय करने की बात आ गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गयी। परन्तु विनय के अर्थ में क्या आया? ऐसे विनय किया विकल्प से। पर का विनय विकल्प से किया। परन्तु वे सुनाते हैं कि तेरा विकल्प और एक

समय की पर्याय का लक्ष्य छोड़कर तेरा ज्ञान ऐसा बना दे कि उसमें ध्रुव लक्ष्य में आये। ऐसा ज्ञान बना दे। आहाहा! सूक्ष्म बात, भगवान! यह चीज़ ऐसी है। जिसको जन्म-मरण से छूटना है, उसकी बात है। बाकी जन्म-मरण करके कोई स्वर्ग मिले, सेठपना मिले, धूल मिले। सेठपना मिलेगा तो वापस नरक में जायेगा। ऐई! शोभालालजी! ये नृपति, बड़े नरपति, नरपति कहते हैं न? नर-नरपति। यह सब नरपति-नरकेश्वर होंगे। नरपति नरकेश्वर होगा। नरक के ईश्वर होंगे मरकर।

मुमुक्षु : राजेश्वरी नरकेश्वरी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो नरपति ऊपर लगाया जरा। नर कहते हैं न? नर अर्थात् मनुष्य। मनुष्य का पति। धूल में भी पति नहीं है। अपने स्वरूप का पति है, पर का पति नहीं है। परन्तु मैं नरपति ऐसा अपने में अभिमान करते हैं वह नरकेश्वर, वहाँ नीचे नरक का ईश्वर होगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : आप डराते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : डराते नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। ऐई! पण्डितजी! वस्तु की ऐसी मर्यादा है कि अपना निजानन्द सहजानन्द समान स्वरूप प्रभु, पूर्ण गुण का पिण्ड ऐसा जो दृष्टि में लेते नहीं, ज्ञान में ज्ञेय बनाते नहीं और उस ज्ञान में दूसरा ज्ञेय बनाते हैं, दूसरे की दृष्टि करते हैं, वह संसार में भटकनेवाला प्राणी है।

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ ने जो कहा, ऐसा गणधर ने जाना, ऐसा सन्तों ने अनुभव किया। उस सन्तों का विनय करके उसने ऐसा पाया कि भगवान! तेरी ध्रुव चीज़ मुझसे भी भिन्न है। तुम हमारा विनय करते हो तो हमारे विनय से तुझे ज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी। जिसको विनय हुआ, वह ऐसा कहते हैं। भाई! ऐसा हुआ न? **उस ज्ञान द्वारा ही शुद्ध आत्मा का स्वरूप जाना जाता है,...** उसमें तो बड़ा मर्म है। यह कोई नोबेल नहीं है कि कहानी बनाये और लिख दे। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, दो लाईन में कितना (भरा है), देखो! **ज्ञान पुरुष के होता है...** पहला शब्द है। पुरुष अर्थात् आत्मा। आत्मा को ज्ञान (होता है)। क्योंकि आत्मा में ज्ञान है। जड़ में ज्ञान नहीं। राग में ज्ञान नहीं। आत्मा अर्थात् पुरुष को ज्ञान होता है। ज्ञान अर्थात्

आत्मा में ज्ञान है। स्वभाव है त्रिकाल सर्वज्ञ स्वभाव। **और पुरुष ही विनयवान...,** और अर्थात् अथवा **पुरुष ही विनयवान होवे...** जो पुरुष विनयवान हो, नरम हो, अपनी चीज़ पाने को जिसका हृदय कोमल हुआ है, अपनी चीज़ पाने को पर्याय में कोमलता, कुणप होती है, वह पुरुष ही ज्ञान को पाता है। कैसा वह ज्ञान पुरुष का विनय करने से पाया। कैसा? कि **उस ज्ञान द्वारा ही शुद्ध आत्मा का स्वरूप जाना जाता है,...** आहाहा! **इसलिए विशेष ज्ञानियों के विनय द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करनी, क्योंकि निज शुद्ध स्वरूप को जानकर मोक्ष प्राप्त किया जाता है।** देखो! 'लाख बात की बात...' वह छहढाला में आता है।

मुमुक्षु : 'निश्चय उर लाओ। छोड़ी सकल जगदंदफंद निज आतम उर ध्यावो।'

पूज्य गुरुदेवश्री : लाख बात की बात क्या, अनन्त बात की बात। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण सत्त्व-तत्त्व आनन्दकन्द धाम स्वरूप आत्मा (विराजमान है)। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम, बीजुं कहिये केटलुं कर विचार तो पाम।' देखो! यह श्रीमद् का वाक्य है। श्रीमद् का सुना है? श्रीमद् राजचन्द्र। श्रीमद् राजचन्द्र हुए न? नाम सुना है?

मुमुक्षु : हमने तो गाँधीजी का नाम सुना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाँधीजी उसके पास गये थे। गाँधीजी ख्रिस्ती होनेवाले थे न, ख्रिस्ती होनेवाले थे। विलायत से मुम्बई आये तो बात किया क्रमसर ऐसे। ओहोहो! दो घण्टे तक गाँधीजी ने अपनी सब बात श्रीमद् को कही। तो जैसे दो घण्टे बात किया क्रमसर ऐसे दूसरे दो घण्टे तक फिर श्रीमद् ने बात कही। आहाहा! हिन्दुस्तान में इतना ज्ञान है। श्रीमद्जी की २२-२३ साल की छोटी उम्र थी। ऊपर ख्रिस्ती गोरे होते हैं न, परन्तु उसकी चमड़ी धूल जैसी होती है। गोरा कहते हैं न? उसकी चमड़ी मुलायम नहीं होती। लेकिन बड़ी टोपी पहने। ओहोहो! बहुत प्रभाव हो गया था। ईसाई से प्रभावित हो गये थे। यहाँ मुम्बई जब आये तब रेवाशंकरभाई की दुकान में थे। रेवाशंकर। जगजीवन रेवाशंकर की दुकान में थे। आये और दो घण्टे बात की, ऐसा, वैसा... श्रीमद् ने क्रमसर, जैसे पहले से आखिर तक जहाँ-जहाँ जैसी बात थी, वैसी ही बात कही। ओहो! मैंने दो घण्टे तक बात

कही तो उसने बिना दीखे वैसी की वैसी ! ऐसी बुद्धि यहाँ ! हिन्दुस्तान में ऐसा बुद्धिवाला आत्मा है !! वह तो शतावधानी थे। शतावधानी तो अज्ञानी भी होता है।

मुमुक्षु : एक बार सुने तो याद रह जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत... शतावधानी तो वह वैष्णव का था न ? क्या कहते हैं ? वैष्णव के बड़े होते हैं न ? गटुलालजी। गटुलालजी बड़े संन्यासी। आँख से अन्ध थे। आँखे अन्ध। लेकिन सौ अवधान करते थे। साबित किया था न ? वह कोई चीज़ नहीं। समझ में आया ? गटुलाल थे। आँख से अन्धे थे, दो स्त्री से ब्याह किया था। उसको क्या कहते हैं ? गोसाई-गोसाई। वैष्णव के गोसाई। ... बड़ा था। मुम्बई में थे। श्रीमद् के समय में थे। श्रीमद् की मौजूदगी में। श्रीमद् तो १९५७ में गुजर गये। १९५७। उस समय वहाँ गोसाई थे। गोसाई। आँख से अन्ध थे। लेकिन बुद्धि इतनी थी, था मिथ्यादृष्टि। वस्तु की कुछ खबर नहीं। लेकिन विकास इतना था कि एक घण्टे में सौ बात करे तो सारी बात याद रह जाये और कह दे। वह कोई चीज़ नहीं।

एक सुन्दरमुनि श्वेताम्बर हुए हैं, हजार वर्ष पहले। दो हजार अवधान करते थे। दो हजार अवधान। शास्त्र में आता है। 'अध्यात्म कल्पद्रुम ... पहला पुस्तक मुझे दुकान पर मिला था। अध्यात्म कल्पद्रुम। पालेज में दुकान थी न ? वहाँ पहला पुस्तक वह मिला था। (संवत) १९६३ के वर्ष, ६४ के वर्ष। संवत् ६३-६४। १९६३-६४। अध्यात्म कल्पद्रुम। बहुत वैराग्य, तत्त्वदृष्टि नहीं, दृष्टि झूठी। वह पहले मिला था। तो वह तो दो हजार अवधान करते थे। उसमें क्या हुआ ? उसकी दृष्टि विपरीत थी। उसको भान नहीं था।

यह तत्त्व तो कहता हैं कि जिस ज्ञान में भगवान ध्रुव चैतन्य पकड़ में आ जाये, भगवान आत्मा पवित्र पूर्णस्वरूप, जिसमें अनन्त-अनन्त सिद्धपर्याय जिसमें पड़ी है। सिद्ध से भी मैं अधिक हूँ। सिद्ध तो एक समय की पर्याय है, मोक्ष तो एक समय की अवस्था है। ऐसी-ऐसी अनन्त अवस्था जिसमें से प्राप्त होती है, ऐसी अवस्थावान मैं आत्मा हूँ। आहाहा ! लोगों को आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं। ऐसा आत्मा... कहते हैं कि जिस ज्ञान में ध्रुव (लक्ष्य में आवे)। राग लक्ष्य में आवे वह नहीं, निमित्त भी नहीं, पर्याय भी नहीं। आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली कोई... ! समझ में आया ? सारा चैतन्य का दल। समझ में आया ?

आईना है न ? आईना। शीशा। दर्पण, आईना। उसमें जो दिखता है, वह तो उसकी एक समय की दशा में दिखता है। एक समय की स्वच्छता की दशा में सारी दिशा दिखे। पानी दिखे, यह दिखे, मकान दिखे। परन्तु एक समय की दशा बिना का जो दर्पण का दल जो है, वह एक समय की दशा में आता नहीं। समझ में आया ? दर्पण का सारा दल पड़ा है। एक समय की स्वच्छता की अवस्था में उसमें जो प्रतिबिम्ब दिखता है, वह तो एक समय की दर्पण की अवस्था है। एक समय की। समय किसको कहते हैं ? 'क' बोलने में असंख्य समय जाता है। आहाहा ! उस एक समय में स्वच्छता की पर्याय दिखती है, वह तो एक समय की दशा है। वह नहीं। दशा के पीछे दर्पण का दल है वह दर्पण का मूल स्वरूप है। समझ में आया ? आहाहा ! कठिन बातें।

प्रथम ही सत्य की यह बात है। सत्य का शरण लेना हो और असत्य का नाश करना हो, जन्म-मरण के दुःख का, उकताहट का, आकुलता का व्यय-नाश करना हो और आत्मा की शान्ति की शुरुआत करनी हो तो इस रास्ते से होती है। दूसरा कोई रास्ता है नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

क्या कहते हैं ? देखो ! आत्मा में ज्ञान है। भगवान तो ज्ञानस्वरूप ही है। चैतन्यदल है। अपनी वर्तमान प्रगट दशा में, वर्तमान प्रगट क्षयोपशम अर्थात् शास्त्र भाषा क्षयोपशम है, परन्तु प्रगट अवस्था में जो यह सब दिखने में आता है। अरे ! एक समय की पर्याय में छह द्रव्य जानने में आते हैं, तो भी एक समय की पर्याय आत्मा नहीं। आहाहा ! एक समय की पर्याय-हालत के पीछे सारा दल चैतन्य का बिम्ब पड़ा है, उसका यदि लक्ष्य करे तो उसको ज्ञान कहने में आता है। आहाहा ! समझ में आया ? और गुरु ने कहा था। आया न ? विनय करके ज्ञान प्राप्त किया और उस ज्ञान का ध्येय-ध्रुव को पकड़ा। तो ज्ञानी ने ऐसा कहा था—गुरु ने ऐसा कहा था कि अरे ! आत्मा ! तेरी वर्तमान ज्ञान की दशा, यह दशा इसको कहे कि दशावान त्रिकाली द्रव्य को पकड़े तो उसे ज्ञान की दशा कहें। ऐई ! वजुभाई ! मार्ग तो यह है, भाई ! भगवान का कहा मार्ग यह है। आहाहा ! अनभ्यास हो, उसको लगे कि परन्तु यह क्या है बड़े पर्वत जैसा ? बापू ! अभ्यास नहीं है, भगवान ! अभ्यास से आत्मा समझ में आता है। अभ्यास नहीं, शब्द सुने नहीं। आहाहा ! माथापच्ची करके करके मर गया।

यहाँ तो कहते हैं कि जो ज्ञान राग को लक्ष्य करे, जो ज्ञान निमित्त को लक्ष्य करे, जो ज्ञान पर्याय को लक्ष्य करे, वह ज्ञान नहीं। समझ में आया? आहाहा! भगवान! यह तो मोक्ष के मार्ग की बात है। अनन्त काल के दु:ख का अन्त और जब से आनन्द-आनन्द, धर्म का आनन्द प्रगट हुआ, वह आनन्द अनन्त काल रहेगा। अनन्त काल सादि-अनन्त। आनन्द... आनन्द... आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द। उसका मार्ग तो कोई अलौकिक होता है न? समझ में आया?

कहते हैं **विनय द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करनी, क्योंकि निज शुद्ध स्वरूप को जानकर मोक्ष प्राप्त किया जाता है।** आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब प्रभु पवित्रता का कन्द, रसकन्द, दल है, उसकी दृष्टि करे, उसको ज्ञेय बनावे, वह ज्ञान और वह ज्ञान शुद्ध का ज्ञान हुआ। वह क्रमश: एकाग्र होकर मोक्ष पायेगा। बीच में राग की क्रिया आती है, वह कोई मोक्ष का मार्ग नहीं। समझ में आया? ऐई! प्रकाशदासजी! देखो! इसको ज्ञान कहते हैं। ये पुस्तक पढ़ लिये और बातें करे, वह ज्ञान नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिस ज्ञान ने भगवान को देखा अर्थात् आत्मा पर बाण चलाया कि ये भगवान आत्मा, (वह ज्ञान है)। समझ में आया?

निज शुद्ध स्वरूप को जानकर... बस। ज्ञान इसको कहिये कि जिस ज्ञान में निज स्वरूप जानने में आवे। एक बात। आहाहा! **निज शुद्ध स्वरूप को जानकर मोक्ष प्राप्त किया जाता है।** स्वरूप पर दृष्टि (करके) ज्ञेय का ज्ञान किया-स्वज्ञेय का ज्ञान (हुआ), वह ज्ञान। और उस ज्ञान ने स्वज्ञेय का ज्ञान किया तो उसमें एकाग्र हुआ। एकाग्र होते... होते... होते... मोक्ष हो जायेगा। केवलज्ञान परिपूर्ण (प्राप्त होगा)। क्यों? कि केवलज्ञानादि पर्याय जो अनन्त-अनन्त है। केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं। एक समय की अवस्था है। केवलज्ञान एक समय की दशा है। तीन काल-तीन लोक जाने, वह भी एक समय की दशा। ऐसी अनन्त अवस्था नयी... नयी... नयी... केवलज्ञान की परमात्मा को उत्पन्न होती है। वैसी अनन्त पर्याय चैतन्य द्रव्य शक्ति में, स्वभाव में पड़ी है। ज्ञान ने उसको कब्जे में ले लिया। मैं परिपूर्ण केवलज्ञान का कन्द आत्मा हूँ। आहाहा! समझ में आया? ऐसी ज्ञान की पर्याय उसको ज्ञान कहा कि सारा चैतन्य द्रव्य-वस्तु है, उसको प्रतीति में लिया, ज्ञेय में लिया, उसका ज्ञान किया। जिसका ज्ञान है, वह परिपूर्ण ज्ञेय है। ऐसा ज्ञान

करने से तेरी सिद्धपद की अनन्त पर्याय द्रव्य में पड़ी है। उसको ज्ञान के कब्जे में कर लिया। बस, कब्जे में ले लिया उसमें से केवलज्ञान निकलकर आयेगा। समझ में आया? बहुत कठिन बातें हैं, भाई!

'ऐसा मार्ग वीतरागनो कहा श्री वीतराग।' समझ में आया कुछ? समवसरण के मध्य में श्री सीमन्धर भगवान, (वे) वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। हाथ करते हैं वहाँ है भगवान को हाथ करते हैं तो भगवान हैं! भगवन सीधे विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में, जमीन से ऊपर पाँच सौ धनुष (देह), करोड़पूर्व आयुष्य, केवलज्ञान। अरबों वर्ष से केवलज्ञानी हैं और अरबों वर्ष तक केवलज्ञान रहेगा। बाद में मुक्ति होगी। समझ में आया? यह भगवान के समवसरण में भगवान ने ऐसा कहा।

भगवान! ज्ञान तो उसको कहें और ज्ञानी धर्मात्मा ने भी ऐसा उसको ज्ञान कहा था कि जो ज्ञान उसको द्रव्य के लक्ष्य से उत्पन्न हो अथवा जो ज्ञान द्रव्य को पकड़े... आहाहा! ... क्या करें? आहाहा! बाहर में पूरा परिवर्तन हो गया। मार्ग की पूरी लाईन बदल गयी। इसलिए लोगों को ऐसा लगता है कि यह क्या है? यह नया है। नया नहीं है, भगवान! तेरे घर में, तुझमें है। तुझमें है, उसकी बात चलती है। समझ में आया?

यथार्थ सूत्र पद से चिगा हो,... लो! **विनयरहित हो, यथार्थ सूत्र पद से चिगा हो,...** जिस शास्त्र में भगवान का सिद्धान्त था, सर्वज्ञ का मार्ग था, उससे भ्रष्ट हुआ तो उसका ज्ञान ध्येय को पकड़ने से भी भ्रष्ट हुआ। समझ में आया? आहाहा! बात ऐसी है, परन्तु क्या करे? सम्प्रदाय को मानकर बैठे और सम्प्रदाय तो अपना ही पोषण करता है। वरना मार्ग चले कैसे? यहाँ तो यह कहते हैं, भगवान! जिस ज्ञान में ज्ञेय पकड़ने में आता है ऐसा ज्ञान, जो शास्त्र में चला आया था, उससे जो उस काल में भ्रष्ट हुए, उनको सच्चा ज्ञान रहा नहीं। **भ्रष्ट हो गया हो, उसका निषेध जानना।**

गाथा-२३

आगे इसी को दृढ़ करते हैं –

मइधणुहं जस्स थिरं सुदगुण बाणा सुअत्थि रयणत्तं।
परमत्थबद्धलक्खो णवि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स।।२३।।

मतिधनुर्यस्य स्थिरं श्रुतं गुणः बाणाः सुसंति रत्नत्रयं।
परमार्थबद्धलक्ष्यः नापि स्खलति मोक्षमार्गस्य।।२३।।

जिसके सुथिर मति चाप श्रुत डोरी रतनत्रय बाण भी।
परमार्थ बद्ध सुलक्ष्य शिव-मग वह कभी चूके नहीं।।२३।।

_अर्थ_ – जिस मुनि के मतिज्ञानरूप धनुष स्थिर हो, श्रुतज्ञानरूप गुण अर्थात् प्रत्यंचा हो, रत्नत्रयरूप उत्तम बाण हो और परमार्थस्वरूप निजशुद्धात्मस्वरूप का सम्बन्धरूप लक्ष्य हो, वह मुनि मोक्षमार्ग को नहीं चूकता है।

_भावार्थ_ – धनुष की सब सामग्री यथावत् मिले तब निशाना नहीं चूकता है, वैसे ही मुनि के मोक्षमार्ग की यथावत् सामग्री मिले तब मोक्षमार्ग से भ्रष्ट नहीं होता है। उसके साधन से मोक्ष को प्राप्त होता है। यह ज्ञान का माहात्म्य है, इसलिए जिनागम के अनुसार सत्यार्थ ज्ञानियों का विनय करके ज्ञान का साधन करना।।२३।।

इस प्रकार ज्ञान का निरूपण किया।

गाथा-२३ पर प्रवचन

आगे इसी को दृढ़ करते हैं – इस बात को विशेष दृढ़ कहते हैं।

मइधणुहं जस्स थिरं सुदगुण बाणा सुअत्थि रयणत्तं।
परमत्थबद्धलक्खो णवि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स।।२३।।

यह श्लोक तो उसमें है। श्लोक तो है उसमें। श्लोक का अर्थ साधारण शब्दार्थ। परन्तु उसमें मूल श्लोक है न?

अर्थ – जिस मुनि के... धर्मात्मा के **मतिज्ञानरूप धनुष स्थिर हो,...** क्या कहते हैं ? मतिज्ञान उसको कहते हैं कि जो ज्ञान स्व को लक्ष्य में ले। अवग्रह। जैसे दूसरी चीज़ को अवग्रह करता है न ? वैसे मतिज्ञान अपना अवग्रह करता है। अव-ग्रह-निश्चय से पकड़। मैं शुद्ध ज्ञायक हूँ, ऐसा मतिज्ञान में आया, वह मतिज्ञान में अवग्रह हुआ। ईहा-विचारणा हुई। अवाय-निर्णय हुआ, धारणा हुई कि मैं तो शुद्ध ज्ञायक चिदानन्द ध्रुव हूँ। ऐसे मतिज्ञान को यहाँ सम्यक् मतिज्ञान कहने में आता है। समझ में आया ? भाई ! यह सब पैसेवाले, बाहर की बुद्धिवाले...

मुमुक्षु : समझने जैसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझने जैसा है। ऐई ! शोभालालजी ! प्रशंसा भी उसकी होती है।

मुमुक्षु : ....उससे लाभ क्या हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी कोई बात करते थे न ? कोई बात करता था कि, ख्याति तो मिली न ? शान्तिलाल खुशाल है न ? गोवा में। सुना है न, भैया ? शान्तिलाल खुशाल है। दो अरब चालीस करोड़ पैसे (रुपये) हैं। इतनी ख्याति तो मिली न ? ऐसा कहता था।

मुमुक्षु : उससे क्या मिला ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे ममता मिली। कल मैं बात करता था तो एक ने कहा, उसको ख्याति तो मिली। ख्याति मिलने से उसकी आत्मा में क्या हुआ ? समझ में आया ? वह तो पूर्व पुण्य के परमाणु पड़े हो, ...साता पड़ी हो तो उसका पाक आवे, ऐसा संयोग आ जाता है। वह होई होशियारी से आता है या अपनी चतुराई से आता है, इस बात में कोई दम नहीं है।

मुमुक्षु : पहचानते थे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई जानते हैं या नहीं ? धन्नालालजी ! है ? बहुत बुद्धिवाला हो और पाँच सौ रुपया कमाना मुश्किल पड़ता है। यह तो खबर है न तुमको ? और बुद्धि का बारदान हम तो कहते हैं। बारदान समझे ? खाली बक्सा। और महीने के लाख-लाख पैदा करे। महीने का ! उसमें है क्या ? वह तो पूर्व के पुण्य का परमाणु का दल पड़ा हो, पाक में आ जाये तो देखने में आता है। उसमें तेरे पास क्या आया ? तेरे पास तो ममता आयी।

समझ में आया? आहाहा! तेरी लक्ष्मी अन्दर में, अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की लक्ष्मी पड़ी है न, नाथ! उसकी रक्षा तूने कभी की नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : उसकी तो खबर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं, इसलिए तो यहाँ ज्ञान करते हैं।

मतिज्ञान में पहले पकड़ ले, ऐसा कहते हैं। यह आत्मा शुद्ध अखण्ड ज्ञायक है, ऐसा अवग्रह-पकड़ और उसमें विचार कर कि यह पूर्ण है। निर्णय कर कि यह पूर्ण वस्तु अखण्ड है और धारण कर ले। ऐसे मतिज्ञान का मूल, यहाँ मतिज्ञान धनुष है, धनुष है। समझ में आया? अरे! आठ वर्ष की लड़की भी सम्यग्दर्शन पा सकती है। उसमें क्या? आत्मा है या नहीं? शरीर जड़ है, मिट्टी है, धूल है। शरीर के साथ सम्बन्ध क्या है? आत्मा लड़की है? आत्मा पुरुष है? आत्मा नपुंसक है? आत्मा गोरा-काला है? वह तो भिन्न चीज़ है। यह सब तो जड़ की अवस्था है। समझ में आया?

भगवान आत्मा... चाहे तो आठ साल की लड़की हो परन्तु सम्यग्दर्शन कहते हैं ऐसा पा सकती है। मतिज्ञान में आत्मा पकड़ करके श्रुतज्ञान की डोरी पकड़ करके त्रिरत्नत्रय का लक्ष्य करने से ध्रुवधारा है, उसमें दृष्टि जाती है। आहाहा! समझ में आया? बहुत पढ़ा-लिखा भी न हो, उसमें क्या है? यह पढ़ना, वह पढ़ लिया। ऐई! पोपटभाई! बात तो ऐसी है। तोता उड़े। देखो! नली में तोता होता है या नहीं?

मुमुक्षु : यह तो पिंजरे में से तोता....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह तो नली (भूंगणी) में तोता होता है न? नली होती है न नली? डोरी-रस्सी, रस्सी। पीतल की नली होती है न? नली होती है न? तो ऐसे उसको पकड़ ली। मैं उल्टा हो गया। परन्तु तूने पकड़ की है, इसलिए उल्टा हो गया है। छोड़ दे, उड़ जा। ऐई! पोपटभाई! ऐसा पोपट नाम है। नली में ऐसा पकड़ा गया। नली तो रस्सी में ऐसी-बैसी थी। बड़ी रस्सी थी तो लोग बहुत नली रखते हैं। एक, दो, चार, पाँच नली। तो उसमें तोता आया, बैठा। बैठा तो ऐसा हो गया। हाय... हाय... मैं पकड़ा गया। मैं पकड़ा गया और मैं उल्टा हो गया।

मुमुक्षु : ऐसा मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा मानता है। उल्टा नहीं है। छोड़ दे। सुलटा है, छूट जायेगा।

वैसे यहाँ कहते हैं कि पुण्य और पाप का विकल्प और एक समय की पर्याय की पकड़ की है तो उल्टा हो गया है। समझ में आया? आहाहा! पोपट तन पींजर नहीं तारूँ.... ये कुछ तेरा नहीं। यह तो धूल, मिट्टी है। यह तो रोटी में से बना है। माता के पेट में से तो इतना निकला था। बाकी बना कहाँ से? दाल, चावल, रोटी, सब्जी, दूध के तत्त्व से बन गया। आत्मा है? है तो माटी है।

मुमुक्षु : अनाज में से यह होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो कहाँ से हुआ? ऐसा कहाँ से हुआ? तब तो ऊंगली छोटी थी और हाथ भी छोटा था। दाल, चावल, चाय, पानी ये सब अन्दर आया। भगवान आत्मा तो उससे भिन्न है। वह बढ़ा भी नहीं और उससे पुष्ट हुआ भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? बात तो बहुत अच्छी सरल है लेकिन लोगों को सुनने नहीं मिली। और ये करना, सब करना, व्रत करना, पूजा करना, उसमें राग मन्द हो तो मिथ्यात्वसहित पुण्य होता है।

मुमुक्षु : धर्म कितना होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : अधर्म पूरा होवे। समझ में आया?

भगवान! क्या कहें? आहाहा! तेरी विपरीत मान्यता है, ऐसा कहने में लज्जा आती है। तुझे शोभा नहीं देता, नाथ! आहाहा! तुम कौन हो? समझ में आया? बाप लड़का को कहे न? भाई! तुम कौन हो? हमारे खानदान घर में जन्म लिया है, भाई! असभ्य व्यक्ति के घर जाना तुझे शोभा नहीं देता, नाथ! अपने कौन है? तेरी माँ लगती है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

एक चाम्पावाले भाई थे। आपने सुना है? जेतपुर है न? जेतपुर में एक चाम्पावाला काठी हुआ है, काठी। चाम्पावाला। परन्तु पुण्यप्रकृति ऐसी लेकर आया था कि उसकी आँखें... जब से जन्मा और एक वर्ष का हुआ। एक-डेढ़ वर्ष का हुआ, तो उसकी माता की गोद में सोया था। बहुत पुण्यशाली शरीर और चतुर था। जेतपुर। जेतपुर है न जूनागढ़ के पास। जूनागढ़ के पास। उसकी माता की गोद में था। बड़ा चतुर था, पुण्यशाली था। उसके पिताजी ने उसकी माता को संकेत किया। लड़के की आँख खुली थी। माता को

संकेत किया पिताजी ने तो आँखें ऐसे कर दी। बहुत चतुर छोटी उम्र में। बहुत पुण्यशाली था। क्या मालूम कहाँ से आया था। ऐसे किया। समझ में आया? उसके पिताजी ने माता के साथ मजाक किया और वह तो सो रहा था छोटी उम्र में। उसकी माता को मालूम पड़ा कि अरे...! चांपा। .... लड़के को ख्याल आ गया। अन्दर जाकर जलकर मर गयी। जलकर मर गयी। अरे! मेरा बेटा ऐसा, उसने हमारा मजाक देख लिया। मश्करी समझे न? मजाक। जल गयी। समझ में आया? और कोई राजा को खबर पड़ी। उसको कुँवर नहीं था। दूसरे गाँव का काठी (था)। कुँवर नहीं था। लड़का नहीं था। तो उसका... क्या कहते हैं? गढ़वी-चारण होता है न? चारण-बारोट जैसा होता है। गढ़वी। वह गढ़वी यहाँ उसके पास आया। बहुत खुश कर दिया। उसको-चांपा के पिताजी को खुश कर दिया। चांपा तो छोटा था, उसके पिताजी को खुश कर दिया। माँ तो जलकर मर गयी थी। खुश कर दिया। गढ़वी को कहते हैं, माँगो... माँगो। अरे! आपा! काठी में आपा कहते हैं। आपा! मेरी माँग नहीं स्वीकार करेंगे। उसने कहा, माँगो। मैं ऐसा माँगता हूँ कि हमारे राज में तुम आओ। हमारे राज में तुम आओ। और तुम्हारी काठयाणी से शादी करवा दें। और हमें चांपा जैसा पुत्र चाहिए। अब क्या करना? ऐई! गढ़वी ने ऐसी माँग की। वचन दिया था। काठी वचन के बहुत (पक्के होते हैं)। वचन देने के बाद फिरते नहीं। साथ में गये। उसके साथ एक गाँव चले। समझते हैं या नहीं? ऐई! शोभालालजी!

मुमुक्षु : विवाह किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : विवाह नहीं किया। अभी तो साथ-साथ गये। चारण जो था न? क्या कहते हैं? गढ़वी। उसने वचन नहीं लिया था कि मेरे राज में आओ। चलो, भाई! पिता का वचन था तो गये। बाद में कहते हैं कि, ऐई! गढ़वी! उसे गढ़वी कहते हैं। सेठ कहते हैं न? इस प्रकार चारण कहो-गढ़वी कहो। ऐई! मुझे ले जाकर तुम क्या करोगे? उसने कहा आपके साथ काठियाणी की शादी करवायेंगे। मुझे चांपा जैसा पुत्र (चाहिए)। अरे! गढ़वी! वह स्त्री चांपा की माँ कहाँ से लाओगे? चांपा की माँ, जरा नजर घुमायी तो जलकर मर गयी, ऐसी कहाँ से लाओगे? और उसकी कोख में चांपा ने जन्म लिया, वह बोरड़ी में नहीं खाते। केरी न होवे। बोरडी समझे न? बेर... बेर। बेर के पेड़ पर आम नहीं आते। मुझे वहाँ ले जाकर तुम क्या करोगे? वचन दिया था, इसलिए थोड़ा चले। बेर के पेड़ पर

आम नहीं पकते। चांपा की माँ कहाँ से लायेगा तू ? और चांपा जैसा लड़का उसकी कोख से जन्मता है।

वैसे यहाँ कहते हैं कि आत्मा तीन लोक का नाथ, जब जागृत होता है, तब उसे लगता है कि ओहो ! मैं तो परमात्मा हूँ। मेरी नजर आत्मा पर लगी, दृष्टि गयी तो मैं परमात्मा हूँ। आहाहा ! समझ में आया कुछ ? ऐई ! शोभालालजी ! मेरे पास कोई पामरता रह सकती नहीं। ऐसा भगवान आत्मा... कहते हैं कि ऐसा ज्ञान जिसके पास मिले और उस ज्ञान में आत्मा को ध्येय बना ले, उसको ज्ञान कहते हैं। आहाहा ! ऐसा दूसरा कहाँ से लाये ? राग और पुण्य में से आत्मा पकता है ? दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प में आत्मा पकता है ? बेर के पेड़ पर आम पकते हैं ?

भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प के पीछे और पुण्य-पाप के विकल्प का ज्ञान करने की एक समय की पर्याय के पीछे ध्रुव चैतन्यदल भगवान सारा पड़ा है, उसको ज्ञान ज्ञेय बनाये तो समाप्त हो गया। वह संसार से छूट गया और मुक्ति होने में (अब देर नहीं है)। दूज हुई तो पूर्णिमा होगी ही होगी। समझे न भैया ? दूज होती है न दूज ? चन्द्रमा की दूज होती है, उसमें से पूर्णिमा होगी, होगी और होगी। दूज वापस उसके पेट में मुड़ जाये, ऐसा बने नहीं। वैसे एक बार भी सम्यग्ज्ञान की पर्याय ने अपने आत्मा को पकड़ लिया, उसका नाम ज्ञान। यह सम्यग्दर्शनरूपी दूज हुई, अब केवलज्ञान लेकर रहेगा। समझ में आया ? ऐसी बातें हैं यहाँ तो ! ऐई ! पोपटभाई ! ऐसा ऊंधा पड़ा है न ! एक समय की पर्याय को पकड़कर खड़ा है, राग को पकड़कर खड़ा है तो सारी चीज़ है, वह दृष्टि में आती नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

मतिज्ञानरूप धनुष स्थिर हो,... हों ! जैसा भगवान आत्मा ध्रुव चैतन्य ज्ञायक है। उसकी अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा स्थिर है, दृढ़ है। ऐसा मतिज्ञान है। **श्रुतज्ञानरूप गुण अर्थात् प्रत्यंचा...** प्रत्यंचा अर्थात् डोरी। डोरी होती है न ? डोरी होती है न ? धनुष है ऐसा और उसकी डोरी है। कौन-सी डोरी ? श्रुतज्ञानरूपी। भाषा देखो ! क्योंकि मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान जब अन्तर में होता है तो आत्मा में समाधि, शान्ति और आनन्द आता है। आहाहा ! कठिन बात है। संक्षेप में ऐसी साधारण भाषा में भी भगवान को बता दिया है। ऐई ! ज्ञानचन्दजी ! आहाहा ! ऐसी बात है।

ज्ञान की पर्याय है। अवस्था के पाँच भेद हैं। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्याय और केवल्य। पर्याय में। तो जो मतिज्ञान है, वह कैसा है? कि जिसको आत्मा ने पकड़ा है। अवग्रह, धारणा करके। ऐसा मतिज्ञान जिसका स्थिर है, स्थिर है। अपनी ओर लक्ष्य करके उत्पन्न हुआ ऐसा मतिज्ञान स्थिर है और श्रुतज्ञानरूप डोरी है। बाण यहाँ रखते हैं। वैसे श्रुतज्ञान में जहाँ एकाकार द्रव्य में हुआ तो कहते हैं कि उसमें समाधि प्राप्त हुई। समाधि अर्थात् आनन्द की प्राप्ति हुई। जिसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति की प्राप्ति हुई। आहाहा!

श्रुतज्ञान अर्थात् डोरी। **रत्नत्रयरूप उत्तम बाण हो...** देखो! उसमें मतिज्ञान धनुष, श्रुतज्ञान डोरी और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र बाण। बाण मारा ध्रुव पर। समझ में आया? **मतिज्ञानरूप धनुष स्थिर हो,...** स्थिर है न? मतिज्ञान ऐसा लथर-पथर नहीं। लथर-पथर को क्या कहते हैं समझे? ढीला-फीला नहीं। बाण भी सोने का। बाण होता है, वह रत्न का होता है। चक्रवर्ती आदि के बाण रत्न और हीरे का होता है। अरबों रुपये का बाण होता है। डोरी भी बहुत ऊँची होती है। और बाण।

आता है न भरत चक्रवर्ती का बाण। भरत चक्रवर्ती जब साधने जाते हैं न? भरत चक्रवर्ती भगवान के पुत्र। चक्रवर्ती जब थे, तब समुद्र में गये थे। मगध देव था। समुद्र में आगे उसका भवन था। वहाँ पहुँच सके नहीं। थोड़ी दूर तक समुद्र में रथ चला। हाथ में धनुष लेकर नाम लिखा। मैं भरत चक्रवर्ती, ऋषभदेव का पुत्र। छह खण्ड को साधनेवाला। जो देव हो, मेरे वश हो जाओ। समुद्र से वह भवन बहुत दूर था। मागध देव का पड़ा था उसके पास। देव को लगा, ये कौन है? मेरे स्थान में यह किसका बाण आया? ऐसे जहाँ देखा तो, ओहो! यह तो चक्रवर्ती हैं। भगवान के पुत्र चक्रवर्ती रत्न हुए। उसने मुझे वश करने को कहा। चलो! मणि रत्न आदि लेकर गया (और कहा), मैं आपका दास हूँ। आपकी जमीन पर मैं बसनेवाला हूँ। ऐई!

इस प्रकार द्रव्य की जब दृष्टि हुई तो पर्याय तो उसकी दास हो गयी। समझ में आया? बादशाह परमात्मा स्वयं। बाण अन्दर में जहाँ मारा... आहाहा! 'रणे चडया रजपूत छुपे नहीं।' छुपे? ऐं.. ऐं.. करता है बनिये की तरह? रण में गये हुए राजपूत छुपे नहीं। 'चंचल नारी के नेण छुपे नहीं।' 'चन्द्र छुपे नहीं बादल छाया।' चन्द्र क्या बादल से छिपता है? अन्दर में चन्द्र दिखता है। 'दाता छुपे नहीं घेर मागण आया।' माँगनेवाला आये और

दाता छुपे नहीं ! आहाहा ! ले जा, ले जा। मेरे घर माँगनेवाला आये। अरे रे !

वैसे कहते हैं कि आत्मा जब मतिज्ञान का धनुष लेकर, श्रुतज्ञान की डोरी (प्रत्यंचा) बराबर पकड़ी और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का बाण लिया और मारा ध्रुव पर। पूरे द्रव्य का कब्जा कर लिया। समझ में आया ? चक्रवर्ती हो गया वह। वह चक्रवर्ती तो धूल का है। आहाहा !

भला बाण, हों ! रत्नत्रय समझे ? है न ? **'सुअत्थि रयणत्तं।'** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकारी पर्याय। यह उसका बाण है। समझ में आया ? बाण मारा। बाण का लक्ष्य है द्रव्य पर। **परमार्थस्वरूप निजशुद्धात्मस्वरूप का लक्ष्य हो,...** देखो ! उस बाण ने लक्ष्य क्या किया है ? शुद्धात्मस्वरूप निज। भाषा कैसी है, देखो ! समझ में आया ? **'परमत्थबद्धलक्खो'** परमार्थबद्ध लखो। परमार्थ अर्थात् अपना परमार्थ, हाँ ! समझ में आया ? इसलिए अर्थ किया न, निज शुद्धात्मस्वरूप।

भगवान परिपूर्ण ध्रुव, उसके साथ बाण ने सम्बन्ध किया। दर्शन-ज्ञान-चारित्र ने सम्बन्ध द्रव्य के साथ किया। समझ में आया ? थोड़ी सूक्ष्म बात है, परन्तु है अलौकिक। समझ में आया ? शादी में भी बाद में करते हैं न ? क्या कहते हैं ? हरखजमण (प्रीतिभोज)। तुम्हारे में क्या कहते हैं ? हमारे यहाँ हरखजमण कहते हैं।

मुमुक्षु : सज्जनगोठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : शादी के दो दिन बाद तीसरे दिन पाटी करते हैं न ? यहाँ हमारे हरखजमण कहते हैं। वैसे यहाँ भगवान हरखजमण परोसते हैं।

मुमुक्षु : प्रीतिभोज।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रीतिभोज। जो भी कहो। आहाहा !

यहाँ तो इतना शब्द पड़ा है, देखो ! **निजशुद्धात्मस्वरूप...** परमार्थस्वरूप। मूल पाठ में है न ? **'परमत्थबद्धलक्खो'**। परमार्थ ऐसा जो आत्मा, उसके साथ लक्ष्य बँध गया है। समझ में आया ? कितनी बात है, देखो तो सही ! आहाहा ! अमृत शास्त्र है। कुन्दकुन्दाचार्य। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। तीसरे नम्बर पर कुन्दकुन्दाचार्य आते हैं। यह उनकी वाणी है। आहाहा ! अरे ! भगवान ! सुन तो सही, प्रभु ! तेरी कितनी

महत्ता है! कितना तेरे में सामर्थ्य है! कितनी तुझमें लक्ष्मी परिपूर्ण अन्दर पड़ी है, तेरे निधान को खोलने की तुझे दरकार नहीं। और धूल के निधान को खोलने की दरकार। कहाँ, तुम भटकते हो? ऐई! शोभालालजी! यहाँ तो कोई मक्खन है नहीं। निज निधान।

परमार्थस्वरूप निजशुद्धात्मस्वरूप का सम्बन्धरूप लक्ष्य हो,... दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप बाण ने वहाँ सम्बन्ध किया है। सम्यग्दर्शन का लक्ष्य भी शुद्ध ध्रुव पर पड़ा है, ज्ञान भी वहाँ, चारित्र भी उसमें स्थिर है। आहाहा! गजब बात है! समझ में आया? अरे! भगवान के समवसरण में हाथी, घोड़ा, सिंह, सर्प, नाग जंगल में से चले आते थे। भगवान अभी विराजते हैं। प्रभु विराजते हैं—सीमन्धर भगवान। जंगल में से बड़े सर्प। केंचुवा, केंचुवा होते हैं न? बारीश में होते हैं न। जाड़े में होता है न पतले? तुम्हारे यहाँ दूसरा नाम होगा। केंचुवा। नाम भी अलग है। हमारे यहाँ अणसिया कहते हैं। समझ में आया? वो बड़े नाग भी केंचुवा की भाँति आते हैं और सुनते हैं। जंगल में से, हों! सिंह केशरीसिंह कुत्ते के साथ धीरे-धीरे जंगल में से समवसरण में सुनने को आते हैं। भगवान के पास आते हैं। अभी सीमन्धर भगवान के पास आते हैं। आहाहा! ऐसा विनय करके आते हैं, देखो! तो भगवान ने ऐसा सुनाया। समझ में आया? अरे! प्रभु! तेरा मतिज्ञान पक्का कर। स्वरूप का अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा करके। श्रुतज्ञान की डोरी लगा दो, मतिज्ञान का धनुष ले और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का लक्ष्य-ध्येय आत्मा पर बना दे। यह एल. एल.बी.-फेलेलबी पर नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : एल.एल.बी. तो चला गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : एल.एल.बी. तो चला गया? ये वकील तो अब धन्धा कहाँ करते हैं। वकालत का पढ़े उतना। ... आहाहा! अरे! सेठ किसको कहना? गुण सम्हाले वह सेठ, बाकी अनुचर भिखारी जानना।

अपना ध्रुव स्वभाव, उसके साथ सम्बन्ध किया लक्ष्य जाने। **वह मुनि...** धर्मात्मा **मोक्षमार्ग को नहीं चूकता है।** वह मोक्षमार्ग चूकते नहीं। जहाँ बाण मारा वहाँ जाकर मोक्ष ले लेंगे। वैसे सम्यग्दृष्टि भी गृहस्थाश्रम में होने पर भी ध्रुव पर ध्येय बनाकर जब अन्तर आत्मा को पकड़ लिया तो क्रमशः वह भी केवलज्ञान मोक्ष लेगा। भावार्थ है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५८, गाथा-२३-२४, रविवार, श्रावण शुक्ल ७, दिनांक ०९-०८-१९७०

क्या चलता है कि ज्ञान किसको कहते हैं? जो सम्यग्ज्ञान मोक्ष का मार्ग है... सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग। तो सम्यग्दर्शन भी मोक्षमार्ग है, सम्यग्ज्ञान भी है और सम्यक्चारित्र (भी है)। तो सम्यग्ज्ञान किसको कहते हैं, यह बात अभी चलती है।

भावार्थ - धनुष की सब सामग्री यथावत् मिले, तब निशाना नहीं चूकता है,... अन्दर पहले आ गया है। ज्ञान किसको कहें? कि पहले मतिज्ञान। जो मतिज्ञान में ध्रुव ज्ञायक आत्मा है, ऐसा उसमें अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा हो गयी है। समझ में आया? मतिज्ञान जो पहले हुआ, उस ज्ञान में आत्मा चिदानन्द अखण्ड अभेद ध्रुव (है), ऐसा अवग्रह होकर, विचारणा होकर, निर्णय होकर धारणा हुई है। उस मतिज्ञान को यहाँ धनुष कहते हैं और श्रुतज्ञान को डोरी कहते हैं। धनुष में डोरी होती है न? डोरी को क्या कहते हैं? प्रत्यंचा। वह श्रुतज्ञान है क्योंकि श्रुतज्ञान है, वह स्वरूप को पकड़कर समाधि और आनन्द आता है तो उस श्रुतज्ञान को यहाँ डोरी कहने में आयी है। और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह बाण है और उस बाण का निशाना ध्रुव-चैतन्य है। ऐई! चन्दुभाई! यहाँ यह आया। आहाहा!

जिस ज्ञान में-मतिज्ञान में अपना चैतन्य ध्रुव पकड़ करके, अवग्रह अर्थात् पकड़ करके, विचारणा करके, निर्णय करके धारणा हो गयी कि यह शुद्ध चैतन्य भगवान है। फिर श्रुतज्ञान द्वारा उस ओर झुकाव करके डोरी खींचने की, बाण खींचते हैं न? डोरी का धक्का लगता है न! ज्ञान, श्रुतज्ञान, भावश्रुतज्ञान इसको कहे कि जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग है, उसका निशाना ध्रुव है। वहाँ बाण मारना है। समझ में आया? इतनी सामग्री न हो तो बाण वहाँ लगेगा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : बाण को कर्म से बाँधना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ना... ना... ना। कर्म-फर्म की यहाँ बात नहीं। यहाँ परद्रव्य की बात नहीं है, भैया! यहाँ तो स्वद्रव्य चैतन्य ज्ञानानन्दस्वरूप, एक समय में सामान्य अभेद ध्रुव, आदि-अन्त बिना की चीज़, वह बाण का निशाना है। पुलिस ऐसे बाण मारते हैं या

नहीं? सुपारी है वहाँ निशाना लगना चाहिए। सम्यग्दर्शन-सम्यक्श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। उसमें सम्यग्ज्ञान, वह सबमें ज्ञान है न? दर्शन का ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान, चारित्र का ज्ञान। उस ज्ञान का निशाना ध्रुव है। समझ में आया? ज्ञान का निशाना निमित्त तो नहीं, राग तो नहीं, एक समय की पर्याय भी नहीं। देखो न, कैसे कहा है? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्तों ने तो मार्ग को सम्हाल के रखा है। मार्ग कैसा है, ओहोहो! यहाँ तो परद्रव्य की तो बात ही नहीं।

भगवान आत्मा... जिसको हित करना हो और जिसको जन्म-मरण का दु:ख (नाश करना हो)... जन्म-मरण का दु:ख माने? निगोद और नारकी का दु:ख, ऐसा नहीं। स्वर्ग और श्रीमन्ताई में भी मात्र दु:खी है, दु:खी प्राणी है। क्योंकि पर ओर के लक्ष्य में आकुलता होती है, वह सब दु:खी है। करोड़पति, चक्रवर्ती, देव, अपना निशान आनन्द है, उसके ध्येय बिना जो बाहर को ध्येय बनाकर आकुलता करते हैं, विकल्प (करते हैं), वह तो दु:खी है। शोभालालजी! सत्य है? यह सब आपको पैसेवाले कहते हैं न। लोग कहते हैं। समझ में आया? वह सुखी नहीं।

सुख का रास्ता, जो ज्ञान आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा जिसमें सत् शाश्वत् आनन्द ध्रुव पड़ा है, उस ओर ज्ञान का लक्ष्य जाता है तो उसमें-ध्रुव में बाण मारा तो तत्काल से उसको शान्ति और आनन्द आता है। समझ में आया? फड़ाक को हिन्दी में क्या कहते हैं? तत्काल। बोलने में थोड़ी गुजराती काठियावाड़ी भाषा आ जाती है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **धनुष की सब सामग्री यथावत् मिले...** यह यथावत् सामग्री। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का ध्येय निशान। यह सब सामग्री। **तब निशाना नहीं चूकता है,...** तब अपना आनन्दधाम भगवान, उसका ध्येय नहीं चूकता। समझ में आया? आहाहा! ऐसे धर्मात्मा को। मुनि अर्थात् धर्मात्मा को **मोक्षमार्ग की यथावत् सामग्री मिले, तब मोक्षमार्ग से भ्रष्ट नहीं होता है।** अन्तर ध्येय को पकड़ लिया जहाँ बाण मारना है, वह तो ध्रुव चीज़ है। निशाना लगाना है, वह तो ध्रुव है। ऐसी दृष्टि जहाँ हुई तो वह मोक्षमार्ग से भ्रष्ट होता नहीं। समझ में आया? आहाहा! **उसके साधन से मोक्ष को प्राप्त होता है।** उसके अन्तर में, ज्ञायकभाव में एकाग्र होकर पूर्णानन्द की प्राप्तिरूपी मुक्ति, इस साधन से पाते हैं। दूसरा कोई साधन है नहीं। धन्नालालजी! क्या है?

मुमुक्षु : कथंचित् साधन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित्-फथंचित नहीं। सर्वथा एकान्त साधन यही है। दूसरा साधन है ही नहीं। व्यवहार से कहे तो व्यवहार झूठा है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! अपूर्व मार्ग है! अनन्त काल से जन्म-मरण में पिलता है। उससे मुक्त होने की धर्म की चीज़ कोई अपूर्व है। लोग ऐसे ही मान ले दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा, वह धर्म-बर्म है नहीं। वह तो विकल्प, पुण्य है। धर्मी का निशाना पुण्य नहीं। आहाहा! अहो! भगवान आत्मा... वह ऊपर आ गया है, देखो!

परमार्थस्वरूप निज शुद्धात्मस्वरूप का सम्बन्धरूप लक्ष्य हो,... निज परमार्थ भगवान आत्मा के ऊपर जिसने लक्ष्य दिया है। **वह मुनि मोक्षमार्ग को नहीं चूकता है।** ऐसा कहते हैं। जिसका लक्ष्य ध्येय चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसमें जिसने लक्ष्य दिया, वह मोक्षमार्ग को नहीं चूकता। समझ में आया? यह मोक्षमार्ग ही ध्रुव, चैतन्य आनन्दधाम अतीन्द्रिय रस का पिण्ड, उसकी जहाँ दृष्टि हुई, बस! वह मोक्षमार्ग में लगा है। वह मोक्षमार्ग को चूकते नहीं। जो कोई राग में, निमित्त में, पर्याय में रुक गया, वह मोक्षमार्ग से चूक जाता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वळग्या का हिन्दी क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : वळग्या का अर्थ वहाँ चोंट जाये—चिपक जाये। यहाँ से छिटक जाते हैं और वहाँ लग जाये। समझ में आया?

जिसका ध्येय ज्ञान का पूर्णानन्द प्रभु है, उसके ध्येय से कभी चूकते नहीं, वे मोक्षमार्ग में चलते हैं। परन्तु उससे च्युत होकर, निशाना मारा है, उससे च्युत होकर, पर्याय-राग और निमित्त पर रुचि गई तो मोक्षमार्ग से भ्रष्ट हुआ। समझ में आया? देखो! एक लाईन में कितना कहा है! ओहोहो!

यह ज्ञान का माहात्म्य है,... देखो, यह ज्ञान का माहात्म्य है कि जिस ज्ञान की दशा, जिस ज्ञान की वर्तमान अवस्था ध्येय को पकड़ ले, ज्ञायक को पकड़ ले, वह मोक्षमार्ग में चला। वह मोक्षमार्ग से कभी च्युत नहीं होता। समझ में आता है या नहीं? भाषा तो सादी है, भाव भले ऊँचा हो। आहाहा! भगवान! तू तो इतना ऊँचा

है लेकिन उसको उसकी खबर नहीं। एक साधारण विषय की वासना या पैसा मिलना, उसमें पूरा बिक जाता है। आहाहा! अरे! भगवान तेरी अर्पणता तो प्रभु पूर्णानन्द का नाथ तुम हो। वहाँ अर्पणता होनी चाहिए। अन्य स्थान में अर्पणता होनी चाहिए नहीं। आहाहा!

भगवान! तेरा पूर्ण गाना तो केवली भी गा सके नहीं।

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में,
जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में,
कही शक्या नहीं ते पण श्री भगवान जो;
उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे,
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो।

श्रीमद् राजचन्द्र का सुना है? श्रीमद् राजचन्द्र। उनकी पंक्ति है यह। अपूर्व अवसर ३३ श्लोक बनाये हैं। ३३ वर्ष में देह छूट गया। एकावतारी हो गये। एक भव (बाकी है)। स्वर्ग में गये हैं, मुक्ति होगी। आत्मा में मुक्ति ही है। दृष्टि जहाँ मुक्त हुई तो मुक्ति ही है। समझ में आया? गृहस्थाश्रम में थे। स्त्री-पुत्र थे, लाखों रुपये का मोती का व्यापार मुम्बई में करते थे। ऐसा लोग देखते थे।

मुमुक्षु : व्यापार करते थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : करते थे नहीं। आत्मा का व्यापार करते थे। ऐई! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन में आत्मा का ध्येय पकड़ करके (परिणमन हुआ तो) वहीं परिणति है। वह परिणति राग में जाती नहीं और राग की परिणति (ज्ञान) पर्याय में आती नहीं। तो फिर बाहर के व्यापार की परिणति आ जाये और उसमें आत्मा जाये, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **इसलिए...** उस ओर। **जिनागम के अनुसार...** देखो! उस ओर है न। पीछे। **इसलिए जिनागम के अनुसार...** विनय चला है न? जिनागम के अनुसार सर्वज्ञ परमात्मा जैसा कहते हैं, (उस) **अनुसार सत्यार्थ ज्ञानियों का विनय करके...** ऐसे सच्चे ज्ञानी धर्मात्मा हो, उसका विनय करके **ज्ञान का साधन करना।** पहले विनय की बात आ गयी है, उस श्लोक में। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमात्मा, सन्त सत्यार्थ ज्ञानी जो हैं, जिनागम के अनुसार सर्वज्ञ परमेश्वर ने कही जो वाणी, उस वाणी के अनुसार आत्मा का ज्ञान जिसको हुआ है, ऐसे ज्ञानी का विनय करके। ज्ञानी तो परद्रव्य हैं। विनय करके यहाँ है, पाठ में है। कुन्दकुन्दाचार्य के पाठ में, देखो! है न २२वीं गाथा। **'णाणं पुरिस्स हवदि लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्तो।'** विनयसहित हो, वह ज्ञान को पाते हैं। उसका अर्थ क्या? विकल्प हो, परन्तु बहुमान अन्दर ज्ञान में वर्तता है। यह बात है। अपने ज्ञान में बहुमान वर्तता है। समझ में आया? भगवान आत्मा अकेला चैतन्यरस का पिण्ड प्रभु ध्रुव, उसके ज्ञान में माहात्म्य वर्तता है तो अपना विनय किया तो ज्ञानी का विनय उसने किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : अपना विनय।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो यह है, भगवान! अरे! पामर होकर घूमता है, भगवान होकर (भी)। कलंक है ऐसा कहते हैं। तीन लोक का नाथ, तीन काल, तीन लोक को तो एक समय की पर्याय में सोड में समा दे। सोड समझते हो? क्या कहते हैं? सोते समय कपड़ा ओढ़ते हैं न? ऐसे आत्मा की एक समय की ज्ञान की पर्याय तीन काल, तीन लोक को अन्दर एक समय की पर्याय में समा देता है। ऐसी उसकी ताकत है। ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड भगवान चिदानन्द, उसका जिसने विनय करके... वह तो कल कहा था।

विनय करके लिया है तो उसमें दो बात है। विनय करके तो विनय जिसका किया, उसने वह कहा। जिसका विनय करके ज्ञान लिया तो उसने वह कहा था (कि) ध्येय को पकड़ ले। समझ में आया? उसने ऐसा कहा था (वैसे) विनय से अंगीकार कर लिया। ओहो! त्रिकाली भगवान ज्ञायकमूर्ति प्रभु है, ऐसा उसने कहा था। विनय किया। गुरु ने ऐसा कहा। भगवान! हमारी ओर से लक्ष्य छोड़ दे। और हमारी ओर के विनय का विकल्प का भी लक्ष्य छोड़ दे और विकल्प के ज्ञान की पर्याय होती है, वह भी परलक्ष्यी ज्ञान की पर्याय का लक्ष्य छोड़ दे। ऐसा गुरु ने कहा था। ऐई! आहाहा! जैसा गुरु ने कहा था, वैसा पाया। भाई! आता है न, भाई!

न्यालभाई में आता है। एक बोल आता है कि जैसा हमें मिला वैसा प्राप्त किया। समझ में आया कुछ? बात थोड़ी सूक्ष्म है। यह बात तो कभी-कभी निकलती है। क्या हर बार निकलती है? साधारण सभा हो वहाँ एकदम सूक्ष्म बात जरा सूक्ष्म पड़े। परन्तु आये

तब तो उसका स्पष्टीकरण होना चाहिए न ? समझ में आया ? आहाहा ! रात्रि को ऐसी बात चली थी। थोड़ी हिन्दी में (चली थी)। गुजराती लोग समझे नहीं। रात्रि को हमें गुजराती में पूछे तो हमारी गुजराती भाषा आती है। हिन्दी हो तो हिन्दी (आये)।

रात्रि को ऐसा प्रश्न हुआ था कि प्रमाणज्ञान किसको कहते हैं ? देखो ! उसमें आयेगा। प्रमाणज्ञान स्व और पर का जानना, उसका नाम प्रमाण। समझ में आया ? प्रमाण में दो भाग आ गये। स्व और पर। शास्त्र तो प्रमाणज्ञान को ही व्यवहार कहते हैं। आहाहा ! प्रमाणज्ञान स्वद्रव्य का और पर्याय का। दोनों मिलकर प्रमाणज्ञान बनता है। और एकरूप त्रिकाल, जो बात यहाँ चलती है, ध्रुव ज्ञायक का ज्ञान, वह निश्चय। प्रमाणज्ञान ने निश्चय का ज्ञान ऐसे ही रखकर उपरान्त पर्याय का ज्ञान किया तो दोनों मिलकर प्रमाण कहने में आता है। फिर भी ऐसे होने पर भी प्रमाणज्ञान सद्भूतव्यवहारनय उपचार का विषय है। वह निश्चय का विषय नहीं। नवनीतभाई ! समझ में आया ? वह बात रात्रि को चली थी। परन्तु थोड़ी सूक्ष्म पड़े। कहाँ गये अमुलखजी ?

'स्व-परप्रकाशक शक्ति हमारी ताते वचन भेद भ्रम भारी।' अपना स्वभाव द्रव्य को जाने, पर्याय को जाने। पर को एक ओर रखो। अशुद्धता दोष है, उसको जानना, वह तो असद्भूतव्यवहारनय हो गयी। समझ में आया ? झूठी नय हो गयी। और दोष को जानने का ज्ञान हुआ, उसे दोष का ज्ञान कहना, वह भी उपचार हो गया। बात यहाँ गुलाँट खाती है। दोष को जानना, वह तो असद्भूतव्यवहारनय है। और दोष का ज्ञान यहाँ हुआ, अपने में दोष सम्बन्धी अपना ज्ञान अपने से पर्याय में हुआ। उसको दोष का ज्ञान कहना, वह भी उपचार है। है अपना ज्ञान। अब जो पर्याय का ज्ञान हुआ और द्रव्य का त्रिकाली, दो का ज्ञान हुआ, उस पर स्व-परप्रकाशक ज्ञान को प्रमाणज्ञान कहते हैं। यह प्रमाणज्ञान सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। क्योंकि प्रमाणज्ञान में व्यवहार का निषेध आया नहीं। निश्चय है, वह व्यवहार का निषेध करता है, पर्याय का निषेध करता है। समझ में आया ? ऐसी वस्तु भगवान आत्मा ज्ञायक जो यहाँ कहा (जो) ध्रुव निशाना है, वह पर्याय का निषेध करता है। पर्याय मुझमें है नहीं। उसमें ज्ञान हो जाता है। पर्याय का ज्ञान हो जाता है। यहाँ का ज्ञान हुआ तो अपने में भी पर्याय है, ऐसा पर्याय का अस्तित्व है तो ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं। भाई ! सूक्ष्म लगे परन्तु वस्तु ऐसी है। थोड़ी सूक्ष्म है।

ज्ञान की पर्याय हुई तो अपने को जाना और पर्याय को जाना। दोनों को जाना, वह भी व्यवहार हो गया। और सद्भूतव्यवहार हुआ तो ११वीं गाथा की अपेक्षा से व्यवहार सब अभूतार्थ है। अरे! ऐई! चन्दुभाई! गजब बात है। पण्डितजी! वह रात्रि को बात चली थी। सुबह में थोड़ी चली थी। रात्रि को चली थी। आधा घण्टा चली थी। शान्ति से सुनना। पण्डितजी को बुलाया था। समझ में आया? ऐई! धन्नालालजी! यह तो केवलज्ञान का व्यायाम है। केवलज्ञानी में केवलज्ञान होने की कसरत करने की बात है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, यहाँ वह कहा न? द्रव्य निशाना। ऐसा ज्ञान हुआ तो उस ज्ञान में पर्याय का ज्ञान भी हुआ। परन्तु इस पर्याय का ज्ञान और इस द्रव्य का ज्ञान, दोनों मिलते हैं, तब प्रमाण होता है। तो एक न्याय से पर्याय है, वह परद्रव्य हो गयी है। स्वद्रव्य की अपेक्षा से स्व का-द्रव्य का ज्ञान (हुआ तब), पर्याय का ज्ञान (हुआ) वह परद्रव्य का ज्ञान है। क्योंकि द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय अवस्तु है। उसकी अपेक्षा से तो वस्तु है-अपनी अपेक्षा से वस्तु है। द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय अवस्तु है। समझ में आया? वस्तु का ज्ञान... कल रात्रि को आधा घण्टा चली थी। भाई को बुलाया था। हमें सलाह, निर्णय हो तो पण्डितजी को बुलाना पड़ता है। हमारे पण्डितजी बड़े हैं, हों! बोलते कम हैं, थोड़े शान्त हैं। ऐई! वजुभाई! ये उसके बड़े भाई हैं। ज्ञान में छोटे हैं। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा... पुनरुक्ति उसमें नहीं लगती। द्रव्यस्वभाव ज्ञायक का बाण। यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य यह कहते हैं। ज्ञान वहाँ लगा दे। पर्याय का क्या हुआ? दोष तो उसके घर में रहे। परन्तु दोष का जो ज्ञान हुआ, यह दोष है तो ज्ञान हुआ-ऐसा नहीं। दोष है तो ज्ञान हुआ-ऐसा भी नहीं। परन्तु ज्ञान की पर्याय में अपना ज्ञान हुआ और उसका ज्ञान हुआ। उस पर्याय का ज्ञान करना और द्रव्य का ज्ञान करना, यह प्रमाणज्ञान हुआ। स्व और परद्रव्य का ज्ञान हुआ। वह प्रमाण पूजनीय नहीं।

जिसमें व्यवहार का निषेध आता नहीं, ऐसा प्रमाण पूजनीय नहीं। निश्चय है, उसमें व्यवहार का निषेध आता है; इसलिए निश्चय पूजनीक है। ऐई! आहाहा! डालचन्दजी! थोड़ी बात जरा सूक्ष्म भी आये। यह तो वीतराग का मार्ग है। केवलज्ञानी तीन काल-तीन लोक (जानते हैं)। एक समय में तीन काल-तीन लोक नहीं जानते। पर्याय को जानते हैं।

एक बार वह कहा था। सरोवर है न। पानी की बड़ी नदी चलती हो। रात्रि का समय हो। ऊपर चन्द्र-तारा आदि हो तो नदी में उसका प्रतिबिम्ब पड़ता है। पानी को देखने से वह सब देखने में आ गया है। यहाँ देखे तो दिखने में आये, ऐसा है नहीं। न्याय समझ में आता है? पानी में देखते हैं तो उसमें ऊपर से चन्द्र आदि और ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारे हैं, वह सब तारे नहीं दिखते, चन्द्र नहीं (दिखता)। पानी की पर्याय दिखने में, जल की पर्याय और वह, वह सब अपनी पर्याय में पर्याय को जानने में आ जाता है। ज्ञानचन्दजी! सूक्ष्म बात है, भाई! यह वीतराग का मार्ग है। आहाहा!

कहते हैं, वैसे अपनी ज्ञान की पर्याय में पर्याय को जाना। उसको लोकालोक जानना नहीं पड़ता। क्योंकि लोकालोक सम्बन्धी अस्तित्व है, ऐसा पर्याय में अपने से अपना और पर का ज्ञान, अपने से अपने कारण पर की अपेक्षा बिना, वह है तो हुआ— ऐसा भी नहीं। आहाहा! धन्नालालजी!

मुमुक्षु : यह बात फिर से कहिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहा कि जल है न, जल? तारा और चन्द्र अन्दर दिखते हैं न? तारे अन्दर नहीं है। वह तो जल की स्वच्छता का प्रतिबिम्ब है। जल की स्वच्छता की अवस्था है। कोई तारे अन्दर घुस नहीं गये। दर्पण है न, दर्पण? शीशा। अग्नि है। अग्नि और बर्फ यहाँ हो और यहाँ (दर्पण में) अग्नि और बर्फ दिखे। तो क्या अग्नि-बर्फ दर्पण में है? अग्नि-बर्फ तो यहाँ है। दिखते हैं। वह तो दर्पण की अवस्था है। शीशे की एक दशा है। यह दशा एक समय की अवस्था है। उसकी अवस्था नहीं और उसके कारण से नहीं।

ऐसे लोकालोक का अस्तित्व है तो केवल की पर्याय हुई ऐसा नहीं। अपनी पर्याय की ताकत इतनी है कि है कि पर्याय को जहाँ देखता है, (तो) लोकालोक ज्ञेय सम्बन्धी ज्ञान तो अन्दर में आ गया, अपने कारण से। उसके कारण से नहीं। धन्नालालजी! सूक्ष्म बात है, भगवान!

ऐसे श्रुतज्ञान की पर्याय। श्रुतज्ञान, वह भी एक समय की पर्याय में लोकालोक जानते हैं। इतनी ताकत पर्याय में है और ऐसी ऐसी तो अनन्त-अनन्त पर्याय का पिण्ड द्रव्य। तो द्रव्य का जहाँ ज्ञान हुआ, उसमें पर्याय का निषेध हो गया। मेरे में पर्याय है ही नहीं। मैं तो मात्र ध्रुव हूँ। ऐई! अब, ऐसा ज्ञान होकर जब पर्याय का ज्ञान हुआ, वह तो परद्रव्य का ज्ञान हुआ। सद्भूतव्यहार उपचार। उपचार कहने में आता है। ●●●

गाथा-२४

(८) आगे देव का स्वरूप कहते हैं।

सो देवो जो अत्थं धम्मं कामांशुदेइ णाणं च।
सो दइ जस्स अत्थि हु अत्थो धम्मो य पवज्जा ।।२४।।

स: देव: य: अर्थं धर्मं कामं सुददाति ज्ञानं च।
स: ददाति यस्य अस्ति तु अर्थ: धर्म: च प्रव्रज्या ।।२४।।

जो धर्म अर्थ सु काम देता ज्ञान वह ही देव है।
जो है वही देता अत: धर्मार्थ दीक्षा अर्थ है।।२४।।

अर्थ – 'देव' उसको कहते हैं जो अर्थ अर्थात् धन, धर्म, काम अर्थात् इच्छा का विषय – ऐसा भोग और मोक्ष का कारण ज्ञान इन चारों को देवे। यहाँ न्याय ऐसा है कि जो वस्तु जिसके पास हो सो देवे और जिसके पास जो वस्तु न हो सो कैसे देवे ? इस न्याय से अर्थ, धर्म, स्वर्गादिक के भोग और मोक्षसुख का कारण प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा जिसके हो उसको 'देव' जानना ।।२४।।

प्रवचन-५९, गाथा-२४-२५, मंगलवार, श्रावण शुक्ल ८, दिनांक ११-०८-१९७०

क्या चलता है ? देव-देव। देव उसको कहिये जो लक्ष्मी, भोग, पुण्य और मोक्ष। चार दे, वह देव।

मुमुक्षु : बाहर की लक्ष्मी...

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर की लक्ष्मी... यहाँ तो वह कहते हैं। देव उसको कहते हैं कि **'अत्थं धम्मं कामांशुदेइ णाणं'** और प्रव्रज्या। उसका देव। देव की शक्ति... वह कहेंगे। २५ (गाथा के) अर्थ में लेंगे।

गाथा-२५

आगे धर्मादिक का स्वरूप कहते हैं, जिनके जानने से देवादि का स्वरूप जाना जाता है –

धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता।
देवो ववगयमोहो उदयकरो भव्वजीवाणं।।२५।।

धर्मः दयाविशुद्धः प्रव्रज्या सर्वसंगपरित्यक्ता।
देवः व्यपगतमोहः उदयकरः भव्यजीवानाम्।।२५।।

है दया से सुविशुद्ध धर्म सु दीक्षा परिग्रह–रहित।
जो मोह–विरहित देव हैं वे भविजनों को उदयकर।।२५।।

अर्थ – जो दया से विशुद्ध है वह धर्म है, जो सर्व परिग्रह से रहित है वह प्रव्रज्या है, जिसका मोह नष्ट हो गया है वह देव है, वह भव्य जीवों के उदय को करनेवाला है।

भावार्थ – लोक में यह प्रसिद्ध है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुष के प्रयोजन हैं। उनके लिए पुरुष किसी को वन्दना करता है, पूजा करता है और यह न्याय है कि जिसके पास जो वस्तु हो वह दूसरे को देवे, न हो तो कहाँ से लावे ? इसलिए ये चार पुरुषार्थ जिनदेव के पाये जाते हैं। धर्म तो उनके दयारूप पाया जाता है, उसको साधकर तीर्थंकर हो गये, तब धन की और संसार के भोगों की प्राप्ति हो गई, लोकपूज्य हो गए और तीर्थंकर के परमपद में दीक्षा लेकर, सब मोह से रहित होकर, परमार्थस्वरूप आत्मिकधर्म को साधकर, मोक्षसुख को प्राप्त कर लिया ऐसे तीर्थंकर जिन हैं, वे ही 'देव' हैं।

अज्ञानी लोग जिनको देव मानते हैं, उनके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नहीं है, क्योंकि कई हिंसक हैं, कई विषयासक्त हैं, मोही हैं, उनके धर्म कैसा ? अर्थ और काम की जिनके वांछा पाई जाती है, उनके अर्थ, काम कैसा ? जन्म, मरण सहित हैं, उनके मोक्ष कैसे ? ऐसा देव सच्चा जिनदेव ही है वही भव्यजीवों के मनोरथ पूर्ण करते हैं, अन्य सब कल्पित देव हैं।।२५।।

इस प्रकार देव का स्वरूप कहा।

गाथा-२५ पर प्रवचन

आगे धर्मादिक का स्वरूप कहते हैं, जिनके जानने से देवादि का स्वरूप जाना जाता है – २५वीं (गाथा)। धर्म का स्वरूप, प्रवज्या का स्वरूप, दया का स्वरूप जानने में आवे तो उससे देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप भी यथार्थ जानने में आवे।

धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता।
देवो ववगयमोहो उदयकरो भव्वजीवाणं।।२५।।

अर्थ – जो दया से विशुद्ध है, वह धर्म है,... देव और गुरु कैसे पहिचानने में आते हैं? और धर्म तीनों। दया अर्थात् राग की उत्पत्ति न होना। अपना आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द, ऐसे ज्ञानानन्द की पर्याय में उत्पत्ति (होना), वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र (हो), उसको यहाँ दया कहने में आता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दया का अर्थ तो बदल दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : दया का अर्थ बदल दिया नहीं। है ऐसा हुआ, है ऐसा हुआ। पण्डितजी! बदल गया या है ऐसा हुआ। जगत में बदल गया था। ऐसा पुरुषार्थसिद्धिउपाय में अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है। अहिंसा किसको कहते हैं? कि परजीव की दया पालने का भाव भी अपने में तो हिंसा है। राग है न, राग?

मुमुक्षु : अप्रादुर्भावा....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अपराध है। तीर्थंकरगोत्र आदि बँधता है, वह भाव अपराध है।... देव को पहचाना। वह देव तो ऐसी दया की प्ररूपणा करते हैं। और ऐसी दया उनके पास है। गुरु भी ऐसी दया की प्ररूपणा करते हैं और गुरु के पास भी ऐसी दया है। धर्म भी ऐसा रागरहित है, उसका नाम धर्म कहने में आता है।

'दयाविसुद्धो' भगवान आत्मा। विशुद्ध शब्द पड़ा है न? चैतन्यमूर्ति आनन्दधाम ऐसी चीज़ आत्मा है, ऐसे विकल्परहित अपने द्रव्यस्वभाव का, अन्तर आनन्द का अनुभव

होना, जिसमें राग का अभाव होना, समझ में आया? ऐसी परिणति आत्मा की, उसको यहाँ दया, अहिंसा कहने में आता है। धन्नालालजी!

मुमुक्षु : इसमें क्या दया आयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : दया क्या आयी? अपनी दया, वह दया है। किसकी दया? राग, पुण्य-पाप का विकल्प है, वह अपना है—ऐसा मानना अपनी हिंसा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कुछ नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं आया? अच्छा। यह तुम्हारे नाटक में होता है न? क्या कहते हैं उसे? वन्समोर।... वहाँ होता है न वन्समोर। नाटक तो बड़े-बड़े हमने देखे हैं न। बड़े-बड़े नाटक देखे हैं। मुम्बई, बडोदरा, वन्समोर होता था।

मुमुक्षु : भूल गया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर है, बराबर है।

भगवान! कहते हैं। भगवान कहते हैं भगवान को। आत्मा भगवान है। उसको भगवान कहते हैं कि अरे! एक बार सुन। हमने कैसी दया पाली और कैसी दया की कथन प्ररूपणा की? गुरु ने कैसी दया पाली और कैसी दया की प्ररूपणा की? और धर्म कैसी दया में होता है, उसकी यहाँ बात करते हैं।

कहते हैं कि आत्मा शरीर, वाणी, मन से तो भिन्न अपना तत्त्व, अपने में... अपने से... अपने में रहा है। और पुण्य-पाप का राग तो आस्रवतत्त्व है। राग दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम, वह आस्रवतत्त्व है।

मुमुक्षु : धर्मतत्त्व नहीं है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जीवतत्त्व नहीं और संवरतत्त्व नहीं। सूक्ष्म है। पुण्य का विकल्प, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प है, वह तो राग है। वह तो शुभराग है। वह धर्म नहीं। वह तो आस्रवतत्त्व है। ये आस्रव अपना है, ऐसा मानना यह अपनी बड़ी समकित की हिंसा होकर मिथ्यात्वभाव उत्पन्न होता है। अरे! भाई! वह तो कहा था न। कल ही आया था तुम्हार बालिशानाम नहीं था? पुरुषार्थसिद्धि उपाय की १४वीं गाथा में

था न ? १४वीं गाथा में है न ? पुरुषार्थसिद्धिउपाय अमृतचन्द्राचार्य। **आगे इस संसार का मूल कारण बताते हैं...**

एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमाहितोऽपि युक्त इव।
प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्।।१४।।

अज्ञानी जीवों को। ऐसा अर्थ किया है। **'बालिशानां'** आत्मा। जड़ कर्म के निमित्त से अपने में हुआ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का विकल्प राग। वह **रागादि अथवा शरीरादि भावों से संयुक्त न होने पर भी...** क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा... नौ तत्त्व है या नहीं ? अजीवतत्त्व भिन्न है और पुण्य आस्रवतत्त्व भिन्न है और ज्ञायकतत्त्व भिन्न है। नौ तत्त्व है या नहीं ? तो नौ तत्त्व में जो राग है, वह तो पुण्यतत्त्व, आस्रवतत्त्व है। और शरीर, वाणी, कर्म, वह तो अजीवतत्त्व है। तो अजीव और रागसहित मैं हूँ, मेरे आत्मा में राग है, ऐसी मान्यता बालिशानां अज्ञानियों का मिथ्यात्वभाव है। वह संसार में निगोद में जाने का भाव है। समझ में आया ? आहाहा !

कहते है,... देखो ! **रागादि अथवा शरीरादि भावों से (असमाहितोडपि) बालिशानां' 'बालिशानां'** अर्थात् क्या ? बालक जैसे। बस। इतना ही न ? **'बालिशानां'** यहाँ लिखा है। अज्ञानी जीव। बालजीव हैं। आहाहा ! मूर्खता से भरे आत्मा हैं। जो भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु सच्चिदानन्द सत् अर्थात् शाश्वत् चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द का भण्डार प्रभु, ऐसी चीज़ में राग को मिलाकर दया का राग वह मेरा है, पर की दया पालने का राग, पंच महाव्रत का राग, व्रत का विकल्प मेरा है, ऐसी मान्यता को मिथ्यादृष्टि की हिंसा कहते हैं।

मुमुक्षु : हमें जो चाहिए हम करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है ? करे क्या ? छोड़ दो। राग को छोड़ दो। राग की एकता को छोड़ दो, ऐसा कहते हैं। राग कहाँ छूटे ? राग तो वीतराग होगा तब छूटेगा। सेठ स्पष्ट करवाते हैं। समझ में आया ? राग का एकत्व करते हो, वह छोड़ दे। राग नहीं छूटेगा। जब तक वीतराग उपयोग न करे, तब तक राग की अस्थिरता नहीं छूटेगी। परन्तु राग की एकता तोड़ दे, उसका नाम अहिंसा और धर्म है। सूक्ष्म बात है। साधारण धर्म हो तो दुनिया

ने अनन्त काल से नहीं किया? नवमीं ग्रैवेयक गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै आतमज्ञान बिना लेश सुख न पायो।' नौवीं ग्रैवेयक गया तो पंच महाव्रत नहीं पाला? अट्ठाईस मूलगुण नहीं पाले? वह तो दुःख था। पंच महाव्रत का विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, बारह व्रत का विकल्प तो दुःख है, राग है, हिंसा है। आहाहा! ऐ... सेठ! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : खलबलाहट मच जायेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : खलबलाहट मच जायेगा। सेठ है न तो समाज को ठीक रखना है। मार्ग ऐसा है। समझ में आया?

दया अर्थात् अहिंसा? विकल्प का उठना दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का, वह भी हिंसा है। आस्रव है न? आस्रव कहा न। तत्त्वार्थसार में आस्रव कहा है। तो आस्रव मेरा है, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व की हिंसा है। मिथ्यात्वरूपी हिंसा। मिथ्यात्व की नहीं। मिथ्यात्वरूप हिंसा। समकिती की हिंसा है। पोपटभाई! आहाहा! कठिन बात है। जगत को धर्म क्या चीज़ है (वह खबर नहीं)। बाहर से मान रखा है कि ऐसा करना और वैसा करना।

यहाँ तो कहते हैं, सुन तो सही। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् कायमी चीज़ है। जिसकी उत्पत्ति और नाश नहीं है। ऐसी चीज़ और उसकी चीज़ में जिसकी उत्पत्ति और नाश नहीं है, ऐसा ज्ञान और आनन्द भरा है। आहाहा! ऐसे आनन्द के साथ राग को मिलाना (कि) राग मेरी चीज़ है, शुभराग से मुझे लाभ होगा, वह मिथ्यात्वभाव है, अज्ञानभाव है। यह हिंसाभाव है। उसका नाम हिंसा है। बाहर की हिंसा कौन कर सकता है? समझ में आया? पण्डितजी! कठिन बात है। अपना स्वरूप...

यहाँ क्या कहते हैं? कि देव को कैसे पहचान जाते हैं? कि देव ऐसी दया पालते थे। दिव्य शक्तिवन्त परमात्मा अरिहन्त वीतरागदेव, रागरहित अपनी निर्मल अहिंसक वीतरागी पर्याय को पालते थे और उनके पास थी। और देव ने प्ररूपणा उपदेश में भी ऐसी दी कि रागरहित तेरी आत्मदशा (हो, वह दया है)। क्योंकि तेरा स्वभाव ही वीतरागस्वरूप चिदानन्द है, ऐसी दृष्टि करके अपने द्रव्य में से आनन्द और पर्याय में सम्यग्ज्ञान आना, वीतरागी पर्याय प्रगट होना, उसका नाम हम दया और धर्म कहते हैं। समझ में आया? बहुत कठिन काम, भाई! स्त्री-पुत्र को कहाँ रखना? तेरे थे कब? तेरे हो तो अलग क्यों

होवे ? कहीं से आया है। स्त्री की आत्मा कहीं से आया, तेरी आत्मा कहाँ से आया है और एक घर में मिले तो तेरा हो गया ?

बहुत साल पहले एक बात हो गयी थी। मनसुख कहाँ गया ? मनसुख ! है या नहीं ? उसकी सगाई हुई न उस दिन, (संवत्) १९८७ में। ८७ में। आपके यहाँ आणन्दजी था न, आणन्दजी ? उसने १९८७ की साल में चित्तल में प्रश्न किया था। ८७ की साल। चित्तल है न, यहाँ चित्तल ? उसकी सगाई हो रही थी, तब उसने पूछा कि महाराज ! यह सब मेल कैसे होता होगा ? इसकी कन्या, आदमी उसका। कहाँ का कहाँ ! मैंने कहा, देखो ! यह तो पूर्व के पाप-पुण्य के योग से ऐसा मेल हो जाता है। एक स्त्री आयी हो ईयल में से। स्त्री का आत्मा ईयल में से आया हो। ईयल समझे ? कीड़ा। और पुरुष का आत्मा आया हो थोर में से। थोर समझते हो ? (काँटेदार वनस्पति)। क्या कहते हैं उसको ? थूहर। थोर आये तो समझ लेना। हमारी भाषा तो दूसरी है। उस दिन कहा था। चित्तल में १९८७ के वर्ष में कार्तिक माह के कृष्ण पक्ष में। संवत् १९८७। कार्तिक कृष्ण पक्ष में। मनसुख की सगाई हुई थी। वहाँ आणन्दजी पूछने आया था। आणन्दजी आया था न ? यह कैसे होता है ? स्त्री यहाँ की और लड़का उधर का, दोनों का मेल कैसे होता है ? मेल क्या है ? कहा, आत्मा में ऐसे कोई रजकण की योग्यता (होती है कि) इससे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होना होता है (इसलिए) ऐसा है। बाकी एक आत्मा आया हो ईयल में से और एक आया हो थूहर में से।

मुमुक्षु : पूर्व की कोई लेनदेन होगी न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई लेनदेन नहीं है। इसलिए तो उसने प्रश्न किया था। जैसे नेमिनाथ भगवान का राजुल के साथ आठ भव का सम्बन्ध है न ? राजेमति। उसे तो सम्बन्ध है। अरे ! सबका कहाँ सम्बन्ध है ? वह तो किसी को ऐसी बात है। बाकी तो कोई अनन्त भव में एक आत्मा निकलकर निगोद में से आया, कभी निगोद में से निकला नहीं था। ऐसा आया। और एक भटकते-भटकते आदमी का जीव कहाँ से आया ? दोनों का (योग) ऐसी कोई योग्यता में हो जाये। कहाँ दूसरा आत्मा, दूसरा शरीर, किसको सम्बन्ध क्या ? परपदार्थ भिन्न-भिन्न है। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : यह सब रचना की किसने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी ने। किसने की। अज्ञानी ने मान लिया। है नहीं उसको मान लिया। राग इसका नहीं तो परद्रव्य तो कहाँ रहा? आहाहा! बापू! धर्म कोई अलौकिक चीज़ है। कोई साधारण मनुष्य मान ले कि हम धर्म करते हैं कि सामायिक किया, प्रौषध किया, प्रतिक्रमण की, उपवास किया। धूल में भी नहीं। सुन तो सही। उसमें जो विकल्प उठते हैं, वह राग है। और राग से मुझे लाभ होगा और राग मेरी चीज़ है, वही महामिथ्यात्व की हिंसा है। रामानन्दजी! यहाँ तो ऐसी बात है। 'निजपद रमे, सो राम कहिये।'

मुमुक्षु : राग में रमे, वह राम नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग में रमे, वह रामानन्द नहीं। भैया! यह तो वस्तुस्थिति है। वह तो मैंने कहा था न तुमको? पहले दिन उसका नाम याद आ गया। गुलाँट खा गया। रामानन्द नहीं, आनन्दराम। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द किला है। उसमें रमे, उसका नाम राम है। 'निजपद रमे सो राम कहिये।' समझ में आया? ऐसा आनन्दघनजी का वचन है। श्वेताम्बर में आनन्दघनजी हुए। ... था। वैरागी थे। उसने कहा है, कर्म क्रशे से कृष्ण कहिये। कृष्ण कौन? कि भगवान आत्मा रागादि का, अज्ञानभाव का नाश करे और अपनी शुद्धता प्रगट करे, उसको कृष्ण कहने में आता है। सेठ!

यहाँ कहते हैं, **शरीरादि भावों से संयुक्त न होने पर भी अज्ञानी जीवों को संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है और वह प्रतिभास ही निश्चय से संसार का बीजरूप है।** देखो! १४वीं गाथा अमृतचन्द्राचार्य की। पुरुषार्थसिद्धिउपाय। जो कोई प्राणी, अपना भगवान ज्ञायक चिदानन्द वीतरागमूर्ति प्रभु, राग और शरीर अर्थात् अजीव से रहित है। **'असमाहितोडपि' 'असमाहितोडपि'** सहित नहीं। उसको सहित मानते हैं, वह **'बालिशानां'** अज्ञानियों का संसार का बीज है। निगोद में जाने की चीज़ है। संसार का बीज है, निगोद में जाने की चीज़ है। उसको निगोद लेना है। आहाहा! ऐई! धन्नालालजी! कोई माल लेने जाते हैं तो पैसे देते हैं या नहीं? तो कहते हैं, निगोद लेना हो तो मिथ्यात्व का सेवन करने से उसको निगोद आयेगा। आहाहा! समझ में आया? और सम्यग्दर्शन... आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ, प्रभु!

जिस भाव से तीर्थंकरभाव बन्ध हो, वह भाव भी नुकसानकारक है, नुकसानकारक है। बन्ध का कारण है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी जहर है। ऐसी दृष्टि

करके... आहाहा! अपना भगवान शुद्ध ज्ञानानन्द की मूर्ति है, ऐसा अन्तर अनुभव में आनन्द का भानसहित अनुभव होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। और उसका नाम दया और अहिंसा है। आहाहा! बड़ी कठिन व्याख्या ये तो। ऐई! सेठ! ये सब सेठ पैसे-बैसे दे। दया करे, ऐसा करे (और माने कि) बहुत किया। धूल में भी कुछ नहीं किया। क्या किया? ऐई! शोभालालजी! दस-बीस हजार खर्च करे तो... ओहोहो! सेठ ने तो पचास हजार दिये, इक्यावन हजार दिये। अरे! इसमें क्या है? क्या कहा? 'ऐरण की चोरी और सुई का दान।'

मुमुक्षु : कोई सोनगढ़ में सुनने के लिये तो रहने के लिये कमरे बना दिये...

पूज्य गुरुदेवश्री : कमरा-फमरा बना दिये, वह कौन बना देता है? वह तो जड़ की पर्याय हुई। सेठ ने बनाया है? ये दोनों सेठ बैठे हैं। कौन बनावे? सेठ! यहाँ तो ऐसा नग्न माल है। वह तो परमाणु है, पुद्गल है। तो पुद्गल नित्य रहकर उसकी अवस्था बदलती है। तो बदलते बदलते वह हो गया है। क्या तेरे से बदला है? वह कोई चीज़ है या नहीं? अस्ति है या नहीं? अस्ति है तो हमेशा टिकनेवाली चीज़ है या नहीं? तो नित्य रहनेवाली चीज़ में बदलाव होता है तो उसके कारण से होता है। कोई पर के कारण से हुआ, शोभालालजी के कारण से हुआ, (ऐसा नहीं है)। वह वहाँ बहुत ध्यान रखते थे। खबर है न। खबर है न। हम जंगल जाते थे तो वहाँ नजर जाती थी। हमारे जंगल जाने का-दिशा जाने का रास्ता यही है। दिशा में जाने का। समझ में आया? कौन करे? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि अज्ञानियों का बीज है। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य। देखो! यह गुरु! समझ में आया? गुरु और देव ऐसे होने चाहिए कि जो राग में धर्म मनाते नहीं। रागरहित अपने आनन्दस्वरूप की दृष्टि और स्थिरता (हो), उसमें धर्म मनाते हैं। और ऐसे धर्म का (स्वयं) उन्होंने भी पालन किया है। आहाहा! ऐसी चीज़ है। महाव्रत पाले हैं, ऐसा शास्त्र में आता है। परन्तु पाले क्या? वह तो था, उसका व्यवहारनय से कथन किया है। महाव्रत तो राग है, विकल्प है। धर्मी विकल्प को धर्मी पालते हैं? राग का पोषण करते हैं? राग की रक्षा करना, उसका नाम भगवान मिथ्यात्व कहते हैं और रागरहित भगवान चैतन्य की रक्षा करना, उसका नाम भगवान समकित कहते हैं। शोभालालजी! मार्ग तो ऐसा है भाई! पैसेवाले हो या गरीब। कोई गरीब-फरीब है नहीं। पैसे से निर्धन को गरीब कहने

में आता है। निर्धनता क्या है? अन्दर में सधनता भरी है। बाहर धूल की अपेक्षा से निर्धन-सधन कहना, वह तो औपचारिक कथन है। वास्तविक है नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, **'धम्मो दयाविसुद्धो'** इतना अर्थ हुआ है।

मुमुक्षु : .... विरुद्ध जाकर शास्त्र में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या लिखा है?

मुमुक्षु : ... दया, सोनगढ़वाले मना करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दया की परिभाषा क्या? वह तो सब लिखते हैं। ऐसी दया तो नौवीं ग्रैवेयक (जानेवाला) जैन साधु होकर नहीं पाली?

मुमुक्षु : प्रवचनसार में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसा लिखा है। नौवीं ग्रैवेयक। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो।' तो मुनिव्रत धार कौन सा? पंच महाव्रत अट्ठाईस मूलगुण। परन्तु 'लेश सुख न पायो।' उसका अर्थ क्या हुआ? पंच महाव्रत का परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण का परिणाम दु:ख और जहर था। दु:ख का अनुभव किया है, उसने सुख का अनुभव किया नहीं। नन्दकिशोरजी! गजब बात है। पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण पाले, शरीर के खण्ड-खण्ड करे, और नमक छिड़के फिर भी क्रोध न करे। ऐसी क्षमा (रखी)। परन्तु वह क्षमा रागवाली थी। वह आत्मा की क्षमा नहीं। मैं ज्ञानानन्द हूँ, शुद्ध हूँ—ऐसी दृष्टि में रागरहित सहज होना, ऐसी दृष्टि बिना राग में रहा था। तो दु:खी था वह। पंच महाव्रत पालनेवाला, अट्ठाईस मूलगुण पालनेवाला दु:खी था। दु:ख में पड़ा था। समझ में आया? ऐ... मणिभाई! कठिन बातें, भाई!

भगवान कहते हैं कि दया और सुखरूप धर्म, वह तो राग-विकल्प रहित अपना चिदानन्द प्रभु, जिसमें अनन्त बेहद आनन्द भरा है, वह आनन्द जिसमें से प्रगट हो, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद (आना)। जो राग-द्वेष का स्वाद है, पुण्य-पाप का स्वाद है, वह जहर, बेस्वाद है। वह हिंसा परिणाम का स्वाद है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि होना या नहीं होना?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि कौन ? मुनि कहना किसको ? कपड़े बदल ले और नग्न हो जाये, वह मुनि हो गया ?

मुमुक्षु : भावमुनि होना, जरूर होना।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावमुनि होना। भावमुनि की तो व्याख्या चलती है। समझ में आया ? यहाँ तो भावमुनि किसको कहे, भावदेव किसको कहे और भावधर्म किसको कहे, तीनों बात चलती हैं।

भावमुनि इसको कहे कि जिसकी आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वयंभूरमण समुद्र भरा है। उसमें चोंच मारकर एकाग्र होकर आनन्द की पर्याय का अनुभव, प्रचुर स्वसंवेदन करे, उसका नाम भगवान के मार्ग में मुनि कहने में आया है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसे ही द्रव्यलिंग नग्नपना ले ले और क्रिया में राग की मन्दता की हो (परन्तु) मिथ्यात्व तो साथ में पड़ा है। समझ में आया ? दृष्टान्त नहीं दिया था ? बिल्ली का।

मुमुक्षु : ऊँट और बिल्ली का।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऊँट और बिल्ली का दृष्टान्त नहीं दिया था ? आपमें भी होगा। 'मिंदडी काढता ऊँटडुं पेठुं' (बिल्ली निकालते ऊँट घुसा), ऐसी हमारी काठियावाड़ी भाषा है। मिंदडी समझे ? बिल्ली। बिल्ली को निकालकर ऊँट को अन्दर बैठाया। एक वृद्धा थी। एक डोसी। डोसी समझते हो ? बुढ़िया। तो बुढ़िया कंजूस थी थोड़ी। उसके घर के पीछे खुली जगह थी। वहाँ काँटे का दरवाजा था। आपके वहाँ क्या कहते हैं ? रास्ते को ढाँक दिया था। तो उसमें एक बिल्ली अन्दर मर गयी थी। अब क्या करना ? यदि हरिजन को कहेंगे तो पाँच सौ–दो हजार देने पड़ेंगे। छुप–छुपकर उसने चूले में से राख लेकर वहाँ जाकर बिल्ली के ऊपर डाली। दरवाजा खुला रह गया। बाहर एक ऊँट था। मरने की तैयारी थी। ऊँट की मरने की तैयारी थी और वृद्धा वहाँ राख डालने गयी तो ऊँट अन्दर घुस गया और वह मर गया। अब क्या करना ? बिल्ली तो निकाली, परन्तु ऊँट निकाले कैसे ? आहाहा ! समझ में आया ? उसको झाँपा (फाटक) कहते हैं। आपके यहाँ क्या कहते हैं ? तो झाँपा खुला रखकर बिल्ली को बाहर निकाला तो ऊँट अन्दर घुस गया और मर गया। हाय... हाय ! अब क्या करना ? तो चार मन गेहूँ देने पड़े।

ऐसा कहते हैं कि दया, दान, व्रत का विकल्प करने गया और कर्ता हुआ, वह तो बिल्ली है, उसको निकालने गया तो मिथ्यात्व घुस गया। ऊँट वहाँ मर गया। राग मेरा है और राग का कर्तव्य मेरा है, उसका नाम मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग मार्ग तो सर्वज्ञ का मार्ग है। कोई साधारण मार्ग मान ले ऐसी चीज़ नहीं। तो कहते हैं कि **जो दया से विशुद्ध है, वह धर्म है,...** एक बात। यह धर्म। समझ में आया? वस्तु का स्वभाव, वह धर्म। तो वस्तु का भगवान आत्मा का स्वभाव तो आनन्द और ज्ञान है। तो आनन्द और ज्ञान की उत्पत्ति होना उसका नाम धर्म और उसका नाम दया है। आहाहा! कहो, धन्नालालजी!

मुमुक्षु : यह निश्चय कथन हुआ, व्यवहार से क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का अर्थ क्या? है नहीं, उसको कहना अर्थात् व्यवहार। यह है, उसको जानना अर्थात् निश्चय। बारदान को कहना कि... माल को तौलते हैं न? चावल। चार मण ढाई सौ। तो चार मन चावल है और ढाई सेर बारदान है। साथ में तो तौल में आया। तो बारदान चावल की जगह रसोई में लेते नहीं। ढाई सौ चावल कम हो तो बारदान काम आवे? ऐई! मनसुख! उसका बड़ा व्यापार है न? समझ में आया? हमारे साथ में व्यापार था।... उसका तौल-माप था। वहाँ डालते थे। माल ले जाये तो वहाँ रखे। तब तो छोटा व्यापार था न। अभी बढ़ गया। पाप में कहो, समझ में आया?!

कहते हैं कि दया से विशुद्ध। देव में दया वीतरागी पर्याय, गुरु में दया वीतरागी पर्याय और धर्म वीतरागी पर्याय। तीनों वीतरागी पर्याय से पहचानने में आते हैं, ऐसा कहते हैं। देखो! ऊपर लिखा है न? **धर्मादिक का स्वरूप कहते हैं, जिनके जानने से देवादि का स्वरूप जाना जाता है।** ऊपर है। है? **धर्मादिक का स्वरूप कहते हैं, जिनके जानने से देवादि का स्वरूप जाना जाता है।** देव का, गुरु का, धर्म का स्वरूप जानने में आता है। इससे देव-गुरु-शास्त्र की पहचान भी होती है। जो देव दूसरे को मारो, एकेन्द्रिय का घात करो तो धर्म होगा, ऐसा कहनेवाले देव नहीं, कुदेव हैं। और जो गुरु राग में धर्म मनावे, वह कुगुरु है। और जो शास्त्र राग से धर्म होगा, पुण्य से धर्म होगा—ऐसा कहे, वह शास्त्र कुशास्त्र है। समझ में आया?

जो सर्व परिग्रह से रहित है, वह प्रव्रज्या है,... चारित्र कैसा है? कि जिसमें

बाह्य में वस्त्र का धागा भी नहीं और अन्दर में विकल्प की तीव्रता का अभाव। मन्द विकल्प हो, संज्वलन का बहुत मन्द विकल्प हो और अकषाय वीतरागदशा। तीन कषाय का अभाव, वीतरागी गाँठ प्रगट हुई है, राग की गाँठ छूट गयी है, ऐसी निर्ग्रन्थदशा। वीतरागी भाव में झूलते हो। क्षण-क्षण में छठवें-सातवें गुणस्थान में हो। क्षण में सातवाँ... क्षण में छट्ठा, क्षण में सातवाँ, क्षण में छट्ठा। आनन्द में झूलते हो, उसका नाम प्रव्रज्या कहते हैं। समझ में आया?

जो सर्व परिग्रह से... परिग्रह अर्थात् राग से भी रहित और वस्त्र का धागा भी मुनि को होता नहीं। वस्त्र का धागा रखकर मुनि माने, मनावे, मानते हो, (उसके साथ) सम्मत हो, तो मिथ्यादृष्टि निगोद जायेगा। समझ में आया? ऐई! नेमिदासजी! **जो सर्व परिग्रह से रहित है, वह प्रव्रज्या है,...** आहाहा! ऐसा आता है। वहाँ थोड़े-थोड़े दोहरे आते हैं न? स्थानकवासी में। नहीं? उसमें आता है। यह शब्द आता है। प्रव्रज्या, चारित्र। चारित्र कैसा? जिसमें राग का अंश भी नहीं। पंच महाव्रत का विकल्प है, वह चारित्र नहीं। समझ में आया? अट्ठाईस मूलगुण का राग है, वह चारित्र नहीं। बारह व्रत का विकल्प श्रावक को है, वह चारित्र नहीं। स्वरूप में, आनन्द में झूलने से वीतरागी परिणति निर्मल हो, उग्र निर्मल हो, उसका नाम चारित्र और प्रव्रज्या कहने में आता है। समझ में आया? ऐसी प्रव्रज्या देव ने पाली, गुरु पालते हैं, धर्म ऐसा है। ऐसे धर्म की कथनी देव-गुरु करते हैं। उससे विरुद्ध करे, वह देव-गुरु है नहीं। समझ में आया?

जिसका मोह नष्ट हो गया है, वह देव है,... देखो! देव इसको कहे कि राग और मोह बिल्कुल है नहीं। स्त्री को गोद में रखे। हथियार हाथ में रखे, मुकुट बड़ा रखे, वह देव नहीं। उसे देव की खबर नहीं। देव तो मोह और राग-द्वेष से रहित हो, वह देव है। बिल्कुल वीतरागता। पूर्णानन्द की प्राप्ति। केवलज्ञान अनन्त आनन्द परमात्मा को पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीतरागता प्रगट हुई, वह देव है। उसको कोई स्त्री है, हाथ में हथियार है, माला गिनते हैं, (वह देव नहीं)। माला गिने, वह तो रागी प्राणी है। समझ में आया? हथियार रखते हैं तो किसी के प्रति द्वेषी है, स्त्री रखते हैं तो विषय की वासना है। वह देव नहीं। समझ में आया? देव तो मोह से रहित हैं, नाश हुआ है।

वह भव्य जीवों के उदय को करनेवाला है। देखो! **'उदयकरो भव्वजीवाणं'**

देव कैसे हैं ? कि उसको जो माने, उसकी दृष्टि में अनुभव करे। उदय करो। भव्य जीव का उदय करनेवाले हैं। भव्य जीव को केवलज्ञान तो होगा परन्तु तीर्थंकरपद प्राप्त होगा ऐसे भव्यजीव का उदय करनेवाले भगवान हैं, ऐसा कहते हैं। टीका में ऐसा लिया है। इसमें है। टीका में लिया है। उदयकर। आहाहा! समझ में आया? उसको तीर्थंकरगोत्र प्रगट होगा। क्योंकि जिसमें राग का आदर और स्वभाव का आदर हुआ, जैसा भगवान ने कहा, ऐसा अनुभव में लिया तो देव उदयकरा हुआ। उसको वीतरागदशा भी प्रगट होगी और पुण्य का फल भी ऐसा उदय होगा, सो इन्द्र जिसको पूजे, ऐसे तीर्थंकरपद का देनेवाला देव है, ऐसा यहाँ कहते हैं। ऐसे तीर्थंकरपद को देनेवाले देव हैं। ऐसा कहते हैं। ऐई! निमित्त से कथन है न?

वह तो श्रीमद् में नहीं आता? श्रीमद में आता है या नहीं? 'ते तो प्रभु आपीयो...' ओहोहो! 'ते तो प्रभुये आपीओ...' उसके पहले क्या आता है? सुनो! 'शुं प्रभु चरण कने धरुं' गुजराती है, भाई! श्रीमद् राजचन्द्र हुए हैं न? बहुत ज्ञानी थे, सम्यग्दृष्टि थे। उसने आत्मसिद्धि बनाया था। उसमें ऐसा लिखा है। 'शुं प्रभु चरण कने...' शिष्य कहता है। सम्यग्ज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, ऐसा राग से भिन्न अनुभव हुआ ऐसा सम्यग्दृष्टि गुरु को कहते हैं। 'शुं प्रभु चरण करने धरुं, आत्माथी सौ हीन। ते तो प्रभुअे आपीओ वर्तु चरणाधीन।' यह ... भाई।... सवेरे याद आया था। श्रीमद् में ऐसा है। आत्मा की पहिचान हुई, गुरु ने ऐसा वचन कहा, उसका अन्तर में परिणमाकर (कहता है), अहो! अहो! मैं तो आनन्दस्वरूप हूँ। मेरे में रागादि विकल्प की गन्ध नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ तो कहते हैं कि आत्मा हुआ। आत्मा हुआ तो गुरु को कहते हैं। तुमने दिया। गुजराती आया न? देव देते हैं, गुरु देते हैं। आहाहा! समझ में आया?

उसमें वह पंक्ति आयी है। समझे? 'शुं प्रभु चरण कने धरुं,...' शुं का अर्थ क्या। प्रभु के चरण धरुं? हिन्दी में क्या शब्द है, गुजराती में शुं (शब्द) है। क्या। 'शुं प्रभु चरण कने धरुं, आत्माथी सौ हिन।' भगवान आत्मा से तो सब हीन है। पुण्यपरिणाम भी हीन है। तो आपके चरण में क्या धरुं? समझ में आया? 'शुं प्रभु चरण कने धरुं, आत्माथी सौ हीन। ते तो प्रभुअे आपीयो...' प्रभु ने आत्मा जो अधिक था, वह तो आपने दिया। दिया अर्थात् समझाया। समझाया तो अपने से प्राप्त हुआ। इसलिए आपने दिया, ऐसा कहने में आता है।

'वर्तुं चरणाधीन।' बस। आपके चरण में आधीन वर्तुं, दूसरी कोई चीज़ है नहीं। आत्मा से अधिक दूसरी कोई चीज़ है नहीं। वह चीज़ थी आपने हमें दी। अब आपके चरण में मैं क्या रखूँ? समझ में आया? पहले ऐसा समझना। पुस्तक...

भाई पहले पूछते थे न? ज्ञायकभाव... कल रात को पूछते थे। दोपहर की बात सूक्ष्म थी। सुने तो सही। बहुत वर्ष हो गये। यहाँ तो ३६ साल हुए। तीन और छह तो इस जंगल में हुए। २१ और ४ सम्प्रदाय में हुए। स्थानकवासी सम्प्रदाय में थे। उस समय हम साधु थे। २१ वर्ष ४ मास। ५७ वर्ष तो वह हुए और साढ़े तेईस साल यहाँ, ८१वाँ वर्ष चलता है। शास्त्र के हिसाब से तो ८२वाँ चलता है। कैसे? कि सवा नौ महीने माता के उदर में आये, तब से यहाँ का आयुष्य है। परन्तु यहाँ तो बाहर में जन्म से गिनने में आता है। जन्म तब से गिनने में आता है। शास्त्रकार तो सवा नौ महीने देखकर आयुष्य गिनते हैं।

मुमुक्षु : कायदा में भी ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कायदा ही ऐसा है। ऐसा होता है।

आपके (यहाँ) राजकुमार का प्रश्न हुआ था। पहला राजकुमार जो आया वह छोटा और बाद में आया वह बड़ा। ऐसी चर्चा हुई थी। वह बात भी सही है। माता के उदर में से जब दो पुत्र आते हैं, तब पहले आता है, वह छोटा है। बाहर में बड़ा कहने में आता है। गर्भ में वह पहले आया हे और वह बाद में आया है। बाद में आया, वह पहले निकलता है। यहाँ समय-समय की गिनती होती है।

रामजीभाई ने ऐसा केस चलाया था। कोई गरासिया की दो सन्तान थी। आप किसी का कहते थे न? पहला पुत्र आया उसने कहा, हम पाटवी है। पहले आया न? भले ही एक मिनट पहले आया हो। बाद में आया वह कहे, हम पाटवी है। कैसे? तो कहा, हम तो माता के उदर में पहले आये। तो निकलने में पीछे रह गया। और पहले वह निकला। परन्तु पाटवी तो मैं हूँ। समझ में आया? ऐसा शास्त्र में आता है। समय-समय की बात है। उस भव से छूटा, वहाँ से निकला, इस भव में माता के पेट में आया। पेट में आने में तो एक-दो समय भी लगे। रास्ते में एक-दो-तीन समय लगता है, वह भी यहाँ का आयुष्य है। रास्ते में एक-दो-तीन समय रहता है, वह यहाँ की देह की स्थिति थी। समझ में आया?

शास्त्र में ऐसा लेख है कि यहाँ मरे और एक समय में सीधा जन्मे, सीधा उपजे तो उसे जातिस्मरण होने का अवकाश है। क्या कहा, समझ में आया? लड़की को जातिस्मरण हुआ न? परसों बताया न। जूनागढ़ में तीन ... सीधी आयी। लगभग एक समय में। समझ में आया? यहाँ देह छूटे तो वहाँ उसका जन्म सीधा एक समय में यहाँ हो, वहीं उत्पन्न हुआ हो और बाद में जन्म हो तो उसको जातिस्मरण-पूर्व भव का स्मरण आने का अवकाश है। परन्तु एक समय ऐसा हुआ और यहाँ देह छूट गया। यहाँ से यहाँ जाना है। ऐसे जाकर ऐसे जायेगा। तो एक समय वहाँ का गया। तो उसको जातिस्मरण होने का अवकाश नहीं। तत्त्वार्थसार में नीचे है। तत्त्वार्थसार है। भाई का है न? बंसीधरजी। बुरहानपुरवाला। तत्त्वार्थसूत्र का बहुत अच्छा अर्थ किया है। ४९ साल हुए। एक-दो भूल है। वह तो हमारे बात हो गयी है। भूल कबूल की है। ५१ साल पहले उसने तत्त्वार्थसूत्र का अर्थ किया है। अमृतचन्द्राचार्य।

मुमुक्षु : विग्रहगतिवाले के लिये एक समय...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में सीधा उत्पन्न हो तो उसको जातिस्मरण होने का अवकाश है। दो समय, तीन समय ऐसा टेढ़ा भी होता है। उसको जातिस्मरण होने का अवकाश नहीं। देखो! वहाँ भी सीधा जाये तो जातिस्मरण होता है। टेढ़ा जाये तो जातिस्मरण होता नहीं। ऐसा सिद्धान्त है। उसमें है वह। नीचे नोट में है। तत्त्वार्थसार हमने तो पूरा देखा है। समझ में आया?

कहते हैं कि... ओहोहो! आत्मा अपना सीधा स्वरूप (जाने)... समझ में आया? पुण्य-पाप के विकल्प के आस्रव से रहित, ऐसी दृष्टि करे तो सम्यक् होता है। क्योंकि सीधा मार्ग वह है। समझ में आया? आहाहा! कैसे करना? सुनो तो सही, पहले निर्णय तो करो कि मार्ग ऐसा है। दूसरा मार्ग है नहीं। समझे नहीं, सुने नहीं और ऐसे ही धर्म हो गया। धूल में भी धर्म नहीं। क्रियाकाण्ड करके मर जाये। समझ में आया? क्लेश-क्लेश, शास्त्र तो कहते हैं। आत्मा की सम्यक् अनुभव दृष्टि बिना पंच महाव्रत का विकल्प क्लेश, भार-बोझा है। आहाहा!

न्यालभाई ने लिया है कि, हमको तो विकल्प बोझ लगता है। भगवान की भक्ति का विकल्प आता है, (उसमें) भट्ठी लगती है। क्योंकि हल्की चीज़ पर विशेष वजन हो

तो बोझ लगे। वजनदार चीज़ पर हल्की चीज हो तो बोझ नहीं लगता। समझ में आया? न्यालभाई हैं, कलकत्ता में थे। गुजर गये। बहुत लक्ष्मी, पैसेवाले, बहुत कीर्ति, बहुत दिमागवाले। बहुत भव (अन्त) के करीब थे, बहुत करीब। अल्प काल में केवलज्ञान लेंगे। ऐसे सोगानी कलकत्ता में थे। दिल्ली न? कलकत्ता। अजमेर के रहनेवाले थे। यहाँ तो बहुत आ गये हैं। यहीं समकित पाया है न। अनुभव यहाँ हुआ। दूसरी साल। २००२। यहाँ आये थे। बहुत वाँचन, बहुत वाँचन। दिमाग भी बहुत! हमने इतना कहा, भैया! ज्ञान और राग भिन्न है। समझ में आया? यहाँ पुस्तक नहीं है। राग और ज्ञान भिन्न है। भिन्न है, ऐसा नहीं कहा था। ज्ञान और राग जुदा है। हमारी गुजराती भाषा है न। ज्ञान और राग जुदा छे। बस! इतना कहा। (प्रवचन के बाद) कमरे में चले गये। अपनी समिति है न? कमरे में चले गये। २००२ के वर्ष की बात है। चौबीस वर्ष हुए। ध्यान में बैठे। राग और आत्मा को भिन्न करकर सम्यग्दर्शन होकर, अनुभव होकर सवेरे उठे।

उसमें वह लिखा है। पुस्तक है न? देखो अन्दर। एक पुस्तक होगा, वहाँ देखो। 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश' भैयाजी को एक छोटा पुस्तक तो दो–रामानन्दजी को। थोड़ा कठिन तो पड़ेगा परन्तु रखे तो सही। स्वाध्याय मन्दिर में है। दो भाग है। एक द्रव्यदृष्टिप्रकाश में पत्र है। समझ में आया? द्रव्यदृष्टिप्रकाश उसके ग्रन्थ का नाम दिया है। हमारे लालुभाई और शशीभाई दोनों मिलकर। शशीभाई मोढ है, मोढ। वैष्णव है, अजैन। यह किसका है?

अहा! कितने मार्मिक महत्वपूर्ण थे ये शब्द! २००२ साल की बात है। 'ज्ञान अने राग जुदा है।' हमारी गुजराती भाषा में कहा था। इस संसार की जाल में भटकते हुए प्राणी का तत्क्षण सच्चा पुरुषार्थ जाग उठा। सुवर्णपुरी सोनगढ़ की समिति के एक कमरे में। यह रसोईघर है न? उसके कमरे में। 'बैठकर सारी रात अतीन्द्रिय ध्रुव स्वभाव का घोलन किया।' अतीन्द्रिय आनन्दकन्द का घोलन किया। 'और उसी रात निर्विकल्पदशा प्राप्त कर ली।' सम्यग्दर्शन उसी एक रात में प्राप्त किया। 'उनकी यह निर्विकल्पदशा अखण्डधारा जीवनपर्यन्त निरन्तर चलती रही।' आखिर में वह आया... क्या कहते हैं? हार्टअटेक। देह छूट गया। वैमानिक में चले गये। पीछे लिखा है। उपरोक्त कहते हैं। 'अरे! मुझसे कुछ भी आशा मत रखो। पंगु समझकर दो समय का भोजन शरीर टिकाने के लिये दो।'

मुमुक्षु : उसके पुत्र से कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पुत्र को, सबको कहते हैं।... मेरी वृत्ति कहीं टिकती नहीं। मेरी आत्मा के अलावा कहीं चैन नहीं पड़ता। इसमें ॐ नहीं किया है। आपने पढ़ा है? बाद में दूसरा आयेगा।

मुमुक्षु : निशानी नहीं करी...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... देखा तो सही लेकिन ... ये तो अन्दर में एक दिखा, इसलिए कुछ नहीं बोले। समझ में आया? आहाहा!

अरे! देव तो तीर्थंकरपद देते हैं। यहाँ तो यह कहते हैं। केवलज्ञान दे। देव तीर्थंकरपद दे, ऐसा कहते हैं। है? **'उदयकरो भव्वजीवाणं'** आहाहा! ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ रागरहित वीतरागदशा (सहित हैं), ऐसी जिसको अपने अन्तर में प्रतीति-अनुभव हुआ तो उसको विकल्प भी ऐसा आता है तो तीर्थंकर हो जायेगा और केवलज्ञान लेगा। ऐसे भगवान देव केवलज्ञान भी देते हैं और तीर्थंकरपद भी देते हैं, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। समझ में आया? जिसके पास हो, वह दे। अपने पास लक्ष्मी हो तो लक्ष्मी दे। भिखारी के पास माँगने जाओगे तो कहाँ से देगा?

भावार्थ - लोक में यह प्रसिद्ध है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुष के प्रयोजन हैं। धर्म अर्थात् पुण्य, अर्थ अर्थात् लक्ष्मी, काम अर्थात् भोग, मोक्ष अर्थात् आनन्द-सिद्धपद। यह चार पुरुष के प्रयोजन हैं। बराबर है? **उनके लिए पुरुष किसी को वंदना करता है,...** इसी के लिये पुरुष किसी को वन्दन और पूजन करता है। **और यह न्याय है कि जिसके पास जो वस्तु हो, वह दूसरे को देवे,...** जिसके पास जो है, वह दे। न हो, वह क्या दे? **न हो तो कहाँ से लावे?** नहीं है, वह कहाँ से दे? आहाहा!

इसलिए ये चार पुरुषार्थ जिनदेव के पाये जाते हैं। धर्म तो उनके दयारूप पाया जाता है,... देखो! भगवान दयारूप धर्म अहिंसा वीतरागभाव पड़ा है। यह दया है। आहाहा! **उसको साधकर तीर्थंकर हो गये, तब धन की और संसार के भोगों की प्राप्ति हो गई,...** तीर्थंकर को तो लक्ष्मी भी इतनी मिली। इन्द्र जिसको पूजते हैं। समझ में आया? और तीर्थंकर जो होते हैं, उनकी तो भोगसामग्री, आहारादिक देव स्वर्ग

में से लाते हैं। लाते हैं या नहीं? वस्त्र आदि स्वर्ग में से आता है। देव आते हैं, देव। वस्त्र आदि भोगसामग्री। आहाहा! इतने पुण्य है। परमात्मदशा प्रगट हुई है। और परमात्मा होने पूर्व भी जब परमात्मा की दृष्टि का अनुभव था और परमात्मा हुए, बाद में बाहर में तीर्थंकर हुआ। परन्तु अन्दर में तो ऐसी दशा थी तो जिसको इन्द्र भी पूजते थे। जन्म से जब तीर्थंकर हुए, उनका शरीर भी ऐसा। एक हजार कलश पानी से स्नान कराये तो भी (कुछ नहीं होता)। एक दिन का जन्म हुआ हो और उस पर पानी डाले तो तुरन्त मर जाये। भगवान के शरीर को वहाँ मेरुपर्वत पर ले जाये और इन्द्र, शकेन्द्र, ईशानइन्द्र गोद में बैठाते हैं। एक हजार और आठ कलश। एक कलश कैसा? आठ-आठ योजन का और एक योजन चार-चार कोस का।

मुमुक्षु : एक घड़े में समुद्र बन जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे पानी डाले। भगवान तो ऐसे बैठे थे। एक दिन का जन्म। शरीर की जाति भी अलग। क्योंकि डिब्बा ही अलग है। केसर का डिब्बा कोई थैला नहीं होता। केसर बोरी में नहीं रहते। केसर तो डिब्बे में रहता है। जिसमें से निकले नहीं। बड़े थैले में डाला हो तो भुक्का होकर निकल जाये। ऐसे तीर्थंकर का आत्मा अन्दर में ऐसा होता है कि जिसका शरीर बारदान भी एक हजार आठ कलश का पानी झेल सके ऐसा थैला है। ऐई! धन्नालालजी! आहाहा! कहते हैं कि केवली परमात्मा का पुण्य भी बड़ा होता है और पवित्रता भी पड़ी होती है। आहाहा!

सब मोह से रहित होकर,... संसार के भोगों की प्राप्ति हो गई, लोकपूज्य हो गए... इन्द्र पूजते हैं। **और तीर्थंकर के परमपद में दीक्षा लेकर, सब मोह से रहित होकर,...** देखो! परमार्थस्वरूप वीतराग केवलज्ञान पाने से पहले तीर्थंकर के आत्मा ने अपने आनन्द का साधन किया। आहाहा! **परमार्थस्वरूप आत्मिकधर्म को साधकर,...** परमार्थस्वरूप आत्मिक धर्म। पंच महाव्रत का विकल्प आत्मिक धर्म नहीं, परमार्थस्वरूप नहीं।

परमार्थस्वरूप आत्मिकधर्म को साधकर, मोक्षसुख को प्राप्त कर लिया ऐसे तीर्थंकर जिन हैं,... देखो! **वे ही 'देव' हैं। अज्ञानी लोग जिनको देव मानते हैं, उनके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नहीं है,...** चारों नहीं। ऐसा पुण्य भी नहीं, ऐसा भोग

भी नहीं, ऐसी लक्ष्मी भी नहीं और ऐसी प्रव्रज्या भी नहीं। **क्योंकि कई हिंसक हैं, कई विषयासक्त हैं, मोही हैं, उनके धर्म कैसा? अर्थ और काम की जिनके वांछा पाई जाती है, उनके अर्थ, काम कैसा?** क्या कहते हैं? लक्ष्मी और भोग की जिसको इच्छा है, उसको लक्ष्मी और भोग कहाँ से मिलेगा? जिसको त्याग है, राग का त्याग है, उसको लक्ष्मी आदि विषय मिलेंगे। समझ में आया? गजब अर्थ किया है।

जन्म, मरण सहित हैं, उनके मोक्ष कैसे? जिनको जन्म मरण करना है, वह देव देव कैसा? **ऐसा देव सच्चा जिनदेव ही है...** ऐसे देव सच्चे वीतराग परमात्मा सर्वज्ञ परमात्मा हैं, ऐसे देव को अन्दर से यथार्थ जाने तो वह भी देव हो जायेगा और परमात्मा हो जायेगा। **वही भव्यजीवों के मनोरथ पूर्ण करते हैं,...** देखो! निमित्त है न? निमित्त से बात है। भगवान पूर्णानन्द प्रभु ऐसी जिसकी अपने में अपनी दृष्टि हुई, अपने में ज्ञान हुआ, विकल्प ऐसा आया कि लोक धर्म प्राप्त करे, ऐसी (भावना) से तीर्थंकरगोत्र बँध जाता है। तो सारा मनोरथ पूरा हो गया। तीन लोक के देव जिसको वन्दन करेंगे, तीन लोक के देव जीव जिनको वन्दन करेंगे। **वही भव्यजीवों के... 'उदयकरो भव्वजीवाणं'** है न? **भव्यजीवों के मनोरथ पूर्ण करते हैं, अन्य सब कल्पित देव हैं।** बाकी सर्व कल्पित हैं। **इस प्रकार देव का स्वरूप कहा।** ओहो! अब तीर्थ का स्वरूप (कहेंगे)।

मुमुक्षु : साधक जीव की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधक जीव की बात है। यह तो साधक देव को पहचानते हैं न, दूसरा कौन पहचानता है? अज्ञानी देव को पहचान सकता नहीं। साधक ही ... है। सम्यग्दृष्टि ही देव का स्वरूप जानते हैं। गुरु का वही जानते हैं और धर्म का स्वरूप भी वही जानते हैं। अज्ञानी तीनों को जानते नहीं। राग को मानते हैं। राग से धर्म हो तो तीनों अज्ञान से जानते हैं। अब तीर्थ का स्वरूप कहते हैं। लो। वह थोड़ा बाकी रह गया। विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६०, गाथा-२६-२७, बुधवार, श्रावण शुक्ल ९, दिनांक १२-०८-१९७०

यह अष्टपाहुड़। पाहुड़ अर्थात् सार। अष्ट प्रकार का सार। अष्टप्राभृत, अष्टप्राभृत। आठ प्रकार की भेंट। आत्मा को आठ प्रकार से धर्म की भेंट दी। बोधपाहुड़ में ११ बोल चल रहे हैं। निश्चय से। आठ बोल चले। आखिर में देव (का स्वरूप आया)। देव किसको कहते हैं, वह आ गया। अब नौवाँ तीर्थस्वरूप। जैनमार्ग में तीर्थ किसको कहते हैं? सागर, समुद्र, नदी ये कोई तीर्थ नहीं।

मुमुक्षु : सम्मेदशिखर, गिरनारजी...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी वास्तव में तीर्थ नहीं है। सम्मेदशिखर और गिरनार। वह तो व्यवहारतीर्थ शुभभाव हो तो भाव में लक्ष्य वहाँ जाता है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। सम्मेदशिखर, गिरनार आदि। वह तो शुभभाव में निमित्त है। व्यवहार है, वह शुभभाव है। इतना। परन्तु वह सच्चा तीर्थ नहीं। सच्चा तीर्थ अपना आत्मा-आत्मतीर्थ है। वह कहते हैं, देखो!

गाथा-२६

आगे तीर्थ का स्वरूप कहते हैं -

वयसम्मत्तविसुद्धे पंचेंदियसंजदे णिरावेक्खे।
ण्हाएउ मुणी तित्थे, दिक्खासिक्खासुण्हाणेण ।।२६।।

व्रतसम्यक्त्वविशुद्धे पंचेंद्रियसंयते निरपेक्षे।
स्नातु मुनिः तीर्थे दीक्षाशिक्षासुस्नानेन ।।२६।।

निरपेक्ष पंचेन्द्रिय सुसंयत शुद्ध समकित व्रत-सहित।
मुनि-तीर्थ में दीक्षा सुशिक्षा न्हवन से होओ पवित्र।।२६।।

अर्थ **- व्रत सम्यक्त्व से विशुद्ध और पाँच इन्द्रियों से संयत अर्थात् संवरसहित तथा निरपेक्ष अर्थात् ख्याति, लाभ, पूजादिक इस लोक के फल की तथा परलोक में**

स्वर्गादिक के भोगों की अपेक्षा से रहित ऐसे आत्मस्वरूप तीर्थ में दीक्षा-शिक्षारूप स्नान से पवित्र होओ।

भावार्थ **– तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण-सहित, पाँच महाव्रत से शुद्ध और पाँच इन्द्रियों के विषयों से विरक्त, इस लोक-परलोक में विषयभोगों की वांछा से रहित ऐसे निर्मल आत्मा के स्वभावरूप तीर्थ में स्नान करने से पवित्र होते हैं, ऐसी प्रेरणा करते हैं।।२६।।**

गाथा-२६ पर प्रवचन

वयसम्मत्तविसुद्धे पंचेंदियसंजदे णिरावेक्खे।
ण्हाएउ मुणी तित्थे, दिक्खासिक्खासुण्हाणेण।।२६।।

जो कोई धर्मात्मा अपना आत्मा आनन्द और ज्ञान का सागर है, ऐसा अन्तर में सम्यग्दर्शन प्रगट करके व्रतसहित हो अर्थात् स्वरूप में स्थिरता विशेष हो। ऐसा समकित-सहित, व्रतसहित विशुद्ध ऐसा जो आत्मा है, वह तीर्थ है।

मुमुक्षु : सब बात घर में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर में है। घर में न हो तो पर में कहाँ है? भजन में आता है या नहीं? 'अब हम कबहु न निजघर आये। अब हम कबहु न निजघर आये। परघर भ्रमत फिरत अनेक नाम धराये। अब हम कबहु न निजघर आये।' चाहे तो व्रत करे, चाहे तो तपस्या करे, अनशन, ऊनोदरी (करे), शिखरजी की यात्रा करे।

मुमुक्षु : एक बार वन्दे जो कोई...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।... ... लाख बार मेरु शिखर की, सम्मेदशिखर की यात्रा करे तो शुभभाव है, पुण्य है। शोभालालजी!

मुमुक्षु : एक बार करे तो हो जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक बार करे, तो बोले थे। एक बार करे तो उसको ऐसा शुभभाव हो तो दुर्गति न जाये, ऐसा। जन्म-मरण का अन्त आवे, ऐसा उसमें नहीं लिखा है, देखो! 'एक बार वन्दे जो कोई...' बाद में? 'नरक पशु गति न होई।' सर्व गति न होवे, ऐसा नहीं

है। नरक पशु हो। पहले आयुष्य बँध गया हो, सम्यग्दृष्टि को पहला नरक का आयुष्य बँध गया हो, फिर सम्यग्दर्शन हुआ हो तो श्रेणिक राजा नरक में गये। उसमें क्या है? श्रेणिक राजा हुए न? भगवान के भक्त। परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग के शासन में श्रेणिक राजा (हुए)। हजारों राजा जिसकी तैनाती में चंवर ढालते थे। ऐसे राजा ने क्षायिक सम्यग्दर्शन पाया। क्षायिक समकित। अपना आनन्दस्वरूप भगवान, उसमें दृष्टि पसारकर शुद्ध दृष्टि के अनुभव में आनन्द का अनुभव आना, ऐसा सम्यग्दर्शन, श्रेणिक राजा गृहस्थाश्रम में थे, राजपाट में थे, ऐसा दिखता था, ऐसे सम्यग्दर्शन में तीर्थंकरगोत्र पाया। तीर्थंकरगोत्र का ऐसा विकल्प आया (तो) तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। जैसे महावीर भगवान तीर्थंकर थे, वैसे भगवान श्रेणिक राजा आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। किसके प्रताप से? सम्यग्दर्शन (के प्रताप से)।

पहले नरक का आयुष्य बँध गया, वह तो छूटे नहीं। समझ में आया? गति (स्थिति) लम्बी थी, वह कम कर दी। ३३ सागर की स्थिति (थी)। साधु की असातना की। नग्नमुनि दिगम्बर महामुनि आत्मा के आनन्द में लीन थे। ऐसे साधु के गले में वहाँ पास में मरा हुआ सर्प पड़ा था, वह (गर्दन में) डाल दिया। समझ में आया? सातवीं नरक की आयु बाँधी। सप्तम नर्क की। ३३ सागर। उसके पीछे उसकी स्त्री समकिती थी। चेलना रानी धर्मी थी। उसमें क्या है? पति हो मिथ्यादृष्टि, वह हो समकिती। उसके साथ कोई सम्बन्ध है? चेलना रानी समकिती आत्मज्ञानी थी। उसने एक बार कहा कि राजन! हमारे मुनि तो अलौकिक होते हैं। वह बौद्धधर्मी थे। बौद्ध को मानते थे। हमारे मुनि तो अलौकिक होते हैं। (राजा कहता है), देखे तेरे मुनि। हमने तेरे मुनि के गले में मरा हुआ सर्प डाला। छोड़ दिया होगा। (रानी कहती है), अन्नदाता! राजन! ऐसा नहीं होता। हमारे मुनि तो वीतरागी आनन्द में झूलते हैं। समझ में आया? आनन्द, अतीन्द्रिय, अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में (झूलते हैं)। मुनि तो अतीन्द्रिय आनन्द में पड़े हैं। बाहर के उपसर्ग की उनको दरकार भी नहीं। चलो मुनि के पास।

अन्दर आनन्द की लहर में पड़े थे। राजन! यह सर्प पड़ा है। लाखों चींटियाँ, लाखों चींटी। शरीर खोखला हो गया। स्त्री समकिती थी, ज्ञानी थी। चींटियाँ हटाकर ऐसा किया। महाराज! वीतरागी मुनि जैनधर्म के सन्त ऐसे होते हैं। समझ में आया? जिसके आनन्द

में लहर है। ओहो! वहाँ वह श्रेणिक राजा समकित पाया। मुनि ने उपदेश दिया। आत्मज्ञान, सम्यग्दर्शन पाया। रानी के निमित्त से। देखो! स्त्री निमित्त हुई पति को समकित में। इसमें क्या है? और बाद में तीर्थंकरगोत्र बाँधा। परन्तु नरक का आयुष्य बँध गया था। लड्डू किया हो तो उसमें से घी निकालकर पूड़ी नहीं होगी। आटा निकालकर रोटी नहीं होगी, गुड़ निकालकर दूसरी चीज़ में नहीं डाल सकते। वह तो उसमें है, इतना खाना ही पड़ेगा। लड्डू में जो विशेष घी डाले तो बहुत चिकना होता है और थोड़ा दो-चार दिन में सुख जाये, परन्तु लड्डू तो वैसा का वैसा रहेगा। लड्डू पलटकर उसमें से रोटी हो, ऐसा होता नहीं। वैसे एक बार नरक का आयुष्य बँध गया, वह पलटे नहीं। स्थिति घटा दी, मुनि को वन्दन करते-करते। समझे? ३३ सागर की स्थिति।

तैंतीस सागर किसको कहते हैं? एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम और एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष। इतनी स्थिति पड़ी थी। महामुनि धर्मात्मा, तीर्थंकर आदि को वन्दन करके वह स्थिति तोड़ डाली। ८४ हजार वर्ष की स्थिति रह गयी। ८४ (हजार) वर्ष, दस हजार नहीं। ८४ हजार वर्ष की स्थिति रही। ८४ हजार वर्ष की स्थिति में अभी पहली नरक में है। रत्नप्रभा पहली नरक है। समझ में आया? नाम रत्नप्रभा है, हों! वहाँ रत्न-फत्न नहीं है। रत्नप्रभा नाम की नरक है, उसमें ८४ हजार वर्ष की स्थिति में श्रेणिक राजा है। २५०० वर्ष गये। समझ में आया? ८१,५०० वर्ष बाकी रहे। (वहाँ से) निकलकर तीर्थंकर होंगे।

यह समकित का प्रताप! क्षायिक समकित हुआ। गृहस्थाश्रम हो तो उसमें क्या है? अन्दर आत्मा भगवान पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा! अन्तर में जब डुबकी मारते हैं तो आनन्द का स्वाद लेकर बाहर आते हैं। उसका नाम भगवान समकित कहते हैं। आहाहा! वे कहते हैं कि ऐसा जो आत्मा का समकित करे और समकित सहित व्रत हो... स्वरूप में स्थिरता, स्थिरता, आनन्द की जमवट, अतीन्द्रिय आनन्द की जमवट... क्या कहते हैं तुम्हारे में?

मुमुक्षु : जमवट माने क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारी भाषा का अर्थ तुम्हें नहीं आता? जमावट। तुम्हारी भाषा में जमवट नहीं कहते?

मुमुक्षु : आपके श्रीमुख से सुनना चाहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये उसकी दलाली करते हैं। आहाहा! जमवट हुई। अन्दर जम जाये। सर्दी के दिन में जो घी होता है न? उसमें उँगली तो न जाये परन्तु खुरपा न जाये। पहले ऐसा घी आता था। अब तो सबमें कालाबाजार हो गया है। रामानन्दजी को बहुत करना पड़ा होगा। चोपड़ा-बोपड़ा का अभी तो बहुत फेरफार हो गया। पहले का घी हमने देखा था। ऐसा घी। भैंस सीधी कपास खाती थी। कपास कहते हैं न? सीधा कपास खाये उसका दूध निकले और उसका दही और उसका घी। उँगली न घुसे। खुरपा न घुसे। ऐसा घी था। ऐसे भगवान आत्मा, ऐसे सम्यग्दर्शन आनन्द में लीन हो और लीनतासहित वीतरागता की दशा में लीन हो, जिसमें विकल्प का प्रवेश नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ... पुण्य का खुरपा नहीं आता?

पूज्य गुरुदेवश्री : खुरपा नहीं बैठे। पुण्य तो जहर है। पुण्य है, दया, दान, व्रत का विकल्प है, वह तो राग है, शुभ है। भट्ठी है, अग्नि है। अरे रे! बहुत कठिन। कषाय है या नहीं? कषाय अर्थात् अग्नि। आहाहा!

ऐसी जमावट अन्दर होती जाती है कि देखो! **व्रत सम्यक्त्व से विशुद्ध...** ऐसा भगवान आत्मा अपने पूर्णानन्द की अन्तर अनुभव करके प्रतीति करते हैं और तदुपरान्त प्रचुर स्वसंवेदन उग्र आनन्द की धारा अन्दर में से प्रगट करते हैं, उसमें स्नान करते हैं वह तीर्थ है। समझ में आया? उसमें वह धर्म है, तीर्थ है, मोक्षमार्ग है। आहाहा! **व्रत सम्यक्त्व से विशुद्ध और...** देखो! श्रेणिक राजा को व्रत तो नहीं था। क्षायिक समकित था। फिर भी तीर्थंकरगोत्र बाँधकर नरक में तो गये। अभी वहाँ भी समय-समय से तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। नरक में भी। क्योंकि जब से तीर्थंकरगोत्र की शुरुआत हुई, तब से आठवें गुणस्थान में भविष्य में जब आयेंगे, तब तक निरन्तर तीर्थंकरगोत्र का बन्ध होता है। वहाँ से निकलकर आगामी चौबीसी में तीन ज्ञान लेकर रानी के कोख में आयेंगे। श्रेणिक राजा समकिती। गृहस्थाश्रम नहीं छोड़ा था। व्रत, संयम नहीं था। परन्तु एक आत्मा का क्षायिक सम्यग्दर्शन था। समकित क्या चीज़ है, उसका लोगों को ख्याल नहीं। ऐसे ही मान लो। देव-गुरु-शास्त्र है, नौ तत्त्व है। वह समकित-फमकित नहीं। नौ तत्त्व का अनुभव करना, वह भी मिथ्यात्वभाव है। पण्डितजी! आहाहा!

मुमुक्षु : यह क्या कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वही कहते हैं सुनो। क्या कहा ?

देखो ! छठवाँ कलश है। **'एकत्वे नियतस्य'** अमृतचन्द्राचार्य का कलश है, देखो ! **जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पाप के अनादि सम्बन्ध को छोड़कर। भावार्थ इस प्रकार है-संसार अवस्था में जीवद्रव्य नौ तत्त्वरूप परिणमा है,...** संसारदशा में भगवान आत्मा एक जीवस्वरूप नहीं रहा। राग, पुण्य-पाप, आस्रव, बन्धरूप परिणमा है। **वह तो विभाव परिणति है,...** विकार अवस्था है। **इसलिए नौ तत्त्वरूप वस्तु का अनुभव मिथ्यात्व है।**

भगवान आत्मा अकेला राग और पुण्य से रहित चिदानन्द प्रभु अमृत का आनन्द का सागर, उसकी अन्तर्दृष्टि होकर सम्यक् अनुभव न हो, तब तक सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया ? नौ तत्त्व का अनुभव मिथ्यात्व है। क्या कहा ? भेद हुआ न, भेद ? विकल्प का अनुभव है, वह तो राग का अनुभव हुआ। जीव की पर्याय पर दृष्टि है, अजीव पर लक्ष्य है, पुण्य-पाप पर लक्ष्य है, वह तो विकार पर लक्ष्य है और विकार का वेदन, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा ! बहुत कठिन बातें, भाई ! समझ में आया ? वह छठवाँ श्लोक है। **'यतन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः'** हमें तो एक ही आत्मा (अनुभव में आता है)। नौ तत्त्व के विकल्प की सन्तति छोड़कर, हमारा आत्मा पूर्णानन्द प्रभु ऐसा हमको प्राप्त हो। आहाहा ! समझ में आया ? बात ऐसी सूक्ष्म है, भाई ! आत्मा और सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, (वह खबर नहीं)। वर्तमान में तो बहुत गड़बड़ी हो गयी है। सम्प्रदाय में तो बहुत गड़बड़ी हो गयी। शोभालालजी ! बाहर से ऐसा धर्म होता है, व्रत किया, तप किया, दया की, यात्रा की। धूल में भी धर्म नहीं है, सुन तो सही।

मुमुक्षु : गड़बड़ी चलायी किसने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गड़बड़ी चलायी आप जैसों ने। सेठिया ! कोई दरकार नहीं और जो सुनानेवाला मिले वह जो कहे वह सच्चा।

मुमुक्षु : क्या करें ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भान नहीं। पैसे में कैसे होशियार है। पावरघा अर्थात् होशियार। मानते हैं। ऐसे पैसे रखे और ऐसे...

मुमुक्षु : पण्डितों को...

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित ने कहा, वह माना किसने ? माना तो तुमने न ?

मुमुक्षु : पण्डित कहते थे कि आप बड़े धर्मी हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मक्खन लगाते थे। पैसेवाले माने इसलिए मक्खन लगाये। माखन को क्या कहते हैं ? मक्खन। मक्खन लगाते हैं न ? यहाँ मक्खन-बक्खन कुछ है नहीं। और उसमें पचास-साठ लाख, सत्तर लाख में से दस लाख दे तो... ओहोहो ! जैसे बड़े धर्मी ! नहीं तो दे नहीं, उसके लड़के देने नहीं दे और वह भी न दे। परन्तु पचास-साठ लाख दे, वह कोई धर्म नहीं। उसमें राग की मन्दता कदाचित करते हैं तो पुण्य है। और पुण्य से मुझे लाभ होगा और पुण्य मेरी चीज़ है, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व की है। समझ में आया ? यह तो वीतराग का मार्ग है। यहाँ कोई पक्ष का मार्ग नहीं। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग, वीतरागता शक्तिरूप से, स्वभावरूप से थी, वह पूर्ण परमात्मा को प्रगट हुई। नीचे सम्यग्दर्शन में पर का पक्ष छोड़कर, पर से निरपेक्ष होकर अपना शुद्ध द्रव्यस्वभाव, ध्रुव स्वभाव, नित्य स्वभाव, ऐसा भगवान आत्मा, अपने नित्य स्वभाव में पकड़ करके अनुभव करे, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा !

ऐसे सम्यग्दर्शन उपरान्त जिसको व्रत होता है, स्थिरता होती है। **और पाँच इन्द्रियों से संयत अर्थात् संवरसहित...** होता है। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करने में पाँच इन्द्रिय के विषय के विकल्प जिसको अभाव है। पाँच इन्द्रिय के विषय के विकल्प का जिसको अभाव है। अपने आनन्द के अनुभव में विषय का भोगना कहाँ रहा ? आहाहा ! विषय की वासना तो जहर है। समझ में आया ? जहाँ शुभभाव जहर है, कषाय है, वहाँ विषयवासना तो अशुभभाव है। वह तो तीखी भट्ठी है। जमशेदपुर की भट्ठी है। लिखा है भैया जमशेदपुर की ? हम गये थे। वहाँ बड़ा सेठ है न ? नरभेरामभाई। उनके वहाँ। यहाँ आते हैं। नरभेरामभाई कामाणी, जमशेदपुर भट्ठी दिखाने ले गये थे एक बार। बड़ी-बड़ी मोटर होती है और बड़े-बड़े पत्थर होते हैं। धूल में है। राग तो जमशेदपुर की भट्ठी है। आहाहा ! समझ में आया ? सेठी ! राग है न ? तुम्हारे पैसे हैं, धूल है, हमारे लड़के अच्छे हैं, वह सब राग की भट्ठी है, ऐसा कहते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि... आहाहा ! भगवान आत्मा शीतल... शीतल... शीतल... धाम

अतीन्द्रिय आनन्द के रस का अनुभव करे उसका नाम भगवान संवर कहते हैं। बाहर से संवर हो गया, ऐसा कहते हैं न ? ये ... बैठे हैं। तावकायं जाणेण ठाणेणं माणेणं तत्सुत्री आता है न ? स्थानकवासी में आता है। तत्सुत्री पाठ आते हैं या नहीं ? इच्छामी पडिकमणा तावकायं आता है या नहीं ? अप्पाणं वोसरे... अर्थ का पता नहीं और कुछ पता नहीं और जय नारायण।

यहाँ तो कहते हैं कि चिद्बिम्ब प्रभु, आनन्द का धाम चैतन्य, उसमें लीन होकर अतीन्द्रिय का स्वाद लेते हैं, उसको इन्द्रिय के विषय के स्वाद का अभाव है। ऐसे स्वभाव में रमते हैं, उसको तीर्थ कहते हैं। समझ में आया ? मात्र व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार करते-करते मर गये। सम्मेदशिखर की यात्रा करो। ये लोग सिद्धक्षेत्र की (कहते हैं)। एक बार शत्रुंजय की यात्रा करो। धूल है। शत्रुंजय तो यह है। रागरूपी शत्रु का जय करनेवाला भगवान आत्मा, ऐसे आत्मा में जब तक आरूढ़ न हो तो शत्रु का जय होता नहीं। शत्रुंजय की यात्रा नहीं होती। रामानन्दजी ! बात तो ऐसी है, भगवान ! हो, शुभभाव हो। भक्ति आती है, वह शुभभाव है। परन्तु शुभभाव तो पुण्य है। पुण्य है, वह राग है। वह राग है, वह दुःख है। आहाहा !

मुमुक्षु : और तीर्थ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थ वह आत्मा की अरागी दशा है-सुख है, शान्ति है, वीतरागता है। पूरणपोली होती है न ? पूरणपोली को तुम्हारे हिन्दी में क्या कहते हैं ? रोटी की पूरणपोली नहीं बनाते हैं ? पूरणपोली को घी में डूबाते हैं। तपेली में ऐसे डूबाते हैं। घी नितरता है न ? बहुत गरम-गरम होती है न ? गरम-गरम उतारकर घी की तपेली में डाले। (उसमें से) घी टपकता है। वैसे आत्मा को राग से अधिक ऊँचा कर देते हैं तो उसमें से अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द टपकता है। आहाहा ! ऐई ! वजुभाई ! अरे ! कठिन बात ! इसका नाम तीर्थ और इसका नाम भगवान धर्म कहते हैं। बाकी सब बातें हैं।

पाँच इन्द्रियों से संयत अर्थात् संवरसहित तथा निरपेक्ष... देखो ! **'णिरावेक्खे'** है न ? जिसको कोई अपेक्षा नहीं। जिसको कोई ख्याति की अपेक्षा नहीं। दुनिया मुझे माने, दुनिया बड़ा कहे, ऐसी कोई इच्छा नहीं। मैं ही बड़ा हूँ। बड़े का अभिनन्दन करनेवाला हूँ। दूसरा अभिनन्दन क्या करे ? उसको क्या कहते हैं अभिनन्दन देते हैं न ?

मुमुक्षु : मानपत्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानपत्र बड़ा-बड़ा ऐसा-ऐसा। धूल में भी अभिनन्दन है नहीं। सुन तो सही। यह तो आत्मा अन्दर पूर्णानन्द का नाथ, उसका अनुमोदन। ओहो! राग का शुभ विकल्प का भी जहाँ अनुमोदन छूट गया है और अपना अतीन्द्रिय आनन्द का रसबोल, अन्दर लीन होता है। आहाहा! स्नान करते हैं, तब पानी नितरते-नितरते बाहर निकलते है या नहीं? स्नान करके पानी नितरता है। समझे? पानी टपकता है। वैसे अन्तर भगवान आत्मा... अरे तेरे में सब पड़ा है। आहाहा! 'तारी नजर ने आणसे रे तें निरख्या न नयणे हरि।' हरि ऐसा जो भगवान अपना स्वरूप, तेरी नजर की आलस के कारण तूने भगवान नारायण का दर्शन किया नहीं। नारायण तेरा आत्मा है। दूसरा नारायण उसके घर रहा। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि **निरपेक्ष अर्थात् ख्याति,...** की अपेक्षा नहीं, **लाभ,...** की नहीं कि ऐसी आबरू मिले, ऐसा बड़ा हमको कहे, पहली पदवी दे दे, पहली कुर्सी पर बैठाये। समझ में आया? ऐसी कोई इच्छा नहीं। मैं ही बड़ा आनन्दमूर्ति हूँ। ऐसा **ख्याति, लाभ, पूजादिक इस लोक के फल की...** इस लोक के फल की इच्छा नहीं **तथा परलोक में स्वर्गादिक के भोगों की अपेक्षा से रहित...** ऐसा मैं पुण्य करूँ तो स्वर्ग मिलेगा, इन्द्राणी मिलेगा। वह सब इच्छा तो निदान मिथ्यादृष्टि करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अरागी स्वभाव की अनुभूति बिना निरपेक्ष...

पूज्य गुरुदेवश्री : निरपेक्ष बिना होती नहीं। राग की अपेक्षा नहीं, पर की अपेक्षा नहीं। किसी की अपेक्षा नहीं। भगवान आत्मा की एक अपेक्षा।

अमृत का सरोवर प्रभु, 'जहाँ चेतन त्यां अनन्त गुण, केवली बोले एम।' भगवान केवलज्ञानी ने कहा। जहाँ तेरा चेतनस्वभाव है, वहाँ आनन्द आदि अनन्त गुण पड़े हैं। प्रगट अनुभव अपना, अपना अनुभव करे तो खबर पड़े। और निर्मल करो प्रेम। राग और विकल्प का प्रेम छोड़कर भगवान आनन्दस्वरूप का प्रेम कर और उसमें घुस जा, वह तेरा तीर्थ है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : मोक्ष की अपेक्षा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : इच्छा है, वह इच्छा भी मोक्ष को रोकती है। इच्छा करने से मोक्ष मिलता है ? इच्छा ही नहीं।

ऐसे आत्मस्वरूप तीर्थ में... देखो! ऐसा भगवान आत्मा, पर की कोई जिज्ञासा-अपेक्षा नहीं, अकेला परमात्मा अपना निज स्वरूप ऐसा आत्मा तीर्थ है। यह तीर्थ है। उसमें **दीक्षा-शिक्षारूप स्नान से...** ऐसी दीक्षा लेकर, ये आत्मा के स्वरूप की दीक्षा, ऐसा कहते हैं। बाहर में कपड़ा बदले और दीक्षा ले, वह दीक्षा नहीं, वह दुःखिया है। समझ में आया ? अपना स्वरूप पूर्णानन्द सच्चिदानन्द प्रभु उसकी दीक्षा ले, उसकी शिक्षा ले, उसकी शिक्षा ले। दीक्षा और शिक्षा। दो बोल है न ? आनन्दमूर्ति भगवान की दीक्षा ले। राग और विकल्प की दीक्षा दृष्टि में से छोड़ दे। शिक्षा ले। पूर्णानन्द मैं हूँ। आनन्द शुद्ध हूँ—ऐसी शिक्षा, उसका नाम स्नान करते हैं। देखो! है न ? स्नान है। **स्नान से पवित्र होओ।** ऐसे स्नान से पवित्र होता है। दूसरे स्नान से पवित्र होता नहीं।

भावार्थ – तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण-सहित,... अब समकित की व्याख्या करते हैं। समझ में आया ? तत्त्वार्थश्रद्धान समकित। आता है न तत्त्वार्थसूत्र में ? उमास्वामी का तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। वह सम्यग्दर्शन क्या है ? व्यवहार है या निश्चय ? ऐई! पण्डितजी! तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं निश्चय है या व्यवहार ? निश्चय है ? निश्चय है। व्यवहार नहीं। उसमें लिखा है। पन्नालाल ने बनाया है। तत्त्वार्थसूत्र की टीका लिखी है। तत्त्वार्थसूत्र (-समकित) यह व्यवहार समकित है। व्यवहार नहीं। व्यवहार समकित तो आस्रव है। यह आस्रव का व्याख्यान है ? तत्त्वार्थसूत्र मोक्ष शास्त्र है कि आस्रव शास्त्र है ? दूसरे में तत्त्वार्थश्रद्धान आता है। वह तो भेदवाली तत्त्वार्थश्रद्धान हो, वह व्यवहारसमकित विकल्प है। यह तो अभेद चिदानन्द भगवान तत्त्वार्थश्रद्धानम् सम्यग्दर्शनम्। उमास्वामी का पहला सूत्र है। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः उसमें पहला सूत्र तत्त्वार्थश्रद्धानम्। तत्त्वार्थ श्रद्धान। पूर्णानन्द का नाथ, उसकी प्रतीति, उसका अनुभव करके, उसको ज्ञेय बनाकर (श्रद्धान होना)। जो अनादि से राग को, पर को ज्ञेय बनाकर अपना ज्ञेय छूट गया है... समझ में आया ? अनादि से राग-पुण्य-विकल्प निमित्त शरीर आदि या एक समय की पर्याय, उसको ज्ञेय बनाकर मिथ्यादृष्टि जो है, वह त्रिकाल ज्ञेय से अनादि से छूट गया है। समझ में आया ? आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा त्रिकाली ज्ञेयस्वरूप है। भगवान! यह धर्म का मार्ग सूक्ष्म बहुत है। ऐसे कोई बाहर से मान ले, समझ ले, ऐसी चीज़ नहीं। समझ में आया? शास्त्र का पढ़ना, पंच महाव्रत का विकल्प, वह सब बन्ध का कारण है। जहाँ स्वआश्रय न हुआ, जहाँ पर आश्रय है, वहाँ तो बन्धभाव है। यहाँ तो स्वआश्रय भगवान पूर्ण स्वरूप, अभेद स्वरूप, अखण्ड स्वरूप, सामान्य एक स्वरूप, उसकी दृष्टि करने से तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन होता है। धर्म की शुरुआत वहाँ से होती है। उसके सिवा धर्म की शुरुआत होती नहीं।

तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण-सहित, पाँच महाव्रत से शुद्ध... पंच महाव्रत से शुद्ध। पंच महाव्रत का विकल्प हो, परन्तु उसके साथ निर्मल चारित्र है, उसको वास्तव में चारित्र कहने में आता है। पंच महाव्रत व्यवहार है, सो विकल्प है। निश्चय महाव्रत है कि सम्यग्दर्शन में भान हुआ, (उसमें) स्थिरता, जमना, रमना, लीन होना, उसका नाम सच्चा महाव्रत कहने में आता है। परिभाषा अलग। समझ में आया?

पाँच इन्द्रियों के विषयों से विरक्त,... ओहो! स्पर्श का विषय। से स्पर्श, स्पर्श का विषय मुलायम लगे और मिठास लगे, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! क्या कहा वह? स्पर्श है, स्पर्श। इस स्पर्श में स्पर्श करते हैं तो अन्दर में ठीक लगे, मजा लगे, वह मिथ्यात्वभाव है। क्योंकि वह राग है और राग है, वह दुःख है और मजा लगता है तो वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : इतने में हो जाता है मिथ्यात्व?

पूज्य गुरुदेवश्री : इतने में नहीं। बड़ा हो गया। अपने में सुख है, उसका अनादर करके विकल्प में सुख है, ऐसा माना तो पूरे भगवान का अनादर किया। समझ में आया?

मुमुक्षु : आपकी व्याख्या सबसे अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान की व्याख्या ऐसी है। ऐई! भगवान की व्याख्या ही दुनिया से अलग है। न्यालचन्दजी! यहाँ की व्याख्या दूसरी है ऐसा है? भगवान की व्याख्या है। त्रिलोकनाथ परमात्मा की यह पुकार है। दुनिया के पास पुकार (है), वाणी जोरदार। आता है न प्रवचनसार में? अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि हमें जोरदार जितना कहने है, वह जोर से कहा। प्रवचनसार के अन्तिम कलश में आता है। जोरदार से कहा।

मार्ग ऐसा है, दूसरा कोई है नहीं। मानो, न मानो, समझो, न समझो तुम्हारे अधिकार की बात है। समझ में आया? दुनिया दूसरा रास्ता बता दे और दूसरे रास्ते पर चले तो वह संसार है, संसार। समझ में आया?

मुमुक्षु : जरा सुना दो कहाँ लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ लिखा है? प्रवचनसार। वहाँ लिखा है, देखो! सेठ है न? यह आया, देखो!

इस प्रकार (इस परमागम में) अमन्दरूप से... पाठ में अमन्द है। **बलपूर्वक जोरशोर से जो थोड़ा-बहुत तत्त्व कहा गया है,...** समझ में आया?

'इति गदितमनीचैस्तत्त्वमुच्चावचं' वही न? यह श्लोक है। २२वाँ श्लोक है। २२वाँ। **इस परमागम में...** प्रवचनसार, प्र-वचन। प्र-उत्कृष्ट वचन दिव्यध्वनि भगवान की, उसका सार। त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञदेव की प्र-वचन। प्र अर्थात् उत्कृष्ट, वचन-दिव्यध्वनि, उसमें कहा हुआ सार। यह सार हमने कहा। तो यहाँ कहते हैं **परमागम में अमन्दरूप से...** हमने मन्दरूप से नहीं कहा। जोरदार से कहा है। सेठ! समझ में आया? (श्रोता : ऐसी जोरदार पुकार यहाँ की रहती है) **अमन्दरूप से...** देखो! पाठ है। **'गदितमनीचैस्तत्त्वमुच्चावचं'** वह न? ऊँची आवाज से। मन्दरूप से नहीं लेकिन अमन्दरूप से **'मुच्चावचं'** जोरशोर से। जोरशोर से कहा है। ऐसे ले ले पीछे से ऐसा होगा और ऐसा होगा, ऐसा नहीं। ऐसा ही है। दूसरा है नहीं। श्लोक में है। अन्तिम श्लोक है। ओहो..!

कहते हैं कि **थोड़ा-बहुत तत्त्व कहा गया है, वह सब चैतन्य में वास्तव में अग्नि में होमी गयी वस्तु के समान (स्वाहा) हो गया है।** जितना कुछ भी कहा परन्तु चैतन्यरूपी अग्नि में स्वाहा हो गया। ऐसा चैतन्य भगवान निर्विकल्प है। आहाहा! आचार्यों दिगम्बर मुनियों ने तो गजब काम किया है! ओहोहो! एक-एक श्लोक में सारा जैनशासन भर दिया है। एक-एक पंक्ति में—एक-एक लाईन में। समझे? आहाहा! वर्णन जहाँ किया। इतना-इतना वर्णन किया लेकिन मानो वर्णन हुआ ही नहीं, ऐसा चैतन्य भगवान बिम्ब पड़ा है। वाणी द्वारा कितना कहे? वचनातीत, विकल्पातीत। वाणी जड़, चैतन्य भगवान। अब वाणी द्वारा उसका कथन करना। दुश्मन द्वारा उसका कथन करवाना। रामानन्दजी! वाणी जड़ है या नहीं? और भगवान चैतन्य है, आनन्दस्वरूप अरूपी

आनन्दघन है। उसकी व्याख्या वाणी द्वारा करना। कितनी करे? दुश्मन के पास जाकर कहे कि मेरे पिताजी की प्रशंसा करे। कितनी करे वह? थोड़ी-थोड़ी बात करे। बड़े थे, हों! संघ में बड़े थे। संघ में बड़े थे। ऐसा कहे।

यहाँ कहते हैं कि जोरदार हमने बात कही है। सब वचन अन्दर चले गये। और **उस चैतन्य को ही चैतन्य आज प्रबलता-उग्रता से अनुभव करो...** भाषा यह है। आज ही। वायदा नहीं। कल करेगा, परसों करेगा, ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं, देखो! **आज...** है न? **'अद्य' 'अद्य'** है न? **'अनुभवतु तदुच्चैश्चिच्चिदेवाद्य यस्माद्'** संस्कृत शब्द है। अभी, आज। जब से हम कहते हैं, तब से ध्येय का लक्ष्य शुरु कर दो। आहाहा! समझ में आया? कल.. कल.. कल.. यदि वायदा करेगा तो कल-कल होगा। समझ में आया? आहाहा!

कलरव-कलरव। आता है या नहीं? परमात्मा भगवान की भक्ति में आता है। हे नाथ! आप जब राजपाट छोड़कर दीक्षित हुए तो अयोध्या नगरी के पास जो सरयू नदी है, वह कल-कल करती है। प्रभु! मैं तो उस कल-कल में ऐसा देखता हूँ कि आपका त्याग हुआ, उसमें नदी कल-कल करके रो रही है। रोती है समझे? रुदन करती हे। कल-कल। कलरव... कलरव... कलरव... कलरव... ऐसा पाठ है। कलरव-कलरव। रव अर्थात् आवाज। कलरव... कलरव। नदी के पानी का कलकल बहता है न? प्रभु! मैं तो वहाँ आपका विरह देखता हूँ। आहाहा! आप जब वीतरागी हुए तो अयोध्या की नगरी की नदी कलरव करती है-रोती है, प्रभु! आपके विरह से। आहाहा!

ऐसे भगवान आत्मा अनादर करके राग में आया, अरे! दु:ख है, कहते हैं। और आत्मा राग से छूटकर आत्मा में आया तो राग नाश होकर चला गया। मेरे में राग है नहीं, मैं तो वीतरागमूर्ति चैतन्य हूँ। किसी के साथ स्नेह करना, वह मेरी चीज़ में है नहीं। समझ में आया? ऐसे आज करो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! चरणानुयोग (अधिकार)। प्रवचनसार में अन्तिम कलश, अन्तिम। आहाहा! भगवान तेरी व्याख्या कितनी करे! कितनी भी करे तो भी वाणी द्वारा तो भेदरूप बात आती है। तुम तो अभेद परमात्मस्वरूप हो न, भगवान! क्या अभेद में से गुणभेद होता है? वहाँ पर्याय अलग हो जाती है? तो चाहे जितने कथन हो, सब भेदवाले हैं। समझ में आया? इशारा करना। भगवान आत्मा पूर्णानन्द है। इशारे में भी एक वाक्य (आया कि) अभेद है। अभेद आया। समझ में आया? परन्तु अभेद

तक पहुँचना हो तो उसके भाव से पहुँचते हैं। कोई वाणी पहुँच सकती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं अरे! **पाँच इन्द्रियों के विषयों से विरक्त, इस लोक-परलोक में विषयभोगों की वांछा से रहित...** समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को ९६ हजार स्त्री हो। चक्रवर्ती को थी परन्तु इसमें विकल्प उठते थे, उसको जहर, दु:ख और काले नाग समान देखते थे। काला नाग समझे? काला नाग होता है न? कड़क जहरीला बड़ा। एक बार हमने देखा था। बड़ा नाग। जंगल में देखा था। अकेले गये थे। जंगल में बहुत दूर जाते थे। बड़ा नाग था। बाड में चला गया। इतना मोटा, इतना लम्बा। लाल था, हों! गेहूँवर्ण का। ये तो काला। विकल्प आता है, ९६ हजार विषय को भोगने का विकल्प काले नाग-दु:ख लगता है, प्रभु! आहाहा! धर्मी को विकल्प में प्रेम नहीं, नाथ! आहाहा! उसको तो आनन्द में प्रेम है। उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! यह कोई साधारण चीज़ नहीं। समझ में आया?

भरत चक्रवर्ती समकिती था। ९६ हजार स्त्रियों से शादी की। तो उसमें क्या है? जहर (जैसे) विकल्प उठते थे। आहाहा! मेरी कमजोरी है। अरे! दु:ख के दावानल में मैं जलता हूँ। शेकाता हूँ को क्या कहते हैं? जलता हूँ। आपकी भाषा में शेकाता शब्द नहीं हैं? तपता हूँ। शक्करकन्द को अग्नि में सेंकते हैं कि नहीं? शक्करकन्द नहीं होता है? अन्यमति के लोग शिवरात्रि को खाते हैं। अग्नि में सेंकते हैं। एक बार सुअर को ऐसे सेंकते थे। सुअर होता है न? सुअर। उसके पैर बाँधकर, मुँह बाँधकर अग्नि की भट्ठी में जिन्दा जलने को डाल दिया। जैसे शक्करकन्द सेंकते हैं वैसे। आहाहा! समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा कहते हैं कि भोग का विकल्प हुआ वह अग्नि में जलता देखते हैं। समझ में आया? धर्मी को विषय-वासना का प्रेम है ही नहीं। उसका पूरा प्रेम आनन्दस्वरूप में ढल गया है। समझ में आया?

लोक-परलोक में विषयभोगों की वांछा से रहित ऐसे निर्मल आत्मा के स्वभावरूप तीर्थ में... शुद्ध-शुद्ध निर्मल मैल बिना, पुण्य-पाप के मैल बिना की चीज़। इस **तीर्थ में स्नान करने से पवित्र होते हैं, ऐसी प्रेरणा करते हैं।** लो! आचार्य महाराज यह प्रेरणा करते हैं। बाहर के तीर्थ में भटकने में कुछ है नहीं। समझ में आया?

अन्दर में भगवान आत्मा तीर्थ पड़ा है, उसमें स्नान करो। तुम्हारा मिथ्यात्व अज्ञान का मैल छूट जायेगा और पवित्रता प्राप्त होगी। लो! सारा मोक्षमार्ग यहाँ आत्मा में लगा दिया।

गाथा-२७

आगे फिर कहते हैं –

जं णिम्मलं सुधम्मं सम्मत्तं संजमं तवं णाणं।
तं तित्थं जिणमग्गे हवेइ जदि सतिभावेण।।२७।।

यत् निर्मलं सुधर्मं, सम्यक्त्वं संयमं तपः ज्ञानम्।
तत् तीर्थं जिनमार्गे भवति यदि शान्तभावेन।।२७।।

समकित सुसंयम ज्ञान तप निर्मल सुधर्म यदी हुए।
नित शांत से तो तीर्थ हैं जिन-मार्ग में माने हुए।।२७।।

अर्थ – जिनमार्ग में वह तीर्थ है जो निर्मल उत्तमक्षमादिक धर्म तथा तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण शंकादिमलरहित निर्मल सम्यक्त्व तथा इन्द्रिय व मन को वश में करना, षट्काय के जीवों से रक्षा करना इस प्रकार जो निर्मल संयम तथा अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश – ऐसे बाह्य छह प्रकार के तप और प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग व ध्यान ऐसे छह प्रकार के अंतरंग तप – इस प्रकार बारह प्रकार के निर्मल तप और जीव-अजीव आदि पदार्थों का यथार्थ ज्ञान, ये 'तीर्थ' हैं, ये भी यदि शान्तभावसहित हो, कषायभाव न हो तब निर्मल तीर्थ हैं, क्योंकि यदि ये क्रोधादिकभावसहित हों तो मलिनता हो और निर्मलता न रहे।

भावार्थ – जिनमार्ग में तो इस प्रकार 'तीर्थ' कहा है। लोग सागर-नदियों को तीर्थ मानकर स्नान करके पवित्र होना चाहते हैं, वह शरीर का बाह्यमल इनसे कुछ उतरता है, परन्तु शरीर के भीतर का धातु-उपधातुरूप अन्तर्मल इनसे उतरता नहीं है तथा ज्ञानावरण आदि कर्मरूप मल और अज्ञान राग-द्वेष-मोह आदि भावकर्मरूप मल आत्मा के अन्तर्मल हैं, वह तो इनसे कुछ भी उतरते नहीं हैं, उल्टा हिंसादिक से पापकर्मरूप मल

लगता है, इसलिए सागर–नदी आदि को तीर्थ मानना भ्रम है। जिससे तिरे सो 'तीर्थ' है इस प्रकार जिनमार्ग में कहा है, उसे ही संसारसमुद्र से तारनेवाला जानना।।२७।।

इस प्रकार तीर्थ का स्वरूप कहा।

गाथा–२७ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं – २७।

जं णिम्मलं सुधम्मं सम्मत्तं संजमं तवं णाणं।
तं तित्थं जिणमग्गे हवेइ जदि सतिभावेण।।२७।।

आचार्य की भाषा देखो! जैनमार्ग में इसको तीर्थ कहा है। उस (बाह्य) तीर्थ को जैनमार्ग में व्यवहार कहा है; निश्चय कहा नहीं। आहाहा! कहते हैं, शान्तभाव अन्दर है। पुण्य–पाप का विकल्प जो राग है, वह तो अशान्तभाव है। उससे रहित, कषायरहित अकषायस्वभाव भगवान अपना, उसमें एकाग्र होकर जो शान्त... शान्त... शान्ति अकषायभाव की शान्ति होती है, वह तीर्थ है। आहाहा! कठिन बात।

यहाँ देखो! आचार्य ने सब निश्चय में उतारा है। तीर्थ निश्चय। जिनप्रतिमा निश्चय, जिनमुद्रा निश्चय, आयतन निश्चय। आत्मा आयतन। धर्म का स्थान आत्मा है। धर्म का स्थान कोई सम्मेदशिखर या बाहर में है नहीं। समझ में आया? जिनप्रतिमा भी तुम हो, वीतरागी बिम्ब तेरी चीज़ है, उसमें एकाग्र होकर वीतरागी पर्याय प्रगट कर, वह जिनबिम्ब है, वह जिनप्रतिमा है। यह जिनप्रतिमा बाह्य है। परन्तु निश्चय को भूलकर मात्र व्यवहार में रहते हैं, उसको कभी धर्म होता नहीं, ऐसा कहते हैं। बीच में व्यवहार आता है परन्तु वह व्यवहार बन्ध का कारण है। बन्ध के कारण को कैसे छोड़े? परन्तु वह पहले नहीं छूटता। दृष्टि में से छूट जाता है। समझ में आया? बन्ध का कारण मेरी चीज नहीं। परन्तु आता है। फिर स्वरूप में जब वीतरागता हो, तब राग छूट जाते हैं। परन्तु राग आये बिना रहता नहीं। परन्तु है वह बन्ध का कारण। व्यवहार यात्रा, व्यवहार तीर्थ, व्यवहार प्रतिमा, व्यवहार मन्दिर।

मुमुक्षु : ग्यारह आयतन बताये हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्यारह बताया वह सब व्यवहार से हटा दिया है। है, भले हो। शुभभाव है तो आता है परन्तु वह वस्तु नहीं। परमार्थ जैनमार्ग नहीं। आहाहा! यह कहा न? देखो! **'तं तित्थं जिणमग्गे हवेइ'** तो फिर दूसरा मार्ग नहीं? कि नहीं। व्यवहार है, उसको निश्चय में गिनने में आता नहीं।

जिनमार्ग में वह तीर्थ है जो निर्मल उत्तमक्षमादिक धर्म... देखो! आता है न दसलक्षणी धर्म? उस दसलक्षणी का अर्थ सूक्ष्म है। उत्तमक्षमा का अर्थ अपना आत्मा आनन्दस्वरूप की दृष्टि होकर सहनशीलता, क्षमा, ज्ञाता-दृष्टा रहना। क्षमा मैं करूँ—ऐसा भी विकल्प नहीं। स्वरूप की दृष्टि करके स्वरूप में शान्तभाव से रमना, उसका नाम उत्तम क्षमादि धर्म कहने में आता है। **उत्तमक्षमादिक धर्म तथा तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण शंकादिमलरहित निर्मल सम्यक्त्व...** देखो! **तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण शंकादिमलरहित (समकित) निर्मल सम्यक्त्व तथा इन्द्रिय व मन को वश में करना,...** इन्द्रिय और मन को वश करके अतीन्द्रिय आत्मा में लीन होना, वह तीर्थ है।

षट्काय के जीवों से रक्षा करना... अर्थात् छह जीवनि को नहीं मारना, उस ओर झुकना नहीं। अपने स्वभाव की ओर झुकना। **इस प्रकार जो निर्मल संयम तथा अनशन, अवमौदर्य,...** यह तप के बोल लिये हैं। **अनशन, अवमौदर्य,...** उसमें राग घटाकर, हों! **वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन,...** एकान्त में रहना। **कायक्लेश – ऐसे बाह्य छह प्रकार के तप और प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग व ध्यान...** अभ्यन्तर। अन्दर में रागरहित निर्मल तपस्या होना उसको तीर्थ कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

जीव-अजीव आदि पदार्थों का यथार्थ ज्ञान, ये 'तीर्थ' हैं,... देखो! है न? **'संजमं तवं णाणं'** जड़-चैतन्य का भिन्न ज्ञान, आस्रव-स्वभाव का भिन्न ज्ञान, व्यवहार-निश्चय का भिन्न ज्ञान, यह ज्ञान तीर्थ है। जीव-अजीव आदि हैं न? आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष का वास्तविक ज्ञान, हों! यथार्थ। **ये 'तीर्थ' हैं, ये भी यदि शान्तभावसहित हो, कषायभाव न हो, तब निर्मल तीर्थ हैं,...** शान्तरस की वीतरागीपर्याय प्रगट हो। शान्त... शान्त... शान्त... उपशमरस में अन्दर ढल गया हो। कषाय का अभाव होकर उपशमरस में जम गया हो। ऐसा भाव हो तो तीर्थ है। समझ में आया?

क्योंकि यदि ये क्रोधादिकभावसहित हों तो मलिनता हो... जरा अन्दर विकल्प हो, ऐसा नहीं, वैसा नहीं। देखो न, गिरनार की यात्रा करने जाते हैं। दो बजे नीचे उतरे। धमाल देखो उसकी। सुबह में दो बजे चढ़े। दोपहर को दो बजे नीचे उतरे। बाद में उसको कहे, लाओ लकड़ी, लाओ पानी। लाओ। क्या है परन्तु ? हम यात्रा करके आये हैं।

मुमुक्षु : भोजन बनाना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भोजन बनाना है। दो बजे हो या तीन बजे हो। सहस्रआम्रवन में जाये,... ऊपर जाये। थककर नीचे आये। तब कहे, लाओ। क्या कहते हैं उसको ? मुनीम। मुनीम होते हैं न ? धर्मशाला में नीचे थे न ? बावलभाई थे। बावलभाई कहते कि थक जाये। जैसे ही लोग नीचे उतरे, फिर चिल्लाने लगे। लाओ मुनीमजी पानी, लाओ ऐसा करो। लेकिन थोड़ी शान्ति रखो। सौ-दो सौ लोग हो, उन सबकी... थोड़ी तो शान्ति रखो। यात्रा करके आये। बापू! थोड़ी शान्ति तो रखो, थोड़ी शान्ति रखो। इतनी आकुलता हो गयी ? यात्रा करके उतरे तो इतनी आकुलता कहाँ से हो गयी ? यह सब यात्रा आकुलतावाली थी। समझ में आया ? अपने भगवान आत्मा का आश्रय लेकर शान्ति का जो तीर्थ है, (उस) शान्ति की यात्रा है, वह नहीं। आहाहा! ऐई! पण्डितजी! ऐसी शुभभाव की यात्रा तो अशान्ति है। कठिन बात है, भाई! तब हमें नहीं करनी ? करने, नहीं करने की (बात कहाँ है)। यह सेठ के पक्ष से बोलते हैं।

मुमुक्षु : हमारी ओर से बोलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करना ? परन्तु करना क्या, वह आये बिना रहे नहीं। जब तक वीतराग न हो, तब तक ऐसा शुभभाव आता है। परन्तु हेय है। समझ में आया ? पूर्ण वीतराग न हो, तब तक अशुभ से बचने को ऐसा शुभभाव आता है। उसको भी व्यवहार कहने में आता है। उस समय ऐसी योग्यता हो तो शुभभाव आता है। परन्तु उस पर जोर दे (कि) यात्रा है, ऐसा करे, फैसा करे, ऐसी जोर देने की बात है नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : कल्याण का मार्ग मान ले...

पूज्य गुरुदेवश्री : कल्याण का मार्ग माने, वह मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यात्रा करे और मिथ्यात्व ?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है, वह तो विकल्प है। उसमें धर्म मानना और कल्याण होगा (माने) साथ में मिथ्यात्व है। सम्यग्दृष्टि अपने स्वभाव को ही यात्रा मानते हैं। स्वभाव में आरूढ़ होते हैं वह। परन्तु उसमें रह सके नहीं तो शुभभाव ऐसा आता है। परन्तु शुभभाव कल्याण का कारण है, सम्यग्दर्शन का कारण है, वह चारित्र है, ऐसा मानते नहीं। हेयबुद्धि है। आये बिना रहते नहीं। आहाहा! बहुत कठिन जगत को, भाई!

जिनमार्ग में तो इस प्रकार 'तीर्थ' कहा है। लोग सागर-नदियों को तीर्थ मानकर स्नान करके पवित्र होना चाहते हैं, वह शरीर का बाह्यमल इनसे कुछ उतरता है,... कुछ उतरता है कुछ। स्नान करके बाहर निकले तो अन्दर में से पसीना निकले। वहाँ क्या धूल में धोवे तो। कोठी धाये तो क्या निकलता है? हमारे यहाँ ऐसा कहते हैं। कीचड़ निकले। कोठी होती है न कोठी? कीचड़ की कोठी। उसको धोये तो? अनाज भरने की कोठी आती थी। उसमें २५-५० मण गेहूँ, बाजरा भरते थे। उसको हर साल धोये तो उसमें से क्या निकले? वह तो मिट्टी है, मिट्टी धेने से उसमें से क्या सोना निकलेगा? वैसे यह शरीर मिट्टी है, धूल है। स्नान करने से फिर से पसीना निकलेगा। समझ में आया? आहाहा!

परन्तु शरीर के भीतर का धातु-उपधातुरूप अन्तर्मल इनसे उतरता नहीं है... लो! बाहर का मैल उतरे मगर शरीर के अन्दर धातु-उपधातुरूप अन्तर्मल नहीं निकलता, ऐसा कहते हैं। **तथा ज्ञानावरण आदि कर्मरूप मल और अज्ञान राग-द्वेष-मोह आदि भावकर्मरूप मल आत्मा के अन्तर्मल हैं,...** लो! द्रव्यकर्म अन्तर्मल व्यवहार से है। और अज्ञान, राग-द्वेष भावमल अन्तर है। **वह तो इनसे कुछ भी उतरते नहीं हैं, उल्टा हिंसादिक से पापकर्मरूप मल लगता है,...** रागादि भाव। **इसलिए सागर-नदी आदि को तीर्थ मानना भ्रम है।** लो!

जिससे तिरे सो 'तीर्थ' है... भगवान आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति से तिरना वह तीर्थ है। यह तैरना कोई बाहर से आता नहीं। **इस प्रकार जिनमार्ग में...** देखो भाषा। **जिनमार्ग में...** ऐसा तीर्थ कहा है, **उसे ही संसारसमुद्र से तारनेवाला जानना।** अन्तर भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु, उस पर आरूढ़ होना, और शक्ति की व्यक्तता निर्मल प्रगट करना, उसे जिनमार्ग में तीर्थ कहने में आया है। वह तिरने का उपाय है, बाहर में है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१६३, गाथा-२८, शुक्रवार, पौष शुक्ल ४, दिनांक ०१-०१-१९७१

यह भावपाहुड़ की १६५ गाथा पूरी हुई। फिर से वह **श्री कुन्दकुन्द नामक आचार्य ने भावपाहुड़ ग्रन्थ पूर्ण किया। इसका संक्षेप ऐसे है**–१६५ गाथा के भावार्थ में क्या है ?

जीवनामक वस्तु का एक असाधारण शुद्ध अविनाशी चेतना स्वभाव है। देखो! इस भावपाहुड़ में साररूप क्या कहना है, इसका संक्षेप कहते हैं कि यह आत्मा जो वस्तु है, वह जीव नामक वस्तु—पदार्थ है, उसका **एक असाधारण शुद्ध अविनाशी चेतना स्वभाव है।** एक ही असाधारण चेतना शुद्ध चेतना अविनाशी त्रिकाल है। आत्मा जैसे अविनाशी एक वस्तु है, वैसे उसका चेतनास्वभाव, शुद्ध चेतना जानना-देखना शुद्ध चेतना, वह अविनाशी एक स्वभाव उसका स्वतन्त्र है।

अब उसकी दो पर्यायें। ऐसा शुद्ध चेतनास्वभाव, उसका अविनाशी होने पर भी उसकी वर्तमान दशा में दो प्रकार की परिणति-अवस्था-दशा होती है। समझ में आया? जीव नाम की वस्तु सिद्ध की कि आत्मा वस्तु है, जैसे यह परमाणु आदि है वैसे। और उसमें एक असाधारण दूसरा गुण नहीं और दूसरे में नहीं, ऐसा एक असाधारण शुद्ध चेतना, पवित्र जानना और देखना, ऐसी अविनाशी चेतना, उसका गुण, स्वभाव, सत्त्व, तत्त्व है। अब उसकी अवस्था। यह द्रव्य-गुण की व्याख्या की। अब उसकी पर्याय।

इसकी शुद्ध, अशुद्ध दो परिणति हैं। शुद्ध चेतना स्वभाव, अविनाशी आत्मा का भाव, उसकी दो अवस्था-पर्याय है। परिणति अर्थात् अवस्था। **शुद्ध दर्शन-ज्ञानोपयोगरूप परिणमना...** ऊपर तो कहा था कि **शुद्ध अविनाशी चेतना स्वभाव है।** यह चेतना स्वभाव के दर्शन और ज्ञान दो भाग हैं। उनमें एक दर्शन-ज्ञान का चेतना स्वभाव शुद्ध उपयोगरूप परिणमे, शुद्ध उपयोगरूप अन्दर जानना-देखना, उसकी पर्याय में पुण्य-पाप के पर्याय मैलरहित शुद्ध स्वभाव का उपयोग शुद्धरूप हो तो वह तो शुद्ध परिणति है—वह शुद्ध अवस्था है। समझ में आया?

शुद्ध जीव वस्तु है। शुद्ध वस्तु पदार्थ आत्मा है। उसका शुद्ध चेतना स्वभाव

अविनाशी गुण है। और उसकी पर्याय अर्थात् हालत-वर्तमान दशा शुद्ध दर्शन-ज्ञान-उपयोग। जानना और देखना, ऐसे शुद्धभावरूप परिणमन हो, अवस्था हो, उसे यहाँ शुद्ध परिणति, अवस्था, पर्याय, हालत कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? यह तो सादी भाषा है। इसमें कोई बहुत ऐसा (कठिन नहीं है)। कहो, पण्डितजी! द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों यहाँ शुद्ध पहले वर्णन की है।

शुद्धपरिणति, वह भाव है। और शुद्धपरिणति, वह आत्मा के निर्मल गुण की पवित्र दशा है। उसे धर्म कहते हैं। समझ में आया? त्रिकाली वस्तु शुद्ध है। आत्मा पदार्थ है न? अस्ति, सत्ता, होनेवाला, मौजूदगी (धराता) पदार्थ, उसका गुण शुद्ध चेतना जानना-देखना, अविनाशी एक अखण्ड चैतन्यस्वभाव है। उसकी पर्याय अर्थात् हालत, दशा जानने-देखने का स्वभाव जो है, उसका शुद्धरूप जानना-देखना, राग और पुण्य-पाप के परिणाम के मैल-मिलावट बिना अकेला शुद्ध जानने का-देखने का परिणमन—दशा हो, उसे शुद्धपरिणति, शुद्धभाव कहते हैं। **इसको शुद्धभाव कहते हैं।** यह भावपाहुड़ है न? एक बात।

अब दूसरी। अशुद्ध परिणति अनादि की है, यह बात करते हैं। और बहुरि अर्थात् और। **कर्म के निमित्त से...** अर्थात् कि अपने शुद्ध जानने-देखने की परिणति से विरुद्ध, जड़ कर्म के संग से, लक्ष्य से **राग-द्वेष-मोहादिक विभावरूप परिणमना...** राग, द्वेष और मोह। मिथ्यात्व—मिथ्यात्व। विषय, वासना आदि। विभावरूप होना, परिणमना, अवस्था का धरना, वह **'अशुद्ध परिणति' है,...** वह अशुद्ध अवस्था है। **इसको अशुद्धभाव कहते हैं।** कहो, समझ में आया? **कर्म का निमित्त अनादि से है,...** अशुद्ध परिणति होने में शुद्धपने को भूलकर, अपना स्वभाव तो शुद्ध सच्चिदानन्द पवित्र अनाकुल आनन्द और ज्ञान-दर्शन की शुद्धता से भरपूर पदार्थ है परन्तु उसे भूलकर **कर्म का निमित्त अनादि से है,...** उसकी दशा में कर्म के जड़पने का निमित्त अर्थात् दूसरी चीज़ का संग उसे अनादि से है।

इसलिए अशुद्धभावरूप अनादि ही से परिणमन कर रहा है। इसलिए पुण्य और पाप तथा मिथ्यात्व और विषय-वासना ऐसे मलिन परिणाम से, पर्याय से, भाव से, अनादि से परिणम-हो रहा है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह अधर्म है। अपना

स्वभाव शुद्ध चेतनास्वभाव जानना-देखना ऐसा अविनाशी स्वभाव, उसे भूलकर अनादि से कर्म के निमित्त के संग में उसे मिथ्यात्व, राग-द्वेष, विषय-वासना, हर्ष-शोक—ऐसे जो भाव अनादि के होते हैं, वह अशुद्ध परिणति है—वह अशुद्धभाव है। वह अशुद्धभाव, बन्ध का कारण है। ऐसा सिद्ध करना है।

अशुद्धभावरूप अनादि ही से परिणमन कर रहा है। निगोद से लेकर अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... संसार सिर पर हुआ। अनादि से मलिन मिथ्यात्व राग-द्वेष, शुभ-अशुभ परिणाम उसरूप अनादि से परिणमता है, ऐसा कहते हैं। देखो! इसमें शुभ और अशुभरूप अनादि से होता है, ऐसा कहते हैं। अनादि से शुभ-अशुभ—अशुद्धरूप परिणमता है। अनादि में निगोद आया या नहीं? सभी जीव आये। आहाहा!

कर्म के संग से स्वसंग चीज़ को भूलकर, जाति अपनी आनन्द और ज्ञान और दर्शन की शुद्ध जाति है, ऐसे स्वभाव को भूलकर, आत्मा से विलक्षण दूसरा तत्त्व है, वह आत्मा का लक्षण है, उससे विलक्षण—दूसरे लक्षणवाला तत्त्व है, उसके संग में-लक्ष्य से मिथ्यात्व और राग-द्वेष और विषय-वासना, हर्ष-शोकादि पर्याय अवस्थारूप होती है, वह अशुद्धभाव है।

इस भाव से शुभ-अशुभ कर्म का बन्ध होता है,... देखो! यह क्या कहा? कि अनादि का शुभ और अशुभभाव होता है, उसे शुभ और अशुभभाव से शुभ-अशुभ कर्म का बन्धन होता है। देखो! यह शुभ तो अनादि से होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शुभ और अशुभभाव मलिन है, स्वभाव का शुद्धपना, जाति की ज्ञानदशा और आनन्द की जाति, ऐसे आत्मा को भूलकर पर के संग से शुभ और अशुभ ऐसा जो अशुद्धभाव, उसरूप होता है; इसलिए उसे शुभ-अशुभ कर्म का बन्धन होता है। तब इसका अर्थ क्या हुआ? कि शुभभाव भी कर्म के निमित्त के संग से अनादि से करता है। पण्डितजी! बराबर है? यह कहेंगे। शुभभाव किसे कहना? अनादि से इसे शुभभाव से पुण्य का शुभबन्धन (हुआ)। अशुभभाव से पाप का बन्धन (हुआ)। अनादि से कर्म के संग से यह भाव उसका होता है। उसमें अनादि के जीव में शुभ-अशुभभाव सिद्ध हुए या नहीं? कि अनादि के अशुभभाव ही अकेले थे? सेठ! दोनों थे। आहाहा! कहा न? अनादि से अशुद्धभाव परिणमित हुए। अशुद्धभाव अर्थात् शुभ-अशुभ परिणाम। उससे **इस भाव से शुभ-**

अशुभ कर्म का बन्ध होता है,... शुभभाव के काल में शुभ पुण्य बँधता है, अशुभभाव के काल में अशुभ पाप बँधता है। ऐसा अनादि से प्रत्येक प्राणी को एकेन्द्रिय से लेकर नौवें ग्रैवेयक जैन का साधु होकर गया, उसे इस प्रकार बन्धन हुआ करता है। अब कहते हैं। यह शुभ-अशुभ की व्याख्या करते हैं।

इस बन्ध के उदय से फिर शुभ या अशुभ भावरूप (अशुद्धभावरूप) परिणमन करता है,... लो! शुभ-अशुभभाव, अशुद्धभाव। शुभ-अशुभ दोनों मिलकर अशुद्धभाव। इस कारण से शुभाशुभ बँधते हैं और उसके उदय से—यह कर्मबन्धन हुआ, उसका जब पाक काल आवे, तब **फिर शुभ या अशुभ भावरूप (अशुद्धभावरूप) परिणमन करता है,...** और शुभ-अशुभभाव से होता है। समझ में आया? **अनादि सन्तान चला आता है।** इस प्रकार अनादि सन्तान। सन्तान कहते हैं न? सन्तान का सन्तान... सन्तान का सन्तान... ऐसी परम्परा अनादि से सन्तान ऐसी चली आती है। आहाहा! इसने अनादि काल में शुद्धभाव कभी किया नहीं; इसलिए इसे धर्म हुआ नहीं। ऐसा कहते हैं।

अनादि सन्तान चला आता है। जब इष्टदेवतादिक की भक्ति,... अब शुभ-अशुभ की व्याख्या करते हैं। इष्टदेव आदि की भक्ति। **जीवों की दया, उपकार मन्दकषायरूप परिणमन करता है,...** किसी को भले जीव की दया, इष्टदेव की न हो परन्तु मन्द कषायरूप परिणमे। क्योंकि निगोद के जीव को तो मन्द कषायरूप परिणमन है। समझ में आया? निगोद के एकेन्द्रिय जीव को भी शुभभावरूपी (मन्द कषाय होती है)। एक शरीर में अनन्त जीव, एक-एक जीव को अनादि से कर्म के संग में... कोई पंचेन्द्रिय हो तो इष्टदेवादि की भक्ति, जीव की दया, उपकार और यह न हो तो मन्द कषायरूप भाव (होता है), इन सबको मन्द कषाय कहा है। मन्द कषायरूप परिणमे, **तब तो शुभकर्म का बन्ध करता है।** तब शुभकर्म का बन्धन करता है। अनादि से ऐसे भाव इसे होते हैं। यह नीम, पीपल, चींटी, मकोड़ा, उन्हें भी शुभभाव होते हैं। शुभभाव हों, इसलिए पुण्य बाँधते हैं, अशुभ हो तब पाप बाँधते हैं। यह अशुद्ध का परिणमन... अशुद्ध अर्थात् शुद्ध स्वभाव भगवान आत्मा का, इससे विरुद्ध अशुद्ध का परिणमन इसे अनादि से चला आता है। आहाहा! देखो न, कितना स्पष्ट (किया है)!

वस्तु अनादि, उसका चेतना निर्मल स्वभाव अनादि, परन्तु उसकी वर्तमान पर्याय में अनादि अशुद्ध परिणमन उसे चला आता है। आहाहा! अर्थात् कि अधर्म का परिणमन अनादि से चला आता है। आहाहा! जब इसे ऐसी राग की मन्दता, कषायरूप भाव होता है तो शुभकर्म का बन्धन करे। **इसके निमित्त से देवादिक पर्याय पाकर...** शुभ के कारण देव और पैसे का धनी यह सेठिया कहलाये न जरा? जरा कहलाये, हों! .... नहीं। **देवादिक पर्याय पाकर कुछ सुखी होता है।** देखो ने! दुनिया में किंचित् सुखी कहलाये। पाँच-पच्चीस लाख मिले। अब तो पाँच-पच्चीस लाख घट गये। कम हुए। बहुत पैसे बढ़ गये। करोड़-दो करोड़-पाँच करोड़ मिले। पूर्व के कोई शुभभाव हों, उसने किये थे। करता है। उसमें कुछ नया नहीं है। उसके कारण ऐसा मिलता है। **कुछ सुखी होता है।** थोड़ा। नारकी के दु:ख की अपेक्षा किंचित् इसे सुख जैसा लगे। सुख है नहीं। किंचित् सुख जैसा अज्ञानी को लगे। वह सुखी है, यह उस नरक की अपेक्षा से सुखी कहा। सुखी कब था? समझ में आया? लोग मानते हैं न? कि हमें अभी ठीक है, बादशाही है। पैसा-बैसा है, शरीर निरोगी, लड़के अच्छे, इज्जत अधिक, नये लड़के हों, वह भी पुण्यशाली पकते हैं। इसलिए हमारा पुण्य अभी अब बढ़ता है और हम सुखी हैं। ऐसा दुनिया कहती है, इसकी अपेक्षा से कहा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ धूल में सुख है? यह देखो न, यह गन्ध मारता है। आये हैं (तब के) दवा ऐसी गन्ध मारती है। सुखी किसे कहना?

मुमुक्षु : दवा गन्ध मारे, उसमें यह क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : चुपड़कर आये हैं ये। बहुत रोग अन्दर है। बाहर लगे अच्छा रूपवान और अन्दर हो कीड़े। कहा नहीं था? एक-एक शरीर में पाँच करोड़ अड़सठ लाख नब्बे हजार पाँच सौ चौरासी रोग है। यह शरीर। कल तो उत्पत्ति की बात की थी कि यह कहाँ से उत्पन्न हुआ। इस शरीर में इतने रोग भगवान ने देखे हैं। पाँच करोड़ अड़सठ लाख नब्बे हजार पाँच सौ चौरासी। कहो, अभी तो इतने पैसे भी नहीं हों तुम्हारे पास, सेठ! पाँच करोड़ अड़सठ लाख, नब्बे हजार...। परन्तु शरीर में इतने रोग हैं। प्रस्फुटित हो, तब खबर पड़े। कितने ही रोग तो सदा होते हैं ही थोड़े-थोड़े। अधिक प्रगटे, तब ऐसा कहा

जाता है, यह हुआ, यह हो गया। शरीर में तो अंकूर फूटे और रोग फटे। वहाँ कहाँ अमृत झरे? आहाहा! मगनभाई! क्या है इसमें? निकले तो यह निकले, लो! आँख से सूझे नहीं, पैर चले नहीं, शरीर में चक्कर आवे। कितने ही रोग तो साथ के साथ होते हैं।

भगवती आराधना में यह संख्या बतायी है। शिवभूति मुनि। शिव कैसे? शिवकोटी। शिवार्य। ऐसे एक शरीर में रोग है। भगवान में अनन्त निरोगता के गुण हैं। यह दोपहर में पढ़ा जाता है। जीवत्वशक्ति, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य इत्यादि अनन्त-अनन्त महिमावन्त अतुल-अखण्ड-अचल ऐसे निरोगी गुण भरे हैं। उनका इसे माहात्म्य नहीं और इस धूल का माहात्म्य। समझ में आया?

मुमुक्षु : सब्जी हो, वह भी पैसे से आती है और यह गुण...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब्जी धूल भी नहीं आती। लड़के के पास सब्जी नहीं। उसके घर में सब्जी नहीं आती? दिलीप! सब्जी खाता है या नहीं तू?

मुमुक्षु : नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आती है न घर में? घर में आती है या नहीं?

मुमुक्षु : घर तो जड़ का और सब्जी उसकी।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले उसकी परन्तु आती है न सब्जी?

मुमुक्षु : सब्जी उसकी क्रियावर्ती शक्ति के कारण (आती है)।

दूसरा मुमुक्षु : संयोगरूप से तो होती है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हं, ऐसा।

मुमुक्षु : वह आत्मा को नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग। परन्तु यह सब्जी आती है न? इतनी बात है। जड़ आती है न? जड़ नहीं होता? यह लकड़ी आयी, लो! लकड़ी आयी। भले आत्मा में नहीं परन्तु लकड़ी आयी यह तो बराबर है या नहीं? वह तो उसके कारण से आयी। यह सब्जी उसके कारण से आयी। उसके कारण से आयी। पैसे बिना आयी। कहो, छोटी लड़की को सब्जी देते हैं या नहीं? वहाँ पैसा है उसके पास?

मुमुक्षु : उसके पिता ने दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पिता कहाँ था? किसका? यहाँ तो सब्जी आने की हो वहाँ आती है। ऐसे सब्जी नहीं लिखा हुआ? 'खानेवाले का नाम दाने-दाने पर' आता है या नहीं? कहो, पण्डितजी! क्या आता है? खानेवाले का नाम दाने में मोहरछाप पड़ी है।

मुमुक्षु : दाने-दाने में मोहर लगी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। मोहर लगी है, इसका अर्थ यह है। जो दाना और जो वनस्पति के टुकड़े आनेवाले होंगे, वे आयेंगे। आत्मा उसका पुरुषार्थ करे तो आते हैं और जाते हैं, ऐसा नहीं है। हिन्दुस्तान में चलता है। हमारे यहाँ काठियावाड़ में चलता है। खानेवाले का नाम दाने-दाने पर लिखा है। वहाँ अन्दर लिखा है? परन्तु ऐसा कहा जाता है। इसका अर्थ यह कि जो वनस्पति, जो पैसा, जो दाने, जो दाल-भात, जो सब्जी, यह दूध, जो आम, वह क्या कहलाता है तुम्हारे? द्राक्ष। अंगूर। नवनीतभाई का रिश्तेदार वहाँ रहता है। लटकते हैं न? द्राक्ष, अंगूर। वह अंगूर-बंगूर उसके कारण से जिसे आना हो, वे आते हैं। ऐसी उनमें छाप है। इस अंगूर का कण यहाँ जाने का हो, वह ही जाता है। इसके आत्मा के कारण से वह आता है और जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, देखो!

मुमुक्षु : ... मोहर छाप...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। मोहर का अर्थ उसके पास आनेवाला है, वह आयेगा। यह छाप उसमें है। जो पर्याय होनी है, वह होगी।

निमित्त से देवादिक पर्याय पाकर... शुभकर्म बाँधे। राग की मन्दता हो तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा इत्यादि-इत्यादि। इष्ट देवतादिक कहा न? इष्ट देव, इष्ट गुरु, इष्ट शास्त्र, उनकी भक्ति, उनकी पूजा, यह शुभभाव हो तो उससे देवादि पर्याय पावे। और **जब...** तब की जगह जब लिया है। **जब विषय-कषाय तीव्र परिणामरूप परिणमन करता है,...** जब विषय की वासना, राग की वासना, कषाय की वासना तीव्र (परिणमे)। **तीव्र परिणामरूप परिणमन करता है, तब पाप का बन्ध करता है,...** पाप का बन्ध करता है। **इसके उदय से नरकादि पर्याय पाकर दु:खी होता है।** लो! उसके उदय से

नरक, पशु, ढ़ोर आदि पर्याय-शरीर पाकर दु:खी होता है। यह अनादि से ऐसे हो रहा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इस प्रकार संसार में अशुद्धभाव से अनादि काल से यह जीव भ्रमण करता है। चौरासी में क्यों भटकता है? कि इस अशुद्धभाव से। यह भावपाहुड़ है न? अशुद्धभाव अर्थात् पुण्य-पाप के भाव से भटकता है। **अनादि काल से यह जीव भ्रमण करता है।** शुभभाव से भ्रमता है, ऐसा संसार में कहे तो सब शोर मचाये। परन्तु यह शुभ और अशुभ दोनों संसार है। यह क्या कहते हैं यह? समझ में आया? पुण्य संसार है। अरे...! चिल्लाहट मचाये। इसके गले में चुभता है। धूल भी नहीं, सुन न! अनादि के अशुद्धभाव से अनादि से जीव भ्रमण कर रहा है।

जब कोई काल ऐसा आवे... इसकी योग्यता का काल ऐसा आवे जीव को कि **जिसमें जिनेश्वरदेव...** आहाहा! **सर्वज्ञ वीतराग के उपदेश की प्राप्ति हो...** जिनेश्वर तीन लोक के नाथ परमात्मा, जिनदेव, तीर्थंकरदेव, सर्वज्ञ वीतराग, तीन लोक का जिन्हें ज्ञान हो वीतराग परमात्मा जो हुए, उनके उपदेश की प्राप्ति हो। प्राप्ति हो उपदेश की। **और उसका श्रद्धान रुचि प्रतीति आचरण करे...** भगवान की आज्ञा का उपदेश है कि आत्मा का स्वभाव पवित्र है, उसकी श्रद्धा कर। भगवान की यह आज्ञा है। उपदेश में यह आता है। अखण्डानन्द प्रभु ध्रुव अविनाशी शुद्धता के भण्डार का स्वरूप तेरा है। ऐसे स्वभाव की अन्तर्मुख होकर श्रद्धा कर। अन्तर्मुख होकर उसका वेदन-ज्ञानवेदन कर। अन्तर्मुख होकर आचरण (कर)—स्थिर हो। कहो, समझ में आया?

श्रद्धान रुचि प्रतीति... ऐसे तीन शब्द लिये हैं। श्रद्धान कर, उसकी रुचि कर, उसकी प्रतीति कर। आचरण कर—स्वरूप में स्थिर हो। भगवान की आज्ञा के उपदेश में यह आया है। तुझे करना हो तो अन्तर्मुख होकर श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र करना है। बहिर्मुख का तो ऐसा अनन्त बार किया है। शुभाशुभ परिणाम अनन्त बार हुए। यह बहिर्मुखी दृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

तब स्व और पर का भेदज्ञान करके... लो! ऐसा जब आत्मा के पवित्र स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और आचरण करे, तब उसे अपना और पर का भेदज्ञान करके, रागादि पुण्य-पाप के भाव, वे पर हैं; मेरा स्वभाव शुद्ध स्व है। जड़ पर है; चैतन्यद्रव्य उससे भिन्न

है, ऐसा **स्व और पर का भेदज्ञान करके...** लो! भिन्न करके **शुद्ध-अशुद्ध भाव का स्वरूप जानकर...** शुद्ध-अशुद्ध भाव का स्वरूप जाने। **अपने हित-अहित का श्रद्धान...** आहाहा! आत्मा का शुद्ध स्वभाव आनन्द, उसकी श्रद्धा-ज्ञान, वह हितरूप है। कहो, समझ में आया? और इसके अतिरिक्त की बाहर की श्रद्धा अहितरूप है। विश्वास करना कि इसमें से मुझे लाभ होगा, ऐसे हित-अहितरूप श्रद्धानरूपी प्रतीति आचरण हो, **तब...** देखो! हित का आचरण (करना) और अहित का आचरण छोड़ना, आचरण ऐसा। हित-अहित के भेदज्ञान का कहा न यहाँ?

शुद्धदर्शनज्ञानमयी शुद्ध चेतना परिणमन को तो 'हित' जाने,... देखो! शुद्ध दर्शन ज्ञान, आत्मा दृष्टा और ज्ञाता, उसका अविनाशी स्वभाव, इस प्रकार **शुद्धदर्शनज्ञानमयी शुद्ध चेतना परिणमन को...** शुद्ध पवित्र की परिणति होना **तो 'हित' जाने,...** उसे हित माने। देखो! आत्मा का पवित्र स्वभाव, उसकी श्रद्धा-ज्ञान को हित जाने। उसका आचरण-स्थिर होना, उसे हित जाने। **इसका फल संसार की निवृत्ति है,...** इसका फल संसार से निवृत्ति है। कहो, समझ में आया? अपना जो अविनाशी दर्शन-ज्ञान-शुद्ध स्वभाव, उसके सन्मुख होकर शुद्ध परिणति अर्थात् निर्मल दशा करना, उस निर्मल दशा का फल संसार से निवृत्ति है। मुक्ति की प्राप्ति है। लो, ऐसा तो कितना सादी भाषा में लिखा है। पण्डित जयचन्द्रजी (ने), तथापि विवाद (करे), शुभ ऐसा होता है और शुभ से यह होता है। अनादि से शुभाशुभ से तो संसार है।

चैतन्यस्वभाव शुद्ध वस्तु पवित्र है। उसे पवित्र के आश्रय होकर जो पवित्रता प्रगट हो, उससे संसार की निवृत्ति होती है। शुभाशुभ फलरूप संसार उसकी उससे—शुद्धभाव से निवृत्ति होती है। कहो, समझ में आया? **इसको जाने...** जाने कि इसका—शुद्धभाव का फल तो संसार की निवृत्ति है। **और अशुद्ध भाव का फल संसार है, इसको जाने,...** पुण्य और पाप के भाव जो अशुद्ध हैं, उनका फल तो संसार है, लो! दो बातें की। शुद्धभाव का फल संसार से निवृत्ति। शुभाशुभ अशुद्धभाव का फल संसार की प्राप्ति। कहो, इसे अन्दर जाने। पुण्य और पाप के दोनों भाव अशुद्ध हैं, उनसे संसार की प्राप्ति है और आत्मा के स्वभाव की शुद्धता का परिणमन, वीतरागी दशा, वह संसार की निवृत्ति का उपाय है। समझ में आया?

तब शुद्धभाव के ग्रहण का... शुद्धभाव को अंगीकार करे। शुद्धभाव, उसका फल संसार की निवृत्ति, अशुद्धभाव (का फल) संसारी की प्राप्ति है, ऐसा जानकर शुद्धभाव को अंगीकार करे। स्व के सन्मुख देखकर शुद्ध परिणमन प्रगट करे। समझ में आया ? पर के सन्मुख, कर्म के निमित्त के सन्मुख देखकर संसार के परिणाम उत्पन्न होते हैं। उसका फल संसार भटकने का है। आहाहा! ऐसा है। आहाहा! **तब शुद्धभाव के ग्रहण का और अशुद्धभाव के त्याग का उपाय करे।** अपने पवित्र स्वभाव सन्मुख का, शुद्धभाव को अंगीकार करने का प्रयत्न करे और पुण्य-पाप के अशुद्धभाव को छोड़ने का उपाय करे, ऐसा कहते हैं। देखो! आहाहा! शुभ-अशुभभाव ऐसे अशुद्धभाव के त्याग का उपाय करे। रखने का उपाय करे, ऐसा नहीं। यह बड़ा विवाद, विवाद आवे ऐसा। आहाहा!

उपाय का स्वरूप जैसे सर्वज्ञ वीतराग के आगम में कहा है,... उपाय का स्वरूप जैसा सर्वज्ञ वीतराग के शास्त्र में कहा, उसका उपाय सच्चा। जिसे सर्वज्ञपना नहीं, तीन काल का ज्ञान नहीं और जिसे वीतरागता प्रगट हुई नहीं, उसकी वाणी में आगम नहीं हो सकता। आहाहा! **वैसे करे। इसका स्वरूप निश्चयव्यवहारात्मक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग कहा है।** लो! भगवान के उपदेश में निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयज्ञान, निश्चयचारित्र और व्यवहारसम्यग्दर्शन, व्यवहारज्ञान और व्यवहारचारित्र— इन दो को—निश्चय-व्यवहार को मोक्षमार्ग कहा। निश्चयमोक्षमार्ग, वह सत्य है, व्यवहारमोक्षमार्ग, वह उपचार से ओरापित कथन है। सत्यार्थ सो... भाई! कारण वह व्यवहार। **शुद्धस्वरूप के श्रद्धान ज्ञान चारित्र को 'निश्चय' कहा है...** शुद्ध स्वरूप भगवान आत्मा, ज्ञानानन्द अनन्त चैतन्य रत्नाकर का भण्डार, ऐसे शुद्ध स्वरूप का श्रद्धान, ऐसे शुद्ध स्वरूप की रुचि, उसका ज्ञान और चारित्र को निश्चय कहा।

व्यवहार **जिनदेव सर्वज्ञ वीतराग तथा उसके वचन और उन वचनों के अनुसार प्रवर्तनवाले मुनि-श्रावक की भक्ति वन्दना विनय वैयावृत्त्य करना 'व्यवहार' है,...** लो! व्यवहार, वह पुण्यबन्ध का कारण है। व्यवहार जिनदेव... यह परद्रव्य आया न ? परद्रव्य, इसलिए व्यवहार हुआ, ऐसा कहते हैं। स्वद्रव्य की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, वह निश्चय है; परद्रव्य की श्रद्धा आदि का भाव, वह व्यवहार है। **जिनदेव सर्वज्ञ वीतराग तथा उसके वचन...** उनके वचन। **उन वचनों के अनुसार प्रवर्तनवाले...**

भगवान के वचन में कहा हुआ, उनके अनुसार, उनके अनुसार प्रवर्तन करनेवाले मुनि और श्रावक। ऐसा कहते हैं। देखो! आहाहा! भगवान के वचन में जो कहा, उसके अनुसार प्रवर्तनेवाले मुनि और श्रावक, **उनकी भक्ति वन्दना विनय वैयावृत्त्य करना...** ऐसा कहा। भगवान के आगम प्रमाण मुनि और श्रावक हों, उन्हें वन्दना और भक्ति करना, यह व्यवहारभाव, यह पुण्यभाव कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? कितना समझना और सुनना? शर्तें कितनी?

व्यवहार तो उसे कहते हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के वचन और उन वचन के अनुसार प्रवर्तनेवाले मुनि, **श्रावक उनकी भक्ति, वन्दना, विनय, वैयावृत्त्य करना 'व्यवहार' है,...** यह व्यवहार है, ऐसा। वह निश्चय था। स्व भगवान आत्मा की शुद्ध स्वभाव की स्व के आश्रय से श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र (हो), वह निश्चय है। वह सत्य वस्तु थी। साथ में ऐसा परद्रव्य सर्वज्ञ के कहे हुए वचन, सर्वज्ञदेव और उनके वचन अनुसार प्रवर्तनेवाले मुनि और श्रावक। समझ में आया? **क्योंकि यह मोक्षमार्ग में प्रवर्ताने को उपकारी है।** पहले ... है न? वीतरागदेव, वीतराग की वाणी और वीतराग के देव अनुसार प्रवर्तनेवाले मुनि और श्रावक, वे **मोक्षमार्ग में प्रवर्ताने को उपकारी है।** उपकारी का मानना न्याय है। यहाँ व्यवहार सिद्ध करना है न? समझ में आया? **उपकार लोपना अन्याय है।** जिनेश्वरदेव, उनकी वाणी—आगम, उसके अनुसार प्रवर्तनेवाले मुनि और श्रावक, उनका विनय, वन्दना आदि यथायोग्य करना, वह न्याय है। वे सब उपकारी हैं। समझ में आया? और उनका उपकार लोपना, वह अन्याय है। ऐसा भाव आता है या नहीं? शुभभाव व्यवहार ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञदेव परमात्मा त्रिलोकनाथ का नाम मात्र ही लाभदायक है। अब अपने अरिहन्त की व्याख्या आयेगी इसके बाद। बोधपाहुड़ में रह गया है न? भाई! अरिहन्तदेव। अरिहन्त का स्वरूप रह गया है। २८ गाथा से अमुक तक है।

और **स्वरूप के साधक अहिंसा आदि महाव्रत...** देखो! यहाँ स्वरूप जो आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, उसमें निमित्तरूप राग की मन्दता के अहिंसा आदि के भाव होते हैं, उन्हें व्यवहार साधक कहा जाता है। **महाव्रत तथा रत्नत्रयरूप प्रवृत्ति,...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के शुभ विकल्प की प्रवृत्ति **समिति, गुप्तिरूप प्रवर्तना...** लो!

उसमें राग का अंश है परन्तु वह आये बिना रहता नहीं। जब तक वीतराग न हो, उसे शुद्धभाव की भूमिका में, शुद्ध परिणति में, निश्चय में ऐसा व्यवहार होता है।

महाव्रत तथा रत्नत्रयरूप प्रवृत्ति,... रत्नत्रय अर्थात् व्यवहार। व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान और व्यवहार महाव्रत का विकल्प आदि। **समिति, गुप्तिरूप प्रवर्तना...** यह भी राग है। ईर्या—शोधकर चलना, यह सब विकल्प राग है। परन्तु ऐसा व्यवहार निश्चयवाले को होता है। **इनमें दोष लगने पर अपनी निंदा-गर्हादिक करना,...** महाव्रतादि में दोष लगा हो तो निन्दा-गर्हा करना। **गुरुओं का दिया हुआ प्रायश्चित्त लेना,...** यह सब व्यवहार विकल्प होता है, इतनी बात। **शक्ति के अनुसार तप करना,...** शक्ति अनुसार अर्थात् शक्ति प्रमाण। जैसी अपनी शक्ति हो, उसके प्रमाण में तप करना। उपवास आदि व्यवहार तप की बात है। **परिषह सहना, दशलक्षणधर्म में प्रवर्तना इत्यादि शुद्धात्मा के अनुकूल...** निमित्त। शुद्धात्मा की श्रद्धा-ज्ञान की भूमिका में अनुकूल अर्थात् निमित्त **क्रियारूप प्रवर्तना, इनमें कुछ राग का अंश रहता है, तबतक शुभकर्म का बन्ध होता है...** राग का अंश है, उतना उसे पुण्यबन्धन होता है। **तो भी वह प्रधान नहीं है,...** प्रधानता—गिनती निश्चय की—स्वभाव की है, ऐसा कहते हैं। जरा राग होता है। उस राग को शुद्ध का आरोप दिया जाता है।

क्योंकि इनमें प्रवर्तनेवाले के शुभकर्म के फल की इच्छा नहीं है,... लो! ऐसा राग आता है, परन्तु उसके फल की इच्छा धर्मी को नहीं होती। **इसलिए अबन्धतुल्य है,...** इस अपेक्षा से। दृष्टि और ज्ञान और चारित्र की निर्मलता का जोर है, वहाँ फिर राग का भाग ऐसा आता है, उससे कुछ बन्ध है, परन्तु उसे प्रधानरूप से गिनने में (नहीं आया है)। प्रधान यह शुद्ध रत्नत्रय है। इसलिए इसे अबन्धतुल्य कहा है। **इत्यादि प्रवृत्ति आगमोक्त 'व्यवहारमोक्षमार्ग है।** यह भी आगम की आज्ञा व्यवहार प्रमाण मोक्षमार्ग व्यवहार से कहा गया है। **इसमें प्रवृत्तिरूप परिणाम हैं...** उसमें रागरूप प्रवृत्ति के परिणाम हैं। **तो भी निवृत्तिप्रधान है, इसलिए निश्चयमोक्षमार्ग में विरोध नहीं है।** निश्चय भूमिका में व्यवहार का भाव ऐसा होता है। इससे कहीं निश्चय विरोध नहीं आता। आहाहा!

इस प्रकार निश्चय-व्यवहारस्वरूप मोक्षमार्ग का संक्षेप है। इसी को

'शुद्धभाव' कहा है। देखो! शुद्धभाव तो शुद्ध ही है। व्यवहार को—उसको शुद्ध कहा (जाता है)। व्यवहार से शुद्ध। मूल ऐसा है। व्यवहार शुद्ध। शुभ को व्यवहार शुद्ध कहा। शुद्ध को निश्चय शुद्ध कहा। इसमें न समझे तो गड़बड़ उठावे। ऐसा कहे कि देखो! इन दोनों को शुद्ध कहा। आहाहा! **इसी को 'शुद्धभाव' कहा है।** इसी को शुद्धभाव कहा है। ऐई! किसे? दोनों को। एक यथार्थ और एक आरोपित। जैसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र एक निश्चय और एक आरोपित। ऐसे शुद्धभाव यथार्थ, वह यथार्थ। शुभ को व्यवहार-आरोपित। आहाहा! लो! इसमें तो ऐसा स्पष्ट है।

निश्चय और व्यवहार से निर्जरा होती है। जय धवल में है न? इसका अर्थ क्या? व्यवहार का आरोप करके कथन किया है। ऐसी वस्तु है। लोगों को अभिप्राय बँध जाता है न? उससे छूटना भारी पड़ जाता है। चारित्रदोष है, वह तो टल सकने की इसे दृष्टि है तो टल सकता। परन्तु अभिप्राय को टालना... आहाहा! इसलिए कहा कि, 'दंसण भट्ठा सिज्झंति नहिं। चरित्त भट्ठा सिज्झंति।' दर्शनभ्रष्ट है, वह कभी नहीं सीझता। चारित्रभ्रष्ट—चारित्र का दोष होगा तो उसके श्रद्धा-ज्ञान में ख्याल है, वह क्रम-क्रम से छूट जायेगा। परन्तु जिसकी श्रद्धा ही विपरीत है, यह पुण्य परिणाम, वही निर्जरा और संवर है और धर्म है—ऐसे अभिप्रायवाले दर्शन से भ्रष्ट हैं। समझ में आया? सत्य से दूर हैं। चारित्रदोष है, वह सत्य से अस्थिरता की अपेक्षा से अलग-थलग है। अभिप्राय की अपेक्षा से अलग-थलग नहीं। दोष है। राग दोष है। समझ में आया?

इसमें सम्यग्दर्शन को प्रधान कहा है,... देखो! वापस इसमें भी सम्यग्दर्शन की प्रधानता। तीन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय और व्यवहार। उसमें भी सम्यग्दर्शन की मुख्यता। **क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना सब व्यवहार मोक्ष का कारण नहीं है...** जिसे निर्विकल्प आत्मा की श्रद्धा का भान नहीं, उसे ऐसे सब व्यवहार कोई मोक्ष का व्यवहार कारण भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आठ-आठ वर्ष के लड़के समझते हैं। आहाहा! आठ वर्ष के बालक राजकुमार केवल (ज्ञान) पाते थे। संसार समुद्र का सागर बड़ा भटकने का अपार है। उसमें से दुःख लगा। अरे रे! इस भव जल सागर में से तिरना, वह मुझे करना है। वह मुझे करना है; बाकी मुझे कुछ करना नहीं। समझ में आया? शुभाशुभ परिणाम का फल तो संसार है। कहा न? इस संसार के भवसागर में डूब रहा है।

इससे अब मुझे तिरना, यह करना है। तिरना वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय है। उससे तिर सकता है। गजब! संक्षिप्त बात में बड़ी बात। जवाबदारी, शर्तें बड़ी।

सम्यग्दर्शन के बिना सब व्यवहार... देखो! ऊपर कहा न व्यवहार? जिसे व्यवहार से शुद्ध कहा था, वे सब **मोक्ष का कारण नहीं है...** उसमें तो आरोप आता था। सम्यग्दर्शन आत्मा का भान, निर्विकल्प श्रद्धा तथा राग वह हेय है - ऐसा भान था। उसे राग में आरोप आता था। अज्ञानी तो कहते हैं श्रद्धा बिना को आरोप भी नहीं होता। **सम्यग्दर्शन के व्यवहार में जिनदेव की भक्ति प्रधान है,...** अब सम्यग्दर्शन में भी व्यवहार में जिनदेव की भक्ति प्रधान है। वीतराग तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी सूर्य, जागती की ज्योति सूर्य, वह उगा सो उगा, अस्त नहीं होगा। ऐसे परमात्मा जिनेन्द्रदेव की भक्ति, व्यवहार में मुख्य है।

यह सम्यग्दर्शन को बताने के लिए मुख्य चिह्न है,... जिनेन्द्र देव की जिसे अन्तर श्रद्धा आत्मा की हुई है, उसे ऐसे जिनेन्द्रदेव के प्रति भक्ति और मुख्यता गिनने में (आयी है)। व्यवहार में। **इसलिए जिनभक्ति निरन्तर करना...** व्यवहार का विकल्प है न? इसकी श्रद्धा निरन्तर रखना। **जिन आज्ञा मानकर आगमोक्त मार्ग में प्रवर्तना...** वीतराग की आज्ञा जानना, आज्ञा मानना। आगमोक्त-भगवान के आगम प्रमाण मार्ग में प्रवर्तना। **यह श्रीगुरु का उपदेश है। अन्य जिन-आज्ञा सिवाय सब कुमार्ग हैं,...** जिनेन्द्र की आज्ञा के अतिरिक्त जितने जगत में मार्ग हैं, वे सब कुमार्ग हैं, पाखण्ड मार्ग हैं, अन्य मार्ग हैं। आहाहा! **उनका प्रसंग छोड़ना,...** ऐसो का संग करना नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वीतराग परमात्मा तीर्थंकरदेव ने कहा हुआ मार्ग शुद्ध और शुभ, इसके अतिरिक्त दूसरे कहनेवालों का मार्ग छोड़ना, प्रसंग छोड़ना, संग करना नहीं, परिचय करना नहीं। समझ में आया? और अपने भगवान की आज्ञाप्रमाण अपने आत्मा का हित करना। **इस प्रकार करने से आत्मकल्याण होता है।** लो! ऐसा करे, उसे आत्मकल्याण होता है। लो! ऐसा भावपाहुड़ का सार कहा। १६५ गाथा बहुत समय से चलती थी।

जीव सदा चिदभाव एक अविनाशी धारै।
कर्म निमित्तकूं पाय अशुद्धभावनि विस्तारै।।

कर्म शुभाशुभ बांधि उदै भरमै संसारै।
पावै दु:ख अनंत च्यारि गतिमैं डुलि सारै।।
सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब।
निजशुद्धभाव धरि कर्महरि लहै मोक्ष भरमै न तब।।

देखो! वापस लेखन में स्पष्ट कर दिया। '**जीव सदा चिदभाव**' पहले आया था। जीव सदा चेतना अविनाशी स्वभाववाला है। '**जीव सदा चिदभाव एक अविनाशी धारै।**' आत्मा का चिदानन्द ज्ञान-दर्शनस्वभाव अविनाशी अनादि-अनन्त, उसे दृष्टि में ले—धारे। '**कर्म निमित्तकूं पाय**' अनादि से। आया है उसी का स्पष्टीकरण किया। कर्म का निमित्त पाकर अशुद्धभाव को विस्तारे। यह निमित्त को प्राप्त करे का अर्थ ही निमित्त स्वयं लक्ष्य में लेता है, इसलिए निमित्त कहलाता है। ऐसा। '**कर्म निमित्तकूं पाय अशुद्धभावनि विस्तारै।।**' पर के निमित्त के लक्ष्य से तो अशुद्धभाव का—पुण्य-पाप का ही विस्तार होता है। उसमें संसार की निवृत्ति का उपाय नहीं होता।

'**कर्म शुभाशुभ बांधि**' पुण्य के, पाप के जो कुछ शुभ-अशुभभाव करे, शुभ-अशुभ बाँधे। और, '**उदै भरमै संसारै।**' और उदय आवे तो और भ्रम में पड़कर पुण्य-पाप के भाव करे और संसार में भटके। आहाहा! '**पावै दु:ख अनंत**' चारों ही गति का दु:ख है। '**च्यारि गतिमैं डुलि सारै।।**' देखो! चारों ही गति में डूबेगा, ऐसा कहते हैं। उसमें कुछ सुख, कहा था न?

मुमुक्षु : बहुत सुखी कहा था, अब दु:ख कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो लोगों को... आहाहा!

'**गतिमैं डुलि**' चार गति में डोलता फिरता है। परिभ्रमण करता है। आहाहा! '**सर्वज्ञदेशना पायकै**' परमात्मा सर्वज्ञदेव। क्योंकि आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव है, उसे ही आत्मा पूरा कहते हैं और ऐसी सर्वज्ञदशा जिसे प्रगट हुई, ऐसे आत्मा को वास्तव में आत्मा कहते हैं। ऐसे भगवान की जो आज्ञा—देशना। '**सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब।**' देखो! तब ही मिथ्यात्वभाव तजे। सर्वज्ञ की आज्ञाप्रमाण आत्मा को जाने, श्रद्धा करे तो मिथ्यात्व जाता है। अज्ञानियों के कहे अनुसार आत्मा को माने, ध्यान करे तो उसे मिथ्यात्व जाता नहीं। समझ में आया?

'सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब। निजशुद्धभाव धरि' आत्मा का पवित्र स्वभाव सम्यग्दर्शन में धारण किया, ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्व छूटा। यह शुद्ध निज आत्मा परमानन्दस्वरूप ज्ञान का सूर्य, आनन्द का सागर ऐसा **'निजशुद्धभाव धरि'** धारण करके **'कर्महरि'** कर्म को टालकर **'लहै मोक्ष भरमै न तब।'** वह मोक्ष ले **'भरमै न तब।'** वह भरमाये नहीं और संसार में रहे नहीं।

मंगलमय परमातमा, शुद्धभाव अविकार।
नमूं पाय पाऊँ स्वपद, जाचूं यहै करार।।

'मंगलमय परमातमा,' परमात्मा तो मंगलमय पूर्ण शुद्ध को प्राप्त, वह मंगलमय है। आत्मा शुद्धभाव स्वयं ही मंगलमय की मूर्ति है। **'शुद्धभाव अविकार'** और शुद्धभाव, यह विकार बिना की भाव दशा है। पुण्य-पाप का भाव तो विकार है। उससे रहित आत्मा के स्वभाव के आश्रय से होता अविकारी शुद्धभाव है। **'नमूं पाय पाऊँ स्वपद,'** उसे नमन करता हूँ। मेरे स्वपद को प्राप्त करूँ **'जाचूं यहै करार।'** मेरा करार यह है कि मेरे निजपद को प्राप्त करूँ, यह मेरा करार है। करारनामा लिखते हैं न? यह हमारे करार है, कहते हैं। **'नमूं पाय पाऊँ स्वपद, जाचूं यहै करार।।'**

श्री कुन्दकुन्दस्वामि विरचित भावप्राभृत की जयपुरनिवासी पण्डित जयचन्द्रजी छाबड़ाकृत देशभाषामय वचनिका समाप्त। लो!

आगे यह आयेगा—बोधपाहुड़ है न? उसकी २८वीं गाथा। वहाँ से अपने बाकी रहा है। २७ गाथा हो गयी है। बोधपाहुड़ की २८वीं गाथा।

गाथा-२८

(१०) आगे अरहन्त का स्वरूप कहते हैं –

णामे ठवणे हि संदव्वे भावे हि सगुणपज्जाया।
चउणागदि संपदिमे[1] भावा भावंति अरहंतं ।।२८।।

नाम्नि संस्थापनायां हि च संद्रव्ये भावे च सगुणपर्यायाः[2]।
च्यवनमागतिः संपत् इमे भावा भावयंति अर्हन्तम् ।।२८।।

नाम स्थापना द्रव्य रु भाव में गुण परिणमन।
ये च्यवन आगति सम्पदा सब भाव अर्हत् प्रदर्शित।।२८।।

अर्थ – नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव – ये चार भाव अर्थात् पदार्थ हैं, ये अरहन्त को बतलाते हैं और सगुणपर्यायाः अर्थात् अरहन्त के गुण पर्यायोंसहित तथा चउणा अर्थात् च्यवन और आगति व सम्पदा – ऐसे ये भाव अरहन्त को बतलाते हैं।

भावार्थ – अरहन्त शब्द से यद्यपि सामान्य अपेक्षा केवलज्ञानी हों वे सब ही अरहन्त हैं तो भी यहाँ तीर्थंकर पद की प्रधानता से कथन करते हैं, इसलिए नामादिक से बतलाना कहा है। लोकव्यवहार में नाम आदि की प्रवृत्ति इस प्रकार है कि जो जिस वस्तु का नाम हो वैसा गुण न हो उसको नामनिक्षेप कहते हैं। जिस वस्तु को जैसा आकार हो, उस आकार की काष्ठ–पाषाणादिक की मूर्ति बनाकर उसका संकल्प करे उसको स्थापना कहते हैं। जिस वस्तु की पहली अवस्था हो उस ही को आगे की अवस्था प्रधान करके कहे उसको द्रव्य कहते हैं। वर्तमान में जो अवस्था हो उसको भाव कहते हैं। ऐसे चार निक्षेप की प्रवृत्ति है। उसका कथन शास्त्र में भी लोगों को समझाने के लिए किया है। जो निक्षेप विधान द्वारा नाम, स्थापना, द्रव्य को भाव न समझे, नाम को नाम समझे, स्थापना को स्थापना समझे, द्रव्य को द्रव्य समझे, भाव को भाव समझे, अन्य को अन्य समझे, अन्यथा तो 'व्यभिचार' नाम का दोष आता है। उसे दूर

१. सं. प्रति में 'संपदिम' पाठ है।
२. 'सगुणपज्जाया' इस पद की छाया में 'स्वगुण पर्यायाः' सं. प्रति में है।

करने के लिए लोगों को यथार्थ समझाने के लिए शास्त्र में कथन है, किन्तु यहाँ वैसा निक्षेप का कथन नहीं समझना। यहाँ तो निश्चयनय की प्रधानता से कथन है सो जैसा अरहंत का नाम है वैसा ही गुण सहित नाम जानना, स्थापना जैसी उसकी देह सहित मूर्ति है वही स्थापना जानना, जैसा उसका द्रव्य है, वैसा द्रव्य जानना और जैसा उसका भाव है वैसा ही भाव जानना।।२८।।

गाथा-२८ पर प्रवचन

अब अरहन्त का स्वरूप कहते हैं – यहाँ से शुरु आता है। देखो! इन अरिहन्त को अब बतलाते हैं। ऐसे अरिहन्त-अरिहन्त करे, ऐसा नहीं चलता, कहते हैं। बोधपाहुड़। अरिहन्त का स्वरूप **नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव...** चार से उसे सिद्ध करे। बोधपाहुड़, यह आयेगा, लो। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१६४, गाथा-२८ से ३२, शनिवार, पौष शुक्ल ५, दिनांक ०२-०१-१९७१

२८। अरिहन्त का स्वरूप क्या है? कहते है, ऐसे अरिहन्त... अरिहन्त करे परन्तु अरिहन्त का वास्तविक संयोगों का क्या स्वरूप है? स्वभाव का क्या स्वरूप है? अरिहन्त होने पर भी उन्हें संयोग किस प्रकार के होते हैं? स्वभाव कैसा होता है? उसे पहिचाने, तब अरिहन्त का वास्तविक स्वरूप जाना कहलाता है। ऐसे तो बहुत सब अरिहन्त कहे।...

मुमुक्षु : आत्मा स्वयं अरिहन्त पद है, फिर दूसरा क्या काम है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अहिरन्त पद किस प्रकार अरिहन्त है? अरिहन्त तो शक्तिरूप से है। पर्याय में अरिहन्तपना हो, उनकी कैसी दशा होती है? उन्हें संयोग किस प्रकार के होते हैं? स्वभाव की पूर्णता कैसी होती है? उन्हें यहाँ अरिहन्त रूप से बतलाते हैं। बोधपाहुड़ में ग्यारह बोल हैं निश्चय के। उसमें नौ बोल चल गये हैं। यह दसवाँ बोल है।

आगे अरहन्त का स्वरूप कहते हैं – अरिहन्त का स्वरूप कहते हैं।

णामे ठवणे हि संदव्वे भावे हि सगुणपज्जाया।
चउणागदि संपदिमे भावा भावंति अरहंतं ।।२८।।

अर्थ – नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव – ये चार भाव अर्थात् पदार्थ हैं,... यह वस्तु के स्वभाव की बात है। चार निक्षेप जो चलते हैं, वे यह नहीं। यह तो अरिहन्त के जो नाम हैं, ऐसे उनके गुण होते हैं, उसका नाम नामनिक्षेप है। ये चार हैं। **स्थापना,...** यह अरिहन्त के आकारादि। उनके गुणों की स्वरूप स्थिति, उसे यहाँ स्थापना कहते हैं। उनका **द्रव्य,...** उनका आत्मा जो वस्तु है, वह द्रव्य अरिहन्त। भाव (अरिहन्त) उनकी पर्याय प्रगट हुई वह। **ये चार भाव अर्थात् पदार्थ हैं, ये अरहन्त को बतलाते हैं...** चार (भाव) अरिहन्त को बतलाते हैं। अरिहन्त परमेश्वर किसे कहते हैं अर्थात् कि परमात्मा सर्वज्ञदेव, जिन्हें वाणी होती है, ऐसे परमात्मा, कैसा उनका स्वरूप है, उसका यहाँ वर्णन करते हैं? ऐसे तो सब बहुत अरिहन्त... अरिहन्त करे। सम्प्रदाय में भी अरिहन्त-अरिहन्त करे। उनकी पहिचान नहीं होती।

और, **और सगुणपर्याया: अर्थात् अरहन्त के गुण पर्यायोंसहित...** उनके गुण कैसे होते हैं, उनकी दशा कैसी होती है? ऐसे यह अरिहन्त के स्वरूप का वर्णन है। **चउणा...** अरिहन्त हैं, वे कहाँ से आये? अरिहन्त हैं न? वे कहीं सिद्ध नहीं हुए। अभी उन्हें अन्तिम अवतार होता है। वह अरिहन्त का अवतार हुआ, वह कहाँ से आवे? कहीं अध्धर सिद्ध में से आते हैं? ऐसा कहते हैं। अरिहन्त की वास्तविक स्थिति क्या है? कहाँ से आते हैं, वे नरक और स्वर्ग में से आते हैं। अरिहन्त तीर्थंकर जो होते हैं, यहाँ मुख्य तीर्थंकर की बात है, वे नरक में से या स्वर्ग में से आते हैं। यह श्रेणिक राजा नरक में से आयेंगे। दूसरे महावीर भगवान आदि स्वर्ग में से (आये)। ऐसे तीर्थंकर कोई स्वर्ग में से, कोई नरक में से (आते हैं)। उनका अवतार होता है और अरिहन्त की पूर्ण दशा होती है, वे कहाँ से आये होते हैं, यह बताते हैं। समझ में आया?

चउणा अर्थात् च्यवन और आगति... यहाँ से जाना, कहाँ जाये? यह बताते हैं और कहाँ से आये, यह बताते हैं। **सम्पदा...** उनकी ऋद्धि। रत्न की वृष्टि आदि। माता के गर्भ में जब आवे, तब इन्द्र रत्न की वृष्टि आदि करे, ऐसी उन्हें सम्पदा होती है। ऐसे अरिहन्त... अरिहन्त करे, ऐसा नहीं चलता, ऐसा यहाँ कहते हैं। यहाँ निश्चय से बात है

न। चारों निक्षेप यहाँ निश्चय से है। **ऐसे ये भाव अरहन्त को बतलाते हैं।**

अरहन्त शब्द से यद्यपि सामान्य अपेक्षा केवलज्ञानी हों... केवलज्ञानी को भी अरिहन्त कहा जाता है। **सब ही अरहन्त हैं तो भी यहाँ तीर्थंकर पद की प्रधानता से कथन करते हैं,...** तीर्थंकर अरिहन्त पद उनका कैसा होता है, उसकी बात है। कितने ही भगवान... भगवान करते हैं न? कि भगवान आये। वैकुण्ठ में से आये थे और वैकुण्ठ में गये। परन्तु वैकुण्ठ कौन सा? और यहाँ हो तो उनकी दशा में स्थिति क्या होती है? इसकी खबर बिना भगवान मान ले, उसे भगवान का भान नहीं है। **इसलिए नामादिक से बतलाना कहा है।** अरिहन्त को नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव, (ऐसे) चार से पहिचान कराते हैं। **लोकव्यवहार में नाम आदि की प्रवृत्ति इस प्रकार है कि जो जिस वस्तु का नाम हो, वैसा गुण न हो, उसको नामनिक्षेप कहते हैं।** पार्श्वनाथ कहे, महावीर नाम कहे। नाम रखते हैं न? महावीर, पार्श्वनाथ।

मुमुक्षु : दो नाम इकट्ठे हों – 'पार्श्व-वीर'।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। 'पार्श्व-वीर'। 'पार्श्व-वीर' दो नामी हैं। ... नाम हो परन्तु उनके गुण न हो। परन्तु नाम हो, वह नामनिक्षेप की यहाँ व्याख्या नहीं। यहाँ तो नाम है, उसके गुण ही ऐसे अहिरन्त के हैं, उनके गुणवाले नाम को अरिहन्तपना लागू पड़ता है।

और, **जिस वस्तु को जैसा आकार हो, उस आकार की काष्ठ-पाषाणादिक की मूर्ति बनाकर, उसका संकल्प करे, उसको स्थापना कहते हैं।** यह यहाँ नहीं। यह बात यहाँ नहीं। यहाँ तो उनके गुणों का स्वरूप क्या है? स्थापना, गति क्या, मार्गणा क्या, इसकी स्थापना की बात है। यहाँ तो और दूसरी ही बात है। मूर्ति होती है परन्तु वह भी व्यवहार। निश्चय अरिहन्त कैसे हैं, उसकी यहाँ व्याख्या है।

और, **जिस वस्तु की पहली अवस्था हो, उस ही को आगे की अवस्था प्रधान करके कहे, उसको द्रव्य कहते हैं।** भूतकाल की अवस्था राजा हो और राजा उठ गया हो तो भी उसे राजा कहा जाता है और भविष्य का राजा होनेवाला हो, उस राजकुमार को भी राजा कहा जाता है। वह यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो उसके द्रव्य का स्वरूप ही उसका जो वस्तु का है, वह कहते हैं।

और, **वर्तमान में जो अवस्था हो, उसको भाव कहते हैं।** अरिहन्त परमात्मा

भावनिक्षेप से यह पर्याय प्रगट हुई है, ऐसे को भावनिक्षेप से अरिहन्त चार निक्षेप की अपेक्षा से कहा जाता है। यहाँ पूरा दूसरा कहते हैं। **ऐसे चार निक्षेप की प्रवृत्ति है।** बाहर में व्यवहार। **उसका कथन शास्त्र में भी लोगों को समझाने के लिए किया है। जो निक्षेप विधान द्वारा नाम, स्थापना, द्रव्य को भाव न समझे,...** जिसका नाम भगवान... समझ में आया?

अरिहन्त, अरिहन्त को कैसे कहना? कहते हैं कि बाहर का नामनिक्षेप—स्थापना, वह यहाँ नहीं। यहाँ तो अरिहन्त भगवान के जो गुण हैं और उसमें उनका बाहर का पंचेन्द्रियपना, मनुष्यपना होता है, उसे यहाँ बताकर अरिहन्त की पहिचान कराते हैं। अकेले अरिहन्त... अरिहन्त करे और अरिहन्त के संयोग की दशा क्या हो? कहाँ से आवे? कहाँ जाये? उसके वर्तमान में गुण हो, परन्तु उसकी खबर न हो तो उसने अरिहन्त को जाना नहीं।

यहाँ तो **नाम को नाम समझे, स्थापना को स्थापना समझे, द्रव्य को द्रव्य समझे, भाव को भाव समझे, अन्य को अन्य समझे, अन्यथा तो 'व्यभिचार' नाम का दोष आता है।** यह यहाँ बात नहीं। क्योंकि **उसे दूर करने के लिए लोगों को यथार्थ समझाने के लिए शास्त्र में कथन है,...** चार निक्षेप। **किन्तु यहाँ वैसा निक्षेप का कथन नहीं समझना। यहाँ तो निश्चय की प्रधानता से कथन है, सो जैसा अरहन्त का नाम है, वैसा ही गुणसहित नाम जानना...** अरिहन्त, जिन्हें अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान-दर्शन प्रगट हुए हैं। अरिहन्त पूजनीक है। अरिहन्त कर्म के आठ प्रकार का जिन्होंने नाश किया है। है चार का नाश, परन्तु यहाँ तो आठों का नाश कहते हैं। ऐसी चीज़ है। कर्म थे, उनका नाश होकर, जिन्हें अनन्त दर्शन-ज्ञान-आनन्द तीन काल के लोक को जाना, ऐसा जिसका अनन्त आनन्दादि स्वरूप प्रगट हुआ है, उसे नामरूप से अरिहन्त कहते हैं। उन्हें अरिहन्त नाम दिया जाता है। गुण के बिना अरिहन्त नाम नहीं दिया जाता। जरा बोधपाहुड़ में निश्चय से कथन है।

जैसा अरहंत का नाम है, वैसा ही गुण सहित नाम जानना, स्थापना जैसी उसकी देह सहित मूर्ति है, वही स्थापना जानना,... उनकी देह है, आत्मा के स्वरूप का आकारादि है और जो उन्हें गति मार्गणा आदि होती है, किस गति में अरिहन्त होते हैं

कि मनुष्यगति में होते हैं। यद्यपि गति उनकी नहीं परन्तु संयोग में उन्हें गति होती है। मनुष्यगति में अरिहन्तपना होता है। अरिहन्तपना अध्धर से होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? कोई कहे न, भगवान थे। ऋषभदेव भगवान। भगवान ने अवतार धारण किया। परन्तु कहाँ से? मोक्ष में से आये?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बात ही मिथ्या है। कौन भगवान दु:ख दे। भगवान तो अपने कारण से नरक में से या स्वर्ग में से आते हैं। नरक में से भी (आकर) तीर्थंकर होते हैं। वे स्वयं के कारण से, योग्यता के कारण से हुए।

श्रेणिक राजा अभी नरक में है। आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होंगे। यह आत्मा का अनुभव, सम्यग्दर्शन पाये थे। श्रेणिक राजा महावीर भगवान के समय में (हुए थे)। सम्यग्दर्शन अर्थात् राग और शरीर से रहित, चैतन्य के आनन्द का अनुभव था जिन्हें। ऐसा सम्यग्दर्शन गृहस्थाश्रम और राजपद में भी पा सकते हैं। श्रेणिक राजा सम्यग्दर्शन पाये थे, परन्तु नरक का आयुष्य पहले बँध गया था। साधु की असातना की थी। भावलिंगी मुनि की गर्दन में मरा हुआ सर्प डाला था। करोड़ों चींटियों ने शरीर को खोखा बनाया। ऐसा उपसर्ग किया था; इसलिए सातवें नरक का आयुष्य बाँधा। श्रेणिक राजा ने। सातवें नरक। नीचे नरक है। उसमें से धर्म प्राप्त हुए, तब आयुष्य सातवें नरक का तैंतीस सागर का था, उसे घटा दिया और चौरासी हजार वर्ष का रहा। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति से अभी पहले नरक में हैं परन्तु आत्मज्ञान प्राप्त हुए, सम्यग्दर्शन प्राप्त हुए, अनुभव आत्मा का (हुआ था)। भले राजपाट और रानियाँ सब था। ऐसे भान में उन्हें तीर्थंकरगोत्र का शुभभाव आया। तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। तीर्थंकरगोत्र बाँधकर पहले नरक में गये हैं। नरक में ढाई हजार वर्ष तो हो गये। ८१५०० वर्ष बाकी है। वहाँ से निकलकर आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। यह सम्यग्दर्शन के प्रताप और अनुभव की दशा। नरक में से निकलकर तीर्थंकर होंगे। सम्यग्दर्शन का अनुभव है।

पुण्य-पाप के भाव और शरीर-वाणी से भिन्न, चैतन्यस्वभाव आनन्द की मूर्ति भगवान ने जैसा देखा, ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होकर, स्वाद होकर प्रतीति हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन वहाँ नरक में भी अनुभवते हैं। वहाँ से होकर

तीर्थंकर होंगे, दूसरे तीर्थंकर स्वर्ग में से आते हैं। सब नरक में से नहीं आते। कोई नरक में से, कोई स्वर्ग में से (आते हैं)। क्योंकि अन्तिम अवतार है न? कुछ थे, वहाँ से आवे या नहीं? या अध्धर से भगवान में से सिद्ध में से आवे? मोक्ष में से अवतार धारण करे? ऐसा नहीं है। किसी गति में से आते हैं। ऐसा बताते हैं। ऐई! प्रकाशदासजी! ऐसे अरिहन्त... अरिहन्त तो सब करे। भगवान... भगवान। परन्तु भगवान क्या कहलाते हैं? किसे कहना? कहाँ से आये? कहाँ जायेंगे? वर्तमान में क्या है? उस दशा का जिसे बराबर ज्ञान न हो, वह अरिहन्त को पहचान नहीं सकते। पहिचाने बिना वे अरिहन्त के भक्त नहीं हो सकते। वाडा में तो सब कहे अरिहन्त... अरिहन्त परन्तु अरिहन्त कैसे होते हैं, इसकी उन्हें खबर नहीं। समझ में आया?

और, **स्थापना जानना, जैसा उसका द्रव्य है, वैसा द्रव्य जानना...** द्रव्य वस्तु। गुणसहित, हों! सब। आनन्दमूर्ति प्रभु अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द ऐसे भावसहित है, उसे यहाँ अरिहन्त कहा गया है। **और जैसा उसका भाव है, वैसा ही भाव जानना।** प्रगट पर्याय। अब **प्रथम ही नाम को प्रधान करके कहते हैं –**

गाथा-२९

इस प्रकार ही कथन आगे करते हैं। प्रथम ही नाम को प्रधान करके कहते हैं –

दंसण अणंत णाणे मोक्खो णट्ठट्ठकम्मबंधेण।
णिरुवमगुणमारूढो अरहंतो एरिसो होइ॥२९॥

दर्शनं[1] अनंतं ज्ञानं मोक्षः नष्टानष्टकर्मबंधेन।
निरुपमगुणमारूढः अर्हन् ईदृशो भवति॥२९॥

निस्सीम दर्शन ज्ञान शिव कर्माष्ट बन्धन से रहित।
निरुपम गुणों सम्पन्न ऐसे हैं सदा अरहंत जिन॥२९॥

१. सटीक सं. प्रति में 'दर्शने अनंत ज्ञाने' ऐसा सप्तमी अंत आठ है।

_अर्थ_ – जिसके दर्शन और ज्ञान ये तो अनन्त हैं, घातिकर्म के नाश से सब ज्ञेय पदार्थों को देखना व जानना है, अष्ट कर्मों का बन्ध नष्ट होने से मोक्ष है। यहाँ सत्त्व की और उदय की विवक्षा न लेना, केवली के आठों ही कर्म का बन्ध नहीं है। यद्यपि साता वेदनीय का आस्रव मात्र बन्ध सिद्धान्त में कहा है तथापि स्थिति अनुभागरूप बन्ध नहीं है, इसलिए अबन्धतुल्य ही है। इस प्रकार आठों ही कर्मबन्ध के अभाव की अपेक्षा भावमोक्ष कहलाता है और उपमारहित गुणों से आरूढ़ हैं–सहित हैं। इस प्रकार गुण छद्मस्थ में कहीं भी नहीं है, इसलिए जिसमें उपमारहित गुण हैं, ऐसे अरहन्त होते हैं।

_भावार्थ_ – केवल नाममात्र ही अरन्हत हो, उसको अरहन्त नहीं कहते हैं। इस प्रकार के गुणों से सहित हो, उसको अरहन्त कहते हैं।

गाथा–२९ पर प्रवचन

दंसण अणंत णाणे मोक्खो णट्ठट्ठकम्मबंधेण।
णिरुवमगुणमारूढो अरहंतो एरिसो होइ।।२९।।

अर्थ – जिसके दर्शन और ज्ञान ये तो अनन्त हैं,... जिसकी दशा अन्तर में सर्वज्ञ पद था, स्वभाव में, आत्मा में तो प्रत्येक को सर्वज्ञ पद है। प्रत्येक आत्मा के अन्तर स्वभाव में सर्वज्ञ शक्ति का पद तो अन्दर पड़ा ही है। वह जिसे अन्तर के आनन्द की अनुभव में, अन्तर के ध्यान द्वारा जिसने अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन शक्तिरूप से था, से प्रगटरूप से किया, उसे अरिहन्त कहा जाता है। २९ है। समझ में आया?

देखो! यह **घातिकर्म के नाश से सब ज्ञेय पदार्थों को देखना व जानना है,...** ऐसी विशिष्टता है। यह अनन्त ज्ञान ही परमात्मा को प्रगटता है, वह घातिकर्म अर्थात् वह जड़कर्म निमित्तरूप से थे, उनका अभाव होकर वह अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन प्रगट होता है। ऐसे अरिहन्त और उनका वास्तविक स्वरूप बतलाते हैं। अरिहन्त कहीं अध्धर से कहीं से अवतरित नहीं होते। उन्हें पहले माता होती है, पिता होते हैं। गति में से आते हैं। तीन ज्ञान तो लेकर माता के गर्भ में आते हैं। फिर जब वे साधु होते हैं, अन्तर के साधु, हों! अन्तर आनन्द में साधनेवाले वे साधु होकर केवलज्ञान पावे। तब कहते हैं कि

घातिकर्म के नाश से... कर्म सिद्ध किया। अरिहन्त को अरिहन्त होने से पहले चार घातिकर्म थे। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय। यह सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त यह बात अन्यत्र नहीं हो सकती। और घातिकर्म तथा उनका अभाव, अभाव होकर अनन्त ज्ञान-दर्शन पावे, वे सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र बात नहीं होती।

घातिकर्म के नाश से सब ज्ञेय पदार्थों को देखना व जानना है,... तीन काल-तीन लोक जिनके ज्ञान में जानने में, दर्शन में देखने में आये, उन्हें अरिहन्त कहते हैं। समझ में आया ? उन्हें जानने का बाकी नहीं रहता। तीन काल, तीन लोक, भूत, वर्तमान और भविष्य; अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, उनके द्रव्य अर्थात् वस्तु की, उनकी शक्ति की और उनकी दशा की। यह द्रव्य-गुण और पर्याय वस्तु के तीन प्रकार। उन सर्व को एक समय में तीन काल, तीन लोक को एक समय में जाने, उसे अरिहन्त कहा जाता है। परन्तु वह अरिहन्तपना यहाँ कर्म का नाश करके कहा, देखो! ऐई! वह अरिहन्त और अर्हंत का विवाद है न ?

यहाँ तो **'णट्ठट्ठकम्मबंधेण'** आठ कर्मों का जिन्होंने नाश किया है। यहाँ अरिहन्त ने आठ कर्म का नाश किया है, ऐसा सिद्ध किया है। कारण कहेंगे। पश्चात् चार कर्म बाकी वे तो मुर्दे पड़े हैं। मर गये हैं। समझ में आया ? और बन्ध है, वह भी एक समय की स्थिति है। उसकी स्थिति है ही नहीं। वह वास्तव में बन्ध है ही नहीं। अरिहन्त अनन्त ज्ञान-आनन्द, अनन्त दर्शन, वीर्य, जो अन्तर अनन्त चतुष्टय में शक्ति पड़ी थी, (उसे प्रगट किया)। वस्तु में अनन्त चतुष्टय, अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द और वीर्य पड़ा ही है। प्रत्येक आत्मा में। समझ में आया ?

जैसे छोटी पीपर के दाने में चौंसठ पहरी चरपराहट और हरा रंग तो पड़ा ही है। पड़ा है, वह प्रगट होता है। कहीं बाहर से नहीं आता। इसी प्रकार आत्मा में अन्दर भगवानस्वरूप प्रभु आत्मा, उसकी शक्ति के सत्त्व में सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य तो अन्दर पड़ा ही है। उसे आत्मा कहते हैं। परन्तु उसे आत्मा कहने से अरिहन्त नहीं कहते। अरिहन्त तो ये चार गुण जो हैं, उनका अन्तरध्यान करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान पाकर, स्वरूप में रमणतारूपी चारित्र को पाकर जिसने चार घाति कर्म का अभाव किया और अपनी पूर्ण दशा को प्रगट किया, ऐसे को, एक का नाश, एक की उत्पत्ति, ध्रुव का रहना,

ऐसे को अरिहन्त कहा जाता है। फिर से। जिसने चार घातिकर्म जो जड़ थे, उनका व्यय किया। निमित्त से (कथन किया है)। अशुद्धता का अल्पज्ञ का व्यय किया और पूर्ण ज्ञानदशा को उत्पन्न किया और ध्रुवरूप कायम रहे, उसे अरिहन्त कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु है न कायम आत्मा। पहले तो कहा। अनन्त चतुष्टय ध्रुव तो त्रिकाल है। उसमें अन्तर के ध्यान द्वारा (जिसने प्रगट किया), ऐसे अरिहन्त को अरिहन्त कहते हैं। अन्तर के अनुभव के आनन्द द्वारा उस शक्ति की व्यक्तता प्रगट हुई और कर्म का व्यय अर्थात् अभाव हुआ। नयी वीतरागी केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, वस्तुरूप से शक्तिरूप से स्वरूप तो है। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। भगवान आत्मा का सत् भी ऐसा ही है। सर्वज्ञपद आदि का उत्पाद, कर्म का व्यय, ध्रुव का रहना। समझ में आया ? ऐसे अरिहन्त को इस प्रकार से पहिचाने तो (यथार्थ है)। बाकी ऐसे तो सब अरिहन्त... अरिहन्त करते हैं। तुम्बड़ी में कंकड़ बजते हैं न ? यह तो कंकड़ है या रुपया है ? बजते तो वास्तविक रुपया जैसा। रुपया लगे खड़खड़ जैसा हो। भान नहीं होता उसका। परन्तु वह तो सूखे बीज होकर पृथक् पड़कर बजते हैं। वे कहीं रुपये भरे नहीं हैं। तुम्बड़ी होती है न ? ऐसे अरिहन्त... अरिहन्त के नाम तो सब बहुत करे। परन्तु अरिहन्त का वास्तविक स्वरूप क्या है ? उन्होंने क्या प्रगट किया ? उन्होंने क्या नाश किया ? उन्हें क्या रहा त्रिकाली ? ऐसी चीज़ के भान बिना अरिहन्त को वास्तविक रीति से पहिचाना नहीं जा सकता। यों तो सब भगवान... भगवान करते हैं। समझ में आया ?

चार **घातिकर्म के नाश से सब ज्ञेय...** तीन काल, तीन लोक अनन्त काल पहले चीज़ थी, अनन्त काल पश्चात होगी, (उन) सबको जानते हैं। **देखना व जानना है, अष्ट कर्मों का बन्ध नष्ट होने से मोक्ष है।** देखो! आठ कर्म का नाश हुआ। पाठ में ऐसा है। ऐसे हैं अरिहन्त तीर्थंकर। समझ में आया ? तब उन्हें मोक्ष है। तब मोक्ष ही है अभी, ऐसा कहते हैं। भावमोक्ष हुआ न ? महावीर भगवान आदि यहाँ से हुए, वे तो सिद्ध भगवान हो गये अभी। अरिहन्त भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। सीमन्धर परमात्मा तीर्थंकर

देव आदि बीस तीर्थंकर हैं, उन्हें भी मोक्ष हुआ है, ऐसा यहाँ कहते हैं। किस प्रकार ? यह कहते हैं, देखो !

यहाँ सत्त्व की और उदय की विवक्षा न लेना,... नहीं लेना। कहते हैं कि उन्हें कर्म की सत्ता थोड़ी पड़ी है और उसका उदय है, वह यहाँ नहीं लेना। केवली को चार कर्म बाकी है, वह बात यहाँ नहीं लेना। कर्म भिन्न तत्त्व है, भगवान आत्मा भिन्न है। समझ में आया ? अखण्ड आनन्द चैतन्य की जलहल ज्योति, जिसकी दशा में पूर्ण केवलदशा प्रगटी, अब कहते हैं चार कर्म बाकी हो, भले सत्ता हो, उनका उदय हो, वह यहाँ गिनती में नहीं है। आत्मा में वह वस्तु है नहीं।

आठों ही कर्म का बन्ध नहीं है। लो। **केवली के आठों ही कर्म का बन्ध नहीं है। यद्यपि सातावेदनीय का आस्रव मात्र बन्ध सिद्धान्त में कहा है...** एक समय का वेदनीय कर्म भगवान को बँधता है। परन्तु वह तो एक समय की स्थिति, वह तो अबन्ध तुल्य है। **इसलिए अबन्धतुल्य ही है। तथापि स्थिति अनुभागरूप बन्ध नहीं है,...** उसके कर्म की स्थिति नहीं, रस भी नहीं, देखो! यह अरिहन्त की पहिचान कराते हैं। अरिहन्त... अरिहन्त (करे) परन्तु इस प्रकार न पहिचाने तो वह अरिहन्तदेव को ही नहीं पहिचानता। अरिहन्त को पहिचानता नहीं और उनका भगत हो और श्रद्धा हो, (ऐसा नहीं होता)। उसके व्यवहार श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता। ऐसा कहते हैं। पण्डितजी ! आहाहा ! **इसलिए अबन्धतुल्य ही है।** अरिहन्त को एक समय की स्थिति नहीं, इसलिए अबन्धतुल्य गिनने में आया है।

इस प्रकार आठों ही कर्मबन्ध के अभाव की अपेक्षा भावमोक्ष कहलाता है... भगवान अरिहन्त को तो भावमोक्ष ही है। **और उपमारहित गुणों से आरूढ़ हैं...** निरुपम ऐसे गुण जिन्हें प्रगट हुए हैं, उनकी उपमा क्या ? ओहोहो ! निरुपम है। निरुपम शब्द है न ? अरिहन्त की दशा, जिन्हें अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति प्रगट हुई है। जिन्हें दुःखमात्र का नाश हो गया है, उस दुःख का नाश, वह कर्म का नाश। ऐसे परमात्मा को निरुपम दशा प्रगटी है। उसे उपमा किसी की नहीं।

गुणों से आरूढ़ हैं... उपमारहित गुण में आरूढ़ है। **इस प्रकार गुण छद्मस्थ में**

कहीं भी नहीं है,... छद्मस्थ अर्थात् चार ज्ञान के धनी हों, ऐसे को भी ऐसे गुण होते नहीं। समझ में आया? **इसलिए जिसमें उपमारहित गुण हैं, ऐसे अरहन्त होते हैं।** लो! **केवल नाममात्र ही अरन्हत हो, उसको अरहन्त नहीं कहते हैं।** अरिहन्त नाम तो बहुतों को देते हैं। महावीर नाम दे, पार्श्व-वीर दे, ऋषभ दे। अभी बहुत नाम देते हैं। नेमिचन्दभाई यह नाम देते हैं तो यह नेम हो गये?

कहते हैं, वस्तु का स्वभाव जाने बिना अरिहन्त... अरिहन्त करे, यह नहीं। **इस प्रकार के गुणों से सहित हो, उसको अरहन्त कहते हैं।** देखो! जिसमें ऐसे गुण प्रगट हुए हों, उसका नाम अरिहन्त कहा जाता है। यों ही नाम अरिहन्त किसी का दे, वे अरिहन्त यहाँ नहीं लेना।

गाथा-३०

आगे फिर कहते हैं -

जरवाहिजम्ममरणं चउगइगमणं च पुण्णपावं च।
हंतूण दोसकम्मे हुउ णाणमयं च अरहंतो।।३०।।

जराव्याधिजन्ममरणं चतुर्गतिगमनं पुण्यपावं च।
हत्वा दोषकर्माणि भूतः ज्ञानमयश्चार्हन्।।३०।।

जो जनन व्याधि जरा मरण चतुगति भ्रमण पुण्य पाप के।
सब दोष कर्म विनाश हैं ज्ञानात्मक अरहंत वे।।३०।।

अर्थ - जरा-बुढ़ापा, व्याधि-रोग, जन्म-मरण, चारों गतियों में गमन, पुण्य-पाप और दोषों को उत्पन्न करनेवाले कर्मों का नाश करके, केवलज्ञानमयी अरहन्त हुआ हो वह 'अरहन्त' है।

भावार्थ - पहिली गाथा में तो गुणों के सद्भाव से अरहन्त नाम कहा और इस गाथा में दोषों के अभाव से अरहन्त नाम कहा। राग, द्वेष, मद, मोह, अरति, चिन्ता,

भय, निद्रा, विषाद, खेद और विस्मय ये ग्यारह दोष तो घातिकर्म के उदय से होते हैं और क्षुधा, तृषा, जन्म, जरा, मरण, रोग और स्वेद – ये सात दोष अघातिकर्म के उदय से होते हैं। इस गाथा में जरा, रोग, जन्म, मरण और चार गतियों में गमन का अभाव कहने से तो अघातिकर्म से हुए दोषों का अभाव जानना, क्योंकि अघातिकर्म में इन दोषों को उत्पन्न करनेवाली पापप्रकृतियों के उदय का अरहन्त के अभाव है और रागद्वेषादिक दोषों का घातिकर्म के अभाव से अभाव है।

यहाँ कोई पूछे – अर्हन्त को मरण का और पुण्य का अभाव कहा; मोक्षगमन होना यह 'मरण' अरहन्त के है और पुण्यप्रकृतियों का उदय पाया जाता है, उनका अभाव कैसे?

उसका समाधान – यहाँ मरण होकर फिर संसार में जन्म हो इस प्रकार के 'मरण' की अपेक्षा यह कथन है, इस प्रकार मरण अरहन्त के नहीं है, उसी प्रकार जो पुण्यप्रकृति का उदय पापप्रकृति सापेक्ष करे इस प्रकार पुण्य के उदय का अभाव जानना अथवा बन्ध–अपेक्षा पुण्य का भी बन्ध नहीं है। सातावेदनीय बँधे वह स्थिति–अनुभाग बिना बन्धतुल्य ही है।

प्रश्न – केवली के असाता वेदनीय का उदय भी सिद्धान्त में कहा है, उसकी प्रवृत्ति कैसे है ?

उत्तर – इस प्रकार जो असाता का अत्यन्त मन्द–बिल्कुल मन्द अनुभाग उदय है और साता का अति तीव्र अनुभाग उदय है, उसके वश से असाता कुछ बाह्य कार्य करने में समर्थ नहीं है, सूक्ष्म उदय देकर खिर जाता है तथा संक्रमणरूप होकर सातारूप हो जाता है, इस प्रकार जानना। इस प्रकार अनन्त चतुष्टयसहित सर्वदोषरहित सर्वज्ञ वीतराग हो उसको नाम से 'अरहन्त' कहते हैं।।३०।।

गाथा–३० पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं –

जरवाहिजम्ममरणं चउगइगमणं च पुण्णपावं च।
हंतूण दोसकम्मे हुउ णाणमयं च अरहंतो।।३०।।

गाथा ३०वीं। अर्थ — **जरा-बुढ़ापा,...** भगवान को वृद्धावस्था नहीं होती। शरीर होता है। संयोग में शरीर होता है। संयोगरूप से। अरिहन्त है न ? सिद्ध को शरीर नहीं होता। अरिहन्त को शरीर होता है, वाणी होती है, आवाज निकलती है। परन्तु वह उनके नहीं। संयोगरूप से भाव हो। वृद्धावस्था नहीं होती। उन्हें—भगवान को **रोग,...** नहीं होता। तीर्थंकर अरिहन्त को रोग नहीं। कहो, समझ में आया ? .... रोग कैसा ? उनके शरीर को रोग नहीं, हों ! आत्मा में तो रोग नहीं, शरीर को रोग नहीं होता। कहा जाता है न ? गोशाला ने लेश्या मारी। छह महीने रोग रहा... बिल्कुल झूठ बात है। अरिहन्त के स्वरूप को ऐसा नहीं हो सकता। आता है न ? ... गोशाला ने मारी लेश्या,... भगवान के समवसरण में। दो साधु को जलाया और भगवान को डाली लेश्या। छह महीने गोशाला को क्या कहलाता है ? दस्त रहा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... तुम्हारी हिन्दी भाषा में। अपने क्या कहा ? लोहीखण्ड झाड़ा पडयो छह महीना। भाषा उसकी। बिल्कुल झूठ बात है। अरिहन्त को... अरिहन्त को जानते ही नहीं। ऐई ! प्रकाशदासजी ! समझ में आया ? ऐसा है। छह महीने तक लोहीखण्ड का दस्त रहा। पश्चात छह महीने पूरे होने के बाद तब रोते थे। साधु थे। ऐसा भगवतीसूत्र में आता है। सब कल्पित बातें। भगवान की नहीं, सिद्धान्त की नहीं। एकदम न्याय से विरुद्ध। अरिहन्त केवली परमात्मपद की (पूर्ण) दशा, उन्हें और रोग कैसा ? ... रोते थे। अरे ! भगवान ! अब देह छूट जायेगी। भगवान कहते हैं, ... बुलाओ। तुमने मेरे लिये आहार बनाया है। रेवती ने। वह लावे नहीं, घोड़े के लिये बनाया वह लाना। ऐसा आता है। ऐई ! ... यह सब कल्पित बातें हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वत्र ऐसा ही चलता है। सनातन मार्ग में से पृथक् पड़कर जब सम्प्रदाय का बंधारण बाँधा, तब शास्त्र के ये बंधारण सब घर के कल्पित बाँधे हैं। वीतराग मार्ग से विरुद्ध। उन्हें (भगवान को) रोग नहीं होता। समझ में आया ? उन्हें रोग नहीं होता। अरिहन्त किसे कहते हैं ? आहाहा ! जिन्हें साता का ही उदय है। असाता का उदय सातारूप परिणम जाता है। ऐसे साक्षात् भगवान अमृत के स्वादी पूर्ण, मात्र आनन्द अमृत

का स्वाद जिन्हें है, उन्हें दु:ख और रोग कहाँ से आवे ? सब कल्पित है। भगवान के नाम से शास्त्र रच कर कल्पित किया है।

जन्म-मरण, चारों गतियों में गमन,... नहीं होता उन्हें। देह छूटकर जन्म हो, वे अरिहन्त नहीं कहलाते। मरण नहीं होता। मरण तो उसे कहते हैं कि मरकर किसी गति में जाये तो। भगवान को मरण नहीं होता। दूसरी गति में जाये और भव हो तो मरण कहलाये। भगवान को मरण होता नहीं। आहाहा! और **पुण्य-पाप और दोषों को उत्पन्न करनेवाले कर्मों का नाश करके,...** पुण्य और पाप को उपजानेवाले दोष के कर्म जो हैं, उनका तो नाश किया है। **केवलज्ञानमयी अरहन्त हुआ हो, वह 'अरहन्त' है।** अकेला ज्ञान की मूर्ति। जलहल ज्योति चैतन्यस्वरूप अनन्त आनन्द का धाम, केवलज्ञान, तीन काल-तीन लोक को एक समय में अपनी पर्याय में जाने। ऐसे इन भगवान को अरिहन्त कहा जाता है। वे अरिहन्त वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। सीमन्धर परमात्मा विद्यमान तीर्थंकर। विहरमान भगवान। समझ में आया ? परन्तु इस प्रकार उन्हें पहिचानना चाहिए। अरिहन्त-अरिहन्त करे और समझे नहीं कुछ। समझ में आया ? यह अरिहन्त की श्रद्धा ही उसे सच्ची नहीं है।

भावार्थ - पहिली गाथा में तो गुणों के सद्भाव से अरहन्त नाम कहा... पहली गाथा थी न २९ ? गुण से बात की थी। अनन्त ज्ञान-दर्शन। इस गाथा में दोष के अभाव से बात की है। नास्ति से। उन्हें ऐसे दोष नहीं होते। **अरहन्त नाम कहा। राग, द्वेष, मद, मोह, अरति, चिन्ता, भय,...** भगवान को राग नहीं होता कि यह गौतम शिष्य मेरा है और उसे मैं उपदेश दूँ। ऐसा राग अरिहन्त हो नहीं हो सकता। वाणी, वाणी के कारण से है, यह निकल जाये, इच्छा बिना। इच्छा हो, वह केवली नहीं, अरिहन्त नहीं। राग नहीं, द्वेष नहीं। उन्हें कोई शत्रु नहीं। उन्हें किसी प्रकार का मद-अभिमान नहीं होता। मोह नहीं होता, अरति नहीं होती, चिन्ता नहीं होती, भय नहीं होता, **निद्रा,...** भगवान को नहीं होती। अरिहन्त सर्वज्ञ को निद्रा नहीं होती। समझ में आया ?

विषाद, खेद... नहीं होता। **और विस्मय...** नहीं होता। **ये ग्यारह दोष तो घातिकर्म के उदय से होते हैं...** यह उन्हें नहीं होते। घातिकर्म के नाश से ग्यारह दोष वहाँ नहीं होते। **और क्षुधा, तृषा,...** भगवान को क्षुधा नहीं होती। भगवान को रोग हुआ,

क्षुधा लगी, आहार लाये। सब बातें कल्पित। अरिहन्त के स्वरूप की खबर नहीं। समझ में आया? भगवान को क्षुधा नहीं होती, आहार नहीं करते। आहार नहीं लेते, आहार लाते नहीं। उन्हें **तृषा,...** नहीं होती। पानी पीवे और पानी लेने जाये, ऐसा उन्हें नहीं होता।

जन्म, जरा, मरण,... उन्हें जन्म नहीं होता। अवतार क्या हो, समाप्त हो गया। मरण नहीं होता। भव नहीं। **रोग...** नहीं होता। पहले आ गया। भगवान के शरीर को रोग नहीं होता। शरीर को, हों! आत्मा में कहाँ है? शरीर में भी रोग नहीं होता, ऐसे अरिहन्त को अरिहन्त कहते हैं। भाई! यह तो अरिहन्त को रोग हुआ। लोहीखण्ड दस्त हुआ, दवा लेने गये, दवा ली। ली, इसलिए शरीर पुष्ट हुआ, देव प्रसन्न हो गये। ओहोहो! ऐसा सब आता है।.... समझ में आया? यह अरिहन्त के स्वरूप को विकृत बना दिया है। ऐसा स्वरूप है नहीं।

स्वेद... नहीं होता। स्वेद चाहिए। स्वेद, स्वेद। स्वेद अर्थात् पसीना। ऐसा चाहिए। स्वेद नहीं होता। खेद तो पहले आ गया है। स्वेद अर्थात् पसीना नहीं होता भगवान अरिहन्त को। हजारों योजन के विहार हों उदय के कारण। पसीना नहीं। ऐसा अरिहन्त के स्वरूप को अरिहन्त कहा जाता है। कम, अधिक, विपरीत करे, उसे अरिहन्त के स्वरूप की खबर नहीं है। **चार गतियों में गमन का अभाव कहने से तो अघातिकर्म से हुए दोषों का अभाव जानना,...** लो! अब चार गति में जाने का (नहीं है)। अरिहन्त पद से छूटे तो सिद्ध ही होते हैं।

अघातिकर्म से हुए दोषों का अभाव जानना, क्योंकि अघातिकर्म में इन दोषों को उत्पन्न करनेवाली पापप्रकृतियों के उदय का अरहन्त के अभाव है... लो! भगवान को पाप की प्रकृति का उदय नहीं है। **और रागद्वेषादिक दोषों का घातिकर्म के अभाव से अभाव है।** राग-द्वेष अभी नहीं हैं। घातिकर्म का नाश है न! क्या कहते हैं? **यहाँ कोई पूछे – अर्हन्त को मरण का और पुण्य का अभाव कहा; मोक्षगमन होना यह 'मरण' अरहन्त के है...** यह अरिहन्त का मरण है ही नहीं। **पुण्यप्रकृतियों का उदय पाया जाता है,...** अरिहन्त को पुण्य प्रकृति का उदय है। वाणी, अतिशय उदय है। **उनका अभाव कैसे?**

उसका समाधान – यहाँ मरण होकर फिर संसार में जन्म हो, इस प्रकार

के 'मरण' की अपेक्षा यह कथन है, इस प्रकार मरण अरहन्त के नहीं है,... लो! मरकर अवतरित हो, ऐसा मरण नहीं है। यह तो पण्डितमरण, केवलीमरण। केवलज्ञानी का मरण। ओहो! **पुण्यप्रकृति का उदय पापप्रकृति सापेक्ष करे, इस प्रकार पुण्य के उदय का अभाव जानना...** पुण्यप्रकृति का उदय पापप्रकृति सापेक्ष होवे तो करे, ऐसा कहते हैं। वह भगवान को है नहीं। पुण्य के उदय का अभाव जानना। **बन्ध–अपेक्षा पुण्य का भी बन्ध नहीं है।** लो! भगवान को पुण्य का भी बन्ध नहीं है। वे तो वीतराग केवलज्ञान हो गया। उदय था और छूट गया। उदय है परन्तु वह पुण्य का उदय वह अपना स्वरूप नहीं है। वह तो अपना स्वरूप तो अन्दर केवलज्ञान अरहन्त स्वरूप है, उसमें विराजते हैं। पुण्य भी नहीं और पाप भी नहीं, ऐसा कहते हैं। **सातावेदनीय बँधे** थोड़ा। वे अबन्धस्वरूप हैं, लो!

प्रश्न – केवली के असाता वेदनीय का उदय भी सिद्धान्त में कहा है, उसकी प्रवृत्ति कैसे है? आहाहा! शास्त्र में अरिहन्त को असाता का उदय तो कहा है, ग्यारह परीषह कहे हैं।

उत्तर – इस प्रकार जो असाता का अत्यन्त मन्द–बिल्कुल मन्द अनुभाग उदय है... बहुत मन्द उदय, बहुत। पूरे समुद्र में जैसे एक बिन्दु (हो)। राख की बिन्दु हो न समुद्र में? ऐसा एक जरा उदय है। बाकी तो साता... साता... साता... स्फटिक जैसा जिनका शरीर हो जाता है। अरिहन्त होने पर शरीर स्फटिक जैसा हो जाता है। समझ में आया? उनके शरीर में नजर डालने से पात्र जीव हो तो उसे सात भव का ज्ञान होता है। अकेला स्फटिक जैसा हो जाये। अन्तर तो आनन्दकन्द पूर्ण अनन्त है। वह शरीर ही अलग प्रकार का है। समझ में आया? केसर के रहने की बोरी नहीं होती। केसरी को रहने की तो बरनी और डिब्बी होती है। इसी प्रकार पूर्णानन्द और केवलज्ञान जिन्हें–अरिहन्त को प्रगट हुए हैं, उनका शरीर ही कोई अलग प्रकार का डिब्बा होता है। आहाहा! उन्हें रोग नहीं, क्षुधा नहीं, तृषा नहीं। स्वच्छ शरीर। निर्मल... निर्मल... निर्मल... आरपार दिखाई दे, ऐसा शरीर होता है। तथापि इन अरिहन्त का वह शरीर नहीं। शरीर जड़ का, परन्तु संयोग होवे तो ऐसा होता है। समझ में आया? गजब बातें, भाई! भगवान को रोग, भगवान को दुःख, आहार, पानी। साधारण मनुष्य जैसे सिद्ध कर दिये। लोगों जैसा बनावे... आता है

न कुछ भजन में? नहीं? मनुष्य मुझे मनुष्य जैसा बनावे। ऐसा आता है कुछ। हमने तो बहुत बार भजन सुने तो हो न, 'सघळी सम्पदा लुंटावे, मनुष्य मने मनुष्य जेवो बनावे।' परमेश्वर को भी मनुष्य जैसा बना दिया। यह खावे, पीवे, उन्हें रोग हो, उसकी दवा लावे।

मुमुक्षु : तब उनके अनुयायी...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... ... बाँधने ऐसा सब कल्पित लिखा। लोगों को बेचारों को खबर नहीं होती। जो पड़े उसमें पड़े। परीक्षा नहीं होती, पहिचान नहीं होती। और बहुत समय तो संसार में कमाने और भोग और विषय कषाय की अग्नि में जाता है। थोड़ा समय मिले घण्टे-दो घण्टे, उसमें ऐसा सुनानेवाले मिलें, उसमें हाँ पाड़कर घर इकट्ठे। परीक्षा तो कुछ है नहीं। समझ में आया?

असाता का अत्यन्त मन्द-बिल्कुल मन्द अनुभाग उदय है और साता का अति तीव्र अनुभाग उदय है, उसके वश से असाता कुछ बाह्य कार्य करने में समर्थ नहीं है,... ऐसा उदय भगवान को होता है कि जिसे रोग आवे ऐसा कार्य करे, ऐसा उदय तो उन्हें होता ही नहीं। समझ में आया? **सूक्ष्म उदय देकर खिर जाता है...** थोड़ा उदय आवे तो खिर जाता है। **तथा संक्रमणरूप होकर सातारूप हो जाता है,...** असाता का उदय हो, वह भगवान को सातारूप हो जाता है। उन्हें रोग-बोग हो नहीं सकते।

इस प्रकार अनन्त चतुष्टयसहित सर्वदोषरहित... भगवान तो अनन्त चतुष्टय, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, इन चतुष्टय (सहित है)। **सहित सर्वदोषरहित सर्वज्ञ वीतराग हो, उसको नाम से 'अरहन्त' कहते हैं।** इन्हें नामनिक्षेप से अरिहन्त कहा जाता है। आहाहा! उनका नाम अरिहन्त। ऐसे गुण और ऐसी दशा जिनकी हो, उन्हें नाम से अरिहन्त कहा जाता है। नहीं तो नाम भी नहीं, कहते हैं। लो! ऐसे अरिहन्त को नाम से बतलाया।

गाथा-३१

आगे स्थापना द्वारा अरहन्त का वर्णन करते हैं –

गुणठाणमग्गणेहिं य पज्जत्तीपाणजीवठाणेहिं।
ठावण पंचविहेहिं पणयव्वा अरहपुरिसस्स।।३१।।

गुणस्थानमार्गणाभिः च पर्याप्तिप्राणजीवस्थानैः।
स्थापना पंचविधैः प्रणेतव्या अर्हत्पुरुषस्य।।३१।।

गुणस्थान मार्गण प्राण जीवस्थान पर्याप्ति इन्हीं।
पाँचों से करना प्रतिष्ठा प्रणमीय ये अर्हत् सभी।।३१।।

अर्थ **– गुणस्थान, मार्गणास्थान, पर्याप्ति, प्राण और जीवस्थान इन पाँच प्रकार से अरहन्त पुरुष की स्थापना प्राप्त करना अथवा उसको प्रणाम करना चाहिए।**

भावार्थ **– स्थापनानिक्षेप में काष्ठपाषाणादिक में संकल्प करना कहा है सो यहाँ प्रधान नहीं है। यहाँ निश्चय की प्रधानता से कथन है। यहाँ गुणस्थानादिक से अरहन्त का स्थापन कहा है।।३१।।**

गाथा-३१ पर प्रवचन

अब स्थापना बतलाते हैं। वह स्थापना अलग, हों! भगवान की मूर्ति स्थापना, वह व्यवहार की स्थापना। वह शुभभाव का लक्ष्य है उसमें इसलिए। वह स्थापना व्यवहार। प्रतिमा, मूर्ति की। वह व्यवहार है, परन्तु निश्चय नहीं। निश्चय स्थापना अलग।

गुणठाणमग्गणेहिं य पज्जत्तीपाणजीवठाणेहिं।
ठावण पंचविहेहिं पणयव्वा अरहपुरिसस्स।।३१।।

अर्थ – गुणस्थान,... भगवान को गुणस्थान कौन सा होता है, इसकी प्ररूपण स्थापन करना, वह स्थापना। भगवान जाने कौन सा गुणस्थान होगा। कहेंगे आगे। तेरहवाँ गुणस्थान होता है। स्थापनासहित। इसका नाम स्थापना, हों! भगवान की मूर्ति की स्थापना,

वह नहीं। भगवान सर्वज्ञ पद... चौदह गुणस्थान होते हैं। जैसे मंजिल पर जाने की सीढ़ियाँ होती है, वैसे उत्तम पद—सिद्धपद को पाने में चौदह गुणस्थान के प्रकार हैं। उनमें चौथे गुणस्थान से धर्म की दशा प्रगट होती है। तेरहवें (गुणस्थान में) केवलज्ञान होता है। तेरहवें सीढ़ी में, तेरहवीं भूमिका में। उसे तेरहवाँ गुणस्थान भगवान (कहते हैं)। पश्चात् मोक्ष जाने से पहले .... यह चौदहवाँ है। देह छूट जाये, सिद्ध हो जाये। अरिहन्त को तेरहवाँ गुणस्थान होता है, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया? यह कहीं गुणस्थान अतीत हुए नहीं। इसमें कितना याद रखना? कहते हैं सब पहलू जाने बिना अरिहन्त को पहिचान नहीं सकते और सब पहलू जितने हैं, उनके सब साजा और ताजा जानने पड़ेंगे। भान बिना मानकर बैठा, उसे तो व्यवहार श्रद्धा का ठिकाना नहीं। उसे निश्चय समकित तो है ही नहीं। जिसकी व्यवहार श्रद्धा में अभी भूल है, उसे निश्चय सत्य समकित तो हो नहीं सकता। परन्तु व्यवहार के माननेवाले ऐसे अरिहन्त को भी व्यवहार से माने, तब उसे व्यवहार श्रद्धा-विकल्प कहा जाता है और उससे रहित होकर आत्मा का अनुभव करे और समकित, तब उसे निश्चय समकित कहा जाता है—चौथा गुणस्थान (कहा जाता है) तब धर्म हुआ कहलाता है। समझ में आया?

गुणस्थान, मार्गणास्थान,... बड़ी बात ली है। चौदह मार्गणा है। उन मार्गणा में उन्हें गिनना, यह व्याख्या... गति, जाति वह सब उनमें... गति मनुष्य होती है, जाति पंचेन्द्रिय होती है। समझ में आया? परन्तु बाह्यरूप से। वैसे तो अनीन्द्रिय है अन्दर ऐसी स्थिति होती है। अरिहन्त होने पर भी शरीर का संयोग होता है, वह किस प्रकार का होता है, उसके वर्णन से अरिहन्त को बतलाते हैं। **पर्याप्ति,...** बतलाते हैं। छह पर्याप्ति। **प्राण...** दस प्राण में से उन्हें प्राण कितने होते हैं। **और जीवस्थान...** कितने होते हैं। किस जीवस्थान में होते हैं? जीवस्थान है न? पर्याप्त, अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। यह सब स्पष्टीकरण आयेगा।

इन पाँच प्रकार से अरहन्त पुरुष की स्थापना... उसे यह होता है... यह होता है... यह होता है... यह होता है... तेरहवाँ गुणस्थान होता है, पंचेन्द्रिय होते हैं, उसे स्थापना निक्षेप कहा जाता है। भगवान की मूर्ति की स्थापना की यहाँ बात नहीं है। समझ में आया? यहाँ निश्चय स्थापना की बात है। **अथवा उसको प्रणाम करना चाहिए।** लो, ऐसा है।

'प्रणेतव्या' है न (संस्कृत में) ? ऐसे भगवान को पहिचानकर, उनका स्वरूप गति, जाति में क्या है, उसे जानकर उन्हें ही प्रणाम करना। इसके अतिरिक्त अरिहन्त के स्वरूप को जाने बिना अरिहन्त नाम धराते हों और वह स्वयं अरिहन्त कौन हैं, उसे पहिचानता न हो और प्रणाम करे, वह सच्चा प्रणाम अरिहन्त का है नहीं।

भावार्थ – स्थापनानिक्षेप में... लो! स्थापना भगवान की मूर्ति। **काष्ठपाषाणादिक में संकल्प करना कहा है...** लकड़ी में, पत्थर आदि में 'यह भगवान है' ऐसी स्थापना करना। **सो यहाँ प्रधान नहीं है।** यह यहाँ मुख्य बात नहीं है। यह बात यहाँ गौण है। आत्मा में स्थापना करना। किस गति में है, किस गुणस्थान में है, वे **यहाँ निश्चय की प्रधानता से कथन है। यहाँ गुणस्थानादिक से अरहन्त का स्थापन कहा है।** लो! गुणस्थान ऐसा है, जाति ऐसी है, पंचेन्द्रिय शरीर है, पर्याप्त है, प्राण है, उनके प्रमाण में। इस प्रकार स्थापना को इस प्रकार से बतलाते हैं। यहाँ मूर्ति की स्थापना नहीं।

गाथा-३२

आगे विशेष कहते हैं –

तेरहमे गुणठाणे सजोइकेवलिय होइ अरहंतो।
चउतीस अइसयगुणा होंति हु तस्सट्ठ पडिहारा ॥३२॥

त्रयोदशे गुणस्थाने सयोगकेवलिकः भवति अर्हन्।
चतुस्त्रिंशत् अतिशयगुणा भवंति स्फुटं तस्याष्टप्रातिहार्या ॥३२॥

सयोग केवलि तेरवें गुणस्थान में अरहंत हैं।
चौंतीस अतिशय गुण तथा वसु प्रातिहार्य सहित रहें।।३२।।

अर्थ **– गुणस्थान चौदह कहे हैं, उसमें सयोगकेवली नाम तेरहवाँ गुणस्थान है। उसमें योगों की प्रवृत्तिसहित केवलज्ञानसहित सयोगकेवली अरहन्त होता है। उनके चौंतीस अतिशय और आठ प्रतिहार्य होते हैं, ऐसे तो गुणस्थान द्वारा 'स्थापना अरहन्त' कहलाते हैं।**

भावार्थ – यहाँ चौंतीस अतिशय और आठ प्रातिहार्य कहने से तो समवसरण में विराजमान तथा विहार करते हुए अरहंत हैं और 'सयोग' कहने से विहार की प्रवृत्ति और वचन की प्रवृत्ति सिद्ध होती है। 'केवली' कहने से केवलज्ञानद्वारा सब तत्त्वों का जानना सिद्ध होता है। चौंतीस अतिशय इस प्रकार हैं – जन्म से प्रकट होनेवाले दस १. मलमूत्र का अभाव, २. पसेव का अभाव, ३. धवल रुधिर होना, ४. समचतुरस्रसंस्थान, ५. वज्रवृषभनाराच संहनन, ६. सुन्दर रूप, ७. सुगन्ध शरीर, ८. शुभ लक्षण होना, ९. अनन्त बल, १०. मधुर वचन – इस प्रकार दस होते हैं।

केवलज्ञान उत्पन्न होने पर दस होते हैं – १. उपसर्ग का अभाव, २. अदया का अभाव, ३. शरीर की छाया न पड़ना, ४. चतुर्मुख दीखना, ५. सब विद्याओं का स्वामित्व, ६. नेत्रों के पलक न गिरना, ७. शतयोजन सुभिक्षता, ८. आकाशगमन, ९. कवलाहार नहीं होना, १०. नख-केशों का नहीं बढ़ना, ऐसे दस होते हैं।

चौदह देवकृत होते हैं – १. सकलार्द्धमागधी भाषा, २. सब जीवों में मैत्रीभाव, ३. सब ऋतु के फल-फूल फलना, ४. दर्पण समान भूमि, ५. कंटकरहित भूमि, ६. मन्द सुगन्ध पवन, ७. सबके आनन्द होना, ८. गन्धोदकवृष्टि, ९. पैरों के नीचे कमल रचना, १०. सर्वधान्य निष्पत्ति, ११. दशों दिशाओं का निर्मल होना, १२. देवों के द्वारा आह्वानन शब्द, १३. धर्मचक्र का आगे चलना, १४. अष्ट मंगल द्रव्यों का आगे चलना।

अष्ट मंगल द्रव्यों के नाम – १. छत्र, २. ध्वजा, ३. दर्पण, ४. कलश, ५. चामर, ६. भृङ्गार (झारी), ७. ताल (ठवणा) और स्वस्तिक (साँथिया) अर्थात् सुप्रतीच्छक ऐसे आठ होते हैं। ऐसे चौंतीस अतिशय के नाम कहे।

आठ प्रातिहार्य होते हैं, उनके नाम ये हैं – १. अशोकवृक्ष, २. पुष्पवृष्टि, ३. दिव्यध्वनि, ४. चामर, ५. सिंहासन, ६. भामण्डल, ७. दुन्दुभिवादित्र और ८. छत्र – ऐसे आठ होते हैं। इस प्रकार गुणस्थान द्वारा अरहंत का स्थापन कहा।।३२।।

गाथा-३२ पर प्रवचन

आगे विशेष कहते हैं – तेरहवें गुणस्थान में।

तेरहमे गुणठाणे सजोइकेवलिय होइ अरहंतो।
चउतीस अइसयगुणा होंति हु तस्सट्ठ पडिहारा।।३२।।

लो! अरिहन्त को ऋद्धि। भगवान अरिहन्त को...

अर्थ – गुणस्थान चौदह कहे हैं,... गुणस्थान की दशा—सीढ़ियाँ चौदह हैं। **उसमें सयोगकेवली नाम तेरहवाँ गुणस्थान है।** संयोगी केवली—योग होता है, ऐसे वे केवली हैं। ऐसी वाणी होती है। गति... ऐसे सयोग केवली तेरहवें गुणस्थान में होते हैं। उन्हें अरिहन्त कहते हैं। देखो! सब भगवान-भगवान सिद्ध करते हैं न सब? कबीर में, अमुक में, अमुक में। ऐई! प्रकाशदासजी! उन्हें बतलाते हैं। वे पहिचानते नहीं कि परमात्मा किसे कहा जाता है। राधास्वामी। आता है न आगरा में? हम आसमान में से आये हैं। बनाते हैं न बड़ा कितना करोड़ का बनाते हैं। आगरा में। तब (संवत्) २०१३ में गये, तब साढ़े तीन करोड़ का बना था। फिर तो अभी बहुत करोड़ का (बन गया होगा)। आसमान में से आये तो आसमान जैसा बँगला चाहिए। आसमान कैसा और? किसी गति में से आये हो। कोई आकाश में से आता है आत्मा?

परमात्मा हो अरिहन्त, वे भी किसी गति में से आते हैं। किसी गति में थे, वहाँ से आते हैं। ऐसी जिन्हें खबर नहीं और भगवान-भगवान का नाम धरावे, वे सब गप्पगोला है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आगरा में है न? पण्डितजी! देखा है? आगरा में है। दयालबाग। गये थे न तब। दयालबाग (संवत्) २०१३ के वर्ष में गये थे। २०१३ में दयालबाग देखने गये थे। राधास्वामी हो गये।... आसमान में से आते हैं न... गप्प ही गप्प सब। तुम्हारे में से कितने जाते हैं वहाँ? इन्दौर के करोड़पति। भान नहीं होता। जैन में जन्मे, तथापि जैन का क्या स्वरूप है, उसकी खबर नहीं होती। जहाँ-तहाँ सिर फोड़ते हैं। राधास्वामी आसमान में से आये हैं। भाई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... ? ... ? यहाँ है स्वयं अपने में।... सिद्ध है। वे सिद्ध में से आते हैं कोई? चार गति में से आते हैं। इसकी तो खबर नहीं। अरिहन्त हों, वे कोई चार गति में से आवे। समझ में आया? परमेश्वर हो भले इस भव में, परन्तु किसी गति में से आते हैं। वहाँ परमेश्वर होते हैं। कोई परमेश्वर हुए वापस अवतरित होता होगा? सब पैसेवाले। ... साताशिलीया—खाने-पीने की सब अनुकूलता मिले। सहज-सहज बातें करते-करते धर्म हो जाये।

यह तो आत्मा अन्तर स्वरूप अन्तर आनन्द का धाम है। उसकी अन्तर्दृष्टि अनन्त काल में इसने की नहीं। विकार का विकल्प है दया, दान, व्रत आदि का, वह भी पुण्य का विकार है, वह धर्म नहीं। उससे पार चैतन्य भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ ने देखा, ऐसा जो अन्तरात्मा, उसके अन्दर जाकर स्पर्श करना, इसका नाम धर्म और समकित है। यह बातें जगत को कठिन पड़ती है। आहाहा! अनादि की इसकी दृष्टि पुण्य-पाप के विकल्प और राग और शरीर के ऊपर है। उसकी एक समय की वर्तमान प्रगट दशा पर इसकी दृष्टि अनादि की है। पूर्ण स्वरूप भगवान आत्मा स्वयं एक समय की अवस्था से पार भिन्न, राग से भिन्न, निमित्त से भिन्न—ऐसे भगवान आत्मा की अन्दर श्रद्धा, वह अपूर्व अनन्त काल में नहीं किया ऐसा सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

कहते हैं, अरिहन्त भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर मनुष्यदेह में मनुष्य से भिन्न अनुभव में आनन्द में हो, उन्हें तेरहवाँ गुणस्थान होता है। गुणस्थान के चौदह भेद में उसकी तेरहवीं भूमिका होती है। समझ में आया? फिर जब सिद्ध होता है। परमेश्वर विराजते हैं महाविदेह में सीमन्धर भगवान, वे अभी तेरहवें गुणस्थान में है। सिद्ध होंगे। अभी तो अरबों वर्ष रहेंगे। पाँच अक्षरवाला अयोगी गुणस्थान छूटकर सिद्ध होंगे। पश्चात् उन्हें गुणस्थान नहीं होता। यहाँ गुणस्थान पर्याय होती है, ऐसा सिद्ध करते हैं। पर्याय की दशा तेरहवें गुणस्थान की उन्हें होती है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? केवलज्ञान और केवलदर्शन हुआ; इसलिए सिद्ध हो गये, ऐसा नहीं है। अभी उनकी तेरहवीं भूमिका दशा में वर्तती है। ऐसी सूक्ष्म बातें। अन्तर के लक्ष्य से ... समझे बिना बाहर में सिरपच्ची करके अनन्त बार मर गया। वास्तविक तत्त्व अरिहन्त का है। ऐसा ही इस आत्मा का है। आत्मा स्वयं सच्चिदानन्द -स्वरूप है। सत् शाश्वत्। सर्वज्ञ भगवान ने देखा, ऐसा शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का वह स्थान है। ऐसी स्वभाव के अन्तर में अनुभव की दृष्टि होना, उसे समकित कहते हैं, उसे धर्म की पहली दशा कहते हैं। आगे बढ़कर जब तेरहवाँ केवल(ज्ञान) होता है, उसे तेरहवाँ गुणस्थान कहते हैं। समझ में आया?

वे कैसे होते हैं? **सयोगकेवली अरहन्त होता है।** अभी उन्हें योग होता है। प्रदेश का कम्पन (होता है)। देखा! अरिहन्त हुए, केवली हुए परन्तु योग का कम्पन होता है। इतना संयोग होता है, उसे यहाँ अरिहन्तरूप से बतलाते हैं। आहाहा!

उसमें योगों की प्रवृत्तिसहित केवलज्ञानसहित सयोगकेवली अरहन्त होता है। भगवान को भी योग की प्रवृत्ति होती है। एक ओर न कहे कि आत्मा में नहीं है। परन्तु संयोगरूप से ऐसा होता है। कम्पन प्रदेश का कम्पन आत्मा में है। शरीर, वाणी नहीं। अन्दर प्रदेश का कम्पन है। वह कम्पन है, वह सयोग है, योगवाला और केवली है। योगवाले हैं और केवली हैं। उन्हें अरिहन्तरूप से कहते हैं। समझ में आया? शब्द पड़ा है न? '**सजोइकेवलिय होइ अरहंतो।**' तेरहवें गुणस्थान में उन्हें सयोगी कम्पन होता है। आहाहा! एक ओर कहे कि सम्यग्दर्शन को कम्पन भी नहीं है। सम्यग्दर्शन की दशा में कम्पन, राग उसका है नहीं। यह वस्तु की दृष्टि के परिणमन की अपेक्षा से बात है। परन्तु साथ में है थोड़ा ऐसा कम्पन और योग, ऐसा अस्तिरूप से है। समझ में आया? ऐसे तेरहवें गुणस्थानवाले सयोगी केवली (को) वाणी होती है। जितनी शरीर चलने की क्रिया करता है, उसमें प्रदेश कम्पते हैं, ऐसे सहित त्रिकाल ज्ञान हो, उसे अरिहन्त केवली कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! कैसी वस्तु की स्थिति!

एक ओर कहें तो आत्मा सम्यग्दर्शन पाया, आत्मा शुद्ध चैतन्य द्रव्य का भान हुआ, तो कहते हैं कि उसे उसमें कम्पन भी नहीं है। वह कम्पन का स्वामी नहीं है, इसलिए कम्पन नहीं है। आहाहा! उसे राग भी नहीं है, पुण्य भी नहीं है, पाप भी नहीं है। वह तो ज्ञानानन्द घन का स्वामी—मालिक है। समझ में आया? परन्तु साथ में ऐसा होता है, उसका यह ज्ञान कराते हैं। तेरहवें गुणस्थान तक योग की प्रवृत्ति सहित केवलज्ञान, ऐसा। कम्पन की प्रवृत्ति सहित केवलज्ञानी है। प्रदेश जरा कँपते हैं। उन सहित केवलज्ञानी । पश्चात् जब मोक्ष होने की तैयारी होती है, तब पाँच अक्षर—अ, ई, आ, ऋ, उ छूट जाये कम्पन तब चौदहवाँ गुणस्थान कहा जाता है। देह छूट जाये, तब सिद्ध होते हैं। ऐसी पर्याय के ऐसे भेद दशा में हैं, ऐसा बतलाते हैं। द्रव्य और गुण तो त्रिकाली अविनाशी हैं वे हैं। परन्तु पर्याय में ऐसे भेद अन्दर होते हैं, तब उसने आत्मा को बराबर जाना कहलाता है। आहाहा! समझ में आया? (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१६५, गाथा-३२, रविवार, पौष शुक्ल ६, दिनांक ०३-०१-१९७१

अष्टपाहुड़ में बोधपाहुड़। ३२वीं गाथा। क्या कहते हैं ? अरिहन्त का स्वरूप वर्णन करते हैं। उसमें अरिहन्त नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव—ऐसे जो चार निक्षेप हैं, उनका यहाँ वर्णन नहीं है (कि) जो व्यवहार के भेद हैं। किसी का अरिहन्त नाम दे और अरिहन्त के गुण न हों, तो भी नामनिक्षेप से उसे कहा जाता है। अरिहन्त की स्थापना—मूर्ति। उसे स्थापना निक्षेप से मूर्ति कही। द्रव्य (निक्षेप)—भविष्य में (अरिहन्त) होने की योग्यता हो तो उसे द्रव्यनिक्षेप कहा जाता है। वर्तमान भाव की पर्याय प्रगट हो, उसे भावनिक्षेप कहते हैं। वह यहाँ नहीं।

यहाँ तो जो अरिहन्त का नाम है, ऐसे उसके गुण हों, उसे नामनिक्षेप कहा जाता है। समझ में आया ? बोधपाहुड़ है न ? निश्चय का अधिकार है। ऐसी उनकी स्थापना, अरिहन्त की स्थापना, यह मूर्ति नहीं, परन्तु उनके पुण्यादि का, शरीर का योग कैसा है, ऐसी स्थापना अर्थात् उसके द्वारा उन्हें पहिचानना। किस गति में है, किस जाति में है, कैसे अतिशय हैं, यह उनकी स्थापना है। यहाँ यह अधिकार है। द्रव्य अधिकार में यहाँ योग्यता है, वह नहीं आती। अरिहन्त का जो आत्मा है, उनका शरीर कैसा होता है, उससे भिन्न, उसे यहाँ द्रव्य कहा जाता है। शैली ली है न ? बोधपाहुड़ की शैली ली है। समझ में आया ? नाम तो जैसा उनका नाम है, वैसे उनके गुण होते हैं, उसे यहाँ नाम गिनने में आया है।

प्रवचनसार में पहले शुरुआत में आता है न ? कि जिनका नाम भी लाभदायक है। भगवान का नाम—वर्धमान, वह भी जिसे लाभदायक है। इसका अर्थ यह कि जैसे उनके गुण हैं, वैसा उनका नाम है, तो नामस्मरण में उनके गुण याद आते हैं। समझ में आया ? अकेले नामनिक्षेप से यहाँ बात नहीं है। नाम उनके गुण जो हैं, उनके द्वारा नाम का जो भाव है, उसे बतलाया जाता है।

यहाँ अभी अपने स्थापना की बात चलती है। स्थापनानिक्षेप अर्थात् यह (बाहर का) निक्षेप नहीं। उसमें संयोगरूप अरिहन्त की दशा के ज्ञान, दर्शन, आनन्द में उनके शरीर का, अतिशय का, गति का, जाति का उन्हें संयोग कैसा होता है, उसे यहाँ स्थापना गिनने में आता है। क्योंकि वास्तविक अरिहन्त नहीं और कोई अरिहन्त मनावे तो उसके

लिये कहते हैं कि अरिहन्त का आत्मा तो ऐसा परन्तु उसके संयोग में ऐसा होना चाहिए। चन्दुभाई ! इस प्रकार अरिहन्त की पहिचान करायी है। यों तो सब भगवान... भगवान... करके चल निकलते हैं। हम अरिहन्त हैं, हम केवली हैं। अरिहन्त केवली हों, उनके आत्मा में तो अनन्त ज्ञान (होता है), यह आ गया है पहले। समझ में आया ? २९ गाथा में आ गया है। अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान (सहित) आठ कर्म का नाश (हुआ हो)। **'णिरुवमगुणमारूढो, अरहंतो एरिसो होइ'** ऐसे-ऐसे उसमें स्थापना के दूसरे बोल डाले हैं। गुण तो ऐसे हों परन्तु उनका शरीर ऐसा होता है। कितने ही ऐसा कहते हैं कि हम भगवान हैं परन्तु घोड़ी पर चढ़े, आहार खाये, पानी पीवे, रोग हो तो भी ऐसा कहे, वह भगवान है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : भगवान तो ककड़ी खाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ककड़ी खाते हैं। जूनागढ़ में जब 'सहजानन्दस्वामी' स्वामीनारायण के थे न ? तब हाथी के हौदे विशाल शोभायात्रा निकली। अपनी अस्ति में। तब नवाब दरबार मुसलमान (थे)। वह शोभायात्रा निकली। उनके समय में उनकी पुण्यप्रकृति बहुत थी। बड़ी शोभायात्रा निकली। माननेवाले बहुत, इसलिए ऐसे हाथी पर निकले तो हाथी पर ककड़ी खाये, सहजानन्द स्वयं। वह मनुष्य ऐसा ... ब्रह्मचारी... इसलिए ककड़ी खाकर नवाब को कहा, साहेब ! आज परमेश्वर निकले हैं, ककड़ी खाये खुदा तो ऐसा ही हो। वह नवाब ऐसा कहे। खुदा को क्या पड़ी है ? सेठ ! सहजानन्द हुए हैं न स्वामीनारायण के गुरु। उस समय हाथी के हौदे निकले और कोई देव सहायक हुआ। पूर्व का मित्र था देव, देव के कारण सब ऐसा बाहर दिखाई दे... उसे ककड़ी खाते नवाब को खबर पड़ी तो कहे, खुदा ने कहा। खुदा को क्या पड़ी है जगत की ? लो, ठीक ! खुदा ऐसा ही होता है। आहाहा !

यहाँ कोई ऐसा कहे कि साधारण ज्ञान हो और केवलज्ञानी मनावे और अरिहन्तपना मनावे तो वह खोटा है, ऐसा बतलाने के लिये अरिहन्त की स्थापना भी ऐसी होती है। मनुष्यगति में हो, पंचेन्द्रिय जाति में हो। उनका संयोग ऐसा होता है। यहाँ सिद्ध की व्याख्या नहीं है, यहाँ तो अरिहन्त की व्याख्या है। समझ में आया ? देवपना प्रगट हुआ है। अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द जहाँ प्रगट हुए हैं, तथापि वाणी का योग और उपदेश है, शरीर है तो

उसकी पुण्य की स्थिति कैसी होती है, उसकी स्थापना द्वारा बतलाया है। इससे विरुद्ध कोई अरिहन्त कहलाये और अरिहन्त माने तो वह विरोध है, ऐसा कहते हैं, लो!

(गाथा) ३२ का अर्थ फिर से लेते हैं। **गुणस्थान चौदह कहे हैं, उनमें सयोगकेवली नाम का तेरहवाँ गुणस्थान है।** उन्हें तेरहवाँ गुणस्थान होता है। ऐसा कहते हैं कि गुणस्थान तो व्यवहार है, वह आत्मा में नहीं—ऐसा निश्चय में आवे। आता है या नहीं? गुणस्थान, मार्गणास्थान, आत्मा में है ही नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि केवली को तेरहवाँ गुणस्थान है। व्यवहार की उनकी पर्याय में इतनी हद है, ऐसा उसे बतलाते हैं।

द्रव्य से वस्तु जो अखण्ड अभेद है, उसमें गुणस्थान सिद्धपद और पर्याय—संसार पर्याय—पर्याय कैसी उसमें? गुणस्थान तो भेद है, व्यवहार है। निश्चय अखण्ड अभेद दृष्टि में वह है नहीं। परन्तु जहाँ केवली को भी तेरहवाँ गुणस्थान है, ऐसा यहाँ वापस वर्णन करना है। आहाहा! नवनीतभाई! व्यवहार उनकी पर्याय इतने गुणस्थानवाली होती है। तेरहवाँ गुणस्थान उन्हें होता है। कोई ऐसा ही कह दे कि हमारे साधारण ज्ञान हुआ, अरिहन्त हो गया, केवली हो गया। समवसरण ऋद्धि न हो, अतिशय न हो और यह कहे हमें केवलज्ञान हो गया। श्रीमद् में आता है ऐसा, भाई! अतिशय और समवसरण तो एक बाहर की ऋद्धि है। उससे भगवान पहिचाने नहीं जाते। यह तो बराबर, यह दूसरी बात है। जीव का उसका स्वभाव अखण्ड आनन्द पूर्ण, ऐसी जो शक्ति सर्वज्ञपद में थी, सर्वज्ञपद में शक्ति थी, वैसी व्यक्त पर्याय का सर्वज्ञपना प्रगट हुआ, सम्यग्ज्ञान-दर्शन, वह उनका भावस्वरूप है। समझ में आया?

इस प्रकार तो समन्तभद्राचार्य ने तीर्थंकर की-अरिहन्त की स्तुति करते हुए ऐसा कहा, मानो गुफा में से भगवान निकलते हों और हाथ-कन्धा पकड़ा। खड़े रहो भगवान। तुम कैसे भगवान हो? समन्तभद्राचार्य।... किस प्रकार से हो? क्या तुम्हें समवसरण है, यह अतिशय है, इसलिए तुम भगवान हो? मैं इस प्रकार से भगवान को नहीं पहिचानता। समन्तभद्राचार्य (कहते हैं)। मैं इस प्रकार से भगवान को नहीं पहिचानता। पण्डितजी!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। श्रीमद् में भी ऐसा आता है। देव आवे, समवसरण हो, नभोयाने आकाश में विकार करे इसलिए तुम भगवान हो ऐसा नहीं है। तुम्हारा भगवानपना

तो अनन्त दर्शन-ज्ञान-आनन्द और पूर्ण शान्ति (प्रगट हुई), उसमें तुम्हारी भगवानता है परन्तु उसके साथ व्यवहार ऐसा होता है, वह यहाँ बतलाते हैं। ऐसा व्यवहार नहीं हो और मात्र ऐसा होता है, उसे अरिहन्त नहीं कहते। समझ में आया?

गुणस्थान में चौदह गुणस्थान की दशा हो। जैसे मंजिल पर चढ़ने की सीढ़ियाँ चौदह होती हैं, वैसे मोक्ष को पाने में चौदह गुणस्थान में चौदह का अभाव होकर मोक्ष होता है। इस चौदह गुणस्थान में चौदहवीं दशा तो अन्तिम (दशा है)। पाँच (अक्षर) अ, आ, उ, ... करे इतनी स्थिति है। भगवान जो अरिहन्त हैं, वे तेरहवें गुणस्थान में हैं। समझ में आया? उन्हें केवलज्ञानदशा तेरहवें में हुई है। ऐसा इसे जानना चाहिए। गुणस्थान कौन सा, ऐसा कहते हैं। इस गुणस्थान की पहिचान, वह स्थापना है। वह स्थापना है।

उसमें योगों की प्रवृत्तिसहित केवलज्ञानसहित... देखो! योग की प्रवृत्ति है, अभी भगवान को कम्पन है। उससहित केवलज्ञान है। भाषा देखो! एक ओर कहे कि सम्यग्दर्शन में वस्तु है, वह अभेददृष्टि में आयी है, इसलिए समकिती को अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग, कम्पन वह उसके है ही नहीं। उसमें है ही नहीं। सदोषता, वह समकिती की पर्याय में है ही नहीं। समझ में आया? क्योंकि वह सब सदोष भाव है। तेरहवाँ गुणस्थान भी अभी सदोष भाव है। कम्पन है न? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कैसी व्यवस्था है!

सम्यक् चैतन्यस्वरूप अनाकुल आनन्द का धाम ऐसी पवित्रता का पिण्ड प्रभु, ऐसी जहाँ दृष्टि अनुभव में हुई तो कहते हैं कि समकिती को तो निर्मल द्रव्य, गुण और पर्याय होते हैं। विकार, वह समकिती को नहीं। चन्दुभाई! विकार समकिती को नहीं। विकार दोष है। दोष उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! समकिती की पर्याय में दोष नहीं। मिथ्यात्व जाने के पश्चात् अव्रत और प्रमाद, कषाय, योग रहा, वह उसकी पर्याय में नहीं। भिन्न है, ऐसा वहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! यह तो वस्तु की दृष्टि को सिद्ध करने के लिये और उसकी दृष्टि प्रमाण परिणति निर्मल हुई, ऐसी बात वर्णन के लिये है।

यहाँ वापस ऐसा कहते हैं कि उन्हें केवलज्ञान भी कम्पन योगवाला होता है। देखो तो सही भाषा! पर्याय का ज्ञान कराते हैं, व्यवहार का ज्ञान कराते हैं। समझ में आया इसमें? सब पहलुओं से इसकी—वस्तु की स्थिति सिद्ध होनी चाहिए, ऐसा कहते हैं।

कहते हैं कि उसमें—तेरहवें गुणस्थान में **योग की प्रवृत्तिसहित...** योग की प्रवृत्ति उन्हें—केवली को है। **केवलज्ञानसहित सयोगकेवली अरहन्त होता है...** देखो! सयोग केवली। तेरहवाँ गुणस्थान कहा। परन्तु अब गुणस्थान का स्वरूप (कैसा)? कि सयोग केवली। सयोग केवली अर्थात् योग के कम्पन की प्रवृत्ति सहित केवलज्ञानी। ऐई! और अपने शक्ति में तो यह आया।

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को नहीं तो केवली को कहाँ से आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली को कहाँ से आया? केवली योग में है ही नहीं। केवली तो अपने केवलज्ञान, आनन्द में है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निष्क्रिय...।

पूज्य गुरुदेवश्री : निष्क्रिय है। रागरहित है, वह निष्क्रिय है। योगसहित है, वह तो पर्याय का ज्ञान कराते हैं। उस भूमिका में योग का प्रवर्तन उसकी दोष की अवस्था है इतना। वह तो निर्मल द्रव्य और गुण और पर्याय को निकाल डालने से वह उनमें नहीं है, यह अलग। परन्तु व्यवहार को बतलाते हुए, उनमें वह कम्पन है। कम्पनसहित, योगसहित केवली है। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा!

एक ओर कहे कि जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, इसलिए अव्रत, प्रमाद, कषाय और कम्पन का उनकी पर्याय में अभाव है। मुक्त हैं। उदयभाव से रहित हैं। ज्ञानी उदयभाव से रहित हैं। आहाहा! यह तो परम पारिणामिकभाव और निर्मल क्षयोपशम-क्षायिकभाव से सहित हैं। समझ में आया? बापू! अरिहन्त को ऐसे समुच्चय बिना भान के पहिचाने, ऐसा नहीं चलता। अरिहन्त की वास्तविक अन्तरदशा और उन्हें संयोग में होती दशा तथा संयोग में जो रहती अनुकूलता, अतिशय आदि को यहाँ स्थापनारूप से अरिहन्त को बतलाया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे तो विरोध लगे।

एक ओर कहे कि सम्यग्दर्शन हुआ तो उसके द्रव्य-गुण-पर्याय निर्मल ही होते हैं। वह निर्मल में है, मलिन में वह नहीं। मलिन आदि है, वह तो परज्ञेयरूप से है। परज्ञेयरूप से उसका ज्ञान करते हैं। यहाँ कहते हैं कि उस सयोगसहित की प्रवृत्तिवाला केवलज्ञान। समझ में आया? सेठ! थोड़ी सूक्ष्म बातें हैं। सब... जाये। बिना भान अरिहन्त कहे, भगवान कहे—ऐसा नहीं चलता, ऐसा कहते हैं। ऐई! जयन्तीभाई!

अरिहन्त के गुण कैसे, उनकी पर्याय कैसी, उनकी दशा में क्या-क्या बाकी है, कम्पन आदि और उनके-अरिहन्त के पुण्य के कारण अतिशय आदि, गति आदि, जाति आदि में क्या है ? वे मनुष्यगति में हैं, ऐसा आगे कहेंगे। मनुष्यगति में, अरिहन्त केवली हैं। और, गति तो आत्मा में है नहीं। वह तो वस्तु के स्वभाव की दृष्टि के, द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से वह गति आत्मा को नहीं है। पर्याय में उसे बतलाने के लिये अरिहन्त मनुष्यगति में हैं। आहाहा! यह पहलू कितने हैं, उतने प्रकार से उन्हें जानना चाहिए, तब उसका प्रमाणज्ञान सच्चा कहलाता है। यह तो ऐसा कहते हैं। किस जगह कहाँ कैसे कहा है, ऐसा इसे बराबर जानना चाहिए न ? आचार्य स्वयं पुकारते हैं, यहाँ बोधपाहुड़, कुन्दकुन्दाचार्य, देखो! यहाँ तो निश्चय का अधिकार है। यह प्रतिमा और यह नहीं। जिनप्रतिमा आत्मा है। ठीक! समझ में आया ? यह (बाह्य) प्रतिमा का अधिकार इसमें नहीं आता। यह व्यवहार गौण हो गया। जिनमुद्रा आत्मा है। वीतराग स्वभाव आत्मा, वह जिनमुद्रा है। बाहर की जिनमुद्रा दिखाई दे, मुनिपने की बाहर की (दिखाई दे) वह नहीं। आहाहा! अन्तर की वीतरागता, वह जिनमुद्रा है। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, भगवान अरिहन्त को योग की प्रवृत्तिसहित केवलज्ञानसहित **सयोगकेवली अरिहन्त होता है।** लो! समझ में आया ? **और चौतीस अतिशय और आठ प्रातिहार्य होते हैं, ऐसे तो गुणस्थान द्वारा...** लो! चौतीस अतिशय गुण। इन पुण्य के गुणसहित उसका वर्णन है। उन्हें ऐसा पुण्य होता है। अरिहन्त यहाँ तो तीर्थंकर की प्रधानता से वर्णन है। सामान्य केवली की बात नहीं है। अरिहन्त जो तीर्थंकर होते हैं, उन्हें पूर्ण केवलज्ञान, पूर्ण आनन्दादि होते हैं। साथ में चौतीस अतिशय होते हैं। अतिशय व्यवहार नहीं हो और अकेला निश्चय हो, ऐसा नहीं होता, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया ?

चौतीस अतिशय... है ? पाठ में **'अइसयगुणा'** शब्द पड़ा है। एक कहे कि योग है, वह गुण नहीं, दोष है। तब यह कहे कि अतिशय, वह गुण है। किस अपेक्षा से ? यह पुण्य के फल रूप का संयोग ही ऐसा उन्हें होता है। अरिहन्त पद हो और ऐसा पुण्य न हो, ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ... समझ में आया ? अरिहन्त परमात्मा उन्हें कहते हैं कि जिन्हें अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द तो अन्दर होता है, परन्तु जिन्हें अभी

योग की कम्पनशैली होती है, और उन्हें चौतीस अतिशय होते हैं। अतिशय अर्थात् कि दूसरों की अपेक्षा पुण्य की विशिष्ट विशेषता। दूसरे को जो पुण्य हो, उसकी अपेक्षा अरिहन्त का पुण्य अलग प्रकार का होता है। ऐसे पुण्यवाले और ऐसी पवित्रतावाले दोनों गिनकर अरिहन्त का स्वरूप यहाँ गिना है। स्थापनारूप से यह वर्णन है, स्थापना। समझ में आया ? और आठ प्रातिहार्य होते हैं। भगवान अरिहन्त को आठ पूजनेयोग्य ऐसी चीज़ें बाहर में होती है। यह सब नीचे अन्दर लेंगे। **ऐसे तो गुणस्थान द्वारा 'स्थापना अरहन्त' कहलाते हैं।** लो! इस गुणस्थान आदि से उनकी स्थापना अरिहन्त की पहिचान है।

यहाँ चौतीस अतिशय और आठ प्रातिहार्य कहने से तो समवसरण में विराजमान तथा विहार करते हुए अरहन्त है... भगवान अरिहन्तपना-तीर्थंकपना जिन्हें प्रगटे, उन्हें समवसरण-धर्मसभा होती है। इन्द्र की बनायी हुई एक धर्मसभा होती है। वे अकेले बाहर में बैठे हों दुकान में, ऐसे अरिहन्त नहीं होते।

मुमुक्षु : पत्थर में बैठे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पत्थर में भी नहीं बैठते, कुम्हार के घर में नहीं बैठते। समझ में आया ?

अरिहन्त की दशा, जिन्हें चार ज्ञान टलकर केवलज्ञान हुआ। चार घातिकर्म का नाश हुआ, ऐसे णमो अरिहन्ताणं की पहिचान कराते हैं। ऐसे अरिहन्त को ऐसे णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... करे उसमें कुछ भला नहीं है। ऐसे पहाड़े तो अनन्त बार वाँचे हैं, उनकी पहिचान नहीं होती, उसे कुछ आत्मा का भान, धर्म-बर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं। व्यवहार से भी अरिहन्त ऐसे होते हैं, ऐसी जिसे अन्तर गुणों की और उनके पुण्य के अतिशय की स्थिति का भान नहीं, उसे तो व्यवहार श्रद्धा का ठिकाना नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं, समवसरण होता है—धर्मसभा (होती है)। जहाँ पूर्ण परमात्मदशा प्रगट हुई, महाविदेह में अभी परमात्मा विराजमान हैं। सीमन्धर भगवान अरिहन्तपद में हैं। महावीर आदि भगवान तो अभी सिद्धपद में हो गये। वे अब अभी अरिहन्त नहीं हैं। समवसरण में थे, तब अरिहन्त थे। मनुष्यपना था। अभी सिद्धपद हो गया। इसलिए यहाँ

से समवसरण में बड़ी धर्मसभा होती है। उसमें विराजमान तीर्थंकर विहार करते अरिहन्त को लिया है न वापस? अतिशयवाले लिये हैं न! भगवान भी ऐसे उदय प्रमाण उनका विहार शरीर का होता है, गति होती है। उन्हें इच्छा नहीं होती। विहार करने की गति का भाव उन्हें नहीं होता परन्तु वह शरीरादि की क्रिया ही ऐसी अरिहन्त को बिना इच्छा देह के उदय के कारण से ऐसा विहार होता है। ऐसा अरिहन्त का स्वरूप है, यह वर्णन करते हैं। समझ में आया?

और 'सयोग' कहने से विहार की प्रवृत्ति... देखो! अरिहन्त को सयोगी केवली कहा है न? उन्हें **विहार की प्रवृत्ति और वचन की प्रवृत्ति सिद्ध होती है।** दोनों। सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्तदशा जिन्हें प्रगट हुई हो, वे वीतराग, उनको अभी वाणी का योग है। है? **सयोग कहने से विहार की प्रवृत्ति और वचन की प्रवृत्ति सिद्ध होती है।** होती है वहाँ। अरिहन्त के संयोग में वाणी और विहार की प्रवृत्ति होती है। वे सिद्ध नहीं कि उन्हें वाणी और विहार न हो। ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? विहार की प्रवृत्ति, वचन की प्रवृत्ति।

भगवान अरिहन्त हों, तब इच्छा बिना पूरे शरीर में से ॐ ध्वनि निकलती है। पूर्ण पद प्राप्त परमात्मा अरिहन्त तीर्थंकरदेव, उन्हें इच्छा बिना ॐ ध्वनि निकले और शरीर में इच्छा बिना गति हो। ऐसी प्रवृत्ति का योग अरिहन्तपदपने के भावपद में भी ऐसा सम्बन्ध होता है, उसे स्थापना निक्षेप कहा जाता है। समझ में आया? भगवान की जो स्थापना है, वह तो व्यवहार में जाती है। मूर्ति की स्थापना। यह निश्चय स्थापना उनके शरीर की स्थिति और वाणी, वह उनकी स्थापना है। समझ में आया? कितने प्रकार! आहाहा!

और भगवान को वाणी होती है न? इच्छा बिना वाणी निकलती है। गणधर-इन्द्र सुनते हैं। ऊर्ध्वलोक के स्वामी इन्द्र हों, वे भी समकिती ज्ञानी होते हैं। एकावतारी होते हैं। एक भव में मोक्ष जानेवाले। इन्द्र और इन्द्राणी। वे भी भगवान की वाणी सुनते हैं। समझ में आया? यह वाणी का योग होता है तो केवली के पास इन्द्र भी जाते हैं। अभी भगवान महाविदेह में विराजते हैं। इन्द्र भी भगवान के समवसरण में धर्मसभा सुनने जाते हैं, ऐसा संयोग अरिहन्तपद को होता है। सिद्धपद को वह नहीं होता। ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

'केवली' कहने से केवलज्ञान द्वारा सब तत्त्वों का जानना सिद्ध होता है। संयोग यह विहार और वचन की प्रवृत्ति अभी भगवान को है, ऐसा कहना वह व्यवहारनय का विषय बतलाते हैं। आहाहा! समझ में आया? वचन हुए, वे जड़ हैं। वचन कहाँ भगवान को हैं? परन्तु उन्हें योग में स्थापना में बाहर में वह स्थिति वर्तती है। इस प्रकार उन्हें बतलाया है। कहते हैं कि **केवली कहने से केवलज्ञान द्वारा सब तत्त्वों का जानना...** तीन काल-तीन लोक भगवान के ज्ञान में जो जड़ और चैतन्य की दशा हो गयी, होगी, है, सब एक समय में जानने में परमात्मा को वर्तती है। उन्हें अरिहन्त परमात्मा कहा जाता है। समझ में आया?

चौतीस अतिशय इस प्रकार है– अब चौतीस अतिशय की बात करते हैं। अतिशय अर्थात्? पुण्य की दूसरे की अपेक्षा अरिहन्त को विशिष्ट विशेषता (होती है), उसे अतिशय कहा जाता है। **जन्म से प्रकट होनेवाले दस...** अरिहन्त भगवान को दस अतिशय तो जन्म से होते हैं। **मल-मूत्र का अभाव,...** अरिहन्त भगवान तीर्थंकरदेव जन्में, तब से उन्हें मल-मूत्र का अभाव होता है। उन्हें पेशाब और दस्त नहीं होते। समझ में आया? यह अरिहन्त की स्थिति अतिशय से अलग प्रकार की होती है। उन्हें मूत्र, दस्त नहीं होते। आहार अवश्य करते हैं, परन्तु उन्हें दस्त और मल नहीं होते। तब तक जिन जन्म के केवल होने से पहले। समझ में आया? आहार हो परन्तु मल और मूत्र नहीं होते। ऐसी ही अतिशय दशा होती है। पवित्रता तो पूर्ण प्रगटी है और पुण्य के प्रभाव भी उनके पास पूर्ण दिखाई देते हैं। उनके हैं—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। यहाँ तो स्थापना समझाना है न। आहाहा!

कहते हैं, उनके मल-मूत्र का अभाव (होता है)। तीर्थंकर को जन्म से मूत्र और मल नहीं होता। उन्हें अरिहन्त कहा जाता है। अभी जन्म के, जन्म के अरिहन्त अभी। केवली हों, वहाँ तो ... अरिहन्त हैं। अभी तो जन्म से तीर्थंकर को मूत्र और मल नहीं। **पसीने का अभाव,...** उन्हें पसीना नहीं होता। सामान्य मनुष्यों को पसीना आता है। तीर्थंकर के शरीर में पसीना नहीं होता। उनका एकदम स्फटिक रत्न जैसा शरीर होता है। जन्म से ही परम औदारिकशरीर होता है। आहाहा! जन्म से तीर्थंकर का परम औदारिकशरीर (होता है)। जिन्हें रोग नहीं, मल नहीं, मूत्र नहीं, व्याधि आदि होती नहीं। आहाहा! ऐसे

अरिहन्त को पहिचानना। तब तो उन अरिहन्त की इसे व्यवहार श्रद्धा सच्ची कही जाती है। समझ में आया? व्यवहार वस्तु है न! ऐई! वस्तु नहीं? वह व्यवहार, धर्म नहीं। वह व्यवहार, आत्मा का स्वरूप नहीं। परन्तु ऐसा व्यवहार साथ में होता है। स्थापना है न? यह निश्चय स्थापना वह ....

धवल रुधिर होना,... भगवान का रुधिर श्वेत होता है। इसके जैसा नहीं होता उनका। जन्म से उनका रक्त श्वेत-सफेद होता है। नीचे भगवान नाम धराते हैं न? अरिहन्त हैं, हम केवली हैं, तीर्थंकर हैं। ऐसा नहीं होता। तीर्थंकर को तो तीन काल का ज्ञान होता है। उन्हें ऐसे अतिशय होते हैं, जिनका रुधिर सफेद हो, उन्हें पसीना हो नहीं, (आहार) खाने पर भी पहले से मूत्र-मल नहीं होता—ऐसी तो दशा उनकी पुण्य के कारण शरीर में होती है, ऐसा वर्णन करते हैं। समझ में आया? पुण्य और पुण्य के फल नहीं? परन्तु वह धर्म नहीं है। वह आत्मा को कल्याण का कारण नहीं है। पण्डितजी! अरिहन्त किसे कहना? उनकी वाणी क्या हो, उसकी खबर नहीं होती। और जैसे-तैसे जिन्दगी गँवाता है। अरिहन्त अर्थात् कौन? उन्हें पुण्य प्रकृति इतनी अधिक होती है कि जिन्हें शरीर में पसीना नहीं और रुधिर सफेद होता है। आहाहा!

समचतुरस्रसंस्थान,... होता है। संस्थान अर्थात् शरीर का आकार। समचतुरस्रं—दिखाव सब समरूप। ऐसे से ऐसे... ऐसे से ऐसे... ऐसे से ऐसे... सर्वत्र चारों ओर सरीखा होता है समचतुरस्र। **वज्रवृषभनाराच संहनन,...** होता है। हड्डियों की मजबूती उन्हें पहले नम्बर की होती है। वज्र। ऐई! उन्हें बतलाते हैं न! आहाहा! केवली हों, उन्हें वज्रवृषभनाराच संहनन न हो तीर्थंकर को, ऐसा नहीं होता। **सुन्दर रूप,...** होता है उनका। देव भी जिसके रूप को हजार आँखों से निहारते हैं। शरीर का, हों! आत्मा का रूप तो अन्दर अलौकिक है, उसकी बात अलग। यहाँ तो बाहर ही, उनकी दशा ऐसी होती है कि इन्द्र, भगवान की माता जब जन्म दे, तब इन्द्र आते हैं। नमो रत्नकूखधारिणी हे माता! ऐसे रत्न को कूख में तूने रखा, तुझे पहला नमस्कार। पश्चात् हजार नेत्रों द्वारा ऐसे देखे। तृप्ति नहीं होती। ऐसे तो उनके अवयवों की सुन्दरता की आकृति। उनके प्रत्येक अवयव मानो कुदरत ने मोर के पंख जैसे जड़ित रंगीन होते हैं न? सहज। किसी ने किया है? मोर के पंख कैसे होते हैं, देखो न! ...कला खिले, जब वह कोई शरीर से बनाया है उसे? कुदरती

उसका रंग ऐसा है। इसी प्रकार भगवान का शरीर सहज इतना सुन्दर है कि इन्द्र हजार आँख बनाकर देखे, तो भी तृप्ति नहीं होती। ऐसी पुण्य प्रकृति के फलरूप से अरिहन्त को परमौदारिकशरीर होता है। समझ में आया ? आहाहा !

सुगन्ध शरीर,... होता है। शरीर में से सुहास—सुगन्ध निकलती है। कठिन लगे, यह क्या कहते हैं तुम्हारे ? रोग में दुर्गन्ध नहीं होती ? कितनों की श्वास दुर्गन्धित होती है न ? क्या कहते हैं उसका नाम ? लो, यह कठिन आया है। हमने तो यह सब गाँव में सुना होवे न। गन्ध मारे उसे कठिन लगे। क्या शब्द ?

मुमुक्षु : सांस में बास आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सांस में बास आवे। गन्ध मारे वह।

भगवान को श्वास नहीं परन्तु योग में उन्हें श्वास सुगन्धी होती है। गुलाब के फूल में जैसे सुगन्ध आवे, वैसे भगवान बैठे हों और श्वास निकले तो ऐसी सुगन्ध आती है। वह तो अरिहन्त पद में है न ? सिद्धपद होता है तो शरीररहित हो जाते हैं। समझ में आया ? ऐसा अरिहन्त पद वीतराग मार्ग में होता है, अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता। ऐसा सिद्ध करना है। दूसरे अन्यमति भले भगवान... भगवान करे। हमारे भगवान ऐसे। यह सब बातें गप्प हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर के मत में ऐसे सर्वज्ञ और ऐसा उन्हें पुण्य होता है। इसके अतिरिक्त तीर्थंकर माने, वह बात सत्य नहीं है। समझ में आया ?

सुगन्ध शरीर, शुभ लक्षण होना,... शरीर के सब लक्षण शुभ होते हैं। ध्वजा और विमान और ऐसे सब शरीर में एक हजार आठ लक्षण होते हैं। एक हजार आठ लक्षण शरीर में (होते हैं)। **अनन्त बल,...** शरीर का, हों ! वह तो पहले आ गया न पहला। यह तो शरीर में अनन्त बल होता है। तीर्थंकर का शरीर ऐसा बलवाला होता है। समझ में आया ?

एक बार बात कही थी न ? नेमिनाथ भगवान और कृष्ण, वासुदेव (आदि) सभा में हजारों योद्धा बैठे थे। यादव कुल, नेमिनाथ भगवान यादव कुल में जन्में हैं न। सभा भरी थी, नेमिनाथ भगवान बैठे हुए थे। गृहस्थाश्रम में राजकुमाररूप से थे। बातें निकलते-निकलते निकली की योद्धा कौन है ? कोई कहे कि पाण्डव बड़े योद्धा, कोई कहे, वासुदेव

के पिता वसुदेव थे। उनका दिखाव रूपवान बहुत सुन्दर और लाखों रानियाँ, बाहर निकले थे न तो घोड़े पर सवारी निकली तब इतनी स्त्रियाँ उनके वश हो गयी थीं। कोई कहे, वसुदेव का बल है, कोई कहे कि वासुदेव का बल है। वासुदेव अर्थात् कृष्ण। कोई कहे कि बलदेव का बल है। (बात) करते... करते... करते... कोई कहे, सबके बल ठीक, बापू! भगवान बोलते नहीं परन्तु बल इनका है। नेमिनाथ भगवान बैठे थे। हजारों मनुष्यों की सभा थी। बड़े-बड़े योद्धा इकट्ठे थे। दूसरे कहे, कृष्ण का बहुत बल है, ... भगवान का बल बहुत है। ऐसा करते-करते भगवान को जरा विकल्प आया। .... है न? लो, मैं यह पैर नीचे रखता हूँ। उठाओ पैर को। समझ में आया? कृष्ण भी लटक पड़े परन्तु ऊँचा नहीं हुआ। इतना बल है। शरीर में इतना अनन्त बल होता है। तीर्थंकर का बल अर्थात्! समझ में आया?

.... कथन है कि दस हजार सिंह का बल, ऐसा तीर्थंकर का बल (होता है), ऐसा कहीं आता है न? कहीं आता है, याद कितना हो? मस्तिष्क में रह गयी हो यह बात। दस हजार सिंह। उनकी अपेक्षा भगवान के शरीर का बल अधिक। शरीर के रजकण ऐसे जड़ हैं। यह जड़ तो आत्मा से भिन्न हैं। पण्डितजी! मायकांगला जैसा शरीर उनका नहीं होता, ऐसा कहते हैं। इन्द्र भी उन्हें देखकर स्थिर हो जाते हैं। उनके केवलज्ञान और आनन्द की बात क्या करना! तीन काल-तीन लोक जिन्हें एक ज्ञान की दशा में वर्तते हैं और साथ में पुण्य की डिब्बी ऐसी होती है। केसर बोरियों में नहीं रहती। समझ में आया? केसर को बोरियाँ नहीं होती। केसर को डिब्बी और बरनी होती है। ऐसे अरिहन्त परमात्मा तीर्थंकररूप से जो आत्मा प्रगट हुए, उनके शरीर ऐसे मायकांगला नहीं होते, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु है। वस्तु का स्वरूप हो, वैसा बतावे या नहीं? ऐई! आहाहा!

मधुर वचन... होवे भगवान के। मीठा... मीठा... मीठा... समझ में आया? ऐसे मीठे वचन मानो मधुर आम खाते हों, ऐसी वीतराग की वाणी निकलती है। गृहस्थाश्रम में हो तो मीठे मधुर वचन होते हैं। ऐसी वाणी होती है। वाणी ही ऐसी होती है, हों! नेमिनाथ भगवान। बहुत ... नेमिनाथ भगवान को। गृहस्थाश्रम में थे न। एक बार नहाये, स्नान किया और धोती छोड़ दी। श्रीकृष्ण ने रानी को-रुक्मणी को कहा-धोती ले लो। बातें हैं। अरे!

तुम कौन कहनेवाले नाथ ? ... कृष्ण तो ऐसा करे, अमुक करे, अमुक करे। नागशैय्या होती है न ? नागशैय्या होती है। जैसे तुम्हारे पाटी की शैय्या होती है न यह ? सूत की पाटी। वैसे वासुदेव को नाग की शैय्या होती है। फण मारते नाग। सैकड़ों नाग ऐसे हों, उनकी पाटी होती है। उसमें वे सोते हैं। ऐई ! यह काथी वींट क्या कहलाती है वह खाट (पलंग) की ? यह तुम्हारे खाट-बाट ? अब सब बदल गया। अब तो लोहे के पलंग हो गये। नहीं ? ऐसा होता है। पहले तो (नारियल के रेशे की) डोरी थी। ... की डोरी। उन्हें नाग की पाटी थी। बड़े सैकड़ों नाग। वज्र का पलंग होता है, हीरा का। नाग चारों ओर फण माँडकर ऐसे लम्बे होकर पड़े हों। उसमें वासुदेव सोते हैं। ऐई ! सेठ ! नाग के शरीर की कोमलता कितनी हो ! और वासुदेव का शरीर... महापुण्य है न ?

रानी ने कहा, तुम मुझे कहनेवाले कौन ? हमारे स्वामी तो नागशैय्या में सोवे। ...तो ऐसा हो, ...हो। भगवान को भी थोड़ा विकल्प उठा... ऐई! अभी तो संसार था न ? गृहस्थाश्रम में थे। गये वहाँ नागशैय्या में। नागशैय्या में सोये। हाथ में उनका शंख था। बारह योजन काँप उठे। इतनी आवाज। कंपकंपी हो गयी। श्रीकृष्ण कहे, यह दूसरा कृष्ण कौन है ? दूसरा वासुदेव कौन पका है ? मेरे अतिरिक्त कोई शंख फूंक नहीं सकता। यहाँ जहाँ आये और देखा, भगवान ! अरे ! आहा ! नेमिनाथ भगवान को यह क्या हुआ ? किसी ने कहा, रानी ने ऐसा कहा तो हम आये और यह सब हुआ है। अब इनका किसी प्रकार विवाह करो। विवाह करो, ऐसा कहा फिर बहुत-बहुत कहने लगे तब फिर ॐ इतना कहते हैं। ॐ। विवाह करने का बहुत कहा तब ॐ (कहा)। ठीक, स्वीकार हुआ, जाओ। वे विवाह करने गये वहाँ तो उन पशुओं की (आवाज सुनी)। विवाह करने गये तब राजा ने पशुओं को बाँधा था न ? यह देखकर वैराग्य हो गया। हमारे विवाह प्रसंग में यह हिंसा, यह हमें शोभा नहीं देता। यह विवाह प्रसंग हमें नहीं हो सकता। सारथी ! रथ वापस मोड़ो। वींछिया वाले। प्रेमचन्दभाई के पौत्र। ... रथ वापस मोड़ो। अन्नदाता ! यहाँ आकर खड़े राजा-रानी। वापस मोड़ो। यह विवाह हमें नहीं होगा। देखो ! इस संसार में इस प्रकार के विकल्प (आते हैं)। समकिती हैं, तीन ज्ञान के धनी हैं, क्षायिक समकित है। परन्तु उन्हें ऐसा विकल्प उस गुणस्थान में होता है। तेरहवें में नहीं होता। अरिहन्त हुए, उन्हें ऐसा विकल्प नहीं होता। परन्तु उन्हें पुण्य के योग ऐसे होते हैं, ऐसा साथ में स्थापना से

बतलाया। कहते हैं दस, ये दस (अतिशय) तो जन्म से होते हैं। जन्में तब से ऐसी पुण्य की दस विशेषताएँ होती हैं।

अब **केवलज्ञान उत्पन्न होने पर दस होते हैं – उपसर्ग का अभाव,...** केवली को उपसर्ग नहीं होता। समझ में आया? उनके समवसरण में साधु को कोई जलाये और भगवान को खूनी दस्त हो, उपसर्ग (हो), यह बात बिल्कुल झूठ है। यह भगवान की बात है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अछेरा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अछेरा-बछेरा होता नहीं। वस्तु ऐसी नहीं होती न! ऐसा बने किसी दिन? तीर्थंकर किसे कहते हैं? महापुण्यवन्त है। लोगों को खबर नहीं। उपसर्ग का अभाव होता है। भगवान को कोई उपसर्ग करे, परीषह दे —ऐसा तीन काल में नहीं होता। जिसके इन्द्र भक्त हैं। सौ इन्द्र, उनकी पुण्यप्रकृति की अपार जिसकी महिमा है, उनके उपसर्ग नहीं हो सकते। उपसर्ग अर्थात् मनुष्य-देव और तिर्यंच कृत। देव उन्हें उपसर्ग दे, मनुष्य दे, (ऐसा नहीं होता)। समझ में आया? गोसाल ने कहा है न कि समवसरण में जाकर दो साधुओं को जलाया और भगवान को तेजोलेश्या डाली। यह बात मिथ्या है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? ऐसा कभी नहीं होता।

उपसर्ग का अभाव, अदया का अभाव,... उनके समवसरण में किसी को मार डालने का भाव हो, ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा! ऐसी तो उनके पुण्य की अतिशयता है। समझ में आया? आत्मा की तो बात क्या करना, परन्तु उनके पुण्य का योग ऐसा है। अरिहन्त किसे कहें? तीर्थंकर किसे कहें? ऐसे नाम अरिहन्त... अरिहन्त करे और अरिहन्त की दशा का भान नहीं होता। उसे व्यवहारश्रद्धा का ठिकाना नहीं है। समझ में आया? ऐई! जयन्तीभाई!

शरीर की छाया न पड़ना,... देखो! शरीर की ऐसी छाया पड़ती है न? उन्हें छाया नहीं पड़ती। स्फटिक जैसा शरीर। स्फटिक जैसा शरीर सोंसरवुं हो उसमें छाया कहाँ से पड़े? यहाँ तो ऐसे... तो नीचे छाया पड़े। परछाईं। परछाईं भगवान को नहीं होती। क्योंकि शरीर परमौदारिक, सफेद श्वेत-सफेद। ऐसे नजर डाले तो पूरा-पूरा दिखाई दे।

अंतड़ियाँ अन्दर यह है वह सब। यह वर्णन करके क्या कहते हैं? कि केवली हो तीर्थंकर, उन्हें पुण्य का योग संयोग से ऐसी स्थापना का होता है। इसके अतिरिक्त आड़ा-टेढ़ा और विरुद्ध कहे, वे अरिहन्त के स्वरूप को और उनके भाव को नहीं पहिचानते। समझ में आया?

चतुर्मुख दीखना,... स्फटिक जैसा शरीर है न? इसलिए चारों ओर मुख दिखता है। लाखों, करोड़ों की सभा भरी हो। स्फटिक जैसा शरीर तो यहाँ मुँह हो तो ऐसे दिखाई दे, ऐसे चारों ओर दिखाई दे। चतुर्मुखी, हों! वह ब्रह्मा चतुर्मुखी नहीं। यह भगवान ब्रह्मा है। वह ब्रह्मा चार मुखवाले फिर जगत को उपजाया, ऐसा कहते हैं न? सब बातें मिथ्या हैं। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा, जहाँ पूर्ण दशा आनन्द और केवलज्ञान प्राप्त हुए, तो कहते हैं कि उनके शरीर में चार मुख दिखते हैं। आहाहा! ... ... काँच है न? इसलिए चारों ओर दिखते हैं। एक प्रतिमा स्फटिक की है। ऐसे देखे तो चारों ओर दिखते हैं। स्फटिक जैसा होवे तो चारों ओर मुख दिखाई देता है। ऐसी दशा तीर्थंकर को पुण्य प्रकृतिरूप से संयोग में होती है। उसे स्थापनारूप से पहिचानने में आता है।

सब विद्याओं का स्वामित्व,... केवलज्ञान में क्या बाकी होगा? सभी विद्या जानते हैं। तीन काल, तीन लोक की जितनी मन्त्र-तन्त्र सब केवलज्ञान में जानते हैं। सर्व विद्या का स्वामी है तू। **नेत्रों के पलक न गिरना,...** आँख जो ऐसे-ऐसे होती है, वह केवली को नहीं होती। केवली की आँख सदा ऐसे ही रहती है। देव को भी रहती है। यह तो और केवली हैं। देव के पुण्य होता है। अभव्य हो तो भी देव को टिमकार नहीं होती, तो यह तो केवली हैं। समझ में आया? देखो! ऐसी स्थिति निमित्तरूप से स्थापना ऐसी होती है। ऐसे अरिहन्त के जीव की पहिचान इस प्रकार बताते हैं। आहाहा!

शतयोजन सुभिक्षता,... सौ योजन में दुष्काल नहीं पड़ता। तीर्थंकर जहाँ-जहाँ विचरते हैं, सौ योजन में सुभिक्ष होता है, सुकाल होता है। ऐसा जिनका पुण्य का योग और जगत के प्राणी का भी पुण्य का योग होता है। समझ में आया? **आकाशगमन,...** भगवान नीचे नहीं चलते। चार कर्म नाश हो गये हैं न! पाँच सौ धनुष ऊँचे। सिद्ध आठ कर्मरहित तो ठेठ ऊँचे (विराजते हैं)। भगवान का आकाश में गमन होता है। ... आवे। **कवलाहार न होना,...** उन्हें आहार नहीं होता। कवलाहार उन्हें नहीं होता। उन्हें रोग हो और दवा

लावे और दवा खाये, ऐसा भगवान को नहीं होता। ऐसा माननेवाले भगवान को नहीं पहिचानते। उनके पुण्य को नहीं पहिचानते तो उनकी पवित्रता को तो पहिचाने कहाँ से? समझ में आया? **कवलाहार नहीं होना,...** उन्हें भोजन नहीं होता। तृषा लगे तो पानी पीवे, रोग हो, दवा लाकर दवा खाये...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न। ... वहाँ हमारे लिये आहार बनाया हो, वह नहीं लाना। उसके—घोड़ा के लिये बनाया हो, वह लाना। सब बातें कल्पित। यह सब भगवान की बातें नहीं हैं। कल्पित बनाया और भगवान के सिर चढ़ा दिया। समझ में आया?

नख-केशों का नहीं बढ़ना,... लो! भगवान को नख और केश जितने हों, उतने रहते हैं। आहाहा! यह केवली होने के बाद की बात है।

चौदह देवकृत होते हैं – है तो उनका अतिशय, परन्तु देव उसमें निमित्त है। **सकलार्द्धमागधी भाषा,...** भगवान की वाणी में अर्धमागधी भाषा आती है। वैसे तो ॐ आता है। परन्तु समझने को अर्धमागधी आती है। सकल अर्धमागधी भाषा। सब जगत की ... इकट्ठी आवे एकसाथ। ॐ ध्वनि। भगवान की ध्वनि तो ॐ होती है। अपन जैसे बोलते हैं, वैसे वे नहीं बोलते। होंठ हिलते नहीं, कण्ठ हिलता नहीं और ॐ ध्वनि निकलती है। समझ में आया?

सब जीवों में मैत्रीभाव,... जहाँ-जहाँ भगवान हों, वहाँ कोई किसी के प्रति वैर नहीं रखते। चूहा और बिल्ली साथ में बैठते हैं, सिंह और हिरण इकट्ठे बैठते हैं। हिरण को भय नहीं और सिंह को मारने का भाव नहीं। ऐसी ही अतिशयता के कारण उसकी उस जीव की योग्यता ऐसी होती है। सकल जीवों में मैत्री भाव। सब भगवान आत्मा मित्र है। किसी के ऊपर द्वेष नहीं वर्तता। समवसरण में ऐसी तो पुण्य प्रकृति है। यह केवलज्ञान तो गुण है।

सब ऋतु के फल-फूल फलना,... छहों ऋतु के एक ऋतु में फल होते हैं। समझ में आया? यहाँ तो अमुक आम श्रावण महीने में ही पकता है। ऐसा वहाँ नहीं है। भगवान जहाँ जाये, वहाँ कार्तिक महीने में आम पके। प्रतिदिन प्रतिदिन के फल पके।

चक्रवर्ती को होता है। चक्रवर्ती का पुण्य इतना होता है कि सवेरे गेहूँ बोवे और नौ बजे तैयार। सुना है या नहीं? यह भरत चक्रवर्ती। ऋषभदेव भगवान के पुत्र भरत चक्रवर्ती। सोलह हजार देव सेवा (करते हैं)। चक्रवर्ती को गृहस्थाश्रम में इतना पुण्य होता है। सवेरे गेहूँ बोवे और नौ बजे तैयार। आटा होकर लड्डू हो दस बजे। उन्हें तो गेहूँ को अभी तुम्हारे क्या कहते हैं? चक्की लावे।

मुमुक्षु : अमेरिका से लावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमेरिका से लावे। चक्की लावे। यहाँ तो पहले घटी थी। घर में घट्टी रखे। घट्टी, हों! गृहस्थ लोग हो वे घट्टी रखे। ताजा-ताजा आटा।

यह तो कहते हैं, **सब ऋतु के फल-फूल फलना,...** छहों ऋतु के फल एक ऋतु में फले, इतना तो उनका पुण्य का योग है। पवित्रता की बात क्या करना, कहते हैं। केवलज्ञानी, केवलदर्शन तीन काल-तीन लोक हस्तामल की भाँति जाने। भूत-वर्तमान-भविष्य तीन काल जिनके ज्ञानदर्पण में वर्तते हैं। परन्तु पुण्य के योग में ऐसी वस्तु उन्हें होती है। शरीर है न अभी? शरीररहित नहीं हुए। शरीररहित होंगे तो सिद्ध हो जायें। यह तो अरिहन्त की बात है न?

दर्पण समान भूमि,... भगवान जहाँ विचरते हैं, वहाँ दर्पण समान भूमि होती है। कोयले ऐसे दिखाई दे और जमीन आड़ी-टेढ़ी हो, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? यहाँ तो अभी है न, देखो न! संगमरमर की। संगमरमर का फर्श। लोगों को यहाँ रहने को मकान मिलते नहीं। रास्ते में संगमरमर की सड़क हो। आरसपहाण, समझे न? संगमरमर, उसकी सड़क वहाँ हो। उसके ऊपर चले। और वह भी घण्टे के साठ मील से कम नहीं चले। अधिक है कुछ। सत्तर मील चले। कम चलने न दे। क्योंकि इतनी सुविधा साधन की है, ऐसी मोटरें हैं। मोटरें हैं तो लोगों को काम आवे। काम हो। नहीं तो देरी हो। ऐसा तो यहाँ अभी होता है। चलकर ... एक घण्टे में। ऐसे तो पुण्यशाली। यह तो भगवान। इनके पुण्य की क्या बात करना! वे तो सब पापी। पूर्व का कोई पाप करके (आये हों)। कोई पुण्य थोड़ा-बहुत हुआ हो और वह जन्में हैं सब। भगवान तो आत्मा के भानसहित, समकित सहित का पुण्य बँधा हुआ, उनके पुण्यरूप से यह फल है। आहाहा!

कंटकरहित भूमि,... भगवान जहाँ-जहाँ हों, वहाँ काँटे नहीं होते। बाहर के

विरोधी काँटे तो होते ही नहीं। भगवान जहाँ हो, वहाँ कितने ही विरोधी साथ के साथ थे। ऐसा आता है। नहीं आया था? प्रकाश ने डाला था। कितने विरोधी? चार सौ विरोधी। चार सौ विरोधी इकट्ठे साथ के साथ घूमते। भगवान का विरोध करने। भले प्रकार से पत्रिका में आया था। दिल्ली वाली पत्रिका में आया था। यहाँ तो कहे, बाहर के कण्टक और बाहर के विरोधी भी उन्हें नहीं होते। भगवान परमेश्वर पूर्णानन्द का नाथ। आहाहा! तीन काल-तीन लोक जिनके ज्ञान में दर्पण की भाँति वर्तते हैं। उनके पूर्व में बँधे हुए पुण्य के कारण जमीन भी काँटे और कंकणरहित (होती है)। कंकड़ तो नहीं होते और काँटे भी नहीं होते। कोमल जमीन।

मन्द सुगन्ध पवन,... सुगन्ध मन्द पवन बहती है। ऐसी अतिशयता के कारण से। **सबके आनन्द होना,...** सबको आनन्द... आनन्द... होता है। किसी को दु:ख नहीं होता। यह तो बाहर की साता की अपेक्षा से बात है, हों! सर्व आनन्द अर्थात् आत्मा के आनन्द की बात यह नहीं है। भगवान ... आनन्द आवे तो मुक्ति हो जाये। बाहर में साता के कारण से अनुकूलता रहे, भगवान हो वहाँ तक। **गन्धोदकवृष्टि,...** सुगन्धित पानी की वृष्टि। **पैरों के नीचे कमल रचना,...** भगवान गमन करते हैं, वहाँ पैर के नीचे इन्द्र कमल रचते हैं। स्वर्ण के कमल रचें, उसके ऊपर पैर आवे। उन्हें तीर्थंकर कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

सर्वधान्य निष्पत्ति,... प्रत्येक धान्य की निष्पत्ति होती है। **दशों दिशाओं का निर्मल होना,...** यह जो ऐसा होता है, वह कुछ नहीं होता। **देवों के द्वारा आह्वानन शब्द,...** पधारो... पधारो... पधारो... ऐसी पुकार देव की होती हो। **धर्मचक्र का आगे चलना,...** धर्मचक्र नहीं आता? नमोत्थुणं में आता है। 'धम्म-वरचाउरंत-चक्कवटीणं'। धर्म के चक्रवर्ती भगवान हैं। और धर्म का चक्र सामने चलता है। ऐसे को तीर्थंकर कहते हैं। **अष्ट मंगल द्रव्यों का आगे चलना।** लो! यह आठ के नाम लिखे हैं।

ऐसे स्थापनारूप से पहिचान करायी है, हों! यह उनके आत्मारूप से नहीं। आत्मा का पहले कथन कहा है। अनन्त ज्ञान-दर्शन पहले बात ली है। यह २९ वीं गाथा में आया। यहाँ तो आठ कर्मों का नाश किया है, ऐसा सिद्ध किया है। अरिहन्त को आठ कर्म नहीं। चार हैं, उनके नहीं। बन्ध भी नहीं। कुछ नहीं। उन्हें अरिहन्तरूप से स्थापनारूप से उन्हें बतलाया है। द्रव्यनिक्षेप से.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१६६, गाथा-३२ से ४१, मंगलवार, पौष शुक्ल ९, दिनांक ०५-०१-१९७१

यह अष्टपाहुड़ में बोधपाहुड़। इसकी यह ३२वीं गाथा है। अरिहन्त किसे कहना? टीका के लिये थोड़ा पन्ना फट गया है। टीका का ... तेरहवें गुणस्थान में... आयी न गाथा? यहाँ ३२वीं गाथा में अरिहन्त की व्याख्या है। मांगलिक ... है न। बोधपाहुड़।

कहते हैं कि अरिहन्त, जिन्हें णमो अरिहन्ताणं कहते हैं, उन अरिहन्त का स्वरूप क्या है? देव-देव। जिन्हें शरीरसहित, वाणी होती है, ऐसे देव परमात्मा कैसे होते हैं, उन्हें बतलाते हैं। उनको तो दश अतिशय जन्म से होते हैं। मल-मूत्र आदि नहीं होते। समझ में आया? सब दस आ गये हैं अपने। और दस हैं वे केवलज्ञान होने के बाद होते हैं तथा चौदह देवकृत होते हैं। ऐसे चौतीस तो विशेषता दूसरे आत्मा को पुण्य ऐसा नहीं होता, ऐसे पुण्य का योग अरिहन्त को-तीर्थंकर को होता है। साधारण प्राणी कोई परमात्मा कहना चाहे और हम परमात्मा (हुए हैं ऐसा कहे तो) परमात्मा ऐसा है नहीं। जिसे परमात्मस्वरूप प्रगट हुआ है, और जिसे पुण्य की प्रकृति भी उत्कृष्ट प्रगट हुई है, ऐसे तीर्थंकर तो ऐसे होते हैं। ३४ अतिशयसहित। यह चौतीस नाम पीछे आ गये हैं।

१४वाँ बोल। **१४- अष्ट मंगल द्रव्यों का आगे चलना।** यहाँ तक आया था। भगवान अरिहन्त शरीर-सशरीर हों। जब-जब विहार करे, तब आठ मंगल सामने आगे चलते हैं। यह ३४ अतिशय में एक यह अतिशय है। इसके आठ नाम हैं। ३४ अतिशय के १४वें बोल के इसमें नाम हैं। **छत्र,...** चलता है। है इसमें? ...भाई! मंगल-मंगल द्रव्य। **छत्र,...** ३४ अतिशय के नाम आ गये हैं। उसमें ३४ में मांगलिक के नाम हैं। पूर्ण परमात्मदशा हो और उसके पुण्य की प्रकृति का उदय हो। वह ऐसा होता है कि जिसे ३४ तो विशेषता थी। अतिशय अर्थात् विशेषता। साधारण प्राणी की अपेक्षा उनके गुण तो उत्कृष्ट होते ही हैं, परन्तु उनकी पुण्य प्रकृति में विशेषताएँ अतिशय है कि जो दूसरे को वे नहीं हो सकती।

उनके सामने छत्र होता है, छत्र। धर्म छत्र। धर्म **ध्वजा, दर्पण,...** होता है। दर्पण बड़ा ऊँचा। **कलश, चामर, भृङ्गार (झारी),...** बड़ा कलश ऊँचा। **ताल और**

स्वस्तिक... ऐसे आठ तो मांगलिक आगे सामने चलते हैं। उन्हें तीर्थंकर और अरिहन्त कहते हैं। समझ में आया?

दूसरे **आठ प्रातिहार्य होते हैं,**... शोभा। है न यह आठ प्रातिहार्य के नाम? **अशोकवृक्ष,**... तीर्थंकर जहाँ विराजते हैं, अपना केवलज्ञान, त्रिकाल ज्ञान हुआ हो, अनन्त आनन्द आदि दशा जिन्हें प्रगट हुई हो परन्तु अभी शरीर है। शरीररहित सिद्ध नहीं हुए, वहाँ तक उन्हें ऐसे पुण्य के योगों का प्रसंग उन्हें होता है। **अशोकवृक्ष, पुष्पवृष्टि,**... देव ऊपर से पुष्पवृष्टि करे। उन्हें कुछ नहीं, हों! परन्तु ऐसे पूर्व के पुण्य के कारण ऐसा योग (होता है)। उन्हें—अरिहन्त को परमेश्वर कहते हैं। शरीरसहित। यों ही परमेश्वर नाम धरावे, ऐसे भगवान हैं, और ऐसे (हैं)। (वह तो) एक भी गुण भी पूरा नहीं और पुण्य भी पूरा नहीं। उन्हें अरिहन्त और तीर्थंकर नहीं कहा जाता, ऐसा कहते हैं। यह स्थापना है, उन्हें स्थापित करते हैं कि ऐसा उनमें होता है, ऐसा।

दिव्यध्वनि,... होती है। पुष्पवृष्टि होती है। दिव्यध्वनि होती है। ऐसे अपनी तरह भाषा नहीं बोलते। पूर्ण दशा हो गयी है। वह दिव्यध्वनि ॐकार खिरती है। वाणी में ॐ ऐसी ध्वनि छूटती है। बारह प्रकार की सभा अपनी भाषा में समझे। उन्हें परमात्मा शरीरसहित कहते हैं। शरीररहित तो सिद्ध हो जाये। उन्हें यह नहीं होता। परन्तु शरीरसहित जो परमात्मा तीर्थंकर होते हैं, वे ऐसे परमात्मा होते हैं। जिन्हें-तिन्हें सब परमात्मा साबित कर देते हैं, उन्हें समझाने के लिये (कहते हैं कि) तुम मानते हो ऐसे परमात्मा नहीं हैं। **दिव्यध्वनि,**... होती है। आवाज ॐ ध्वनि अन्दर से उठती है। इच्छा बिना पूरे शरीर में से आवाज निकलती है।

चामर,... ढाले। देव चामर ढालते हैं। उन्हें कुछ नहीं, हों! पूर्व के पुण्य के कारण देवों का ऐसा वैभव उनका अतिशय होता है। **सिंहासन,**... होता है। बड़ा रत्नजड़ित सिंहासन। उसमें बैठते नहीं, हों! उसके ऊपर होते हैं। नीचे सिंहासन होता है। ऊपर होते हैं। **भामण्डल,**... होता है। जिनके शरीर का भा—प्रकाश पूरे शरीर में मण्डल चक्र पूरा दिखाई दे। प्रकाश का चक्र है न यह ?... पूरे शरीर में ओजस दिखाई दे। वह प्रकाश का ओजस—तेज। बाहर आया। उसे भा-मण्डल-प्रकाश का मण्डल ऐसे अरिहन्त को सहज शरीर में पुण्य प्रकृति के कारण ऐसा होता है। उसे—अरिहन्त को परमात्मा कहते

हैं। कोई भी परमात्मा और अरिहन्त नाम धरावे, उसे पहिचानने के लिये यह बात की है। और, **सिंहासन, भामण्डल, दुन्दुभिवादित्र...** साढ़े बारह करोड़ वाजिंत्र बजते हैं। और दुन्दुभी बाजे ऐसे बजते हैं। अरे! जीवों! सुनो... सुनो! ऐसी भगवान की वाणी। ऐसी दुन्दुभी की आवाज होती है। वाजिंत्र बजते हैं। **और छत्र...** उसमें आया था। उन आठ मंगल में। उनमें भी छत्र आया।

इस प्रकार गुणस्थान द्वारा अरहंत का स्थापन कहा। लो! जिसे परमात्मपद, आत्मा सर्वज्ञपद तो है वह स्वभाव में। उसका स्वरूप ही सर्वज्ञ स्वरूप है। परन्तु शक्ति से और स्वभाव से सर्वज्ञ है। प्रत्येक का आत्मा, हों! वह सर्वज्ञपना अन्तर के ध्यान से जिसे प्रगट होता है, सर्वज्ञपना, अरिहन्तपना प्रगट होता है, उसे सर्वज्ञस्वभावी वर्तमान दशा में त्रिकाल जाने, ऐसा ज्ञान होता है। उसे स्थापना में यह स्थापना है। यह भगवान की स्थापना है, वह यहाँ नहीं। वह तो व्यवहार स्थापना है—मूर्ति। ऐसे ३४ अतिशय, आठ प्रातिहार्य, आठ मंगल, यह सब स्थापना अर्थात् उन्हें ऐसा होता है। उन्हें अरिहन्त और तीर्थंकर कहते हैं। ऐसे अरिहन्त और तीर्थंकर जिसे-तिसे मान ले और मनावे, ऐसा नहीं है।

इस प्रकार गुणस्थान द्वारा अरहंत का स्थापन कहा। अब मार्गणा द्वारा स्थापित करते हैं। तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल का ज्ञान होता है, अनन्त आनन्द होता है, अनन्त वीर्य होता है, अनन्त दृष्टापना होता है। यह तो उनके अन्तर में गुण होते हैं। परन्तु बाहर की स्थिति में क्या होता है उन्हें? जब तक शरीर है तो?

गाथा-३३

अब मार्गणा द्वारा कहते हैं –

गइ इंदियं च काए जोए वेए कसाय णाणे य।
संजम दंसण लेसा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे।।३३।।

गतौ इन्द्रिये च काये योगे वेदे कषाये ज्ञाने च।
संयमे दर्शने लेश्यायां भव्यत्वे सम्यक्त्वे संज्ञिनि आहारे।।३३।।

हैं गति इन्द्रिय काय योग रु वेद कषाय सुज्ञान में।
संयम दरश लेश्या भवि सम्यक्त्व संज्ञि आहार में।।३३।।

अर्थ – गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार इस प्रकार चौदह मार्गणा होती हैं। अरहन्त सयोगकेवली को तेरहवाँ गुणस्थान है, इसमें 'मार्गणा' लगाते हैं। गति चार में मनुष्यगति है, इन्द्रियजाति पाँच में पंचेन्द्रिय जाति है, काय में छह त्रसकाय है, योग पन्द्रह में योग–मनोयोग तो सत्य और अनुभय इस प्रकार दो और ये ही वचनयोग दो तथा काययोग औदारिक इस प्रकार पाँच योग हैं, जब समुद्घात करे तब औदारिकमिश्र और कार्माण ये दो मिलकर सात योग हैं। वेद – तीनों का ही अभाव है; कषाय – पच्चीस सब ही प्रकार का अभाव है; ज्ञान आठ में केवलज्ञान है; संयम सात में एक यथाख्यात है; दर्शन चार में एक केवलदर्शन है; लेश्या छह में एक शुक्ल जो योगनिमित्त है; भव्य दो में एक भव्य है; सम्यक्त्व छह में क्षायिक सम्यक्त्व है; संज्ञी दो में संज्ञी है, वह द्रव्य से हैं भाव से क्षयोपशमरूप भावमन का अभाव है; आहारक अनाहारक दो में 'आहारक' है वह भी नोकर्मवर्गणा अपेक्षा है, किन्तु कवलाहार नहीं है और समुद्घात करे तो 'अनाहारक' भी है, इस प्रकार दोनों हैं। इस प्रकार मार्गणा अपेक्षा अरहन्त का स्थापन जानना।।३३।।

गाथा–३३ पर प्रवचन

गइ इंदियं च काए जोए वेए कसाय णाणे य।
संजम दंसण लेसा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे।।३३।।

बोल है १४। **अर्थ – अरहन्त सयोगकेवली को तेरहवाँ गुणस्थान है, इसमें 'मार्गणा' लगाते हैं।** तीर्थंकर परमात्मा ऐसे होते हैं कि जिन्हें तेरहवीं भूमिका, तेरहवाँ गुणस्थान होता है। चौदहवाँ गुणस्थान फिर पाँच अक्षर रहे, देह छूट जाये (और) सिद्ध हो जाये। परन्तु जहाँ तक अरिहन्तरूप से है, तब तक उनमें, कहते हैं, गुणस्थान तेरहवाँ होता है। चौदह गुणस्थानों में। उन्हें चार गति में मनुष्यगति होती है। मनुष्यगति है। अभी शरीर है न? केवलज्ञान हुआ, परमात्मा हुए, तीन काल का ज्ञान हुआ परन्तु शरीरसहित है,

इसलिए उन्हें मनुष्यगति कहा जाता है। आत्मा में गति नहीं, उदयभाव नहीं, ऐसा पहले आया था। वह तो वस्तु के स्वरूप में नहीं। परन्तु भान होने पर भी उन्हें गति बाहर में होती है। केवलज्ञान होता है, वह मनुष्यगति में होता है। वह कोई दूसरी गति में नहीं होता। ऐसा सिद्ध करते हैं।

गति चार में मनुष्यगति है, इन्द्रियजाति पाँच में पंचेन्द्रिय जाति है,... तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा की जाति में पंचेन्द्रियपना, पाँच इन्द्रियाँ होती हैं। वे तो अनीन्द्रिय होते हैं, परन्तु बाह्य में यह पंचेन्द्रिय जड़ होती है। शरीर की पाँच इन्द्रियाँ। पंचेन्द्रिय जाति कहने में आती है। समझ में आया? **काय में त्रसकाय है,...** पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस—ऐसे छह काय हैं। छह काय के जीव हैं। उनमें यह त्रसकाय में गिनने में आते हैं। केवली तीर्थंकर त्रसकाय में गिनने में आते हैं। **योग पन्द्रह...** यह स्थापना। उनकी यह स्थापना है। यह (बाह्य प्रतिमा की) स्थापना नहीं। गुणवाले ऐसे आत्मा हैं, उन्हें ऐसी गति आदि पंचेन्द्रिय आदि है, यह स्थापना है। सेठ! यह तो पूरी दूसरी प्रकार की बात आयी।

भगवान को भी पन्द्रह योग में मनोयोग दो होते हैं। जब तक शरीरसहित है, केवलज्ञान हुआ है, परमात्मा तीर्थंकरदेव हुए परन्तु उन्हें अभी मन के दो योग होते हैं। सत्य और व्यवहार। समझ में आया? योग-बोग आत्मा में नहीं। वह तो सम्यक् जहाँ भान हुआ, तब से ही नहीं है। परन्तु संयोगरूप से है, उसका यहाँ ज्ञान कराते हैं। समझ में आया? भगवान की वाणी में ॐ ध्वनि—आवाज निकलती है। वह सत्य और व्यवहार, यह दो प्रकार की वाणी तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी को होती है। यह तो बिना भान के समझे नहीं, जैन वाडा में जन्मने पर भी। तीर्थंकर कैसे होते हैं और अरिहन्त कैसे होते हैं (उसकी खबर न हो और) हम भगवान को मानते हैं। उसकी बात चलती है। समझ में आया? मन के दो योग होते हैं। वैसे वाणी के भी दो योग होते हैं। सत्य भाषा और व्यवहार। मन में भी उसके कारण सत्य व्यवहार व्यवहार से है। काययोग का कम्पन है न?

काययोग औदारिक इस प्रकार पाँच योग हैं,... भगवान को काययोग होता है। शरीर का योग होता है न कम्पन? **जब समुद्घात करे, तब औदारिकमिश्र और कार्माण ये दो मिलकर सात योग हैं।** लो! काययोग में औदारिक यह पाँच हुए न? दो

मन के, दो वचन के और एक औदारिक के, ऐसे पाँच। जब समुदघात करे, (तब) आत्मा के प्रदेश लोक प्रमाण फैलते हैं। वेदनीय, आयुष्य और नाम, गोत्र। आयुष्य प्रमाण स्थिति करने के लिये ऐसा सहज हो जाता है। आत्मा के प्रदेश हैं, वे फैल जाते हैं। देखो! ऐसी तीर्थंकर की पहिचान है। ऐसे के ऐसे तीर्थंकर और परमात्मा कहे। परन्तु साथ में कितनी पुण्य प्रकृति, स्थिति (होती है), (किस) योगवाला जीव होता है, उसकी जिसे खबर नहीं, उसे तो तीर्थंकर के स्वरूप की भी खबर नहीं और जिसे-जिसे मान लेता है कि यह भगवान हो गये, लो! नग्न हो और कुछ हो गया हो तो कहे भगवान हो गये। ऐसे परमेश्वर हो गये।

मुमुक्षु : इसके अतिरिक्त के दूसरे भगवान नहीं हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : होते ही नहीं, ऐसा कहते हैं। दरबार! ऐसा जिसे पूर्ण स्वरूप प्रगट हुआ हो, उसे केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्णानन्द, अनन्त आनन्द, अनन्त बल वह तो आत्मा के गुण परन्तु उस शरीर में कैसा होता है, उसकी साथ में बात करते हैं। समझ में आया?

ऐसे जिसे औदारिक आदि पाँच योग होते हैं। लो! समुद्घात के समय सात होते हैं। **वेद – तीनों का ही अभाव है;...** वेद तीन नहीं होते। स्त्री, पुरुष और नपुंसक। परमात्मा को तीनों वेद नहीं होते। वे तो वीतराग, (उनसे) रहित हो गये अन्दर। शरीर का-वेद का आकार होता है। शरीर का-पुरुष का आकार होता है। अन्दर में वेदरहित निर्मल पूर्ण आनन्द सर्वज्ञपद केवलज्ञान प्रगट हुआ है। उसे परमात्मा कहा जाता है। **कषाय – पच्चीस सब ही प्रकार का अभाव है;...** पच्चीस ही नहीं है। कषाय पच्चीस प्रकार की है न? अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान आदि, वह एक भी नहीं है। अविकारी दशा (हो गयी है)। सर्वज्ञ अकषाय वीतरागी दशा पूर्ण हो गयी है। उन्हें अरिहन्त और तीर्थंकर कहा जाता है। और **ज्ञान – आठ में केवलज्ञान है;...** पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान, ऐसे ज्ञान की दशा के आठ भेद हैं। उनमें उन्हें केवलज्ञान एक ही होता है। चार ज्ञान नहीं होते और अज्ञान नहीं होते। केवलज्ञान त्रिकाल एक समय में तीन काल जाने। देखो! उस मार्गणा का निषेध किया है। मार्गणा आत्मा को नहीं होती। पहले निषेध किया समयसार में। यहाँ कहते हैं कि वह वस्तु में नहीं परन्तु पर्याय में ऐसे भेद होते हैं। गजब बात! केवलज्ञान होता है।

संयम सात में एक यथाख्यात है;... चारित्र होता है। संयम के सात भेद हैं। असंयम, संयमासंयम और पाँच संयम ऐसे सात। यथाख्यात। जैसा स्वरूप है, वैसी स्थिरता। शान्ति, आनन्द पूर्ण प्रगट हो गया। देह होने पर भी, वाणी होने पर भी, विहार होने पर भी। समझ में आया ? **दर्शन चार में एक केवलदर्शन है;...** भगवान को दर्शन चार नहीं होते। चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल। दर्शन के चार भेद हैं। दर्शन अर्थात् देखना। उनके चार भेद में भगवान को केवलदर्शन एक ही होता है।

ऐसा यदि अरिहन्त का स्वरूप गुण से जाने और बाह्य के योग से पुण्यप्रकृति ऐसी होवे तो वे तीर्थंकर होते हैं और उनके गुण जो हैं, उन्हें जाने तो ऐसा ही मैं हूँ, ऐसे अपने आत्मा को उनके साथ मिलावे। मैं भी अरिहन्त आत्मा जैसा आत्मा हूँ। ऐसे गुणवाला हूँ— शक्ति से और पर्याय में अपूर्णता है, तो वह अपूर्णता द्रव्यस्वभाव के आश्रय से अपूर्णता छोड़कर पूर्णता होती है, ऐसे अरिहन्त के गुण के साथ आत्मा को मिलावे तो उस आत्मा का ज्ञान यथार्थ हो और यथार्थ होकर समकित पाकर केवलज्ञान प्राप्त करे।

लेश्या... इस लेश्या के छह प्रकार हैं। जिससे कर्म बँधे। क्लेश... क्लेश। **छह में एक शुक्ल जो योगनिमित्त है;...** योग है न, इसलिए उसे शुक्ललेश्या व्यवहार से कहा जाता है। यहाँ कहे, लेश्या-बेश्या उदय में-आत्मा में है ही नहीं। परन्तु संयोग में उसकी अवस्था में ऐसे प्रकार होते हैं। और **भव्य दो में एक भव्य है;...** भव्य-अभव्य आत्मा नहीं, ऐसा कहा उसमें। वस्तुदृष्टि से तो भव्य-अभव्य है ही नहीं। यह तो पर्याय में— अवस्था में यह भव्य जीव होता है केवलज्ञानी। भव्य-अभव्य जीव के दो प्रकार हैं। केवलज्ञानी भव्य जीव (को) होता है। समझ में आया ?

सम्यक्त्व छह में क्षायिक सम्यक्त्व है;... समकित के छह भेद हैं। उसमें क्षायिक समकित होता है, पर्याय में। जो समकित की दशा पूर्ण आत्मा की प्रतीति, अनुभव से हुई है, वह दशा वहाँ रहती है और सिद्ध में भी वह चालू रहती है। **संज्ञी दो में संज्ञी है, वह द्रव्य से हैं भाव से क्षयोपशमरूप भावमन का अभाव है;...** संज्ञीपना, उन्हें मन का तो अभाव है। बाह्य में जरा है। **आहारक अनाहारक दो में 'आहारक' है...** लो! आहारक किसका ? उन्हें कवलाहार नहीं होता। नोकर्म के रजकण उन्हें समय-समय में

आते हैं। कवल (ग्रास) उन्हें नहीं होता। भगवान अरिहन्त हुए, उन्हें कवलाहार, पानी, रोग नहीं होता। भगवान खाते नहीं, भगवान पीते नहीं।

मुमुक्षु : भगवान भूखे रहे हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भूखे नहीं। आनन्द की तृप्ति है। अनन्त आनन्द... आनन्द... आनन्द... जहाँ प्रगट हुआ है। अमृत का सागर जहाँ अन्दर में डोल रहा है। भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप सत् ज्ञान और आनन्द का भण्डार आत्मा, वह अन्दर प्याला फटकर, पाताल कुआँ फट गया है। उनकी दशा में अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव है। उन्हें यह दुःख, क्षुधा और तृषा नहीं होती। शरीर होने पर भी क्षुधा-तृषा नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : भोग...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब गप्प। दरबार! उससे पहिचाना जाता है। ऐसे तो बिना भान के सब हैं भगवान। आता है न क्या उसमें नहीं ? 'गढडा' में... बोले। 'जमोने श्रावक जीवन मोरारी...' बोले। गढडा में बोले। बहुत सुना है। वे स्वामी नारायण बोले न ? 'जमोने थाळ जीवन मोरारी...' फिर वह सब बनाया हो। पूड़ी बनायी हो, हलवा बनाया हो, ऐसा नाम दे। भगवान ऐसे नहीं होते। समझ में आया ? भगवान को भोग नहीं होता और आहार नहीं होता। जीवन मोरारी... बहुत गाते हैं। वहाँ गढडा में स्वामी नारायण का मन्दिर है न बड़ा ? बहुत गाते हैं। ऐसे भगवान नहीं होते। सुन न!

भगवान पूर्ण आत्मा की शक्ति अमृत के सागर जहाँ प्रस्फुटित हो गये हैं। अनन्त आनन्द आता है। वह इच्छा नहीं, राग नहीं, वाणी भी वाणी के कारण से स्वतन्त्र निकलती है। शरीर भी स्वतन्त्र उसके कारण से विहार, गति करता है। उसके आत्मा में कुछ है नहीं। आहाहा! उसे आहार नहीं होता। समझ में आया ? **नोकर्मवर्गणा अपेक्षा है, किन्तु कवलाहार नहीं है और समुद्घात करे तो 'अनाहारक' भी है,...** आहारक भी नहीं, ऐसा कहते हैं। समुद्घात के समय तो यह कवलाहार तो नहीं परन्तु वह कर्म का आहार भी नहीं। उस समय नहीं, ऐसा कहते हैं। समुद्घात के समय।

इस प्रकार दोनों हैं। इस प्रकार मार्गणा अपेक्षा अरहन्त का स्थापन जानना। अरिहन्त की स्थापना ऐसी होती है। भगवान की मूर्ति की स्थापना में ऐसा नहीं होता। वहाँ

तो भगवान की मूर्ति होती है। शुभभाव हो, भक्ति का निमित्त है। भक्ति का निमित्त शुभभाव में। अरिहन्त की स्थापना तो उनके शरीर में ऐसी गति आदि हो, उसे स्थापना कहा जाता है। समझ में आया?

गाथा-३४

आगे पर्याप्ति द्वारा कहते हैं –

आहारो य सरीरो इंदियमणआणपाणभासा य।
पज्जत्तिगुणसमिद्धो उत्तमदेवो हवइ अरहो ।।३४।।

आहारः च शरीरं इन्द्रियमनआनप्राणभाषाः च।
पर्याप्तिगुणसमृद्धः उत्तमदेवः भवति अर्हन् ।।३४।।

आहार तन इन्द्रिय सुभाषा आनपान सु मन कही।
पर्याप्ति गुण समृद्ध उत्तम देव हैं अरहंत ही।।३४।।

अर्थ – आहार, शरीर, इन्द्रिय, मन, आनप्राण अर्थात् श्वासोच्छ्वास और भाषा इस प्रकार छह पर्याप्ति हैं, इस पर्याप्ति गुण द्वारा समृद्ध अर्थात् युक्त उत्तम देव अरहन्त हैं।

भावार्थ – पर्याप्ति का स्वरूप इस प्रकार है – जो जीव एक अन्य पर्याय को छोड़कर अन्य पर्याय में जावे तब विग्रह गति में तीन समय उत्कृष्ट बीच में रहे, पीछे सैनी पंचेन्द्रिय में उत्पन्न हो। वहाँ तीन जाति की वर्गणा का ग्रहण करे, आहारवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, इस प्रकार ग्रहण करके 'आहार' जाति की वर्गणा से तो आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास – इस प्रकार चार पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त काल में पूर्ण करे, तत्पश्चात् भाषाजाति मनोजाति की वर्गणा से अन्तर्मुहूर्त में ही भाषा, मनःपर्याप्ति पूर्ण करे, इस प्रकार छहों पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण करता है तत्पश्चात् आयुपर्यन्त पर्याप्त ही कहलाता है और नोकर्मवर्गणा का ग्रहण करता ही रहता है। यहाँ आहार नाम कवलाहार का नहीं जानना। इस प्रकार तेरहवें गुणस्थान में भी अरहन्त के पर्याप्ति पूर्ण ही है, इस प्रकार पर्याप्ति द्वारा अरहन्त की स्थापना है।।३४।।

गाथा-३४ पर प्रवचन

आगे पर्याप्ति द्वारा कहते हैं – अब पर्याप्ति कितनी होती है, वह कहते हैं।

आहारो य सरीरो इंदियमणआणपाणभासा य।
पज्जत्तिगुणसमिद्धो उत्तमदेवो हवइ अरहो॥३४॥

ऐसे उत्तम देव अरिहन्त सर्वज्ञ तीर्थंकर होते हैं।

अर्थ – आहार, शरीर, इन्द्रिय, मन, आनप्राण अर्थात् श्वासोच्छ्वास और भाषा, इस प्रकार छह पर्याप्ति हैं,... माता के उदर में तीर्थंकर का जीव केवलज्ञान होने से पहले पूर्व भव में से आता है, तब अभी सर्वज्ञ नहीं है। तब तो अभी तीन ज्ञान है। परन्तु तब उन्हें माता के उदर में छह पर्याप्ति बँधती है, ऐसा कहते हैं। वे छह पर्याप्ति। **इस पर्याप्ति गुण द्वारा समृद्ध अर्थात् युक्त उत्तम देव अरहन्त हैं।** ऐसे अरिहन्त परमात्मा को छह पर्याप्ति कही जाती है। अब जरा स्वरूप बताते हैं।

भावार्थ – पर्याप्ति का स्वरूप इस प्रकार है – जो जीव एक अन्य पर्याय को छोड़कर... अन्य पर्याय को प्राप्त हो। एक शरीर में से छूटकर दूसरे शरीर में आवे। भगवान भी जब आये थे, तब अभी पूर्ण नहीं थे, तब पूर्व भव में से आये थे। ऋषभदेव भगवान आदि स्वर्ग में से आये थे और यह श्रेणिक राजा आयेंगे, वे नरक में से आयेंगे। आगामी चौबीसी में श्रेणिक राजा पहले तीर्थंकर होंगे, वे अभी पहले नरक में हैं। नरक का आयुष्य बँध गया था। तीर्थंकरगोत्र बाँधा। समकिती हुए। परन्तु पूर्व का आयुष्य बँध गया, इसलिए थोड़ी स्थिति—चौरासी हजार वर्ष की रह गयी। पहले नरक में है। वहाँ से निकलकर तीन लोक के नाथ तीर्थंकर होंगे। उन्हें छह पर्याप्ति माता के उदर में बँधेगी। अब इसका स्पष्टीकरण करते हैं।

एक भव में से दूसरे भव में आवे, तब पर्याप्त की पर्याय को प्राप्त हो **तब विग्रह गति में तीन समय उत्कृष्ट बीच में रहे,...** एक भव में से आत्मा दूसरे भव में आवे, एक समय, दो समय, तीन समय, वहाँ भी ... असंख्य समय हो। उसमें तीन समय मार्ग में रहे। कोई जीव दूसरे भव में से निकलकर इस भव में आवे, तब तीन समय (जाते हैं)। क बोले

उसमें असंख्य समय जाते हैं। उसमें किसी को तीन समय उत्कृष्ट मार्ग में होते हैं। कहो, समझ में आया?

पीछे सैनी पंचेन्द्रिय में उत्पन्न हो। यह कहते हैं न माता के गर्भ में आवे, तब पहले तो... क्या कहलाता है? ऐसा कहते हैं कितने ही? क्या कहलाता है? सामने। वहाँ रहे। फिर आवे माता के गर्भ में। झूठ है।

मुमुक्षु : नेवा ऊपर।

पूज्य गुरुदेवश्री : नेवा ऊपर आवे। नेवा ऊपर रहे और फिर माता के उदर में आवे। पाँच महीने में आवे। माता के गर्भ में पाँच महीने में जीव आवे। यह सब झूठी बातें हैं। पहले ही समय में वहाँ होता है। वह भव छोड़कर इस भव में बीच में कोई तीन समय रहे और कोई तुरन्त ही यहाँ आता है। कहा न, एक बार कहा था। भगवती आराधना में है। तीर्थंकर का जीव भी उस भव में से स्वर्ग में से आयेगा और श्रेणिक राजा नरक में से आयेंगे। माता के गर्भ में पहला तो एक ऋतु का बिन्दु और वीर्य का बिन्दु। दो बिन्दु हों, उसमें जीव आवे। यह शरीर की उत्पत्ति ऐसे हुई है। आत्मा तो अनादि है। आत्मा की कोई उत्पत्ति, आत्मा को जन्म नहीं है। यह शरीर जो नया होता है, उसमें रक्त, माता का ऋतु और पिता का वीर्य, इन दो बिन्दु में जीव पहला आवे, तब वहाँ से मासिक गिना जाता है। सात दिन तक तो वह अन्दर हिले। प्रवाही है इसलिए। दूसरे सात दिन में काला होता है। तीसरे सात दिन में कठिन होता है। यह शरीर की उत्पत्ति। अन्दर आत्मा तो अरूपी भगवान चैतन्य है। ऐसे करते-करते बड़ा होता है। पाँच महीने पश्चात् यह नाक और कान ऐसे आकार जरा-जरा फूटते हैं। माता के गर्भ में पाँच महीने में आहार ले। जीव तो पहले से आया है। माता खावे न जरा, खाये और जरा ऊँचा हो तो लोग कहे अब पाँच महीने में जीव आया है। ऐसा कोई सात महीने में जन्मे, कोई नौ महीने में जन्मे, कोई आठ में भी जन्मता है। आठ में जन्मे वे प्राय: मर जाते हैं। सात के और नौ के जन्मे हुए रहते हैं।

मुमुक्षु : गर्भाशय के दु:ख तो बहुत हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:ख अनन्त हैं, दु:ख उसके। भगवान को कुछ दु:ख नहीं। वे तो स्फटिक रत्न जैसा अन्दर हो। इन्द्र आकर माता के गर्भ को साफ करे। सब बहुत

अलौकिक बातें हैं। तीर्थंकर और सर्वज्ञ जिस भव में होनेवाले हों, उनके तो इन्द्र आकर उनकी माता को छह महीने पहले साफ करते हैं। जैसे राजा आवे और फिर लोग सामने आकर मकान-बकान, गाँव साफ करते हैं न? वैसे इन्द्र आकर माता के गर्भ को साफ करते हैं। उसमें जब भगवान पधारे, नौ महीने रहे। यह तो अलौकिक बातें हैं।

तीन ज्ञान, आत्मा का ज्ञान लेकर आते हैं, अनुभव को लेकर आते हैं। तीर्थंकर का आत्मा तो आत्मा का समकित लेकर आता है। आहाहा! अन्दर में भान है। माता के गर्भ में आवे तो उन्हें आत्मा का भान है। आत्मा का वेदन आनन्द का है। आहाहा! नौ महीने में जब जन्म होता है, तब वहाँ पंचेन्द्रिय उगे। **वहाँ तीन जाति की वर्गणा का ग्रहण करे,...** तीन जाति का। पंचेन्द्रियरूप से जब माता के गर्भ में उपजें तब **आहारवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा,...** परमाणु रजकण सहित तीन प्रकार के वहाँ ग्रहण (होते हैं)। ग्रहण करते हैं, इसका अर्थ वहाँ होते हैं। यह तो व्यवहार से समझाना है न।

'आहार' जाति की वर्गणा से तो आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास - इस प्रकार चार पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त काल में पूर्ण करे,... वहाँ माता के गर्भ में। आहाहा! भगवान तो अरूपी चैतन्यघन है। परन्तु उसके रक्त और वीर्य के बिन्दु में इस प्रकार का आकार होने लगे तो अन्तर्मुहूर्त में दो घड़ी के अन्दर चार पर्याप्ति बँधती है। आहार, शरीर, पाँचों इन्द्रियाँ बँध जाती हैं। और श्वास। आहाहा!

तत्पश्चात् भाषाजाति मनोजाति की वर्गणा से... दो वर्गणा। पहली चार कही। आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वास। पश्चात् भाषा बँधती है, पश्चात् **मनोजाति की वर्गणा से अन्तर्मुहूर्त में ही भाषा, मनःपर्याप्ति पूर्ण करे, इस प्रकार छहों पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण करता है...** पूर्ण करे अर्थात् मानो आत्मा पूर्ण करे उसकी भाँति। भाषा क्या हो? इन परमाणु में छह पर्याप्ति आहार लेने की, शरीर होने की, इन्द्रिय होने की इत्यादि। श्वास होने की, भाषा और मन। उनके रजकणों में उस प्रकार की अवस्था उत्पन्न होती है।

यहाँ आहार नाम कवलाहार का नहीं जानना। लो! अब भगवान को—केवली को आहार की छह पर्याप्ति कही, उसमें भोजन करे, पानी पीवे, यह भगवान को नहीं होता। **इस प्रकार तेरहवें गुणस्थान में भी अरहन्त के पर्याप्ति पूर्ण ही है,...** लो! तेरहवें गुणस्थान में अरिहन्त की पर्याप्ति (पूर्ण है)। **इस प्रकार पर्याप्ति द्वारा अरहन्त की**

स्थापना है। यह स्थापना कही। ऐसा उन्हें होता है। स्थापित किया अर्थात् ऐसा वहाँ होता है।

गाथा-३५

आगे प्राणद्वारा कहते हैं –

पंच वि इंदियपाणा मणवयकाएण तिण्णि बलपाणा।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दह पाणा।।३५।।

पंचापि इंद्रियप्राणाः मनोवचनकायैः त्रयो बलप्राणाः।
आनप्राणप्राणाः आयुष्कप्राणेन भवंति दशप्राणाः।।३५।।

हैं पाँच इन्द्रिय प्राण मन वच काय बल त्रय प्राण हैं।
श्वासोच्छ्वास रु प्राण आयुष जिन–कथित दश प्राण हैं।।३५।।

अर्थ – पाँच इन्द्रियप्राण, मन–वचन–काय तीन बलप्राण, एक श्वासोच्छ्वास प्राण और एक आयुप्राण ये दस प्राण हैं।

भावार्थ – इस प्रकार दस प्राण कहे उनमें तेरहवें गुणस्थान में भावइन्द्रिय और भावमन का क्षयोपशमभावरूप प्रवृत्ति नहीं है इस अपेक्षा तो कायबल, वचनबल, श्वासोच्छ्वास और आयु – ये चार प्राण हैं और द्रव्य अपेक्षा दसों ही हैं। इस प्रकार प्राण द्वारा अरहन्त का स्थापन है।।३५।।

गाथा-३५ पर प्रवचन

आगे प्राणद्वारा कहते हैं – अब प्राण बतलाते हैं, प्राण। तीर्थंकर को प्राण कितने होते हैं।

पंच वि इंदियपाणा मणवयकाएण तिण्णि बलपाणा।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दह पाणा।।३५।।

पाँच तो इन्द्रिय के प्राण। यह पाँच। स्पर्श, आँख, नाक, जीभ और कान।

अर्थ - पाँच इन्द्रियप्राण, मन-वचन-काय तीन बलप्राण, एक श्वासोच्छ्वास प्राण और एक आयुप्राण... दस प्राण।

भावार्थ - इस प्रकार दस प्राण कहे, उनमें तेरहवें गुणस्थान में भावइन्द्रिय और भावमन का... तो अभाव है। क्या कहा? भावेन्द्रिय अर्थात् खण्ड-खण्ड इन्द्रिय से जानना, वह तो वहाँ है नहीं। अखण्ड केवलज्ञान हो गया। भावेन्द्रिय का अभाव होता है तथा भावमन का अभाव होता है। भावमन अर्थात् क्षयोपशम भाव नहीं। ऐसा। समझ में आया? देखो! यह तो अरिहन्त तीर्थंकर की दशा ऐसी होती है। अकेले गुण, परन्तु गुण के साथ ऐसी दशा, संयोग ऐसे होते हैं, उसे यहाँ स्थापना कहा जाता है। बोधपाहुड़ में बात ही इस प्रकार की कही है।

भावइन्द्रिय और भावमन का क्षयोपशमभावरूप प्रवृत्ति नहीं है, इस अपेक्षा तो कायबल, वचनबल, श्वासोच्छ्वास और आयु - ये चार प्राण हैं... भगवान को तीन प्राण में कायबल है, वचनबल है और श्वास तथा आयु है। लो! वचनबल। यह योग्यता है न उन्हें। भाषा... कायबल। काय चलती है न जरा? और श्वास हो चार। शरीर है, तब तक श्वास होती है। आयु होती है, देह की स्थिति होती है। यह चार प्राण। दस प्राण में वास्तव में तो चार प्राण होते हैं। भाव अपेक्षा से। द्रव्य अपेक्षा से दस ही होते हैं। पाँच जड़ इन्द्रिय है न बाहर? पाँच इन्द्रिय... होती है। मन-वचनवर्गणा होती है।

इस प्रकार प्राण द्वारा अरहन्त का स्थापन है। यह तीर्थंकर ऐसे प्राणवाले होते हैं, ऐसा स्थापित किया। अन्तर में तो आनन्दकन्द और केवलज्ञानमय हैं। संयोग में ऐसी स्थिति खड़ी है। समझ में आया? दूसरे प्रकार से यह सब वर्णन है। अरिहन्त भगवान कोई पुरुष हो गये होंगे। अरिहन्त कोई पुरुष हो गया होगा। पुरुष नहीं; अरिहन्त तो गुणरूप दशा है। पुरुष तो यह पंचेन्द्रिय है। अब इसमें से उन्हें गुण प्रगट हुए हैं, अनन्त आनन्द और केवलज्ञान आदि ऐसे अतीन्द्रिय गुणवाले हैं। और संयोग में ऐसी स्थिति उन्हें पुण्य के कारण होती है। फिर जाये तो अशरीरी हो जाये। उनकी बात नहीं है। सिद्ध की यहाँ बात नहीं है।

गाथा-३६

आगे जीवस्थानद्वारा कहते हैं –

मणुयभवे पंचिंदिय जीवट्ठाणेसु होइ चउदसमे।
एदे गुणगणजुत्तो गुणमारूढो हवइ अरहो।।३६।।

मनजुभवे पंचेन्द्रियः जीवस्थानेषु भवति चतुर्दशे।
एतद्गुणगणयुक्तः गुणमारूढो भवति अर्हन्।।३६।।

वे चौदवें जीव-थान में हैं मनुज पंचेन्द्रिय सभी।
इन गुण-गणों से युक्त गुण आरूढ़ हैं अरहंत ही।।३६।।

अर्थ – मनुष्यभव में पंचेन्द्रिय नाम के चौदहवें जीवस्थान अर्थात् जीवसमास उसमें इतने गुणों के समूह से युक्त तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त अरहन्त होते हैं।

भावार्थ – जीवसमास चौदह कहे हैं – एकेन्द्रिय सूक्ष्म और बादर २. दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चोइन्द्रिय ऐसे विकलत्रय-३, पंचेन्द्रिय असैनी सैनी २, ऐसे सात हुए, ये पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से चौदह हुए। इनमें चौदहवाँ 'सैनी पंचेन्द्रिय जीवस्थान' अरहंत के हैं। गाथा में सैनी का नाम न लिया और मनुष्यभव का नाम लिया सो मनुष्य सैनी ही होते हैं, असैनी नहीं होते हैं, इसलिए मनुष्य कहने से 'सैनी' ही जानना चाहिए।।३६।।

इस प्रकार जीवस्थानद्वारा 'स्थापना अरहन्त' का वर्णन किया।

गाथा-३६ पर प्रवचन

अब जीवस्थान। चौदह जीव के स्थान हैं। उनमें किस स्थान में भगवान होते हैं, ऐसा कहते हैं।

मणुयभवे पंचिंदिय जीवट्ठाणेसु होइ चउदसमे।
एदे गुणगणजुत्तो गुणमारूढो हवइ अरहो।।३६।।

लो ! यह स्थापना पूरी करते हैं।

अर्थ – मनुष्यभव में पंचेन्द्रिय नाम के चौदहवें जीवस्थान... कहते हैं। जीव के चौदह भेद का एक भेद है वहाँ। पंचेन्द्रिय मनुष्य का। **जीवसमास उसमें इतने गुणों के समूह से युक्त तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त अरहन्त होते हैं। जीवसमास चौदह कहे हैं –** जीव का समास—जत्था। **एकेन्द्रिय सूक्ष्म और बादर...** एकेन्द्रिय जीव में सूक्ष्म-बादर होते हैं। **दोइन्द्रिय,...** जीव। ईयल आदि। **तेइन्द्रिय,...** चींटी इत्यादि। **चोइन्द्रिय...** मक्खी इत्यादि। **विकलत्रय-पंचेन्द्रिय असैनी-सैनी ऐसे सात हुए, ये पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से चौदह हुए। इनमें चौदहवाँ 'सैनी पंचेन्द्रिय जीवस्थान' अरहन्त के हैं।** एक ओर कहे मार्गणा-फार्गणा कुछ नहीं। निश्चय वस्तु में नहीं। परन्तु संयोग में ऐसा भाव केवली हुए होने पर भी होता है। यह उनका वास्तविक स्वरूप बतलाते हैं। जो कोई अरिहन्त कहलावे और जो कोई तीर्थंकर हम भगवान हो गये, वे सब खोटे हैं, ऐसा सिद्ध करते हैं। सच्ची परमात्मदशा जिन्हें पूर्ण हुई हो, उन्हें तो शरीर सहित की ऐसी दशा होती है।

गाथा में सैनी का नाम न लिया और मनुष्य का नाम लिया सो मनुष्य सैनी ही होते हैं, असैनी नहीं होते हैं, इसलिए मनुष्य कहने से 'सैनी' ही जानना चाहिए। यह गुण से सहित स्थापना अरिहन्त का वर्णन किया। यह तो स्थापना अरिहन्त का वर्णन किया यह सब। यह स्थापना दूसरी। भगवान की मूर्ति, वह तो व्यवहार स्थापना है। यह तो परमात्मदशा तीर्थंकर को प्रगट हुई है, उनके शरीर में ऐसा होता है, अतिशयादि हों, उन्हें यहाँ स्थापनारूप से कहा जाता है।

गाथा-३७ से ३९

आगे द्रव्य की प्रधानता से अरहन्त का निरूपण करते हैं –

जरवाहिदुक्खरहियं आहारणिहारवज्जियं विमलं।
सिंहाण खेले सेओ णत्थि दुगुंछा य दोसो य।।३७।।
दस पाणा पज्जती अट्ठसहस्सा य लक्खणा भणिया।
गोखीरसंखधवलं मंसं रुहिरं च सव्वंगे।।३८।।
एरिसगुणेहिं सव्वं अइसयवंतं सुपरिमलामोयं।
ओरालियं च कायं णायव्वं अरहपुरिसस्स।।३९।।

जराव्याधिदु:खरहित: आहारनीहारवर्जित: विमल:।
सिंहाण: खेल: स्वेद: नास्ति दुर्गन्ध च दोष: च।।३७।।
दश प्राणा: पर्याप्तय: अष्टसहस्राणि च लक्षणानि भणितानि।
गोक्षीरशंखधवलं मांसं रुधिरं च सर्वांगे।।३८।।
ईदृशगुणै: सर्व: अतिशयवान् सुपरिमलामोद:।
औदारिकश्च काय: अर्हत्पुरुषस्य ज्ञातव्य:।।३९।।

वे जरा व्याधि दुख–रहित भोजन–निहार–रहित विमल।
नहिं श्लेष्म थूक पसेव ग्लानि दोष अति पावन विमल।।३७।।
दश प्राण पर्याप्ति छहों इक सहस वसु लक्षण कहे।
सर्वांग मांस रुधिर धवल गोक्षीर शंख समान है।।३८।।
ऐसे गुणों संपन्न अतिशयवान परिमल महकती।
काया परम औदारिकी होती सभी अरहंत की।।३९।।

अर्थ – अरहन्त पुरुष के औदारिक काय इस प्रकार होता है, जो जरा, व्याधि और रोग सम्बन्धी दु:ख उसमें नहीं है, आहार–नीहार से रहित है, विमल अर्थात् मलमूत्र रहित है; सिंहाण अर्थात् श्लेष्म, खेल अर्थात् थूक, पसेव और दुर्गन्ध अर्थात् जुगुप्सा, ग्लानि और दुर्गन्धादि दोष उसमें नहीं है।।३७।।

दस तो उसमें प्राण होते हैं, वे द्रव्यप्राण हैं, पूर्ण पर्याप्ति है, एक हजार आठ लक्षण हैं और गोक्षीर अर्थात् कपूर अथवा चन्दन तथा शंख जैसा उसमें सर्वांग धवल रुधिर और मांस है।।३८।।

इस प्रकार गुणों से संयुक्त सर्व ही देह अतिशयसहित निर्मल है, आमोद अर्थात् सुगन्ध जिसमें इस प्रकार अरहन्त पुरुष औदारिक देह के है।।३९।।

***भावार्थ* – यहाँ द्रव्यनिक्षेप नहीं समझना। आत्मा से जुदा ही देह की प्रधानता से 'द्रव्य अरहन्त का' वर्णन है।।३७–३८–३९।।**

इस प्रकार द्रव्य अरहन्त का वर्णन किया।

गाथा–३७ से ३९ पर प्रवचन

आगे द्रव्य की प्रधानता से... नाम आ गया था। स्थापना आयी, अब द्रव्य। यह द्रव्य निक्षेप नहीं। भविष्य में होनेवाली योग्यता, वह यहाँ नहीं। यहाँ तो शरीर को द्रव्यप्रधान कहा है। भगवान आत्मा तो अन्दर पूर्ण परमात्मा है, परन्तु उसका शरीर हो, उसे यहाँ द्रव्य से उसका द्रव्य उसे कहा जाता है।

जरवाहिदुक्खरहियं आहारणिहारवज्जियं विमलं।
सिंहाण खेले सेओ णत्थि दुगुंछा य दोसो य।।३७।।
दस पाणा पज्जती अट्ठसहस्सा य लक्खणा भणिया।
गोखीरसंखधवलं मंसं रुहिरं च सव्वंगे।।३८।।
एरिसगुणेहिं सव्वं अइसयवंतं सुपरिमलामोयं।
ओरालियं च कायं णायव्वं अरहपुरिसस्स।।३९।।

अर्थ – अरहन्त पुरुष के औदारिक काय इस प्रकार होता है,... उनका औदारिक शरीर हो, वह ऐसा होता है कि **जरा,...** नहीं होती उन्हें। शरीर में वृद्धावस्था नहीं दिखती। ऐसा का ऐसा शरीर दिखता है। समझ में आया? अभी यहाँ भगवान नहीं। महाविदेह में विराजते हैं। अरिहन्त सीमन्धर भगवान तीर्थंकररूप से महाविदेह में पाँच सौ धनुष का देह है। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। ऐसे सब गुण और संयोग से विराजमान हैं।

जरा,... भगवान के शरीर में वृद्धावस्था नहीं होती। **व्याधि...** रोग नहीं होता। व्याधि अर्थात् रोग। भगवान के शरीर में रोग नहीं होता। श्वेताम्बर कहते हैं न उन्हें रोग हुआ था। क्या कहलाता है ? ...दस्त। लोहीखण्डवाला। यह सब कल्पित है। भगवान को ऐसा नहीं होता। आहाहा!

इन सम्बन्धी दुःख उसमें नहीं है,... दुःख नहीं है। शरीर में रोग ही नहीं है। अतीन्द्रिय आनन्दमय है। जिसे अतीन्द्रिय दशा आत्मा की पूर्ण प्रगट हुई। **आहार-नीहार से रहित है,...** तीर्थंकर हैं, वे जन्म से मल-मूत्र से रहित होते हैं। आहार होता है। केवलज्ञान होने के पश्चात् उन्हें आहार भी नहीं होता। निहार, दस्त या मल-मूत्र उन्हें नहीं होते। आहाहा! ऐसे अरिहन्त तीर्थंकर कहलाते हैं।

मुमुक्षु : ऐसा शरीर...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उन्हें होता है। उनका शरीर का स्वरूप ऐसा होता है, यह कहते हैं। जब तक आयुष्य हो वहाँ तक। आयुष्य छूटे तो... **आहार-नीहार से रहित है,...** भगवान।

मुमुक्षु : विहार होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विहार नहीं, निहार। निहार अर्थात् जंगल जाना—दस्त। ऐसा उन्हें नहीं होता।

विमल अर्थात् मलमूत्र रहित है; सिंहाण अर्थात् श्लेष्म, खेल अर्थात् थूक, पसेव... नहीं होता। तीर्थंकर भगवान केवलज्ञानी परमात्मा देहसहित जब हो, उन्हें थूक नहीं होता, पसीना नहीं होता। **दुर्गन्ध अर्थात् जुगुप्सा, ग्लानि और दुर्गन्धादि दोष उसमें नहीं है।** दुर्गन्ध नहीं होती। सुगन्ध.. सुगन्ध... सुगन्ध... शरीर में सुगन्ध। ऐसी तो जिनके शरीर की दशा होती है। आत्मा तो पूर्ण परमात्मा हुआ। ऐसे शरीर में उसके वास को वहाँ रहना दिखता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरिहन्त को भी पहिचाना नहीं, कहते हैं।

उसमें तो आता है न, प्रवचनसार में। यदि अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने—उनका-अरिहन्त का आत्मा, उनके गुण, उनकी पर्याय को जाने तो आत्मा के साथ

आत्मा का ज्ञान हो। आत्मा को मिलाये कि अहो! इनके जैसा ही मैं हूँ। इनके गुण जैसी शक्तियाँ मुझमें है। मेरी पर्याय में अपूर्णता है परन्तु द्रव्य का आश्रय लूँ तो अपूर्णता टलकर पूर्ण होऊँ। ऐसा अरिहन्त का ज्ञान होने से आत्मा का ज्ञान होता है।

दस तो उसमें प्राण होते हैं, वे द्रव्यप्राण हैं,... उसकी बात पहले आ गयी। **पूर्ण पर्याप्ति है,...** भगवान को आहार, शरीर, इन्द्रियादि परमाणु लेने की पर्याप्ति छह होती है। और **एक हजार आठ लक्षण हैं...** उनको। अरे! शरीर में छत्र, चामर और विमान और ऐसे एक हजार आठ तो लक्षण शरीर में होते हैं। ऐसा उनका शरीर होता है। समझ में आया? भगवान नाम धरावे और घोड़ी पर चढ़कर जाये, जूते पहने हों, वह भगवान नहीं होता। सम्यग्दर्शन भी नहीं, वहाँ भगवान कैसे?

मुमुक्षु : साफा बाँधा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : साफा बाँधा है। आता है न।... पहना है और ऐसी जूती पहनी है। ऐसे भगवान नहीं होते। भगवान की उसे खबर ही नहीं।

पूर्ण आत्मा जहाँ प्रगट हो और आनन्द का भाव प्रगट हुआ हो, उनका शरीर अत्यन्त वस्त्ररहित होता है, आहाररहित होता है, पानीरहित होता है, रोगरहित होता है। ऐसी बात है। ध्वनि निकले तो ॐध्वनि आवाज आवे। अपनी तरह भाषा बोले, ऐसी उन्हें आवाज नहीं होती। पूर्ण दशा प्रगटी है न? ऐसे को अरिहन्त को परमेश्वर कहा जाता है। बहुत चलता है न अभी, देखो न! राधाश्याम में कहीं आता है। राधाश्याम न? राधास्वामी? राधास्वामी। आगरा में देखो न बड़े करोड़ों रुपये के मकान, आसमानी मकान। ओहोहो! ऐसे भगवान वहाँ से आये थे और वापस वहाँ गये। उनके थी स्त्री। राधास्वामी कहते हैं। सब सुधरे हुओं को खबर नहीं होती लोगों को... इन्दौर के भी कितने ही सेठिया वहाँ जाते हैं। इस वस्तु की खबर नहीं। अरिहन्त कैसे होते हैं, तीर्थंकर परमात्मा कैसे होते हैं। णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... करे। परन्तु अरिहन्त की खबर नहीं होती। और जहाँ-तहाँ भटके फिर ऐसे हो न सुधरे हुए जैसे। बातें करके यह भगवान हो गये। अपने को तारेंगे।

कहते हैं कि अरिहन्त के शरीर में तो एक हजार आठ तो लक्षण होते हैं। उसमें है,

टीका में कहीं होंगे। टीका में नाम है। क्या नाम है, खबर है? स्त्री, वक्ष, शंख, ... कमल, स्वस्तिक, अंकुर, तोरण, चामर, श्वेत छत्र, सिंहासन, ध्वज, जति-वह सिर पर, कुम्भ, कुर्म-कछुआ, चक्र, समुद्र, सरोवर, विमान ऐसे सब नाम हैं। बहुत नाम हैं। यह आदि ... लक्षणामि। ऐसे लक्षण भगवान को होते हैं। सरस्वती, लक्ष्मी, वज्र, रतनदीप ऐसे सब चिह्न शरीर में होते हैं। टीका में है।

मुमुक्षु : थोड़े बहुत...

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़े बहुत हैं। थोड़े-थोड़े लिये, सब नाम कहाँ से आवे। एक हजार आठ में बहुत नाम हैं अपने। पुस्तक है। एक हजार और आठ लक्षण की पुस्तक है न?

मुमुक्षु : रेखा होती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर में चिह्न होते हैं। पैर में, हाथ में। पवित्र पुण्य है न? पवित्र पूरे हैं और पुण्य में भी पूरे हैं, ऐसा बताना है। वह डिब्बी अलग प्रकार की होती है। हीरा-माणिक रखा हो, वह डिब्बी अलग प्रकार की होती है, वह कोई साधारण डिब्बी नहीं होती। ऐसे अरिहन्त का आत्मा और उसका शरीर, जिसके शरीर में एक हजार आठ तो लक्षण होते हैं। आहाहा! वाड़ा में बैठे, जन्मे हों, उन्हें जिन कैसे वीतराग हों केवली तीर्थंकर, उसकी खबर नहीं होती अभी। बिना भान के कहे, हे भगवान! भला करना। शिवपद हमको देना प्रभु। भगवान कहे, तेरा शिवपद तेरे पास है। हमारे पास कुछ नहीं। हम तो उपदेश सत्य क्या है, ऐसा मार्ग का उपदेश किया है। आहाहा! भगवान के आशीर्वाद फले तो मोक्ष हो जाये। ऐसा कुछ है नहीं, ऐसा कहते हैं। उनके आशीर्वाद हों (नहीं)। वे तो वीतराग सर्वज्ञ पूर्ण परमात्मा हैं। ऐसे पुण्य प्रकृति के सम्बन्धवाले हैं।

और कहते हैं, **गोक्षीर अर्थात् कपूर अथवा चन्दन तथा शंख जैसा उसमें सर्वांग धवल रुधिर और माँस है।** जिनका रक्त सफेद होता है। लाल नहीं होता। गोक्षीर—चन्दन जैसा। शंख सरीखा। सर्वांग पूरे शरीर में सफेद रक्त। अलग प्रकार का जिनका रक्त बदल गया। आत्मा तो बदल गया। रक्त बदल गया, कहते हैं। लाल रक्त के स्थान पर सफेद रक्त। ऐसे तीर्थंकर पूर्ण स्वरूप प्राप्त परमात्मा का शरीर ऐसा होता है, ऐसा

कहते हैं। इसमें से आगे-पीछे दूसरे प्रकार से शरीर को माने तो वह अरिहन्त को पहिचानते नहीं—परमात्मा को पहिचानते नहीं।

इस प्रकार गुणों से संयुक्त सर्व ही देह अतिशयसहित निर्मल है,... पूरा देह ही निर्मल है। उनके रोम-रोम में जगत से दूसरी अतिशयता दिखती है। **आमोद अर्थात् सुगन्ध जिसमें इस प्रकार...** एक-एक गाथा के अलग अर्थ किये हैं न? पहले ३७ का किया, यह ३८ और ३९। **सुगन्ध जिसमें इस प्रकार अरहन्त पुरुष औदारिक देह के है।** सुगन्धित देह होती है। यह तो जैसे गुलाब का फूल सुगन्ध मारे, वैसा उनका शरीर सुगन्ध मारता है। ऐसा तो जिनका शरीर होता है। उन्हें यहाँ द्रव्यनिक्षेप से (समझाया है)। यह द्रव्यनिक्षेप कहा जाता है। द्रव्यनिक्षेप अर्थात् समझ में आया? वह द्रव्यनिक्षेप यहाँ नहीं समझना।

यहाँ द्रव्यनिक्षेप नहीं समझना। आत्मा से जुदा ही देह की प्रधानता से 'द्रव्य अरहन्त का' वर्णन है। लो! आत्मा से भिन्न देह है यह। उसका ऐसा स्वरूप वहाँ हो जाता है। उसका वर्णन करके द्रव्य का वर्णन किया। द्रव्यनिक्षेप का नहीं। भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हों, उन्हें तीर्थंकर कहना, वह द्रव्यनिक्षेप है। यह बात नहीं है। यह तो उनका शरीर ही ऐसा होता है, उसे द्रव्य कहा जाता है। **इस प्रकार द्रव्य अरहन्त का वर्णन किया।**

गाथा-४०

आगे भाव की प्रधानता से वर्णन करते हैं –

मयरायदोसरहिओ कसायमलवज्जिओ य सुविशुद्धो।
चित्तपरिणामरहिदो केवलभावे मुणेयव्वो॥४०॥

मदरागदोषरहितः कषायमलवर्जितः च सुविशुद्धः।
चित्तपरिणामरहितः केवलभावे ज्ञातव्यः॥४०॥

मद राग दोष रहित कषायों की मलिनता बिन पवित।
सुविशुद्ध मन परिणमन बिन केवल स्वभाव में अवस्थित।।४०।।

_अर्थ_ – केवलभाव अर्थात् केवलज्ञानरूप ही एक भाव होते हुए अरहन्त होते हैं – ऐसा जानना। मद अर्थात् मानकषाय से हुआ गर्व, राग, द्वेष अर्थात् कषायों के तीव्र उदय से होनेवाले प्रीति और अप्रीतिरूप परिणाम इनसे रहित हैं, पच्चीस कषायरूप मल उसका द्रव्यकर्म तथा उनके उदय से हुआ भावमल उससे रहित है, इसीलिए अत्यन्त विशुद्ध है–निर्मल है, चित्तपरिणाम अर्थात् मन के परिणमनरूप विकल्प से रहित है, ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशमरूप मन का विकल्प नहीं है, इस प्रकार केवल एक ज्ञानरूप वीतरागस्वरूप 'भाव अरहन्त' जानना।।४०।।

गाथा–४० पर प्रवचन

आगे भाव की प्रधानता से वर्णन करते हैं – अब भगवान आत्मा का भाव (कैसा होता है, वह कहते हैं)। ये सब गुण आये अन्दर।

मयरायदोसरहिओ कसायमलवज्जिओ य सुविशुद्धो।
चित्तपरिणामरहिदो केवलभावे मुणेयव्वो।।४०।।

अर्थ – केवलभाव अर्थात् केवलज्ञानरूप ही एक भाव होते हुए... भगवान को तो केवलज्ञान एक समय में तीन काल–तीन लोक जाने, ऐसा केवलज्ञान भाव होता है। **अरहन्त होते हैं – ऐसा जानना। मद अर्थात् मानकषाय से हुआ गर्व,...** गर्व जिन्हें होता नहीं। पूर्णानन्द प्राप्त (है, उन्हें) गर्व / अभिमान किसका? **राग, द्वेष अर्थात् कषायों के तीव्र उदय से होनेवाले प्रीति और अप्रीतिरूप परिणाम इनसे रहित हैं,...** भगवान आत्मा में राग–द्वेष (नहीं है)। यह मेरा शिष्य है और यह मेरा शत्रु है, ऐसे विकल्प भगवान को नहीं होते। दुश्मन को मारने के लिये भगवान अवतार धारण करे। भक्तों का कष्ट मिटाने (आवे)। ऐसे भगवान नहीं होते, कहते हैं।

मुमुक्षु : दुश्मन...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दुश्मन.... स्वयं भगवान दुश्मन का दमन करने जगा। राग

और द्वेष का दमन करके भगवान अपने चैतन्यस्वरूप का आश्रय लेकर परमात्मा होते हैं, वे स्वयं दुश्मन को दमन किया कहलाता है। अरहन्त राग-द्वेष से रहित होते हैं।

और, **पच्चीस कषायरूप मल उसका द्रव्यकर्म तथा उनके उदय से हुआ भावमल उससे रहित है,...** कषाय जड़कर्म भी नहीं है और भाव मैल भी नहीं है। एकदम कषायरहित अविकारी पूर्णानन्द की प्राप्ति। उसका—द्रव्य का स्वरूप ही ऐसा था—सिद्ध समान, ऐसी ही पर्याय पूर्ण प्रगट हुई। अब कुछ कृत बाकी रहा नहीं। **इसीलिए अत्यन्त विशुद्ध है-निर्मल है,...** आत्मा अत्यन्त विशेष से निर्मल। **चित्तपरिणाम अर्थात् मन के परिणमनरूप विकल्प से रहित है,...** भगवान को मन का विकल्प नहीं। मन ही नहीं। अकेला केवलज्ञान ऐसा जम गया है। आत्मा आनन्द का पिण्ड हो गया है, उसे मन के परिणाम नहीं होते।

ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशमरूप मन का विकल्प नहीं है,... ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम हो, उससे राग का विकल्प होता है, ऐसा उन्हें है नहीं। **इस प्रकार केवल एक ज्ञानरूप वीतरागस्वरूप 'भाव अरहन्त' जानना।** लो! ऐसे को अरिहन्त भगवान कहा जाता है। पर्याय में अवस्था केवलज्ञानमय हो गयी है। वीतरागरूप दशा हो गयी है। दुनिया में धर्म बढ़े-घटे, इसके लिये विकल्पमात्र नहीं है। अकेली वीतरागदशा है। उन्हें अरिहन्त कहा जाता है। उन्हें अरिहन्त जानने में आता है, ऐसा कहा।

गाथा-४१

आगे भाव ही का विशेष कहते हैं -

सम्मद्दंसणि पस्सदि जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया।
सम्मत्तगुणविशुद्धो भावो अरहस्स णायव्वो।।४१।।

सम्यग्दर्शनेन पश्यति ज्ञानाति ज्ञानेन द्रव्यपर्यायान्।
सम्यक्त्वगुणविशुद्धः भावः अर्हतः ज्ञातव्यः।।४१।।

सद्दर्श से देखें दरव पर्याय जानें ज्ञान से।
सुविशुद्ध समकित गुण-सहित अरहंत हैं वे भाव से।।४१।।

अर्थ – 'भाव अरहन्त' सम्यग्दर्शन से तो अपने को तथा सबको सत्तामात्र देखते हैं, इस प्रकार जिनको केवलदर्शन है, ज्ञान से सब द्रव्य-पर्यायों को जानते हैं, इस प्रकार जिनको केवलज्ञान है, जिनको सम्यक्त्व गुण से विशुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व पाया जाता है, इस प्रकार अरहन्त का भाव जानना।

भावार्थ – अरहन्तपना घातियाकर्म के नाश से होता है। मोहकर्म के नाश से सम्यक्त्व और कषाय के अभाव से परमवीतरागता सर्व प्रकार निर्मलता होती है, ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म के नाश से अनन्त दर्शन-अनन्त ज्ञान प्रकट होता है, इनसे सब द्रव्य-पर्यायों को एक समय में प्रत्यक्ष देखते हैं और जानते हैं।

द्रव्य छह हैं, उनमें जीवद्रव्य की संख्या अनन्तानन्त है, पुद्गलद्रव्य उससे अनन्तानन्तगुणे हैं, आकाशद्रव्य एक है, वह अनन्तानन्त प्रदेशी है, इसके मध्य में सब जीव पुद्गल असंख्यात प्रदेश में स्थित हैं, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य – ये दोनों असंख्यातप्रदेशी हैं, इनसे आकाश के लोक-अलोक का विभाग है, उसी लोक में ही कालद्रव्य के असंख्यात कालाणु स्थित हैं। इन सब द्रव्यों के परिणामरूप पर्याय हैं वे एक-एक द्रव्य के अनन्तानन्त हैं, उनको कालद्रव्य का परिणाम निमित्त है, उसके निमित्त से क्रमरूप होता समयादिक 'व्यवहारकाल' कहलाता है। इसकी गणना से अतीत, अनागत, वर्तमान द्रव्यों की पर्यायें अनन्तानन्त हैं, इन सब द्रव्यपर्यायों को अरहन्त का दर्शन-ज्ञान एकसमय में देखता और जानता है, इसीलिए अरहन्त को सर्वदर्शी-सर्वज्ञ कहते हैं।

भावार्थ – इस प्रकार अरहन्त का निरूपण चौदह गाथाओं में किया। प्रथम गाथा में नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, गुण, पर्याय सहित च्यवन, आगति, सम्पत्ति ये भाव अरहन्त को बतलाते हैं। इसका व्याख्यान नामादि कथन में सर्व ही आ गया, उसका संक्षेप भावार्थ लिखते हैं ह्र

गर्भकल्याणक – प्रथम गर्भकल्याणक होता है, गर्भ में आने के छह महीने पहिले इन्द्र का भेजा हुआ कुबेर, जिस राजा की रानी के गर्भ में तीर्थंकर आयेंगे, उसके नगर की शोभा करता है, रत्नमयी सुवर्णमयी मन्दिर बनाता है, नगर के कोट, खाई, दरवाजे, सुन्दर वन, उपवन की रचना करता है, सुन्दर भेषवाले नर-नारी नगर में बसाता है,

नित्य राजमन्दिर पर रत्नों की वर्षा होती रहती है, तीर्थंकर का जीव जब माता के गर्भ में आता है, तब माता को सोलह स्वप्न आते हैं, रुचकवरद्वीप में रहनेवाली देवांगनायें माता की नित्य सेवा करती हैं, ऐसे नौ महीने पूरे होने पर प्रभु का तीन ज्ञान और दस अतिशय सहित जन्म होता है, तब तीन लोक में आनन्दमय क्षोभ होता है, देवों के बिना बजाए बाजे बजते हैं, इन्द्र का आसन कम्पायमान होता है, तब इन्द्र प्रभु का जन्म हुआ जानकर स्वर्ग से ऐरावत हाथी पर चढ़कर आता है, सर्व चार प्रकार के देव-देवी एकत्र होकर आते हैं, शची (इन्द्राणी) माता के पास जाकर गुप्तरूप से प्रभु को ले आती हैं, इन्द्र हर्षित होकर हजार नेत्रों से देखता है।

फिर सौधर्म इन्द्र, बालक शरीरी भगवान को अपनी गोद में लेकर ऐरावत हाथी पर चढ़कर मेरुपर्वत पर जाता है, ईशान इन्द्र छत्र धारण करता है, सनत्कुमार, महेन्द्र इन्द्र चंवर ढोरते हैं, मेरु के पाण्डुकवन की पाण्डुकशिला पर सिंहासन के ऊपर प्रभु को विराजमान करते हैं, सब देव क्षीरसमुद्र में एक हजार आठ कलशों में जल लाकर देव-देवांगना गीत नृत्य वादित्र द्वारा बड़े उत्साह सहित प्रभु के मस्तक पर कलश ढारकर जन्मकल्याणक का अभिषेक करते हैं, पीछे शृंगार, वस्त्र, आभूषण पहिनाकर माता के मन्दिर में लाकर माता को सौंप देते हैं, इन्द्रादिक देव अपने-अपने स्थान पर चले जाते हैं, कुबेर सेवा के लिए रहता है।

तदनन्तर कुमार अवस्था तथा राज्य अवस्था भोगते हैं। उसमें मनोवांछित भोग भोगकर फिर कुछ वैराग्य का कारण पाकर संसार-देह-भोगों से विरक्त हो जाते हैं। तब लौकान्तिक देव आकर, वैराग्य को बढ़ानेवाली प्रभु की स्तुति करते हैं, फिर इन्द्र आकर 'तपकल्याणक' करता है। पालकी में बैठाकर बड़े उत्सव से वन में ले जाता है, वहाँ प्रभु पवित्र शिला पर बैठकर पंचमुष्टि से लोचकर पंच महाव्रत अंगीकार करते हैं, समस्त परिग्रह का त्याग कर दिगम्बररूप धारण कर ध्यान करते हैं, उसी समय मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो जाता है। फिर कुछ समय व्यतीत होने पर तप के बल से घातिकर्म की प्रकृति ४७, अघाति कर्मप्रकृति १६, इस प्रकार त्रेसठ प्रकृति का सत्ता में से नाशकर केवलज्ञान उत्पन्न कर अनन्त चतुष्टयरूप होकर क्षुधादिक अठारह दोषों से रहित अरहन्त होते हैं।

फिर इन्द्र आकर समवसरण की रचना करता है सो आगमोक्त अनेक शोभासहित मणिसुवर्णमयी कोट, खाई, वेदी चारों दिशाओं में चार दरवाजे, मानस्तम्भ, नाट्यशाला,

वन आदि अनेक रचना करता है। उसके बीच सभामण्डप में बारह सभा, उनमें मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, देव, देवी, तिर्यंच बैठते हैं। प्रभु के अनेक अतिशय प्रकट होते हैं। सभामण्डप के बीच तीन पीठ पर गन्धकुटी के बीच सिंहासन पर कमल के ऊपर अन्तरीक्ष प्रभु विराजते हैं और आठ प्रातिहार्य युक्त होते हैं। वाणी खिरती है, उसको सुनकर गणधर द्वादशांग शास्त्र रचते हैं। ऐसे केवलज्ञानकल्याणक का उत्सव इन्द्र करता है। फिर प्रभु विहार करते हैं। उनका बड़ा उत्सव देव करते हैं। कुछ समय बाद आयु के दिन थोड़े रहने पर योगनिरोध कर अघातिकर्म का नाशकर मुक्ति पधारते हैं, तत्पश्चात् शरीर का अग्नि संस्कार कर इन्द्र उत्सवसहित 'निर्वाण कल्याणक' महोत्सव करता है। इस प्रकार तीर्थंकर पंच कल्याणक की पूजा प्राप्त कर, अरहन्त होकर निर्वाण को प्राप्त होते हैं – ऐसा जानना।।४१।।

गाथा-४१ पर प्रवचन

आगे भाव ही का विशेष कहते हैं –

सम्मद्दंसणि पस्सदि जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया।
सम्मत्तगुणविशुद्धो भावो अरहस्स णायव्वो।।४१।।

अर्थ – 'भाव अरहन्त' सम्यग्दर्शन से तो अपने को तथा सबको सत्तामात्र देखते हैं, इस प्रकार जिनको केवलदर्शन है,... लो! यह केवलदर्शन की व्याख्या है। **'सम्मद्दंसणि'** अर्थात् केवलदर्शन। केवलदर्शन जिसे तीन काल-तीन लोक का स्व और पर का सब देखना होता है। ऐसा दर्पण जैसे स्वच्छ होकर सब प्रकाशित करता है, वैसे इनका स्वच्छ होकर लोकालोक को देखता है। ऐसे अरिहन्त को अरिहन्त तीर्थंकर कहा जाता है और **ज्ञान से सब द्रव्य-पर्यायों को जानते हैं,...** ज्ञान से तीन काल के द्रव्य अर्थात् वस्तुएँ और उनकी जो पर्यायें—अवस्थायें, तीन काल की दशायें जड़ की-चैतन्य की। जिस समय जहाँ हो, हुई और होगी, सब केवलज्ञान में जानते हैं। उन्हें जानने का कुछ बाकी नहीं रहा। ऐसा ज्ञात हुए बिना नहीं रहा और पूर्ण जानना हो गया। लो! तीन काल जाने, ऐसा कहते हैं। भविष्य का अनन्त, भूत का अनन्त, वर्तमान का अनन्त सब एक समय में भगवान जानते हैं। उसे केवलज्ञानमय परमात्मा कहा जाता है।

ऐसा ही इस आत्मा का स्वभाव है। समझ में आया? उन्हें प्रगट हो गया है। यह अप्रगटरूप से है। इसका अनुभव करके प्रतीति करने से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! ऐसा ही मैं ज्ञान और दर्शन से परिपूर्ण भरपूर हूँ। विकार-बिकार नहीं। अल्पज्ञपना भी मैं नहीं। परिपूर्ण ज्ञान-दर्शन का स्वभाव जिसका, ऐसी अन्तर में दृष्टि करने से उसे स्वभाव का स्वीकार होने से सम्यग्दर्शन हो, उसे धर्म का पहला पाया (सोपान) कहा जाता है। कहो, समझ में आया? इसलिए इन अरिहन्त को भाव से बतलाते हैं।

और, **जिनको सम्यक्त्व गुण से विशुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व पाया जाता है,...** लो! यह क्षायिक समकिती हैं। चौथे गुणस्थान से क्षायिक समकित हो गया है।... कहो, समझ में आया? **सम्यक्त्व गुण से विशुद्ध...** है। गुण शब्द से यह पर्याय है। समकित गुण नहीं परन्तु पर्याय को गुण कहा जाता है। **इस प्रकार अरहन्त का भाव जानना।** ऐसे तीर्थंकरदेव भगवान का आत्मा ऐसे भाववाला होता है, उसे जो पहिचाने और उसकी वास्तविक श्रद्धा करके, आत्मा की ओर का झुकाव करे तो उसे सम्यग्दर्शन होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१६७, गाथा-४१, बुधवार, पौष शुक्ल १०, दिनांक ०६-०१-१९७१

४१वीं गाथा। अरिहन्त परमात्मा सशरीरी कैसे होते हैं। क्योंकि जो धर्म का स्वरूप बतानेवाले तो मूल सर्वज्ञ परमात्मा हैं। धर्म का मूल बतानेवाले तो सर्वज्ञ परमेश्वर हैं। उन सर्वज्ञ परमेश्वर ने बताया है, तो उनका शरीर और वाणी सहित उनकी दशा अन्तर में कैसी होती है और बाह्य में पुण्य का भी प्रकार कैसा होता है, उसका वर्णन करते हैं। वास्तविक अरिहन्त कहो, परमात्मा कहो, परमेश्वर कहो, सर्वज्ञदेव कहो, वे कैसे होते हैं, यह बोध उनका ज्ञान कराता है। बोधपाहुड़ है न? ४१ (गाथा) का भावार्थ है।

भावार्थ – अरहन्तपना... यहाँ अर्हंत शब्द प्रयोग किया है। अरहन्त—अरिहन्त दो शब्द आते हैं न? यहाँ अरहन्त शब्द प्रयोग किया है। जिन्हें तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है, (जानने में) कोई बाकी नहीं और इन्द्रों को पूज्य है। जगत में इन्द्र आदि बड़े महापुरुष कहलाते हैं, उनके वे पूज्य हैं। इसलिए उन्हें अरहन्त कहा जाता है। देव को जानने की ही मूल तो पहली भूल है। किसे देव कहना और कैसा देव का स्वरूप होता है। वे अरहन्त ऐसे होते हैं। णमो अरिहन्ताणं, ऐसा आता है न? वह कोई पक्ष का शब्द नहीं है। वह तो गुणवाचक शब्द है। जो ऐसे गुण प्रगट हुए हों, उन्हें अरिहन्त और सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे अरिहन्त और सर्वज्ञ और परमात्मा नाम धरावे, वह सत्य बात नहीं है। ऐसा समझाते हैं।

अरहन्तपना... इतनी बात पहली। **घातियाकर्म के नाश से होता है।** एक तो यह कि उसे—जीव के साथ अनादि के आठ कर्म होते हैं। वह वस्तु में से चार कर्म का जिन्होंने नाश किया होता है। चार बाकी होने पर भी अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर हो सके। ऐसे घातिकर्म। घातिकर्म अर्थात् आत्मा के गुण की वर्तमान पर्याय स्वयं आत्मा हीनरूप करे, तब उसे निमित्तरूप से कर्म होते हैं, उसे यहाँ घातिकर्म कहा जाता है। देखो! वास्तविक अरिहन्त कैसे होते हैं, उन्हें पहले चार कर्म थे। परन्तु आत्मा के अनुभव और ध्यान द्वारा जिन्होंने चार कर्म को टाला है, तब जिनमें कर्म ही सम्बन्धरूप नहीं और कर्म टालना किस प्रकार? और कैसा स्वभाव है, उसकी खबर नहीं, उसे अरिहन्तपना नहीं हो सकता।

मोहकर्म के नाश से... अब चार की व्याख्या करते हैं। चार घातिकर्म है। आत्मा

की शान्ति, आनन्द आदि दशा,... त्रिलोक का नाथ चैतन्यरत्न आत्मा है, उसके स्वभाव में तो पूर्ण शान्ति और आनन्द पड़े हैं। उन्हें पूर्ण ज्ञान है। ऐसा आत्मा, उसने आत्मा का अन्दर ध्यान करके... यह उसकी विधि। ध्यान द्वारा उन्होंने चार कर्म का नाश किया। अज्ञानी भी अनादि से ध्यान द्वारा ही कर्म को बाँधता है। ध्यान में भले अन्तर हो परन्तु ध्यान द्वारा (कर्म बाँधता है)। आर्त और रौद्रध्यान। आत्मा के स्वभाव का भान छोड़कर आर्त और रौद्रध्यान को ध्याता संसार को बाँधता है, भटकता है। वीतराग धर्म और शुक्लध्यान को ध्याकर केवलज्ञान को प्राप्त हुए। ध्यान तो उन्होंने भी किया था। इसने—संसारी को भी करना आता है। अज्ञान में—राग में एकाकार हो जाना, वह भी एक उल्टा ध्यान है। उस ध्यान द्वारा आठ कर्म बाँधे और भटकता है।

अरिहन्त को, अनादि पहले अरिहन्त नहीं थे, तब आठ कर्म तो उन्हें थे। उसमें उन्होंने चार का नाश किया। मोहकर्म आता है, उन चार में पहली एक व्याख्या। मोहकर्म के नाश से तो मिथ्यात्व और कषाय का अभाव (हुआ)। उसे—जीव को मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत मान्यता तो थी और कषाय थी—क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष। उसका अभाव करके **परमवीतरागता सर्व प्रकार निर्मलता होती है,...** श्लोक में **'सुविसुद्धो'** आया था न? **'कसायमलवज्जिओ य सुविसुद्धो'** इसकी व्याख्या हुई। जिसने आत्मा के आनन्दस्वरूप में रमने से, ध्यान करने से जिसने मोहकर्म का नाश किया है, उसके कारण मिथ्यात्व और कषाय का उसके अभाव हुआ है। विपरीत मान्यता और कषाय—राग-द्वेष का नाश हुआ। पहले मिथ्यात्व और राग-द्वेष था। अनादि से अवस्था में शुद्ध नहीं था। अनादि से दशा में शुद्ध नहीं था। वस्तु से शुद्ध था। परन्तु उस अशुद्धता में विपरीत मान्यता और राग-द्वेष और मोहकर्म को पहले टाला, उन्हें टालकर परम वीतरागपना अत्यन्त राग और विकल्प बिना (प्रगट किया)। दुनिया को तारूँ या उभारूँ, ऐसा विकल्प भी उन्हें नहीं होता। उन्हें अरिहन्त कहा जाता है। **परमवीतरागता सर्व प्रकार निर्मलता होती है,...** एकदम जिनकी दशा केवलज्ञानमय (हुई है)। यहाँ तो मोहकर्म के अभाव की बात है। निर्मल हुई है। वीतरागपने निर्मल दशा हुई है। यह मोह के अभाव की बात की।

अब, **ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म के नाश से अनन्त दर्शन-अनन्त ज्ञान प्रकट होता है,...** ज्ञानावरण, दर्शनावरण, दूसरा-तीसरा कर्म कहा। पहले मोह कहा।

उसका नाश करके परम वीतरागता प्रगट की। नयी दशा प्रगट की। अनादि की नहीं थी। ऐसे अरिहन्त को अरिहन्त कहा जाता है। और **ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म के नाश से अनन्त दर्शन–अनन्त ज्ञान प्रकट होता है,...** देखो! इसके विश्वास में आना चाहिए। अरिहन्त ऐसे होते हैं। जो एक समय में तीन काल –तीन लोक देखे और जाने, उन्हें अरिहन्त कहा जाता है।

बौद्ध में आता है न? कथा में नहीं आया था? आज आया था न कुछ? फतेहपुर में कहा था, नहीं? बौद्ध के साधु (स्वयं को) सर्वज्ञ मानते और उनको सर्वज्ञ हुआ। और चेतना रानी थी जैनधर्मी। सम्यग्दृष्टि आत्मा के भानवाली। श्रेणिक राजा थे बौद्धधर्मी। एक बार उनके साधुओं ने कहा कि यह तुम्हारी रानी का धर्म... कहे, चलो अपन जायें। फिर श्रेणिक राजा कहता है, हमारे बौद्ध गुरु सर्वज्ञ हैं, तो हम आहार का आमन्त्रण देते हैं। कल हमारे यहाँ भोजन करने आवे। रानी ने आमन्त्रण दिया। चेलना रानी समकिती ज्ञानी थी। आत्मा के भानवाली। आहार का (आमन्त्रण) दिया तो एक बाहर में जूती उतारी हुई थी, उसे लेकर टुकड़े करके कढ़ी में डाली और वह कढ़ी उन्हें परोसी। खायी। रानी होशियार। सब मसाला–बसाला डालकर कढ़ी बनायी। खाया। पूड़ी और कढ़ी सब उत्कृष्ट पकवान। फिर जहाँ चलने लगे, वहाँ जूती नहीं मिलती। ऐई! एक जूती खो गयी। कहाँ गयी? सर्वज्ञ हो न? अभी जूती कहाँ गयी, इसकी खबर नहीं? तुम्हारे पेट में है। रानी ने कहा कि तुम्हारे पेट में जूती है। अरे! यह क्या? देखो! ऐसे उल्टी की वहाँ बारीक–बारीक टुकड़े निकले। व्यर्थ के सर्वज्ञ हैं और तीन काल के जाननेवाले हैं। यह जूती पेट में पड़ी, उसका तो भान नहीं और तुम हमें समझाने आये। बौद्ध का अनादर किया।

ऐसा ही इन्होंने—श्रेणिक राजा ने मुनि का अनादर किया। नग्न मुनि दिगम्बर मुनि तो थे। ध्यान में–आनन्द में थे। उनके ऊपर सर्प डाल आये। मेरे गुरु का तुमने अनादर किया तो तुम्हारे गुरु का मैं अनादर करूँ। वे श्रेणिक राजा (कहते हैं), डाल आने के बाद कहते हैं, देखो! मैंने तो ऐसा किया है। वह सर्प–बर्प निकाल डाला होगा तुम्हारे गुरु ने। हमारे गुरु सर्प नहीं निकालते। वे ध्यान में–आनन्द में होते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में–अनुभव में होते हैं, उन्हें साधु कहते हैं। इसलिए सर्प–बर्प आवे और निकाल डाले, वे मुनि, मुनि नहीं हो सकते। चल। रानी को कहा। वे ध्यान में थे। सर्प निकालकर बोध

दिया, वहाँ समकित प्राप्त हुए। लो! यह सर्वज्ञ। ऐसे सर्वज्ञ नहीं होते। यह सब कहते हैं न, हम त्रिकाल ज्ञाता हैं, त्रिकाल वेता हैं। किसके त्रिकाल वेता? एक समय में जिन्हें तीन काल–तीन लोक का ज्ञान हो, उनकी दशा आहार–पानी बिना की हो जाती है, शरीर निरोगी हो जाता है, ऐसी तो जिनकी शरीर की दशा होती है। उसकी तो खबर नहीं होती और हो गये सर्वज्ञ परमात्मा।

कहते है, **ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म के नाश से अनन्त दर्शन–अनन्त ज्ञान प्रकट होता है,...** यह विश्वास कहाँ से लाना? समझ में आया? आत्मा की ज्ञान की पर्याय—एक समय की दशा अनन्त-अनन्त और तीन काल–तीन लोक को जाने। इतने में रहे होने पर भी तीन काल–तीन लोक को जाने, यह विश्वास कितना उसका? ऐसे केवलज्ञानी के माननेवाले का, हों! यहाँ तो कहा। समझ में आया? ऐसे अरिहन्त होते हैं, उन्हें माने, उनकी मान्यता में ज्ञान की एक समय की दशा तीन काल–तीन लोक (जाने, ऐसा विश्वास होता है)। भाषा रूप से नहीं, उसके भाव में यह बात आना चाहिए कि ओहो! अरिहन्तदेव परमात्मा ऐसे होते हैं। अरिहन्त होते हैं, ऐसा कहा है न पहले?

एक समय की अन्दर जिसे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन (प्रगट हुए हैं)। ऐसी ही शक्ति मेरी है। भगवान ने भी शक्ति में से प्रगट किया है और एक समय में तीन काल–तीन लोक (जाने)। क्षेत्र इतना स्वयं, जाने अनन्त क्षेत्र और अनन्त काल। आहाहा! ऐसे आत्मा की ज्ञानपर्याय का सामर्थ्य इतना। ऐसे देव को देवरूप से कहे और ऐसे देव माननेवाले। ओहो! जिन्हें तीन काल–तीन लोक भूत–भविष्य और वर्तमान सब ज्ञात हो गया, ऐसी जिनकी ज्ञान की एक समय की पर्याय, वह तो अवस्था है। गुण नहीं। गुण तो त्रिकाल है। ऐसी जिसे अरिहन्त की श्रद्धा होती है, उसे अन्तर में से ज्ञान और दर्शन आया तो अन्तर का ध्यान करूँ तो मुझे भी प्रगट होगा, ऐसी उसे श्रद्धा होती है। समझ में आया? गजब काम। सर्वज्ञता का ही पूरा विवाद है। लोगों को ज्ञान की एक समय की दशा सब जाने, इसका विवाद है। या तो भविष्य की पर्याय होगी, तब जाने और या तो ऐसा हो, तब जाने—ऐसा कहकर सब विवाद। आहाहा! उस अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन से परमात्मा...

इनसे सब द्रव्य–पर्यायों को एक समय में प्रत्यक्ष देखते हैं और जानते हैं।

ऐसा आत्मा की एक समय की ज्ञान की, दर्शन की पर्याय है। पर्याय अर्थात् अवस्था। एक समय की हालत इतनी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा त्रिलोकनाथ तीन लोक के तिलक सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसी एक जीव की ऐसी दशा होती है। ऐसी उस जीव की ताकत है। उसका विश्वास करने से इसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा स्वभाव और ऐसी जिनकी पूर्ण दशा की प्रगटता! ऐसा आत्मा एक समय की दशा के सामर्थ्यवाला, उसे अरिहन्त कहते हैं। ऐसे देव का जिसे विश्वास और प्रतीति आती है, उसे अपने आत्मा की प्रतीति आती है कि अहो! मैं भी एक समय में अनन्त ज्ञान और दर्शन पा सकूँ, ऐसा मेरा आत्मा है। अल्पज्ञ और अल्प दर्शनरूप रहूँ, वह मेरी चीज़ नहीं। रागरूप रहूँ, वह तो नहीं, परन्तु अल्पज्ञ और अल्पदर्शीरूप रहना, वह मैं नहीं। आहाहा!

ऐसे अरिहन्त को माननेवाले की दृष्टि वस्तु के स्वभाव के सामर्थ्य पर जाती है। समझ में आया? इससे ऐसे अरिहन्त हों, उन्हें बताते हैं। इसके अतिरिक्त साधारण लोग वर्तमान में कुछ अधिक जानते हों, वर्तमान ऐसा सब सर्वज्ञ हैं, ऐसा मनावे, माने कुछ का कुछ मन की बात जानता हो, कोई ज्योतिषी जानता हो, कोई उससे जानता हो, इसलिए वह सर्वज्ञ है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : योग समाधि से...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। योग समाधि। वह तो सब अज्ञान है। आत्मा आनन्दस्वरूप और ज्ञानस्वरूप है, उसमें एकाग्र होना वह योग और समाधि है। वह तो भान बिना कहीं से योग-समाधि हो इसे? ऐसे का ऐसे जड़ होकर बैठे। बारह-बारह वर्ष का मौनपना। देखो न! अभी कुछ भाई ने कहा। कोई आया है वहाँ मुम्बई। अभी कोई आया है। बारह वर्ष से मौन था। बोला इसलिए लोगों को आहाहा! हजारों लोग देखने आये। धूल में भी नहीं। एकेन्द्रिय जीव मौन ही हैं। उसमें वाणी नहीं। यह हरितकाय लो। इससे क्या हुआ? आहाहा! मौन अर्थात् क्या?

आत्मा अन्दर पुण्य और पाप के विकल्प में अटका हुआ, उसे छोड़कर स्वरूप की स्थिरता प्रगट करे, वह मौन में से निकला और जागृत हुआ। बाहर का मौनपना ऐसा जड़ का अनन्त बार किया। काष्टमौन आता है। काष्टमौन। लकड़ी बैठे। यह 'रणछोड़जी' थे, वे बहुत करते। राजकोट। समझ में आया? वस्तु उसमें कुछ है नहीं। धूल भी नहीं। अन्तर

आनन्दस्वरूप और पूर्ण ज्ञान-दर्शन का भण्डार, उसमें एकाग्र होकर मौनपना विकल्प का कर डाले। आहाहा! उसे केवलज्ञान और केवलदर्शन अल्प काल में होता है। उसे अरिहन्त कहा जाता है। आहाहा!

अभी तो णमो अरिहन्ताणं-पहले शब्द के भाव में ही विवाद। धर्म तो बाद में। एक समय यह किसे कहे! भाई! उसे स्वयं को बैठना कठिन पड़े। ऐसे अरिहन्त होते हैं। शरीर प्रमाण उनके आत्मा का क्षेत्र होता है और भाव तो तीन काल-तीन लोक को जाने, इतनी पर्याय हो। आहाहा! ऐसा तत्त्व का स्वभाव है और उसकी ऐसी प्रतीति होना, वह अपूर्व बात है। समझ में आया? ऐसे बिना भान के णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... करे। ऐसे तो पहाड़े अनन्त बार किये हैं। आहाहा!

कहते हैं कि **सब द्रव्य-पर्यायों को...** एक-एक काल। जितने जगत में भगवान के ज्ञान में आये थे, उतने सब द्रव्य पहले भगवान हुए थे, उनके ज्ञान में (आये थे), ऐसे इस ज्ञान में आये, कहते हैं। सर्व द्रव्य, वस्तु अनन्त और उसकी प्रत्येक समय की भूत-भविष्य और वर्तमान की सब पर्याय। उसे (जानने का) एक काल। एक तो सर्व द्रव्य, उनकी समय-समय की तीन काल की अवस्थाएँ, उन्हें एक-एक काल और प्रत्यक्ष। एक-एक काल और प्रत्यक्ष देखे और जाने। आहाहा! ऐसे अरिहन्त को देवरूप से कहा जाता है। बिना भान के समझे बिना णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... कोई अरिहन्त हो गये होंगे। तीन काल के जाननेवाले होंगे। तीन काल क्या, जानना क्या? कुछ खबर नहीं होती। भान बिना की प्रतीति, वह सब प्रतीति मिथ्या है। समझ में आया? ऐसा अभ्यास कोई वकालत में आता होगा? मंगलदासभाई! चिरंजीवी को नहीं आया होगा अभी तो। यह बैठे हैं न, आये हैं न। तुम्हारे पीछे हैं। यह तो अभ्यास नहीं आया होगा, ऐसा कहता हूँ।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य है। यह तो विषय अलग है।

आहाहा! जितने जगत के तत्त्व हैं अनन्त, उनकी संख्या कहेंगे, उन अनन्त की त्रिकाली अनन्त अवस्थायें, एक समय में अनन्त गुण की अवस्था, ऐसी तीन काल की, जिन्हें एक क्षण में, एक समय में, एक काल में अर्थात् एक क्षण में (जाने)। छोटे में छोटा समय। क बोले, उसमें असंख्य समय जाते हैं। ऐसा एक समय। यह तो कोई सामर्थ्य!

आहाहा! ऐसे आत्मा के ज्ञान की एक समय की पर्याय का प्रत्यक्षपना जिसे तीन काल-तीन लोक की पर्याय हो, उसे जाने और देखे। ज्ञानावरणीय के नाश से जाने, दर्शनावरणीय के नाश से देखे। परन्तु जिसे अभी कर्म ही नहीं और कर्म क्या है, उसका भान नहीं, उसे कर्म का अभाव होकर केवलज्ञान हो, ऐसा नहीं बनता और हो गये भगवान हो जाये, लो! हम भगवान हैं। कुछ ब्रह्मचर्य पालते हों और कुछ जरा पुण्य प्रकृति हो, ऐसा नहीं। भाई! अरिहन्त की व्याख्या बहुत सूक्ष्म है।

अब कहते हैं कि द्रव्य और पर्याय जो जाने भगवान, वह किन द्रव्यों को जाने? **द्रव्य छह हैं, उनमें जीवद्रव्य की संख्या अनन्तानन्त है,...** यह आत्मायें अनन्तानन्त हैं। एक आत्मा नहीं। आहाहा! एक आलू का राई जितना टुकड़ा, उसमें असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त-अनन्त जीव। ऐसा पूरा लोक जीव से भरा है। समझ में आया? देखो! अरिहन्त ऐसे होते हैं कि इन सब द्रव्यों को जाने, ऐसा कहते हैं। और उनकी अवस्था को भी जाने। आहाहा! जिसका स्वभाव जानना है, वह किसे न जाने और किसे जानना बाकी रखे? आहाहा! ऐसा जिसका स्वभाव प्रगट हुआ है। भले देह हो, वाणी-विहार हो, परन्तु अन्दर में तो तीन काल का जिन्हें ज्ञान प्रगट हुआ, ऐसे को अरिहन्त कहा जाता है।

कहते हैं, यह आत्मा जीव की जितनी संख्या जगत में है, वह सब अनन्तानन्त है। अनन्तानन्त। इतना यहाँ क्षेत्र का भाग है, उसमें सूक्ष्म निगोद के जीव हैं। अनन्त। एक-एक निगोद का शरीर, अनन्त जीववाला है। ऐसा पूरा लोक भरा है। अरे! ऐसी महासत्ता! उसका रागरहित ज्ञान हो जाये और इन सबको जाने! वह क्या चीज़ है! वह आत्मा कितना और कैसा है? समझ में आया? वह त्रिलोक का रतन है, तीन लोक का नाथ है। उसे ऐसे अल्प काल में राग में रोकना, वह उसका स्वरूप नहीं। वह तो तीन काल-तीन लोक को सर्व द्रव्य को जाने, ऐसा उसका स्वरूप है। ऐसा आत्मा जिसे विश्वास में आया, उसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? सम्यक् अर्थात् जैसा आत्मा का स्वभाव है, ऐसी प्रतीति और भान हो कि जिससे उसे मोक्ष के मार्ग में चढ़ने की कला हाथ आवे। आहाहा!

और, **पुद्गलद्रव्य उससे अनन्तानन्तगुणे हैं,...** जीव की संख्या अनन्त है, उसकी अपेक्षा यह परमाणु अनन्तानन्त गुणे हैं। कहो, समझ में आया? देखो न! यह एक

आत्मा है और यह सब अनन्त-अनन्त रजकण हैं। ऐसे-ऐसे अनन्त आत्मायें, उनके प्रत्येक के पास कार्मण, तेजस, औदारिक और किसी के पास वैक्रियिक (शरीर है)। जीव की जितनी अनन्त संख्या है। वे एक ही आत्मा कहते हैं, ऐसा नहीं। ये तो अनन्त आत्मायें हैं। वे सब सर्वज्ञ होने की योग्यतावाले हैं। समझ में आया?

'सर्व जीव है सिद्ध सम' आत्मसिद्धि में आता है न? 'सर्व जीव है सिद्ध सम, जो समझे वे होय।' मंगलदासभाई! श्रीमद् में आता है। आत्मसिद्धि। 'सर्व जीव है सिद्ध सम।' २९वें वर्ष में आत्मसिद्धि बनायी। सब आत्मायें सिद्ध समान हैं। जो समझे वे हों। मारे उसकी तलवार। बाँधे उसकी नहीं। बाँध तो रखे, वह क्या करे? मारे उसकी तलवार। इसी प्रकार जिसमें आत्मा की ऐसी शक्ति है, वह प्रगट करे तो वह अरिहन्त होता है। समझ में आया? जो समझे वे होय। 'सर्व जीव है सिद्ध सम, जो समझे वे होय।' जो समझे वे सिद्ध होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझने से सिद्ध होते हैं, ऐसा ही उसमें तो कहते हैं। उसकी समझ, उसकी श्रद्धा, उसका चारित्र सब एक ही है। वह सब समझ ही है। आहाहा!

यह अनन्त-अनन्तगुणे तो पुद्गल हैं। उन्हें भी भगवान का ज्ञान एक समय में जानता है। आहाहा! आत्मा कितना है, इसकी उसे प्रतीति नहीं है। भाषारूप से नहीं, उसे भाव में उसकी महत्ता की महिमा आनी चाहिए। और **आकाशद्रव्य एक है,...** जीव अनन्त हैं, उससे अनन्तगुणे पुद्गल हैं। आकाश एक है। यह व्यापक—लोक और अलोक। लोक है यह छह द्रव्यवाला और खाली भाग, खाली भाग, खाली-खाली। जिस खाली का कहीं अन्त नहीं। ऐसा का ऐसा चलता ही जाता है खाली भाग, खाली... खाली... खाली... आहाहा! वीतराग का तो द्रव्य भी ऐसा, गुण भी ऐसे, पर्याय भी ऐसी और क्षेत्र भी ऐसा जगत का। संख्या भी आत्मा और परमाणु की देखो तो चिल्लाहट मचा जाये। आहाहा! वह तो एक ही आत्मा व्यापक कहकर स्थित हो गये। जाओ आत्मा व्यापक है, एक ही है। अद्वैत है। ऐसा नहीं।

अनन्त आत्मायें हैं और अनन्त आत्मा के अनन्त गुण हैं। इससे अनन्तगुणे तो परमाणु जगत में हैं। इन सबको एक समय में जाने। राग के अवलम्बन बिना, मन के आश्रय बिना अकेले चैतन्य की शक्ति की समृद्धि से जाने। ऐसा उसे विश्वास में आना चाहिए। समझ में आया?

आकाशद्रव्य एक है, वह अनन्तानन्त प्रदेशी है,... लो! वस्तु एक परन्तु उसके प्रदेश अनन्त हैं। प्रदेश समझ में आता है? प्रदेश क्या कहलाता है?

मुमुक्षु : जिस जगह में एक सूक्ष्म में सूक्ष्म पुद्गल का परमाणु रहे, उसे प्रदेश कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेश कहते हैं। जिस जगह में एक यह परमाणु की जगह जितनी रोके, उतने भाग को प्रदेश कहते हैं। ऐसे अनन्त प्रदेशी आकाश है। अनन्तानन्त प्रदेशी आकाश। आकाश चलता ही जाता है। किसी दिशा में जाओ, अन्त नहीं आता। क्या है वह यह चीज़! आहाहा! फिर क्या? फिर क्या? फिर क्या? अन्तिम क्या? मंगलदासभाई! अन्तिम क्या? ऐसा का ऐसा है। इसलिए यह बैठक में करते हैं न? क्या कहलाता है वह? कोई छोटा-बड़ा नहीं कहलाता। गोल होकर बैठे सब। इसलिए कोई छोटा-बड़ा नहीं होता।

यहाँ कहते हैं कि आकाश अनन्त प्रदेशी, जिसका कहीं अन्त नहीं, वह ज्ञान में ज्ञात होता है। वह ज्ञान की दशा में ज्ञात होता है, उसे अरिहन्त कहा जाता है। समझ में आया? ऐसे स्वभाववाला आत्मा, उसकी प्रतीति करे और सम्यग्दर्शन करे, वह अरिहन्त का उम्मीदवार है। और (जिसे) प्रगट हुआ है, वह साक्षात् अरिहन्त है। समझ में आया? आहाहा! धर्म का रूप कठिन है, भाई! साधारण ऊपर से मान बैठे, (ऐसा नहीं है)। अन्दर उसका भाव (भासित होना चाहिए)। ऐसा अनन्त... अनन्त... अनन्त... क्षेत्र से जिसका अन्त नहीं, वह भी ज्ञान में ज्ञात होता है। वहाँ अन्त आ गया न? ज्ञान में ज्ञात हो गया सब।

मुमुक्षु : अनन्त होकर ज्ञात हुआ या अन्त होकर ज्ञात हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब अर्थात् जैसा अनन्त है, वैसा ज्ञात हो गया। आहाहा! यह तो कुछ बात है! ज्ञान के स्वभाव में एक समय की पर्याय में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... प्रत्येक दिशा में सब ज्ञात हो गया। ज्ञात हो गया, इसलिए वहाँ अन्तवाला है, ऐसा नहीं है। अनन्त को अनन्तरूप से जाना। ऐसी आत्मा में अरिहन्तदशा प्रगट होने से केवलज्ञान और केवलदर्शन की शक्ति प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं।

अनन्तानन्त प्रदेशी है,... कौन ? आकाश। वस्तु एक और अनन्त... अनन्त... अनन्त... जिसके प्रदेश हैं। आहाहा! उससे भी अनन्तगुणे जितने आकाश के प्रदेश हैं, उससे अनन्तगुणे तो एक जीवद्रव्य के गुण हैं। आहाहा! एक आत्मा है यह, उसकी संख्या से गुण। संख्या से। जैसे जानना, श्रद्धना, स्थिरता इत्यादि। संख्या से इतने गुण हैं कि अनन्तानन्त प्रदेशी आकाश है, उससे अनन्तगुणे गुण हैं। इतना बड़ा तो आत्मा क्षेत्र में रहे हुए भाव से है, और उस एक-एक भाव की शक्ति तो अनन्त-अनन्त है। आहाहा!

संवर, चावणं को चक्रवर्ती को आता है न ? नमोत्थुणं में आता है। सामायिक में नमोत्थुणं का पाठ आता है न ? नमोत्थुणं, अरहंताणं, भगवंताणं... किया है ? सामायिक के पाठ आवे न ? पहला णमो अरिहन्ताणं, दूसरा तिक्खुत्तो, तीसरा इच्छामी, चौथा तत्ससूतरी, पाँचवाँ लोग्गस, छठवाँ करमीभंते, सातवाँ नमोत्थुणं। सात पाठ आवे, सात। अर्थ किसे आते हों ? अभी पाठ भी नहीं किया हो। यह तो वस्तु के स्वरूप को जानने के मन्त्र हैं ये सब।

कहते हैं, लोक अनन्तानन्त प्रदेशी है। आहाहा! **इसके मध्य में सब जीव पुद्गल असंख्यात प्रदेश में स्थित हैं,...** लो! जो अनन्त-अनन्त आकाश है, उसके मध्य में। क्योंकि मध्य ही कहाँ ? चारों ओर अनन्त है। ऐसे चारों ओर है, उसमें मध्य में यह लोक-जगत है। कहते हैं, उसके मध्य **सब जीव पुद्गल असंख्यात प्रदेश में स्थित हैं,...** वे सब जीव और पुद्गल आकाश के असंख्यात प्रदेश में रहते हैं। अनन्त अनन्त प्रदेश तो खाली हैं। चारों ओर खाली... खाली... खाली... आहाहा! इसके ज्ञान का विषय तो कितना है ! तीन काल तीन लोक को जानने के ऐसे भाव प्रगटे हों, उसे अरिहन्त कहते हैं। ऐसे अरिहन्त-अरिहन्त करे। परमात्मा दूसरा कहते हैं। यह परमात्मा है, परमेश्वर है, भाई! यह तो भगवान है। भगवान किस प्रकार ? वस्तु की प्रगट दशा ऐसी हो, उसे भगवान—परमात्मा साक्षात् कहा जाता है। शक्ति में तो है।

इसके मध्य में सब जीव... अनन्त-अनन्त जीव और उससे अनन्तगुणे पुद्गल, वे आकाश के अनन्त-अनन्त प्रदेश में बीच के असंख्य प्रदेश में यह लोक जीव और पुद्गल बीच में है। बीच में अर्थात् समझ में आया ? मध्य में। मध्य में है। चारों ओर अनन्त-अनन्त है, पश्चात् उसके मध्य में... आहाहा! अनन्तानन्त आकाश में एक राई के दाने जितना मानो लोक हो, ऐसा दिखता है। जिसमें अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद, अनन्तानन्त

पुद्गल और अनन्त अनन्त आकाश के हिसाब से यह असंख्य प्रदेशी लोक है, इतने में यह सब है। बाकी तो खाली... खाली है। आहाहा! उसे आकाश कहते हैं।

और **एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य...** है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति नामक दो पदार्थ भगवान ने देखे हैं। जो गति करते हुए (जीव, पुद्गल को) धर्मास्तिकाय का निमित्त है और (गतिपूर्वक) स्थिर (रहते हुए जीव पुद्गलों को) अधर्मास्तिकाय का निमित्त है, ऐसे दो द्रव्य हैं। यह सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकते। **दोनों असंख्यातप्रदेशी हैं,...** उसको अनन्तानन्त थे। यह असंख्य प्रदेश धर्मास्तिकाय लोक प्रमाण है। **इनसे आकाश के लोक-अलोक का विभाग है,...** लो! पंचास्तिकाय में आता था। धर्मास्ति-अधर्मास्ति नामक दो द्रव्य हैं, वस्तु है। उससे लोक और अलोक दो भाग पड़ गये हैं। जहाँ तक धर्मास्ति, अधर्मास्ति (रहते हैं) वहाँ तक लोक के बाद खाली अलोक है। दो भाग पड़ गये हैं। धर्मास्ति-अधर्मास्ति के। पंचास्तिकाय में है। समझ में आया?

विभाग है,... उससे विभाग है। ऐसा। अर्थात्? धर्मास्ति, अधर्मास्ति दो द्रव्य लोक प्रमाण हैं, और पश्चात् खाली है। इसलिए दो विभाग हैं, ऐसा उसका अर्थ। **उसी लोक में ही कालद्रव्य के असंख्यात कालाणु स्थित हैं।** इस लोक के अन्दर एक कालद्रव्य है, (संख्या से) असंख्यात। एक-एक आकाश के प्रदेश पर एक-एक (कालाणु है) अरूपी पदार्थ है, अनन्त गुण का स्वामी है। अनन्त तीन काल की पर्यायें उसमें होती है। कालाणु को। आहाहा! **इन सब द्रव्यों के...** यह जितने पदार्थ कहे, उनकी **परिणामरूप पर्याय हैं...** भाषा देखो! यह द्रव्य के परिणामरूप पर्याय है। उसकी वर्तमान परिणमन की उसकी अवस्थायें **एक-एक द्रव्य के अनन्तानन्त हैं,...** एक-एक वस्तु की अनन्तानन्त पर्यायें हैं। गजब लगे। साधारण लोगों को तो लगे कि यह क्या कहते हैं ऐसा? बापू! वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

एक-एक द्रव्य के अनन्तानन्त पर्याय हैं,... इस एक-एक द्रव्य की अनन्तानन्त पर्याय-परिणाम हैं। एक समय में अनन्त पर्यायें हैं, अनन्त गुण हैं इसलिए। तीन काल की अनन्त पर्यायें हैं। आहाहा! **एक-एक द्रव्य के अनन्तानन्त हैं, उनको कालद्रव्य का परिणाम निमित्त है,...** किसे? इन सब द्रव्यों का परिणमन होता है, वह पर्याय होती है, उसमें कालद्रव्य उन्हें निमित्त है। **उसके निमित्त से क्रमरूप होता समयादिक**

'व्यवहारकाल' कहलाता है। काल को भी समय, दो समय कहलाता है, वह व्यवहारकाल। **इसकी गणना से अतीत, अनागत, वर्तमान द्रव्यों की पर्यायें अनन्तानन्त हैं,...** एक आत्मा के अनन्तानन्त पर्याय है। एक परमाणु के अनन्तानन्त पर्याय है। यह तो वीतराग होने की बात है। ऐसा कैसे है, (ऐसे) विकल्प का जिसमें अवकाश नहीं। ऐसा ज्ञान ऐसे सब पदार्थ की पर्यायों को राग बिना जान सके, ऐसा तो आत्मा स्वयं स्वावलम्बी है। समझ में आया?

इन सब द्रव्यपर्यायों को अरहन्त का दर्शन-ज्ञान एकसमय में देखता और जानता है,... एक समय में भगवान का ज्ञान और दर्शन सशरीरी अरिहन्त केवलज्ञानी परन्तु सयोगी अरिहन्त। ऐसा है न? **इसीलिए अरहन्त को सर्वदर्शी-सर्वज्ञ कहते हैं।** लो! इसलिए ऐसे भगवान को सर्वदर्शी और सर्वज्ञ कहा जाता है। सर्वदर्शी, सर्व ज्ञान अर्थात् कि ऐसे अनन्तानन्त द्रव्य, उनकी तीन काल की पर्यायें सर्व को देखे-जाने, इसलिए सर्वदर्शी और सर्वज्ञ कहते हैं। समझ में आया?

इतना बड़ा आत्मा, उसे एक समय में ऐसा सब ज्ञात हो। इतना ही आत्मा मैं हूँ। मेरे आत्मा में और भगवान में कोई अन्तर नहीं है। पर्याय में अन्तर मिटाने के लिये द्रव्य-गुण में अन्तर नहीं है, ऐसी दृष्टि करने से, दृष्टि करने से अन्तर टूटकर स्वयं परमात्मा होता है। आहाहा!

संसार के दु:ख देखो न यह। लड़का मर गया, उसका पिता पागल हो गया। कोई कहता था। किसका? दूसरे का कुछ? 'लालिया' जमींदार का। वह भी एक अभी मर गया। जमींदार का लड़का। उसका पिता पागल हो गया। वह भी मर गया। क्या कहलाता है? शोक। जमींदार की वात। 'चूड़ा' के पास 'लालियाद'। अमेरिका गया था। आहाहा! वह भी छह महीने का विवाहित। पचास लाख रुपये। क्या करे? धूल उसके पचास लाख। उसकी स्थिति पूरी हो, इसलिए शोक लगा। हो गया। उसके पिताजी होंगे। लड़का २३ वर्ष का। यह तो दरबार ने बात की। यह सत्य बात। वह 'लालियाद' के जमींदार का लड़का अमेरिका गया होगा, वहाँ मर गया उसमें। उसके पिता ने सुना तो मस्तिष्क घूम गया। आहाहा!

अरे! अपने बाबूभाई ब्रह्मचर्य का पालन करते थे, (उसमें) उनके पिता का

मस्तिष्क घूम गया था। फतेपुर, बाबूभाई। छोटी उम्र। ३६-३८ वर्ष की उम्र थी। नियम लिया। पैसावाला व्यक्ति। नियम लिया आजीवन ब्रह्मचर्य का। आज्ञा लेकर, हों! बापूजी आज्ञा है आपकी? ऐसा करके। जहाँ सुना, वहाँ तो पागल हो गये, मस्तिष्क घूम गया। लोगों को सहन करने की शक्ति नहीं न! आहाहा! ऐसा तो अनन्त हो आत्मा जाने ऐसी ताकतवाला है। इसमें विस्मय कहीं है नहीं। आहाहा!

इसीलिए अरहन्त को सर्वदर्शी-सर्वज्ञ कहते हैं। अब जरा अधिक अर्थकार अरिहन्त का स्पष्टीकरण करते हैं। लोगों को देव में बड़ी भूल है। क्योंकि देव अरिहन्त वे सर्वज्ञ धर्म के मूल हैं। धर्म के कथन करनेवाले परमात्मा ने तीन काल-तीन लोक देखे, उन्हें वाणी द्वारा उन्हें आया, ऐसे अरिहन्त की जिसे अभी खबर नहीं, उसे धर्म की खबर नहीं होती। यह तो इतनी बात की। विशेष कहते हैं, अब देखो! भाई! कैसे? पण्डित जयचन्द्रजी हैं न? **इस प्रकार अरहन्त का निरूपण चौदह गाथाओं में किया।** अपने शुरु हो गया २८वीं गाथा से। २८ गाथा हुई न? २८ से शुरु किया।

प्रथम गाथा में नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, गुण, पर्याय सहित च्यवन, आगति, सम्पत्ति ये भाव अरहन्त को बतलाते हैं। उनका नाम ऐसे गुण। स्थापना यह गति, स्थिति, जाति आदि बतायी न? द्रव्य—शरीर, भाव—उनकी शक्ति, उनके गुण और उनकी पर्याय तीन काल को जाने। उनका च्यवन-अरिहन्त कहाँ से आये? क्योंकि अभी परमात्मा तो इस भव में हुए। वे किसी गति में से आवे न? ऐसे आगति। च्यवन अर्थात् यहाँ से जाना कहाँ? आगति आवे कहाँ से? सम्पत्ति किसकी? ऋद्धि। सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हों तो बाहर की सम्पदा कैसी उनकी ऋद्धि होती है? उन **अरहन्त को बतलाते हैं। इसका व्याख्यान नामादि कथन में सर्व ही आ गया,...** सब आ गया, कहते हैं। **उसका संक्षेप भावार्थ लिखते हैं** – उसका थोड़ा भावार्थ कहा जाता है।

प्रथम गर्भकल्याणक होता है,... यहाँ से शुरु किया। वे अरिहन्त तीर्थंकर जो होते हैं, वे किसी गति में से आते हैं। वे माता के गर्भ में आवें, तब देव गर्भकल्याणक मनाते हैं। इन्द्र आकर उनका गर्भकल्याणक मनाते हैं। आहाहा! **गर्भ में आने के छह महीने पहिले...** गर्भ में आने से पहले, छह महीने पहले **इन्द्र का भेजा हुआ कुबेर,...** इन्द्र का हुकम होता है धनद को। एक लोकपाल है, लोकपाल। उसे हुकम करे। जाओ, माता

के गर्भ में छह महीने में भगवान आनेवाले हैं। आहाहा! तीन ज्ञान (और) समकित लेकर। अरिहन्त बाद में होंगे, परन्तु आत्मा का ज्ञान और तीन ज्ञान लेकर तो माता के गर्भ में तीर्थंकर आते हैं। समझ में आया? इन्द्र धनद (कुबेर) को हुकम करता है, जाओ।

जिस राजा की रानी के गर्भ में तीर्थंकर आयेंगे,... जिस राजा की रानी के गर्भ में भगवान आयेंगे, **उसके नगर की शोभा करता है,...** यहाँ होता है न, बड़ा राजा आया हो, वहाँ उसके लोग आकर सब साफ-सूफ करते हैं, पाउडर डलावे। डलाते हैं या नहीं? बड़ा राजा हो। आहाहा! देखो! यह तीर्थंकर के आत्मा की बात चलती है, हों! ऐसे तीर्थंकर होते हैं। जो स्वर्ग में से या नरक में से आवे, तब छह महीने पहले तो इन्द्र (कुबेर को हुकम करे)। धनद अर्थात् बड़ा लोकपाल है। धनद शब्द है न? धन का देनेवाला। ऐसा। रत्न की वृष्टि करनेवाला। धनद—कुबेर। परन्तु यह धन का देनेवाला रत्न की वृष्टि करता है। भगवान, माता के गर्भ में आने से छह महीने पहले....

नगर की शोभा करता है, रत्नमयी सुवर्णमयी मन्दिर बनाता है,... (यहाँ तो) साधारण के घर में आया हो और कहे हम भगवान हैं, त्रिकाल ज्ञानी हैं। ऐसा नहीं होता, भाई! त्रिकाल ज्ञानी का तो अरिहन्तपना, तीर्थंकरपना माता के गर्भ में आवे, उससे पहले तो नगर की शोभा करे, रत्नमयी, सुवर्णमयी मन्दिर रचे। मन्दिर अर्थात् मकान। स्वर्ण के और रत्न के मकान नगर में बनावे। देखो! इतना तो उनका पुण्य होता है।

मुमुक्षु : माता की...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। माता भी थोड़े काल में मोक्ष जानेवाली हैं।

नगर के कोट, खाई, दरवाजे, सुन्दर वन, उपवन की रचना करता है,... ठीक! मकान बनावे और नगर में कोट बनावे। खाई, दरवाजा, सुन्दर वन, उपवन (बनावे)। आहाहा! गजब भाई! लोगों को तो जँचना कठिन पड़े। ऐसे तीर्थंकर होते हैं, उनका पुण्य इतना अधिक होता है कि इन्द्र छह महीने पहले से अभी तो (ऐसी रचना करते हैं)। अभी तो स्वर्ग में या नरक में उनका जीव हो, हों! यह श्रेणिक राजा, लो न, अभी नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में। परन्तु जब आयेंगे, (तब) इन्द्र हुकम करेंगे। छह महीने बाकी रहेंगे। जाओ, इस नगर में अमुक जगह राजा की रानी के गर्भ में आनेवाले हैं। नगर की रचना करो, साफ करो। करते हैं न वह तो।

यह 'भाणवड' एक बार आनेवाले थे 'दिग्विजय'। पूरे गाँव को गजब श्रृंगार किया था। 'उपलेटा' वाले थे भाई। न्यालभाई कोठारी वहाँ थे। (संवत्) १९८८ की बात है। वे आनेवाले थे इसलिए गाँव में, स्वयं बड़े मालदार। गाँव का श्रृंगार किया था। उनका कोई विरोधी निकला कि यह भगत है। भाई कैसा? न्यालभाई। भगत है। उनके हैं न वह? कैसा?

मुमुक्षु : सुदेसणा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। सुदेसणा वहाँ लींबड़ी के दरबार आये थे। दादासाहेब थे न? वे वहाँ गये थे। उनका वह लड़का मर गया था न। उसे कांणे तोड़ने वहाँ गये थे। वहाँ बैठे, उसमें ऐसा विरोधी निकला। यहाँ गाँव का श्रृंगार किया था। स्वयं मामलतदार और दोपहर हुई तो मेरे पास आये न्यालभाई। रोवे... रोवे... रोवे... रोवे... शोर मचाकर रोवे। महाराज! परन्तु यह क्या है? वहाँ किसी व्यक्ति ने हुकम किया है कि दो बकरे भेजो। अब यह तो भगत व्यक्ति था। न्यालभाई। मैं वहाँ उपाश्रय में था। १९८८ की वर्ष की बात है। १९८७ का चातुर्मास पूरा हुआ न भाणवड में आये थे। रोवे इसलिए जवाब न दे सके। इतना रोवे ऐसे। हस्ताक्षर करना पड़े। क्या करे? मामलतदार। हस्ताक्षर करना पड़ा। कोई विरोधी या भगत है न तो उसे डालूँ इस राजा के नाम से। राजा-बाजा कुछ न जाने। दो बकरे मँगाये हैं माँस के लिये, खाने के लिये। बोकड़ा समझते हो? बकरा-भेड़। आहाहा! बहुत रोवे।

अब गाँव श्रृंगारित किया हुआ परन्तु उसे बेचारे को रुदन... रुदन... अररर! यह नौकरी। अब रानी के पास जाऊँगा। गोंडल की रानी थी। उसके ऊपर उसे .... मुझे यह नौकरी नहीं चाहिए। ऐसी नौकरी। अररर! यह राजा ने मँगाया। क्या करे? हस्ताक्षर करना पड़ा। आहाहा! ऐसी नौकरी। देखो न! कहा नहीं? कल नहीं कहा था? यह सीताजी का। सीताजी को वह सारथी (कहे)... अरे रे! ऐसी नौकरी! ऐसी महा सती सीता धर्मात्मा, अरे रे! उसे वन में छोड़ने का मेरे हाथ से! यह नौकरी! आहाहा! धिक्कार है ऐसी नौकरी को। परमात्मा पुरुषोत्तम पुरुष की रानी और पेट में-गर्भ में दो पुत्र—लव और कुश। पेट में दो पुत्र। वे चरमशरीरी। वे राजकुमार चरमशरीरी। उस भव में मोक्ष जानेवाले। अन्तिम देह थी। ऐसे प्रकार सब बाहर के। धिक्कार ऐसी नौकरी को। ऐसा वह कहता है कि नौकरी नहीं करना। फिर रानी ने उसे जामनगर भेजा था। यहाँ तो कहना है कि ऐसे प्रकार की

शोभा (करे), दरबार आनेवाले हों तो पहले से शोभा होती है। पूरे गाँव को शृंगार किया हुआ, हों!

इसी प्रकार यह तो भगवान तीर्थंकर का आत्मा जिस नगरी में जिस रानी के गर्भ में आवे, वह रानी भी कौन? धर्ममाता। रत्नकूखधारिणी। रतन को कूख में रखा। कहते हैं, देव **सुन्दर वन, उपवन की रचना करता है, सुन्दर भेषवाले नर-नारी नगर में बसाता है,...** सुन्दर जिसका वेष। वापस बिना ठिकाने का व्यक्ति हो और जैसे-तैसे वस्त्र पहने हों, ऐसे नहीं। ऐसे लोग वहाँ बताते हैं। सेठ!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना उत्कृष्ट पुण्य है न! तीर्थंकर पवित्रता में पूरे और पुण्य में भी पूरे। तीर्थंकर की प्रकृति का यह सब फल है, ऐसा कहते हैं। परन्तु ऐसे हों, उन्हें तीर्थंकर कहते हैं, ऐसा। जहाँ-तहाँ आकर जन्मे और हम भगवान हो गये और केवली हो गये, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

सुन्दर भेषवाले नर-नारी नगर में बसाता है,... ऐसे होशियार हों, वे सब वहाँ रहे। साधारण भले हों परन्तु अच्छे-अच्छे लोग बुद्धिवाले, वेशवाले, रूपवाले, ऐसे सब बसें। और, **नित्य राजमन्दिर पर रत्नों की वर्षा होती रहती है,...** नित्य राजमन्दिर पर रत्न की वर्षा पड़े। अकेले हीरा और माणिक ऊपर से झरे। दुनिया को बैठना कठिन। जिसके आत्मा को पूर्णानन्द की प्राप्ति इस भव में होनेवाली है और जिसने तीर्थंकर प्रकृति बाँधी है, उसके फल का क्या कहना! कहो, समझ में आया?

और, **तीर्थंकर का जीव जब माता के गर्भ में आता है, तब माता को सोलह स्वप्न आते हैं,...** लो! सोलह स्वप्न आते हैं, सोलह, हों! **रुचकवरद्वीप में रहनेवाली देवांगनायें माता की नित्य सेवा करती हैं,...** छप्पन कुमारिका, देवियाँ। तेरहवाँ रुचकवर द्वीप है, उसमें देवांगना बसती है। वे आकर हमेशा माता की सेवा करती हैं। आहाहा! देखो न! पुण्य तो कितना है! ऐसी पवित्रता जहाँ प्रगटी है तो ऐसा पुण्य साथ में होता ही है, ऐसा कहते हैं। इसके बिना तीर्थंकर नाम धरावे और तीर्थंकर हैं, ऐसा कहलावे, वे सब लबार है, ऐसा कहते हैं। ऐई! मोहनभाई! आहाहा! माता-पिता—माता की सेवा करना।

ऐसे नौ महीने पूरे होने पर प्रभु का तीन ज्ञान और दस अतिशय सहित जन्म होता है,... लो! जन्म हो, तब तीन ज्ञान और दस अतिशय लेकर जन्मते हैं। पहले दस अतिशय आ गये हैं कल। ३४ अतिशय में जन्म से १० अतिशय होते हैं। ऐसा तीर्थंकर को, सत्शरीर को अरिहन्त कहा जाता है। दरबार! यह ऐसी बातें हैं। यह कुछ भी नाम धरावे न? बाबा हो, नग्न हो, हमें ज्ञान है और हमें ऐसा है। यह सब कल्पित बातें मिथ्या है, ऐसा सिद्ध करने के लिये यह कहते हैं।

नौ महीने पूरे होने पर प्रभु का तीन ज्ञान और दस अतिशय सहित जन्म होता है, तब तीन लोक में आनन्दमय क्षोभ होता है,... तीन लोक में जरा खलबलाहट हो जाती है कि क्या है? क्या है? साता का उदय हो जाता है। **देवों के बिना बजाए बाजे बजते हैं,...** देव के बाजा होते हैं न करोड़ों? भगवान का यहाँ जन्म होता है तो बाजे बजते हैं। देव के बिना बजाये, हों! अपने आप आवाज निकलती है। कुदरती पुरुष है न? **इन्द्र का आसन कम्पायमान होता है,...** इन्द्र का आसन कम्पायमान होता है। कोई महापुरुष का कहीं मनुष्यदेह में मनुष्यक्षेत्र में जन्म हुआ है। उसका (आसन) कम्पायमान होता है (इसलिए) खबर पड़ती है।

मुमुक्षु : सभी तीर्थंकर को...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब तीर्थंकर को, सब इन्द्रों को।

तब इन्द्र प्रभु का जन्म हुआ जानकर... इन्द्र प्रभु का जन्म हुआ जानकर **स्वर्ग से ऐरावत हाथी पर चढ़कर आता है,...** स्वर्ग में से ऐरावत हाथी पर। वह हाथी है तो देव, परन्तु हाथी का रूप धारण करता है और उसके ऊपर भगवान के निकट आता है। **सर्व चार प्रकार के देव-देवी एकत्र होकर आते हैं,...** सर्व चार प्रकार के देव। सर्व अर्थात् बहुत आनेवाले। देव-देवी इकट्ठे होते हैं। उस समय **शची (इन्द्राणी) माता के पास जाकर गुप्तरूप से प्रभु को ले आती हैं,** ... भगवान को गुप्तरूप से ले जाती है। पूछे बिना, हों! दूसरा पुतला वहाँ रखे और भगवान को ले जाये। इसी प्रकार जिनका जन्म महोत्सव इन्द्र करते हैं। यह गर्भ और जन्म महोत्सव की बात आयी। फिर विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१६८, गाथा-४१ से ४४, गुरुवार, पौष शुक्ल ११, दिनांक ०७-०१-१९७१

यह अष्टपाहुड़ में बोधपाहुड़। इसकी गाथा ४१। उसका भावार्थ चलता है। अरिहन्त का स्वरूप वर्णन करते हैं। अरिहन्त जो परमात्मा हों, तीर्थंकरदेव, वे उनकी माता के गर्भ में आते हैं। कोई नरक में से और स्वर्ग में से (आते हैं)। कोई अध्धर से आवे, ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। वे परमात्मा मोक्ष में से नहीं आते। जिसे इस भव में पूर्ण पद प्राप्त होना है, अरिहन्त सर्वज्ञ तीर्थंकर, हों! वे कोई नरक में से भी आते हैं। जैसे श्रेणिक राजा नरक में से आयेंगे। पहले तीर्थंकर होंगे। ऋषभदेव भगवान आदि सब स्वर्ग में से आये थे। माता के गर्भ में तीन ज्ञान लेकर, क्षायिक समकित लेकर कितने ही तो आते हैं। उनका वर्णन करते हैं। पश्चात् उनका जन्म होता है। इन्द्र गर्भकल्याणक मनाते हैं। यहाँ तक अपने आया है।

चार प्रकार के देव-देवी एकत्र होकर आते हैं, शची (इन्द्राणी) माता के पास जाकर गुप्तरूप से प्रभु को ले आती हैं,... माता जब जन्म देती है... भाषा तो क्या करे? माता जन्म दे? परन्तु भाषा व्यवहार में बोलने में क्या आवे? देव ऐसा करे... देव ऐसा करते हैं, ऐसा आता है या नहीं? कालाजी! करते हैं? परन्तु बोलने में क्या आवे? जब भगवान की माता प्रभु को जन्म देती है, तब इन्द्राणी माता के पास जाती है, गुप्तरूप से प्रभु को ले जाती है। गुप्तरूप से ले जाती है। **इन्द्र हर्षित होकर हजार नेत्रों से देखता है।** इन्द्र हजार नेत्र करके भगवान को ऐसे देखता है। सब तर्क उठे कि देखना और नेत्र से और यह सब क्या है? यह सब सहज बनता है। ऐसा है। समझ में आया? हजार नेत्र बनावे। नेत्र तो रजकण की अवस्था है।

मुमुक्षु : इतने सब बना सकते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा क्या कहलाये? उसे ऐसा बनता है। महापुण्यशाली पुरुष। इन्द्र अर्थात्? महापुण्यवन्त प्राणी है। एकावतारी है। एक भव करके मोक्ष जानेवाला देव है। और यह तो तीर्थंकर परमात्मा उस भव में मोक्ष जानेवाले हैं। उनके शरीर की सुन्दरता और प्रत्येक अवयवों की कोमलता इतनी सुन्दर और सुकोमल होती है कि देव हजार नेत्र करके देखे तो भी तृप्ति नहीं होती। आत्मा के आनन्द के रूप की तो क्या बात करना! भगवान को उस समय भी अतीन्द्रिय आनन्द है।

जन्में, तब भी अन्तर आत्मा का भान लेकर जन्मे हैं। सम्यग्दर्शनसहित हैं। आत्मा के आनन्द के भानसहित हैं। परन्तु उनके शरीर की स्थिति भी ऐसी होती है कि गोद में हजार नेत्र करके देखे। और इन्द्र अपनी गोद में ले। इन्द्र अपनी गोद में उठाये। लो! गोद में ले सके? त्रम्बकभाई! यह त्रम्बकभाई ने प्रश्न किया था अभी कि यह सब करे... करे... आता है, क्या होगा यह?

मुमुक्षु : बनता है, यह सब बाहर से।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनता है। बनता है, उसमें निमित्तपना कौन है, उसकी बात करते हैं। पण्डितजी! नहीं तो एक रजकण को भी कोई बदल सकता है? परन्तु यह व्यवहार करनेवाले का निमित्त कौन था? इतना बताने के लिये भगवान को हजार नेत्र से देखता है, ऐसा कहा। गोद में ले। अभी तो पहले दिन का शरीर है न!

ऐरावत हाथी पर चढ़कर... ऐरावत नाम का हाथी होता है, उसके ऊपर वह चढ़े। भगवान को लेकर चढ़े। **मेरुपर्वत पर जाता है,...** मेरुपर्वत है। देखो! ऐसे तीर्थंकर होते हैं। ऐसे भगवान... भगवान... करे और भगवान में ठिकाना न हो। पुण्य का नहीं और पवित्रता का नहीं। ऐसी पहिचान कराते हैं। बोधपाहुड़। अरिहन्त की वास्तविक पवित्रता कितनी होती है और उनकी पुण्य प्रकृति भी अथाग होती है। इन्द्र भी जिनके निकट दास होकर वर्तते हैं। समझ में आया? **मेरुपर्वत पर जाता है, ईशान इन्द्र छत्र धारण करता है,...** शकेन्द्र जो है, पहले देवलोक के इन्द्र और उसकी इन्द्राणी, वे दोनों पति-पत्नी एकावतारी हैं। एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं। देव की अन्तिम देह है। वहाँ से मनुष्य होकर दोनों मोक्ष जायेंगे। ऐसे शकेन्द्र भी भगवान को गोद में लेकर मेरुपर्वत पर जाते हैं। **ईशान इन्द्र छत्र धारण करता है,...** दूसरे देवलोक का इन्द्र। यह पहले देवलोक का इन्द्र है शकेन्द्र। वह दूसरा ईशान इन्द्र छत्र सिर पर रखता है। **सनत्कुमार, महेन्द्र इन्द्र चंवर ढोरते हैं,...** तीसरे देवलोक का इन्द्र सनतकुमार।

मुमुक्षु : यह सब नियुक्ति हो गयी होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब व्यवस्थित ही है। इनकी ऐसी पुण्य प्रकृति है। तीर्थंकर परमात्मा किसे कहे! उनका अवतार कौन? वह आत्मा कौन? उनका शरीर कौन? उनका

पुण्य कौन ? वह अलग चीज़ होती है। अभी यहाँ नहीं, इसलिए उसका वर्णन करते हैं। तुम जिसे-तिसे तीर्थंकर मान लोगें, ऐसा नहीं। समझ में आया ?

सनत्कुमार, महेन्द्र... दो देवलोक हैं। तीसरा देवलोक सनतकुमार, चौथा देवलोक महेन्द्र। उनके दो इन्द्र भगवान के दोनों ओर चामर ढारते हैं। सौधर्म इन्द्र गोद में ले, ईशान इन्द्र छत्र ढाले, तीसरे और चौथे देवलोक के इन्द्र चामर ढारे। ऐसी पुण्य प्रकृति होती है, उसके कारण ऐसा सहज बनता है। तब इन्द्र करते हैं, ऐसा कहा जाता है। बात ऐसी है।

मुमुक्षु : तब कहकर वापस उसका नकार करना...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो त्रंबकभाई ने सवेरे प्रश्न किया था, इसलिए यह स्पष्टीकरण करना पड़े। यह सब करते हैं... करते हैं... चलता क्या है ? अभी प्रश्न किया। करते हैं, ऐसी भाषा तो दूसरी क्या होगी ? वहाँ से आये, यहाँ देखा, भगवान को ले गये। ले गये अर्थात् भगवान का शरीर शरीर के कारण से जाता है परन्तु गोद में लेकर जाते हैं, ऐसा उसका व्यवहार निमित्त है न ? इसलिए निमित्त से बात होती है। नहीं तो भगवान का शरीर तो अपने आप चलता है। रतिभाई ! ऐसे भगवान होते हैं। तीर्थंकर अरिहन्त। उनकी जैन में रहे हुए को खबर नहीं होती। कैसे तीर्थंकर होते हैं। फिर जिसे-तिसे भगवान माने। ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं।

सनत्कुमार, महेन्द्र इन्द्र चंवर ढोरते हैं,... कहा, समझ में आया ? यह सनत्कुमार। ऐई ! वजुभाई ! क्या ? अर्थात् ? तीसरे देवलोक का इन्द्र।

मुमुक्षु : भगवान को पसीना तो होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पसीने की यहाँ बात कहाँ है ? यह तो पुण्य की रीति ऐसी होती है। यह तो बहिन का याद आ गया—सनतकुमार का। बहिन सनतकुमार में थी न दूसरे भव में ? इसलिए यहाँ यह याद आ गया। समझ में आया ? वजुभाई को यही कहा। वजुभाई समझे या नहीं कुछ ? सनतकुमार में बहिन थी। उनका जीव। इससे पहले महाविदेह में थीं। उसके पहले सनतकुमार में।

मुमुक्षु : आपके मुँह से सुनना था।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सनतकुमार शब्द आया, वहाँ बहिन याद आयीं। इसलिए

मैंने तुम्हें जरा... तुमसे कहा, समझे थे कुछ ? नहीं ? देखो ! यह उनके दो भाई हैं। समझ में आया ? इस तीसरे देवलोक में बहिन का जीव था। महाविदेह में फिर वहाँ से तीसरे देवलोक में से आये हैं।

यह **सनत्कुमार, महेन्द्र इन्द्र चंवर ढोरते हैं,...** तीर्थंकर को। समझ में आया ? आहाहा ! **मेरु के पाण्डुकवन की पाण्डुकशिला पर...** मेरुपर्वत है न बीच में ? यह जम्बूद्वीप लाख योजन का (है इसके) बीच में **मेरुवन की पाण्डुकशिला पर...** पाण्डुक वन है। उसमें विशाल पत्थर की पाण्डुकशिला है। **सिंहासन के ऊपर प्रभु को विराजमान करते हैं,...** आहाहा ! देखो न ! कितना पुण्य है ! इन्द्र, (भगवान) अभी तो एक दिन के हैं, वहाँ लेकर जाते हैं। दूसरे को हवा लगे तो मर जाये बीच में। है या नहीं ?

मुमुक्षु : अभी तो कलश ढोलेंगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी तो फिर कलश ढोलेंगे। यह तो एक दिन के बालक हैं। जन्मे, ऐसे ले जाये। उनका शरीर भी ऐसा मजबूत होता है। आत्मा तो अन्तर केवलज्ञान को पायेगा। ऐसा तो लेकर आये हैं, तैयारी करके। त्रिकाल ज्ञान परमात्मा। समझ में आया ?

परन्तु यहाँ उन्हें-प्रभु को वहाँ स्थापित करते हैं-बैठाते हैं। **सब देव क्षीरसमुद्र में एक हजार आठ कलशों में जल लाकर...** जन्मे हुए बालक को पानी के कलश डाले तो मर जाये। नवनीतभाई ! एकदम जन्मा हुआ हो तो।

मुमुक्षु : वह होंगे कितने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इतने। होवे तो छोटे। इतना शरीर होता है उस समय। बालकरूप से शरीर कितना बड़ा हो। सात हाथ का। परन्तु अपने इतना हो। परन्तु उन्हें जरा बड़ा हो। सात हाथ के थे न ? महावीर भगवान की बात, हों ! यह तो समुच्चय बात। पाँच सौ धनुषवाले को उसके प्रमाण में होता है। उसके प्रमाण में शरीर होता है न ?

कहते हैं कि **क्षीरसमुद्र से सारे देव...** अर्थात् बहुत से देव। सब देव तो कहाँ से आवे... **क्षीरसमुद्र में एक हजार आठ कलशों में...** कलश बड़ा आठ योजन का लम्बा-विशाल। इतना कलश नहीं। आठ योजन का ऐसा ऊँचा होता है। चार योजन का

तो बीच में घेरा होता है। ऐसा बड़ा कलश। ऐसे एक हजार आठ कलश। आहाहा!

मुमुक्षु : क्षीर समुद्र का पानी ठण्डा नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पानी तो ठण्डा होता है, वहाँ कहाँ गर्म करके डाले? यहाँ कहीं तुम्हारे वह पानी के निकले, क्या कहलाता है वह? नल में पानी निकले न सवेरे, वह जरा गर्म होता है। ऐसा वहाँ कुछ नहीं होता। पानी सुहावे ऐसा नहीं होता। तीर्थंकर अर्थात् वज्रनाराच संहनन। समचतुरस्र संस्थान। देव ऐसे हजार नेत्र करे तो भी तृप्ति (न हो)। इन्द्र! इन्द्र अर्थात् कौन? असंख्य देव का स्वामी-मालिक। वह ऐसे देखे तो तृप्ति नहीं होती। उनका पुण्य कितना! अवयव अवयव में कोमलता। कोमलता और सुन्दरता। यह पुण्य प्रकृति का वर्णन करते हैं। ऐसा पुण्य होता है, ऐसे पवित्र होते हैं, उन्हें ऐसा होता है। अकेले-अकेले भगवान कह दे और हो जाये, ऐसे भगवान नहीं हो सकते। समझ में आया?

देव-देवांगना गीत नृत्य वादित्र द्वारा... देव और देवांगना, गीत और नाचना। नृत्य करे। वाजिन्त्र **बड़े उत्साहसहित...** वापस ऐसा नहीं ऐं... ऐ... करके। अपने करना पड़ता है, बेगारी है, ऐसा नहीं। उत्साहसहित (करते हैं)। आहाहा! तीन लोक के नाथ परमात्मा। एक समय में जो तीन काल जानेंगे और जिनकी वाणी से बहुत जीवों के उद्धार का निमित्त होनेवाला है। उनकी .... बात क्या करना?

मुमुक्षु : यह ज्ञानपुण्य गिनना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य।

मुमुक्षु : ज्ञान का पुण्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान का पुण्य नहीं। पुण्य होता है। अलग। ज्ञान की भूमिका में आनन्द की दशा में बँधा हुआ पुण्य। पुण्य अलग और ज्ञान अलग। परन्तु धर्मदशा प्रगटी हुई हो—आत्मा का आनन्द—उस भूमिका में अभी ऐसा शुभभाव आवे, उसका पुण्य बँध जाता है। अच्छा अनाज पके, उसमें घास भी अच्छा होता है। यह तो तुमको खबर होगी या नहीं? क्यों दरबार? अच्छा लोथा पके तो उसका घास भी अच्छा होता है। यहाँ तो अभी तो नहीं परन्तु (संवत्) १९७३ के वर्ष की बात है। ७३, भाई! बहुत वर्षा आयी थी। दरबार को याद नहीं होगा। ७३ के वर्ष, बहुत वर्ष हो गये। कितने हुए? ५४। छह महीने वर्षा थी।

चैत्र से आसोज तक। यहाँ दामनगर में चातुर्मास था। वहाँ से उठकर आहोदर। बचूभाई का था, नहीं? आहोदर गये तो रास्ते में घास-फूस देखो तो... ओहो! ऐसी वर्षा आयी... ऐसी आयी... ५४ वर्ष हुए। इतने बड़े—बड़े लोथा पके हुए, हों! बिगाड़ नहीं और बरसात ऐसी आयी। रास्ते में तो हमारे विहार करके जाना। अनाज... अनाज खेत, ओहोहो! घास ऐसा और दाने बड़े ऐसे ज्वार के। ७३ की बात, दरबार! हमने तो बहुत सब देखा हो न। रास्ते में विहार हजारों कोस किया है न? छह हजार, सात हजार कोस विहार किया है। समझ में आया?

यह ७३ में ऐसी वर्षा हुई उसका घास-फूस था, गन्ने जैसा मोटा, हों! बाजरे का, ज्वार का। बहुत वर्षा थी तो फिर हमारे दामोदर सेठ के घर में खेत थे न। दामोदर सेठ के घर में बड़े खेत हैं। बहुत बड़ी उपज। चालीस हजार की आमदनी तो उस समय। उस समय, हों! ७३ के वर्ष में। चालीस हजार। एक दस हजार का गाँव। बहुत होशियार व्यक्ति न इसलिए फिर वे दस-दस डण्ठल बड़ी सुतली से बाँधे। गिर न जाये। बहुत बरसात थी न? दस-दस डण्ठल (बाँधे)। बड़े लोथा इतने-इतने। दस-दस डण्ठल को सुतली बाँधे। इसलिए ऐसे भी न गिरे और ऐसे भी न गिरे। पूरा खेत बाँधे। बाँध सकता है या नहीं?

मुमुक्षु : कोई तो बाँध सकता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई बाँध नहीं सकता। अपने कारण से परिणमता है। परन्तु व्यवहार से भाषा क्या बोली जाये? त्र्म्बकभाई! आहाहा!

देव-देवांगना गीत नृत्य वादित्र द्वारा बड़े उत्साहसहित प्रभु के मस्तक पर कलश ढारकर जन्मकल्याणक का अभिषेक करते हैं,... पानी डाले ऐसे सिर पर। एक हजार आठ कलश। देखो तो यह पुण्य की बात! उन्हें ऐसा पुण्य होता है। केसर होती है, वह कहीं बोरियों में नहीं रहती। केसर तो अन्दर डिब्बी या बरणी में रहती है। उसी प्रकार उनका आत्मा ही ऐसा है, जहाँ कि उनका शरीर ही कोई अलग प्रकार का होता है। परमौदारिकशरीर। हीरा जैसा उनका कठिन शरीर होता है। तब एक हजार आठ कलश सिर पर गिरे (तो भी) भगवान तो बैठे होते हैं। पूरी दुनिया से अलग प्रकार है यह। तीर्थंकर किसे कहें? और उनकी पुण्य प्रकृति किसे कहें? समझ में आया?

पीछे शृंगार, वस्त्र, आभूषण पहिनाकर... पश्चात् भगवान को... अभी एक दिन का बालक। उसे शृंगार पहनाते हैं, वस्त्र, गहने पहनाकर **माता के मन्दिर में लाकर...** माता जहाँ हो, वहाँ वापस घर में... **माता को सौंप देते हैं,...** माता को सौंपते हैं। माता! आहाहा! **इन्द्रादिक देव अपने-अपने स्थान पर चले जाते हैं,...** इन्द्र स्वयं अपने स्थानक चले जाते हैं। **कुबेर सेवा के लिए रहता है।** बड़ा कुबेर है, वह सेवा में—सुश्रुषा में रहता है। **तदनन्तर कुमार अवस्था...** भगवान की कुमार अवस्था होती है। एक तो सब क्षत्रिय सब होते हैं। दरबार! जितने तीर्थंकर, सब क्षत्रिय होते हैं, बनिया नहीं होते। अर्थात् क्षत्रिय हों, वे तीर्थंकर होते हैं। तीर्थंकर हों, वे क्षत्रिय होते हैं।

मुमुक्षु : बाहर का ले लिया न...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आवे बाहर का बाहर का हो। दरबार ठीक कहते हैं। मूल जो तीर्थंकर महापुण्यशाली है न? इसलिए क्षत्रिय वीर्यवाले होते हैं। और उनके शरीर की पुण्य प्रकृति सुन्दरता इतनी होती है कि इन्द्र भी चकित हो जाते हैं। ऐसे तीर्थंकर होते हैं। अभी भगवान वहाँ विराजते हैं। महाविदेह में सीमन्धर परमात्मा साक्षात् इस प्रमाण वहाँ हैं। इस प्रमाण सब हो गया है। समझ में आया? भगवान विराजते हैं केवलज्ञानरूप से। अभी अरबों वर्ष रहेंगे। आहाहा!

इन्द्र आकर माता को पहले चरण वन्दन करता है। हे रत्नकूख धारिणी! ऐसे रतन को गर्भ में रखनेवाली माता! प्रभु को तो धन्य है, परन्तु माता! तुझे भी धन्य है! आहाहा! दो शंख का मोती। पिता और माता भी उनके ऐसे होते हैं। अल्प भव में मोक्ष जानेवाले। भगवान के कारण नहीं, हों! उनकी स्वयं की ऐसी योग्यता होती है। माता और पिता। माता उस भव में नहीं जाती। स्त्री है न! पिता तो उस भव में सीधे मोक्ष जायेंगे। माता-पिता भी दोनों मोक्ष जानेवाले होते हैं। ऐसा तीर्थंकर जैसा आत्मा, महारतन जिनके गर्भ में सवा नौ महीने रहे, उनके पिता (ऐसे होते हैं)। ऐसी वस्तु है भाई यह तो। आत्मा की महत्ता के समक्ष दूसरी महत्ता क्या है? महाप्रभु चैतन्य है। रत्नाकर भगवान अनन्त गुण के रतन से भरपूर है। आहाहा! उसका भान होकर जहाँ तीर्थंकर को केवलज्ञान होना होता है, उस भव में, उनकी सेवा में देव रखे।

तदनन्तर कुमार अवस्था तथा राज्य अवस्था भोगते हैं। कोई। कोई राज

अवस्था भोगते हैं। **उसमें मनोवांछित भोग भोगकर...** लो! मनोवांछित समकिती है न? वह तो इच्छा होती है, तत्प्रमाण वहाँ आने का होता है। इस अपेक्षा से (कहा)। परन्तु कथन क्या करना? कथन तो सब (ऐसे होते हैं)। मनोवांछित (तो क्या) भगवान को भोग की इच्छा होगी? सुखबुद्धि मानते हैं कहीं? वे तो समकिती ज्ञानी हैं। आत्मा में आनन्द मानते हैं। परन्तु अभी वीतरागता हुई नहीं तो थोड़ी इच्छा होती है। **मनोवांछित भोग भोगकर फिर कुछ वैराग्य का कारण पाकर...** वैराग्य का कोई निमित्त मिले, बस, छूट जाते हैं, निकल जाते हैं।

मुमुक्षु : कैसा निमित्त का जोर यहाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त मिले (अर्थात्) वह तो स्वयं ऐसे हैं। निमित्त तो दूसरे को क्यों नहीं हुआ? उन्हें हो गया। जैसे ऋषभदेव भगवान। इन्द्र ने नीलांजना देवी भेजी थी। भगवान बैठे थे सिंहासन पर। और ऐसे देवियाँ नृत्य करती हैं। उसमें एक देवी ऐसी भेजी कि उस समय आयुष्य पूरा (हो गया)। उस समय पूरा। भगवान जाननेवाले कि अहो! इस देवी का आयुष्य पूरा हो गया। यहाँ ही नाचते हुए। दूसरी देवी रख दी। ख्याल में आ गया। आहाहा! यह तो एक निमित्त (था)। वैराग्य, एकदम वैराग्य। जातिस्मरण हुआ तो...

संसार-देह-भोगों से विरक्त हो जाते हैं। लो! फिर भगवान संसार से, रागादि-देहादि और भोग से विरक्त होते हैं। **तब लौकान्तिक देव आकर,...** लौकान्तिक देव हैं। पाँचवें देवलोक के ब्रह्मचारी देव होते हैं। उन्हें इन्द्राणी-देवी नहीं होती। आठ सागर का आयुष्य होता है। कम-ज्यादा नहीं। आठ सागरोपम का आयुष्य। समझ में आया? **तब लौकान्तिक देव आकर, वैराग्य को बढ़ानेवाली प्रभु की स्तुति करते हैं,...** वैराग्य के बढ़ानेवाली प्रभु की स्तुति करते हैं। अहो! प्रभु! निकलो प्रभु नाथ! जगत के उद्धार के लिये। जगत तरस रहा है, आपकी देशना सुनने के लिये। उपदेश दें।

फिर इन्द्र आकर 'तपकल्याणक' करता है। लो! दीक्षा कल्याणक। पहले गर्भ कल्याणक, दूसरा जन्म कल्याणक, पश्चात् यह। तप कल्याणक का अर्थ मुनिपना। मुनिपना ले, नग्न (दशा) हो। **पालकी में बैठाकर बड़े उत्सव से...** पालकी में बैठावे। **बड़े उत्सव से वन में ले जाता है,...** वन में जाये। **वहाँ प्रभु पवित्र शिला पर बैठकर**

पंचमुष्टि से लोचकर... लो! आहाहा! देखो! उस समय का समय कैसा होगा? उस प्रसंग को देखनेवाले, प्रसंग की प्रशंसा करनेवाले... वन में-जंगल में चले जाते हैं। फिर ... लोंच करे।

पंच महाव्रत अंगीकार करते हैं,... लो! पंच महाव्रत। णमो सिद्धाणं। इतनी आवाज करे। णमो सिद्धाणं कहकर पंच महाव्रत ले। **समस्त परिग्रह का त्याग कर...** वस्त्र की लंगोटी-तानाबाना भी उन्हें नहीं होता। **दिगम्बररूप धारण कर ध्यान करते हैं,...** लो! दिगम्बर हो जाते हैं। माता से जन्मे ऐसे निर्विकारी-निर्दोष। आहाहा! ऐसी दशा प्राप्त हुए बिना मुनिपना नहीं हो सकता। देखो! यह तीर्थंकर हैं, उन्हें मोक्ष जाना है परन्तु चारित्र लेने में यह स्थिति होती है। वे नग्न दिगम्बर होते हैं। समझ में आया? तीर्थंकर को भी वस्त्र सहित दीक्षा नहीं हो सकती। तो दूसरे को नहीं हो सकती। वस्त्रसहित दीक्षा और साधु मानते हैं न? वह वीतराग मार्ग से विरुद्ध है। मुनि ऐसे नहीं होते। मुनि तो आत्मा के आनन्द में इतनी रमणता होती है कि जिन्हें वस्त्र लेने का विकल्प-वृत्ति भी नहीं होती। समझ में आया?

दिगम्बररूप धारण कर ध्यान करते हैं,... अन्तर में ध्येय के ऊपर लक्ष्य जाता है, एकदम। **उसी समय मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो जाता है।** चौथा ज्ञान उपजता है, लो! मति, श्रुत और अवधि तीन ज्ञान तो माता के गर्भ में लेकर आये हों। दीक्षित हो तो चौथा ज्ञान उपजता है। **फिर कुछ समय व्यतीत होने पर तप के बल से घातिकर्म की प्रकृति...** लो! तप के बल से। तप अर्थात् इच्छानिरोध। आनन्द में रमते-रमते अन्दर अतीन्द्रिय... **घातिकर्म की प्रकृति ४७, अघाति कर्मप्रकृति १६,..** टालते हैं, लो! ४७ घाति की टालते हैं, १६ अघाति की टालते हैं। देखो! सब ४७-४७ बहुत मिलान। प्रकृति ४७, अपने शक्ति ४७, नय ४७, निमित्त-उपादान के दोहे ४७। कुछ अन्दर रहस्य होगा। ४७-४७- सब आता है न? इसके ४७। कहो, यह उपादान और निमित्त तो अभी बनाया।

४७ घाति। ज्ञानावरणीय की पाँच, दर्शनावरणीय की नौ, मोहनीय की अट्ठाईस, अन्तराय की पाँच। ४७ नाश करके केवलज्ञान पाते हैं। उसके साथ अघाति की सोलह जाती है। **त्रेसठ प्रकृति का सत्ता में से नाशकर केवलज्ञान उत्पन्न कर...** देखो! इतनी प्रकृति होती है, कर्म बाकी हों, उन्हें ऐसे टालते हैं। देखो न! कितना इस वस्तु का अस्तित्व

सिद्ध करते हैं ! अध्धर का अध्धर ऐसे-वैसे भगवान हो, कर्म-फर्म नहीं और कर्म की प्रकृति कितनी और कुछ नहीं, यह सब गप्प-गप्प है। समझ में आया ?

अनन्त चतुष्टयरूप होकर... अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त बल, ऐसा भगवान को प्रगट होता है। परमात्मा अरिहन्त होते हैं। भले अभी शरीर है, सिद्ध नहीं हुए परन्तु परमात्मदशा पूर्ण हो गयी। **क्षुधादिक अठारह दोषों से रहित अरहन्त होते हैं।** उन भगवान को आहार नहीं होता, पानी नहीं होता, रोग नहीं होता। रतिभाई ! यह रोग कहते हैं या नहीं ?

मुमुक्षु : घर में आहार लेने आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर में आहार लेने आवे, ऐसा कहते हैं। आहार करना हो तो कहाँ जाये ? भगवान को आहार नहीं होता। अरिहन्त परमात्मा अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण स्वरूप (प्रगट हुआ है)।

मुमुक्षु : पात्रा ले...

पूज्य गुरुदेवश्री : पात्रा भी नहीं होते, कुछ नहीं होता। एक शरीर है और वाणी-उपदेश निकले, पूर्व के कारण से। बाकी कुछ नहीं होता। उन्हें क्या करना है ? वे तो सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण दशा है। आहाहा ! वे आहार लें और उन्हें रोग हो, और दवा लें। दवा लेने के बाद रोग मिट जाये। शरीर को रोग ही नहीं होता। शरीर ही ऐसा होता है। देखो न ! परमौदारिकशरीर तो पहले से लेकर आये हैं। आहाहा !

मुमुक्षु : शरीर हो और रोग न हो, ऐसा होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। शरीर हो तो रजकण नहीं हो ? यह लोहा है, उसे रोग कहाँ है ? है ?

मुमुक्षु : यह शरीर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो यह भी शरीर है। दूसरा क्या ? इसे रोग है ? रोग इसे होता है ?

मुमुक्षु : यह शरीररूप परिणमे...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शरीररूप ही परिणमता है। यह शरीररूप से परिणमे, ऐसे ही

परमाणु... हड्डियों के... वज्र मजबूत ऐसे। उसे और रोग कैसा? आहाहा! वृद्धावस्था नहीं होती न। अरबों वर्ष जाये तो भी उनका शरीर ऐसा का ऐसा दिखता है। जैसे पहले देखे थे, वैसे अभी हैं, ऐसा का ऐसा लगे। वृद्धावस्था नहीं दिखती। वृद्धावस्था नहीं होती। ऐसा तो शरीर है। रोग तो किसका हो? आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब कल्पित बातें। भाई ने सुना तो होगा न।

कहो, समझ में आया? **क्षुधादिक...** तृषा। ... आता है न... बाहर। रोग हुआ और रेवतीबाई के यहाँ से ले आये। सब खोटी मिथ्या कल्पित बातें। यह तो अभी कोई निकला है।

मुमुक्षु : नाम-ठाम देकर कहते हैं और खोटा?

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम न दे खोटा? अध्धर से नाम देकर कहे, अमुक भाई ऐसा लेकर गये थे... और अमुक भाई ले गये थे। बनिया भी पहले नाम दे। भाव अधिक लेना हो (तो ऐसा कहे) इस भाव में अमुक लेकर गये हैं। ऐसा हो नहीं। खोटा-खोटा।

मुमुक्षु : बहियाँ बतावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहियाँ कहा न। बहियों में लिखा हुआ (बतावे)। खोटा लिखे। यह पाँच हजार मण गेहूँ इस भाव में ले गये हैं। लो! इतनी बोरियाँ इस भाव में ले गये। होवे खोटा-खोटा। ऐई! जादवभाई! क्यों दरबार! अच्छे भाव देना हो इसलिए बड़े का नाम डालकर कहे, इतने भाव में तिल ले गये हैं। लिखे इसलिए कहीं सच्चा हो गया? आहाहा!

कहते हैं, **क्षुधादिक...** १८ दोष नहीं। तृषा नहीं, क्षुधा नहीं, रोग नहीं। **अरहन्त होते हैं।** उन्हें अरिहन्त कहा जाता है। देखो! अब उन्हें अरिहन्त कहा। अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द प्रगट हुए हों और शरीर ऐसा हो। क्षुधा-तृषा न हो। इन्द्र जिन्हें पूजे, ऐसे अरिहन्त होते हैं।

फिर इन्द्र आकर समवसरण की रचना करता है... इन्द्र आकर धर्मसभा रचता है। यह समवसरण है न अपने? यहाँ तो साधारण है। इन्द्र आकर धर्मसभा रचता है। **सो आगमोक्त अनेक शोभासहित...** बहुत शोभा। आगमोक्त है न? समवसरण का बनाया

है न? भाई ने–पण्डितजी ने अपने बनायी है न? स्तुति। उसमें बहुत अधिक लिखा है। आदिपुराण में से बनायी है। **आगमोक्त अनेक शोभासहित मणिसुवर्णमयी कोट,...** लो! मणि और स्वर्ण के तो कोट होते हैं, खाई होती है। वेदी होती है। चार दिशा। **चार दरवाजे, मानस्तम्भ,...** लो! ऐसे बड़े चार मानस्तम्भ होते हैं। भगवान विराजते हैं, वहाँ सब है।

नाट्यशाला, वन आदि अनेक रचना करता है। उसके बीच सभामण्डप में बारह सभा,... बैठे। आहाहा! समझ में आया? **उनमें मुनि,...** मुनि भी आते हैं, सभा में बैठते हैं। **आर्यिका,...** साध्वी नहीं होती परन्तु आर्यिक पाँचवाँ (गुणस्थान)। **श्रावक, श्राविका, देव, देवी, तिर्यंच बैठते हैं।** लो! धर्मसभा में सिंह और बाघ, ढोर–पशु आते हैं। नाग और बाघ ऐसे बैठे हों। काले नाग हों ऐसे बड़े। शान्त... सब अचिन्त्य प्रकृति की बात है, भाई यह तो। **अनेक अतिशय प्रकट होते हैं।** प्रभु को। अतिशय अर्थात् विशेषता। पुण्य की विशेषता दूसरे की अपेक्षा बहुत होती है।

सभामण्डप के बीच तीन पीठ पर गन्धकुटी के बीच... अपने यहाँ है न? तीन पीठ होती है। पहली, दूसरी और तीसरी। उसमें गन्धकुटी ऊपर होती है। **बीच सिंहासन पर...** ऊपर होती है। **कमल के ऊपर अन्तरीक्ष प्रभु विराजते हैं...** लो! अध्धर विराजते हैं। सिंहासन के ऊपर नहीं विराजते। सिंहासन से अध्धर चार अंगुल ऊँचे होते हैं। लो! अन्तरिक्ष तो यहाँ दिगम्बर में होता है। अन्तरिक्ष भगवान यहाँ हैं। श्वेताम्बर कहे, हमारा है। अन्तरिक्ष तो दिगम्बर में होता है। श्वेताम्बर में ऐसी ऊँची बात कहीं है नहीं। वे तो जहाँ हो वहाँ पृथ्वीशिला पर विराजते हैं, ऐसा आता है। यह अन्तरिक्ष तो यहाँ है। तथापि विवाद... विवाद... विवाद... गजब भाई, विवाद। धर्म के नाम से भी ऐसे बैर–जहर।

अन्तरीक्ष प्रभु विराजते हैं और आठ प्रातिहार्य युक्त होते हैं। वाणी / दिव्यध्वनि आदि आया था न? अशोकवृक्ष आदि होते हैं। **वाणी खिरती है,...** वाणी खिरती है, ऐसा लिखा है, देखो! वाणी बोलते हैं, ऐसा नहीं लिखा। ॐ.... ऐसी आवाज / ध्वनि खिरती है। ॐ.... ऐसी ध्वनि। ऐसा छह घड़ी चलता है। **उसको सुनकर गणधर द्वादशांग शास्त्र रचते हैं।** उसमें से मुनि / गणधर जो हैं, वे वाणी सुनकर बारह अंग की रचना करते हैं। ऐसा उनका—गणधर का क्षयोपशमभाव होता है।

ऐसे केवलज्ञानकल्याणक का उत्सव इन्द्र करता है। यह केवलज्ञान का महोत्सव किया। पहले गर्भ का, फिर जन्म का, फिर दीक्षा का और यह केवलज्ञान का। **फिर प्रभु विहार करते हैं। उनका बड़ा उत्सव देव करते हैं।** विहार करे तब देव सामने छत्र लेकर चलते हैं। पहले नहीं आया? इन्द्र जिनकी सेवा करे, ऐसे तीर्थंकर... आहाहा! **कुछ समय बाद आयु के दिन थोड़े रहने पर योगनिरोध कर...** लो! योगनिरोध हो जाता है। वहाँ करना है कहाँ अन्दर? योगनिरोध कम्पन स्थिर हो जाता है। **अघातिकर्म का नाशकर मुक्ति पधारते हैं,...** लो! ऐसे भगवान की बात है। सेठिया अभी कहते हैं न? यह २५०० वाँ वर्ष भगवान को ढाई हजार वर्ष होता है तो जयन्ती का उत्सव करेंगे न? अब वह जयन्ती नहीं। यह तो महाप्रभु कल्याणक है, उसकी बातें हैं। इस दुनिया के साथ उसे कुछ मिलान खाये ऐसा नहीं। एक व्यक्ति ऐसा भी बोला है। भगवान को २५०० वर्ष में आओ... दूसरे की जयन्ती सौ वर्ष की—दो सौ वर्ष की—पाँच सौ वर्ष की बहुत सों की मनायी जाती है। भगवान की जयन्ती? भगवान कौन है यह वे? जयन्ती कैसी? उनका तो कल्याणक (होता है), बड़े इन्द्र आकर मनावे, ऐसा उनका होता है। उसके साथ किसी को मिलाया नहीं जाता। कोई राजा, महाराजा किसी को नहीं मिलाया जाता। ऐसे पुरुष के साथ। सबके साथ गिना जायेगा, ऐसा लिखते हैं।

तत्पश्चात् शरीर का अग्नि संस्कार... भगवान अघाति का नाश करके मुक्ति पधारे। **तत्पश्चात् शरीर का अग्नि संस्कार कर इन्द्र उत्सवसहित...** लो, अब शरीर को जलाते हैं। **'निर्वाण कल्याणक' महोत्सव करता है।** लो! यह पाँचवाँ। गर्भ कल्याणक, जन्म कल्याणक, दीक्षा कल्याणक, केवल और निर्वाण (ऐसे) पाँच कल्याणकवाले तीर्थंकर की बात यहाँ ली है। ऐसे तीर्थंकर ऐसे होते हैं। सब सुनना बेचारे को... चन्द्रकान्त कहे, मुझे अरिहन्त का सुनना है। परन्तु ऐसा हो गया कल। गत कल उनका आहार था न। सायंकालीन भोजन करके। कल तो अच्छा था। शरीर का कहाँ भरोसा, किस क्षण पड़े? आहाहा!

अरे! मोह में जिन्दगी ऐसी की ऐसी चली जाती है। आत्मा का क्या करना, उसका रह (जाये और) ऐसा का ऐसा यह कमाना और खाना और यह व्यापार, यह धन्धा। जिन्दगी उसी में चली जाती है। उसमें अकस्मात देह छूट जाती है। आहाहा! उसका उतारा कहाँ

होगा? करने का यह किया नहीं और नहीं करने का किया। आहाहा! ऐसा मनुष्यदेह कीमती। कीमती मनुष्यदेह है। आहाहा! अनन्त काल में प्राप्त हो। ऐसे में जो कुछ आत्मा का करने का है, उसका करे नहीं और यह सब हो, फिर बहुत अरमान हो। आहाहा!

इस प्रकार तीर्थंकर पंच कल्याणक की पूजा प्राप्त कर,... लो! **अरहन्त होकर निर्वाण को प्राप्त होते हैं...** वे निर्वाण को प्राप्त करते हैं। बहुत सरस व्याख्या है। ठेठ से ठेठ तक। अब ११वाँ बोल रहा। अन्तिम। बोहपाहुड़ का।

गाथा-४२-४४

आगे (११) प्रव्रज्या का निरूपण करते हैं, उसको दीक्षा कहते हैं। प्रथम ही दीक्षा के योग्य स्थानविशेष को तथा दीक्षासहित मुनि जहाँ तिष्ठते हैं, उसका स्वरूप कहते हैं–

सुण्णहरे तरुहिट्ठे उज्जाणे तह मसाणवासे वा।
गिरिगुह गिरिसिहरे वा भीमवणे अहव वसिते वा।।४२।।
[1]सवसासत्तं तित्थं [2]वचचइदालत्तयं च वुत्तेहिं।
जिणभवणं अह बेज्झं जिणमग्गे जिणवरा विंति।।४३।।
पंचमहव्वयजुत्ता पंचिंदियसंजया णिरावेक्खा।
सज्झायझाणजुत्ता मुणिवरवसहा णिइच्छन्ति।।४४।।

शून्यगृहे तरुमूले उद्याने तथा श्मसानवासे वा।
गिरिगुहायां गिरिशिखरे वा भीमवने अथवा वसतौ वा।।४२।।
स्ववशासक्तं तीर्थं वचश्चैत्यालयत्रिकं च उक्तैः।
जिनभवनं अथ वेध्यं जिनमार्गे जिनवरा विदन्ति।।४३।।
पंचमहाव्रतयुक्ताः पंचेन्द्रियसंयताः निरपेक्षाः।
स्वाध्यायध्यानयुक्ताः मुनिवरवृषभाः नीच्छन्ति।।४४।।

---

१. सं. प्रति में 'सवसा' 'सतं' ऐसे दो पद किये हैं जिनकी सं. स्ववशा 'सत्त्वं' लिखा है।
२. 'वचचइदालत्तयं' इसके भी दो ही पद किये हैं 'वच:' चैत्यालयं।

दे शून्य घर तरु–मूल में उद्यान भू श्मशान में।
पर्वत गुफा पर्वत शिखर या भयंकर वन में रहें।।४२।।
स्वाधीन मुनि के वास तीर्थ सुशास्त्र चैत्यालय कहे।
जिन–भवन मुनि के लक्ष्य हैं जिन–मार्ग में जिनवर कहे।।४३।।
हैं महाव्रत पाँचों सहित पंचेन्द्रि–संयत कांक्ष–बिन।
स्वाध्याय ध्यान सहित मुनीवर वृषभ होते चाह बिन।।४४।।

अर्थ – सूना घर, वृक्ष का मूल, कोटर, उद्यान, वन, श्मशानभूमि, पर्वत की गुफा, पर्वत का शिखर, भयानक वन और वस्तिकाद्ब– इनमें दीक्षासहित मुनि ठहरें। ये दीक्षायोग्य स्थान हैं।

स्ववशासक्त अर्थात् स्वाधीन मुनियों से आसक्त जो क्षेत्र उन क्षेत्रों में मुनि ठहरे। जहाँ से मोक्ष पधारे, इस प्रकार तो तीर्थस्थान और वच, चैत्य, आलय इस प्रकार त्रिक में जो पहिले कहा गया है अर्थात् आयतन आदिक परमार्थरूप, संयमी मुनि, अरहन्त, सिद्धस्वरूप उनके नाम के अक्षररूप 'मन्त्र' तथा उनकी आज्ञारूप वाणी को 'वच' कहते हैं तथा उनके आकार धातु–पाषाण की प्रतिमा स्थापन को ''चैत्य' कहते हैं और वह प्रतिमा तथा अक्षर मन्त्र वाणी जिसमें स्थापित किये जाते हैं, इस प्रकार आलय–मन्दिर, यन्त्र या पुस्तकरूप ऐसा वच, चैत्य तथा आलय का त्रिक है अथवा जिनभवन अर्थात् अकृत्रिम चैत्यालय मन्दिर इस प्रकार आयतनादिक उनके समान ही उनका व्यवहार उसे जिनमार्ग में जिनवर देव 'वेध्य' अर्थात् दीक्षासहित मुनियों के ध्यान करने योग्य, चिन्तवन करनेयोग्य कहते हैं।

जो मुनिवृषभ अर्थात् मुनियों में प्रधान हैं, उनके कहे हुए शून्यगृहादिक तथा तीर्थ, नाम मन्त्र, स्थापनरूप मूर्ति और उनका आलय–मन्दिर, पुस्तक और अकृत्रिम जिनमन्दिर उनको 'णिइच्छंति' अर्थात् निश्चय से इष्ट करते हैं। सूने घर आदि में रहते हैं और तीर्थ आदि का ध्यान चिन्तन करते हैं तथा दूसरों को वहाँ दीक्षा देते हैं।

यहाँ 'णिइच्छति' का पाठान्तर 'णइच्छंति' इस प्रकार भी है इसका काकोक्ति द्वारा तो इस प्रकार अर्थ होता है कि ''जो क्या इष्ट नहीं करते हैं ? अर्थात् करते ही हैं।'' एक टिप्पणी में ऐसा अर्थ किया है कि ऐसे शून्यगृहादिक तथा तीर्थादिक स्ववशासक्त अर्थात् स्वेच्छाचारी भ्रष्टाचारियों द्वारा आसक्त हो (युक्त हो) तो वे मुनिप्रधान इष्ट न करें वहाँ न रहें।

कैसे हैं वे मुनिप्रधान ? पाँच महाव्रत संयुक्त हैं, पाँच इन्द्रियों को भले प्रकार जीतनेवाले हैं, निरपेक्ष हैं, किसी प्रकार की वांछा से मुनि नहीं हुए हैं, स्वाध्याय और ध्यानयुक्त हैं, कई तो शास्त्र पढ़ते हैं, पढ़ाते हैं, कई धर्म-शुक्लध्यान करते हैं।

भावार्थ **– यहाँ दीक्षायोग्य स्थान तथा दीक्षासहित दीक्षा देनेवाले मुनि का तथा उनके चिन्तनयोग्य व्यवहार का स्वरूप कहा है।।४२-४३-४४।।**

गाथा-४२-४४ पर प्रवचन

(अब ११वाँ बोल) **प्रव्रज्या का निरूपण करते हैं,...** चारित्र कैसा होता है। प्रव्रज्या अर्थात् चारित्र। भगवान के मार्ग में चारित्र कैसा होता है? **उसको दीक्षा कहते हैं। प्रथम ही दीक्षा के योग्य स्थानविशेष को...** कि जिसमें दीक्षा ले और दीक्षावाले रहे। **दीक्षासहित मुनि जहाँ तिष्ठते हैं, उसका स्वरूप कहते हैं** – यह बोधपाहुड़ का अन्तिम बोल है।

सुण्णहरे तरुहिट्ठे उज्जाणे तह मसाणवासे वा।
गिरिगुह गिरिसिहरे वा भीमवणे अहव वसिते वा।।४२।।
सवसासत्तं तित्थं वचचइदालत्तयं च वुत्तेहिं।
जिणभवणं अह बेज्झं जिणमग्गे जिणवरा विंति।।४३।।
पंचमहव्वयजुत्ता पंचिंदियसंजया णिरावेक्खा।
सज्झायझाणजुत्ता मुणिवरवसहा णिइच्छन्ति।।४४।।

आहाहा! बोधपाहुड़ में प्रत्येक की निश्चय की सत्य बात वर्णन की है। कहते हैं कि जैनदर्शन अर्थात् परम पदार्थ की स्थितिवाला दर्शन, जैसी वस्तु की स्थिति है, उसे जानकर जैनदर्शन जो है, उसमें मुनि कैसे होते हैं, उनके सन्त कैसे होते हैं। पहले अरिहन्त की व्याख्या की। अब यह मुनि की व्याख्या की है। वे **सूना घर,...** में रहते हैं। आहाहा! यहाँ तो बड़े बँगले में। पाँच-पाँच लाख का बँगला हो।

मुमुक्षु : वह भी मनुष्य न हो तो सूना कहलाता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य नहीं। शहर में बड़े मकान। अरे! यह कहीं व्यवहार का

भी ठिकाना नहीं होता। मुनि तो जंगल में बसते हैं। सूने घर में बसते हैं। आहाहा! अन्त में थोड़ा एक शब्द आयेगा। समझ में आया? थोड़ी देर आवे। जंगल में से आहार लेने, तब थोड़ी देर बस्ती में रहे। बाकी तो सूना घर हो। कोई न हो। अकेले भूत और प्रेत जहाँ बसते हों, वहाँ रहे अकेले मुनि। आहाहा! संसारी जब बँगले में और महल में झूले में झूलता हो और ऐसे हवा-पानी चारों ओर। क्या कहलाता है, वह सुगन्धवाली आवे। गर्मी में वह नहीं बाँधते। ताटी। सुगन्धी वाले की ताटी। तब यह—मुनि पुराने घर में रहते हैं। सब ऐसे मकान-बँगला और हवा-पानी... आहाहा! उजाला... उजाला... उजाला।

दरबार यहाँ आया थे न? कृष्णकुमार। यह मकान तो नौ हजार का है। यह कहीं बड़ा मकान नहीं है। अब वे तो बड़े करोड़ तालुका का साहूकार। उसे बड़ा महल था। परन्तु यहाँ घर में आये। वह और निर्मलकुमार दोनों आये थे। (संवत्) १९९७ में। गये। यह कृष्णकुमार गुजर गये न? भावनगर दरबार। ऐसा करे वहाँ आहाहा! यह! दरबार कृष्णकुमार स्वयं बोले। निर्मलकुमार साथ में थे। दोनों आये थे, १९९७ में। यहाँ खड़े। मैं यहाँ बैठा था। आहा! ऐसा मकान! महाराज! आप जंगल में बसते हो? गाँव में बसो तो लोगों को लाभ हो। कृष्णकुमार स्वयं आये थे। दोनों यहाँ खड़े थे। यहाँ समयसार दिया था। लीलाधरभाई ने दिया था। लीलाधरभाई ने वह छोटा समयसार है न पतले पन्ने का। दोनों को दिया था एक-एक। निर्मलकुमार को तो कहाँ... वह भी कब पढ़ा होगा। दो दिये थे, दो। आहाहा! यह मकान! उसके पास तो लाखों के बहुत बड़े मकान हों। पूर्व का पुण्य है न इकट्ठा? अन्दर घुसे वहाँ... आहाहा! ऐसा मकान जंगल में! महाराज जंगल में बसते हो। गाँव में लाभ हो (गाँव में रहो तो)। बेचारे ऐसे नरम थे। चलता है संसार, क्या करे?

वृक्ष का मूल, कोटर,... बड़े-बड़े सूखे वृक्ष होते हैं और उनमें कोटर-खाली भाग होता है। ऐसे खाली खड्डे हों। अन्दर में बैठे। ऊपर वृक्ष का बँगला। वृक्ष का बँगला सिर पर हो। आहाहा! है न बड़े कोटर। अभी भी बड़े-बड़े हैं। एक तो वहाँ भरूच में एक है। वड़ वृक्ष। बड़ा एक मील में फैला हुआ है। भरूच में। एक मील में। इतनी कौन जाने लम्बी डालियाँ, इतना थड। कबीरवड़ के नाम से सुना है। देखा नहीं। साधु को खोजने गये थे। यह तो बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९६०-६५ की। ६०-६५ की बातें हैं। साधु आये थे न यह बरवाला के? मैंने कहा, कहाँ है? कबीरवड में। वहाँ बड़ा कबीरवड है।

ऐसा वृक्ष हो बड़ा, उसमें नीचे खाली भाग हो। ऐसे मुनि होते हैं। बाहर में ऐसी स्थिति होती है। बँगले में रहे, रंगे हुए पात्रा रखे, जैसा चाहिए वैसा आहार सवेरे चाय, दोपहर में रोटियाँ और शाम को भुजिया और पूड़ी। चार-चचार बार (भोजन करे)। ऐई! ....जी! कितनी बार रहे? चार-चार बार भोजन लेते हैं न? सवेरे चाय, दोपहर में... यह चेतनजी हैं न, साथ में नहीं थे? आहाहा! भाई! मुनि तो उसे कहते हैं कि जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का ऊफान अन्दर प्रगट हुआ है। आनन्द की मौज, अतीन्द्रिय आनन्द की मौज प्रगटी। उसे मुनि कहा जाता है और वह भी अतीन्द्रिय आनन्द उग्र हो गया है। आहा!

कहते हैं, उस वृक्ष के मूल के कोटर में रहे। **उद्यान, वन,...** में रहते हैं। बड़ा उद्यान राजा का हो। बाहर पड़े रहें। वन में रहे। **श्मशानभूमि,...** में रहे। लो! आहाहा! मुर्दे को जलाते हों। वैराग्य... वैराग्य... वैराग्य। **पर्वत की गुफा,...** पर्वत में गुफा होती है न? ऐसे में मुनि रहे। **पर्वत का शिखर,...** पर्वत के ऊपर ठेठ टोंच पर जाकर ध्यान में बैठे। जहाँ सिंह और बाघ चारों ओर से दहाड़ मारते हों। बड़े सिंह हो तो भी शान्त... शान्त... शान्त... 'एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में।' लो! ऐसा आता है न श्रीमद् में?

एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में,
कब पर्वत में बाघ सिंह संयोग जब।
अडोल आसन अरु मन में नहीं क्षोभ हो,
(परम मित्र का मानो पाया योग जब)।

देखो! श्रीमद् भावना भाते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र गृहस्थाश्रम में रहते हुए भावना भाते हैं कि अहो! यह दशा हमें कब आवे? समझ में आया?

अडोल आसन अरु मन में नहीं क्षोभ हो,
परम मित्र का मानो पाया योग जब।

सिंह और बाघ आवे, तो शरीर हमें तो चाहिए नहीं। उन्हें चाहिए हो तो हमारा मित्र है। आहाहा! ऐसी मुनि की दशा होती है, बापू! पण्डितजी! श्रीमद् गृहस्थाश्रम में भावना भाते हैं।

अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब।

सर्व भाव का बन्धन तीक्ष्ण छेदकर
विचरूँग कब महत् पुरुष के पन्थ जब।

आहाहा! मुर्दे को उठाकर श्मशान में ले जाते हैं। हम चलकर श्मशान में जायेंगे। ऐसी वीतरागदशा मुनि को होती है। समझ में आया? शरण... शरण... शरण... भगवान आत्मा है। इस शरण में विशेष निवृत्ति से अन्दर जाने का जंगल में वनवास लूँगा। आहाहा! समझ में आया?

बड़े राजकुमार होते हैं। इन्द्राणी जैसी तो देवी हो उन्हें। रूपशिला और मणिशिला। टाईल्स की जगह रत्न की शिलायें नीचे होती हैं। रानियाँ, ३२-३२ रानियाँ, हजार-हजार रानियाँ। माता! मुझे कहीं चैन नहीं पड़ता। मेरी चैन की दशा मुझमें है। माता! आज्ञा दे। आहाहा! मेरा भगवान मेरे पास है। मेरी रानी—मेरी निर्मल परिणति मेरे पास है। आहाहा! मैंने उसका विरह अनन्त काल भोगा है। अब उस विरह को छोड़ता हूँ। माता! एक बार आज्ञा दे। आहाहा! देखो! यह वैराग्य कैसा होगा! 'क्षण लाखों का जाये रे माता एक क्षण भी स्वरूप साधन के लिये लाखों का जाता है।' ऐसी उन मुनि की दशा। आहाहा! धन्य जिनका अवतार, धन्य जिनके माता-पिता और परिवार जिनका धन्य हो गया। आहाहा! समझ में आया? वह मुनिदशायें बापू! अलग प्रकार की है। यह जिसे-जिसे मान बैठे मुनि-साधु है, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा!

कहते हैं परन्तु मुनि ऐसे में रहे। किसमें? **पर्वत का शिखर,...** आहाहा! **भयानक वन...** जिसमें भूत और पिशाच चिल्लाहट मचाते हों, पुकार करते हों। ऐसे वन में बसते हैं। क्या हमारे पास से ले जाये। मुर्दे को बिजली का भय होगा? इसी प्रकार यहाँ तो शरीर मुर्दा है। हम तो चैतन्य अमृत के सागर को साधने के लिये निकले हैं। आहाहा! मुर्दे को बिजली का भय (नहीं होता)। अपने कहते हैं। नहीं कहते? मुर्दे को बिजली का भय होवे कहीं कि बिजली गिरेगी? परन्तु मर गया, अब क्या है? इसी प्रकार शरीर जहाँ मर गया मुर्दा, जहाँ देखा है। मुझे और उसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसी दशा। भयानक वन में जाकर सन्त आत्मा को साधते हैं। अरे रे! कितना पूरा अन्तर पड़ गया! मुनिपने की दशा कहाँ की कहाँ मनायी गयी। आहाहा! सियार ने बाघ का चमड़ा पहना। सियार-सियार होता है न? सियार को क्या कहते हैं? गीदड़। गीदड़ बाघ का चमड़ा पहने

तो कहीं बाघ हो जाता है ? इसी प्रकार पामर दृष्टिवाला और पामर भाववाला साधु का वेश पहने तो कहीं साधु हो जाता है ? देखो ! यह मुनि की व्याख्या की। अरिहन्त की व्याख्या की। मुनि, गूढ़ मुनि की व्याख्या ऐसी होती है। आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली ही कोई अलौकिक ! अलौकिक !!

कहते हैं, **भयानक वन और वस्तिका...** बस्ती में भिक्षा के लिये थोड़ी देर गये हों। **इनमें दीक्षासहित मुनि ठहरें।** दीक्षा नग्नपना धारण करके ऐसे में रहे। आहाहा ! **ये दीक्षायोग्य स्थान हैं।** उसे दीक्षायोग्य स्थान कहते हैं। दीक्षा देने में स्थान भी ऐसे होते हैं। और, **स्ववशासक्त अर्थात् स्वाधीन मुनियों से आसक्त...** मुनि स्वतन्त्र जिस क्षेत्र में रहे, वह **जो क्षेत्र उन क्षेत्रों में मुनि ठहरे। जहाँ से मोक्ष पधारे, इस प्रकार तो तीर्थस्थान...** वहाँ भी मुनि जाये। तीर्थस्थान में। लो ! यह पूछा था एक बार। वे सन्तबाल है न ? भाई ? सन्तबाल प्रतिमा का बहुत विरोध करते थे न ? प्रतिमा नहीं, नहीं। पहले हम आये तब आये थे। '...' कहे, क्या करते हैं यह ? शास्त्र में प्रतिमा नहीं... नहीं, ऐसा कहते हैं। मैंने कहा, यह रहा। यह उस दिन बताया था, कहा था। जिनभवन। यह है न उसमें ? **'जिणमग्गे... जिणमग्गे ...** जिनभवन है या नहीं ? यह मूर्ति न हो तो जिनभवन आया कहाँ से ? (संवत्) १९९१ में जब आये न, तब (यह बताया था)। उस समय मूर्ति का बहुत विरोध किया न ? फिर तो उन्होंने स्वीकार किया कि मूर्ति है अवश्य। ८५ वर्ष पहले भगवान के बाद ८५ वर्ष, उस समय बराबर योग ऐसा। यहाँ निकलना और वहाँ उन्होंने कहा, इसलिए लोगों को ऐसा हो गया कि ओहो ! मूर्ति नहीं, मूर्ति नहीं। कल्याणजी वे कहे, यह क्या सन्तबाल करते हैं ? नहीं कहीं ? अरे ! कुन्दकुन्दाचार्य के पाठ में है, कहा। यह गाथा तब कही थी। यह है न ? **'जिणभवणं अह वेज्झं, जिणमग्गे जिणवरा'** ४३ वीं गाथा। कहाँ गये वासुदेव ? क्या कहा ? सुनने में देरी हुई। यह तुम्हारे मकान में कहा था। (संवत्) १९९१। यह गाथा कही थी। कल्याणजी और वे आये थे न। पहला पहले आये न। बाहर से आये थे। यह क्या कहते हैं ? ऐसा ही है। तीर्थंकर का मन्दिर है, प्रतिमायें भी हैं। नहीं माने... उन्होंने टीका में बहुत लिखा है। लोकाशा का सूत्र है न ? टीका में। लोकाशा नहीं मानते। नरकम् गच्छंति... विपरीत है, वह तो एकदम खोटी बात है।

कहते हैं, **तीर्थस्थान और वच, चैत्य, आलय इस प्रकार त्रिक में जो पहिले**

कहा गया है अर्थात् आयतन आदिक परमार्थरूप, संयमी मुनि, अरहन्त, सिद्धस्वरूप उनके नाम के अक्षररूप 'मन्त्र'... अक्षररूप मन्त्र होते है न? यह पुस्तक। **तथा उनकी आज्ञारूप वाणी को 'वच' कहते हैं...** वचन। वचन की प्रतिमा स्थापित करते हैं न? अपने वचन स्थापित किये हैं न यहाँ? समयसार। **तथा उनके आकार धातु-पाषाण की प्रतिमा स्थापन को ''चैत्य' कहते हैं...** लो! एक दिन देरी हो गयी। क्यों हुआ? समझ में आया? भाई तो कहे, कल आयेगा। ऐसा कहा।

कहते हैं कि वीतराग की वाणी का भी जहाँ स्थान हो, वह भी एक धर्मस्थान कहा जाता है। दीक्षा के योग्य स्थान है और उसमें ध्यान करने के लिये मुनि भी बसते हैं। ऐसे पाषाण की प्रतिमा भगवान की। ऐसे मन्दिर हों, वहाँ भी ध्यान करने का वह स्थान है। दीक्षा देने का भी वह स्थान है। देखो! प्रतिमा कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं स्थापित करते हैं। नया नहीं। अनादि की मूर्ति है। परन्तु उसकी मर्यादा इतनी कि भक्तिभाव आवे, वह शुभभाव हो। इतनी बात। ध्यान के लिये एकाग्र...

प्रतिमा तथा अक्षर मन्त्र वाणी जिसमें स्थापित किये जाते हैं, इस प्रकार आलय- तीन लिये न? वच-चैत्य और अलाय। वचन, भगवान की वाणी के वचन, वे जहाँ रहे, उनका भी स्थान, प्रतिमा का स्थान और दोनों का स्थान, ऐसा करके आयतन कहा। ऐसे आयतन में मुनि बसें अथवा उनका ध्यान करे। **आलय-मन्दिर, यन्त्र या पुस्तकरूप ऐसा वच, चैत्य तथा आलय का त्रिक है...** लो! **अथवा जिनभवन अर्थात् अकृत्रिम चैत्यालय मन्दिर...** मेरुपर्वत आदि में शाश्वत् मन्दिर होते हैं, वहाँ भी मुनि ध्यान करने जाते हैं। शाश्वत प्रतिमायें होती हैं। मणिरत्न की प्रतिमा होती है। समझ में आया? मणिरत्न के मन्दिर और मणिरत्न की प्रतिमायें। जिनभवन ऐसे होते हैं। लो!

जिनभवन अर्थात् अकृत्रिम चैत्यालय मन्दिर इस प्रकार आयतनादिक उनके समान ही उनका व्यवहार उसे जिनमार्ग में जिनवर देव 'वेध्य' अर्थात् दीक्षासहित मुनियों के ध्यान करने योग्य, चिन्तवन करनेयोग्य कहते हैं। लो! दीक्षा देनेयोग्य है, दीक्षा देनेवाले वहाँ ध्यान करे और दीक्षावाला उसका चिन्तवन, भक्ति आदि भी करे। इसलिए इन्हें जिनभवन आदि कहा गया है। ये मुनि ऐसे होते हैं। ऐसे में ध्यान में-आनन्द में रहते हैं, उन्हें मुनि कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१६९, गाथा-४२ से ४८, शुक्रवार, पौष शुक्ल १२, दिनांक ०८-०१-१९७१

यह अष्टपाहुड़ में बोधपाहुड़ है। मुनि की व्याख्या है। पहले अरिहन्त की व्याख्या की थी कि अरिहन्त गुण में और पुण्य आदि प्रकृति के संयोग में कैसे होते हैं। और मुनि कैसे होते हैं? (उनका) वास्तविक स्वरूप उनकी श्रद्धा और पहिचान कराते हैं।

जो मुनिवृषभ अर्थात् मुनियों में प्रधान हैं,... साधु में जो मुख्य सच्चे साधु हैं, वे शून्य ग्रहादिक में रहते हैं। शून्य मकानादि हों, उसमें वे रहते हैं। **तथा तीर्थ, नाम मन्त्र, स्थापनरूप मूर्ति और उनका आलय-मन्दिर, पुस्तक और अकृत्रिम जिनमन्दिर उनको 'णिइच्छंति' अर्थात् निश्चय से इष्ट करते हैं।** ऐसे में एकान्त में रहे, ऐसा कहते हैं। नग्न दिगम्बर निर्ग्रन्थ मुनि होते हैं। तीन कषाय का अन्दर नाश हुआ हो और बाह्य में अत्यन्त नग्नदशा होती है। वे ऐसे शून्य गृहादि में बसते हैं। ऐसी मुनि की दशा-स्थिति अनादि की यह है। उसमें से फेरफार किया है, वह सब मुनिमार्ग नहीं है।

सूने घर आदि में रहते हैं और तीर्थ आदि का ध्यान चिन्तन करते हैं... तीर्थ के स्थान जहाँ भगवान आदि मोक्ष पधारे हों, महा मुनि जहाँ मोक्ष में पधारे हों, ऐसे स्थान में अपना ध्यान करे अथवा ध्यान करने को वहाँ एकान्त में जाये। **तथा दूसरों को वहाँ दीक्षा देते हैं।** दूसरे को भी मुनिपने की दीक्षा ऐसे स्थान में दे। **'णिइच्छति' का पाठान्तर 'णइच्छंति' इस प्रकार भी है इसका काकोक्ति द्वारा तो इस प्रकार अर्थ होता है कि 'जो क्या इष्ट नहीं करते हैं? अर्थात् करते ही हैं।'** धर्मात्मा सन्त-मुनि आनन्द में मस्त ऐसे साधकजीव ऐसे स्थान को क्यों नहीं चाहेंगे? ऐसा। ऐसे स्थान में एकान्त में ही वे बसते हैं। समझ में आया?

एक टिप्पणी में ऐसा अर्थ किया है कि ऐसे शून्यगृहादिक... दूसरा अर्थ किया है। एक ऐसा अर्थ किया (कि) शून्य गृहादि में इच्छे और रहे। दूसरा अर्थ ऐसा किया कि शून्य गृहादि में क्यों न रहे? क्यों न इच्छे ऐसा न? ऐसा अर्थ किया है। उसी और उसी का तीसरा अर्थ दूसरा है। **ऐसे शून्यगृहादिक तथा तीर्थादिक स्ववशासक्त अर्थात् स्वेच्छाचारी भ्रष्टाचारियों...** भ्रष्ट साधु जहाँ रहते हों, ऐसे में सच्चे मुनि नहीं रहते, ऐसा कहते हैं। अभी तो पूरी बात सब बदल गयी है। मुनि तो अनादि सनातन जैन

मार्ग में वीतरागी दशा जिन्हें प्रगट हुई होती है, और बाह्य में अत्यन्त नग्न दिगम्बर—वस्त्र का एक टुकड़ा होता नहीं। वे ऐसे स्थान में बसे और ऐसे स्थान में दूसरे वेशधारी, भ्रष्ट आचारवाले हों तो उसमें बसे नहीं। **स्ववशासक्त अर्थात् स्वेच्छाचारी भ्रष्टाचारियों द्वारा आसक्त हो (युक्त हो) तो वे मुनिप्रधान इष्ट न करें वहाँ न रहें।** भ्रष्ट आचार्य हो, श्रद्धा भ्रष्ट हो, ऐसे साधु की बस्ती हो, उसमें जाये नहीं। जहाँ अत्यन्त निवृत्त मार्ग है।

कैसे हैं वे मुनिप्रधान? पाँच महाव्रत संयुक्त हैं,... विकल्प होता है तो अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। ऐसा उन्हें विकल्प अर्थात् शुभराग होता है। राग होवे तो इतना होता है। **पाँच इन्द्रियों को भले प्रकार जीतनेवाले हैं,...** पाँचों इन्द्रिय ही इन्द्रियाँ जिन्होंने जीती हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव का वह साधन करते होते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा का वे साधन करते होते हैं। उन्हें इन्द्रिय के विषय का संग, प्रसंग नहीं होता।

और कैसे हैं? **निरपेक्ष हैं, किसी प्रकार की वांछा से मुनि नहीं हुए हैं,...** मान मिले, महत्ता मिले, आचार्य होऊँगा, संघ में पुजाऊँगा ऐसी इच्छा से साधु हो, वह साधु नहीं है। समझ में आया? **निरपेक्ष हैं, किसी प्रकार की वांछा से मुनि नहीं हुए हैं, स्वाध्याय और ध्यानयुक्त हैं,...** अहो! जिन्हें आत्मा के आनन्द का अन्तर में ध्यान होता है। अतीन्द्रिय आनन्द और भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का महा भण्डार पड़ा है, उसका उन्हें ध्यान होता है। वहाँ उनकी लगन लगी होती है। उसमें न रह सके तो शास्त्र की स्वाध्याय करे। दो ही उन्हें होते हैं, तीसरा नहीं होता। आहाहा! ऐसी मुनि की दशा, जिसे गणधर नमस्कार करते हैं।

स्वाध्याय और ध्यानयुक्त हैं,... शास्त्र की स्वाध्याय (होती है)। अन्तर में ध्यान में, आनन्द में रह न सके। करना तो आत्मा का ध्यान वही उनका कर्तव्य है। अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द में लीन होकर रहना वह मुनि का मुख्य कर्तव्य और आचरण है। आहाहा! ध्यान में न रह सके तो भगवान के श्रीमुख से कहे हुए—दिव्यध्वनि में आये हुए ऐसे शास्त्र का स्वाध्याय करे। **कई तो शास्त्र पढ़ते हैं, पढ़ाते हैं,...** कोई ऐसा शास्त्र हो (तो उसे) स्वयं पढ़े और दूसरे को भी पढ़ावे। **कई धर्म-शुक्लध्यान करते हैं।** लो! अन्तर (में) धर्मध्यान-धर्मध्यान। आनन्द के स्वभाव का ध्यान, वह धर्मध्यान। उत्कृष्टरूप

से शुक्लध्यान। बहुत ही आनन्द की उग्रता और एकाग्रता, वह शुक्लध्यान। यह ध्यान है। यह योग और बोग यह सब बातें करते हैं न। ॐ... ॐ... करो और जाप करो और ऐसा करो और वैसा करो। वह सब विकल्प है। उनमें कुछ तत्त्व है नहीं। समझ में आया? स्वयं ही आनन्द की मूर्ति अनाकुल स्वभाव का सागर प्रभु है। अचिन्त्य, अतुल, अनन्त सागर स्वभाव आत्मा है। आहाहा! उसमें एकाग्र होकर ध्यान में लीन रहे। न रह सके तो स्वाध्याय करे। बस, दो के अतिरिक्त तीसरा उन्हें नहीं हो सकता। कहो, ऐसे वीतराग के साधु होते हैं। अर्थात् सच्चे साधु की ऐसी रीति थी। समझ में आया? यह वस्त्र-पात्र सहित साधु मानते हैं, वह सब वीतरागमार्ग से विरुद्ध है और मात्र नग्न होकर घूमे और आत्मा का ध्यान-ज्ञान, सम्यक् अनुभव न हो, वे भी साधु नहीं है। समझ में आया?

यहाँ दीक्षायोग्य स्थान... की बात की है। तीर्थस्थान, एकान्तस्थान, वे सब दीक्षा के योग्य स्थान हैं। **दीक्षासहित दीक्षा देनेवाले मुनि का तथा उनके चिन्तनयोग्य व्यवहार का स्वरूप कहा है।** तीर्थ आदि, मूर्ति आदि, मन्त्र आदि भगवान के कहे हुए अक्षर, मन्त्र का विचार करे, ध्यान करे। यह व्यवहार कहा, यह व्यवहार है। अन्तर में आनन्द का ध्यान करना, वह निश्चय है और ऐसे विकल्प का ध्यान, वह व्यवहार कहा गया है।

मुमुक्षु : धर्मध्यान और शुक्लध्यान में क्या अन्तर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुक्लध्यान में कहा। उग्र निर्मलता। बहुत उग्र निर्मलता। अभी वह नहीं है। अभी धर्मध्यान होता है। बहुत उज्ज्वल, शुक्ल अर्थात् उज्ज्वल। आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द में इतना लवलीन होता है कि जिसे आनन्द की दशा में बहुत सूक्ष्म विकल्प बाकी रह गया होता है। इतनी उसे अन्दर आत्मा के स्वभाव की, आनन्द की-ध्यान की उज्ज्वलता होती है। यह सब ध्यान की बातें करते हैं न? देखो न अभी। बहुत योग की बातें करते हैं। ऐसा योग करो, अमुक करो, अमुक करो।

मुमुक्षु : सफेद रंग दिखता होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुक्ल अर्थात् उज्ज्वल। आनन्द की उज्ज्वलता। अतीन्द्रिय आनन्द भगवान। यह बात ऐसी है कि स्वसंवेदन का उसे भान होता है। यह तो आनन्द आत्मा आनन्द की पूरी खान है, सागर है। उस आत्मा में नजर लगाकर एकाग्रता से विशेष

पवित्रता का ध्यान और विशेष पवित्रता (प्रगट हो), उसे शुक्लध्यान कहते हैं। थोड़ी पवित्रता को धर्मध्यान कहते हैं। समझ में आया? बात ही पूरी (अलग)। आत्मा की, यह तो आत्मा की बात है, भाई! आहाहा!

व्यवहार की बात बीच में कर डाली। तीर्थ और मन्त्र अक्षर और उनका विचार करे कि यहाँ से भगवान मोक्ष पधारे थे। तीर्थस्थान। समझ में आया? जैसे यह शत्रुंजय। पाण्डव वहाँ मोक्ष पधारे। पाँच पाण्डव में तीन तो वहाँ से भी मोक्ष पधारे हैं। वहाँ सीधे ऊपर—सिद्ध में विराजते हैं। उस क्षेत्र में सीधे विराजते हैं। पण्डितजी! यह सीधे विराजते हैं वहाँ। जहाँ मोक्ष पधारे हैं न, वहाँ सीधे विराजते हैं ऊपर। सिद्ध हैं न? तो जहाँ से मुक्त होते हैं, वहाँ ही ऊपर रहते हैं। नहीं समझते। नहीं समझे। जिस समय जिस क्षेत्र से मुक्त होते हैं, उस स्थान में ऊपर रहते हैं। सीधे-सीधे वहाँ हैं। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : एक श्रेणी रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और दूसरी बात है। यह विग्रह नहीं, हम तो दूसरी बात कहते हैं। यहाँ से जाते हैं तो वहाँ ही ऊपर रहते हैं। उसी क्षेत्र में है। वहाँ के ऊपर के क्षेत्र में ही भगवान हैं। आगे-पीछे नहीं रहते। उनका नीचे विचार करे कि अहो! यहाँ से परमात्मा (सिद्धालय में पधारे)। मोक्ष तो यहाँ हुआ था। वहाँ ऊपर विराजते हैं। वह तो एक समय अविग्रह वह तो गति की बात है। परन्तु यह तो ऊपर क्षेत्र में उसी जगह क्षेत्र में विराजते हैं। समझ में आया?

तीर्थ का कारण तो यह है कि भगवान जहाँ से मोक्ष पधारे,... पाण्डव वहाँ से मोक्ष पधारे, वहाँ ऊपर ही विराजते हैं। नेमिनाथ भगवान यहाँ गिरनाथ से मोक्ष पधारे हैं तो वहाँ ही ऊपर विराजते हैं। वहाँ ही उस स्थान में ही ऊपर बराबर हैं, सादि अनन्त। यहाँ नीचे विचार करे कि अहो! प्रभु यहाँ से मोक्ष पधारकर ऊपर आनन्दस्वरूप में विराजते हैं। ऐसा विकल्प आवे—शुभ विकल्प। अपना ध्यान अन्दर जमे नहीं, फिर ऐसे विकल्प का व्यवहार ध्यान आवे। वह है पुण्यबन्ध का कारण। और स्वभाव में ध्यान है शुद्धता का कारण। आनन्दमग्न आत्मा में अन्तर। अकेला ज्ञान का पिण्ड प्रभु अनादि-अनन्त शाश्वत् स्वभाव का अन्तर ध्यान, उसका नाम वास्तविक पवित्रता और उसका नाम संवर और निर्जरा कहा जाता है। समझ में आया?

गाथा-४५

(११) आगे प्रव्रज्या का स्वरूप कहते हैं –

गिहगंथमोहमुक्का बावीसपरीसहा जियकषाया।
पावारंभविमुक्का पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४५।।

गृहग्रंथमोहमुक्ता द्वाविंशतिपरीषहा जितकषाया।
पापारंभविमुक्ता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता।।४५।।

गृह–ग्रंथ–मोह–कषाय–बिन बाईस परिषह विजेता।
सब पाप आरम्भ से रहित है प्रव्रज्या ऐसा कहा।।४५।।

अर्थ **– गृह (घर) और ग्रन्थ (परिग्रह) इन दोनों से मुनि तो मोह ममत्व, इष्ट–अनिष्ट बुद्धि से रहित ही है, जिनमें बाईस परीषहों का सहना होता है, कषायों को जीतते हैं और पापरूप आरम्भ से रहित हैं, इस प्रकार प्रव्रज्या जिनेश्वरदेव ने कही है।**

भावार्थ **– जैनदीक्षा में कुछ भी परिग्रह नहीं, सर्व संसार का मोह नहीं, जिसमें बाईस परीषहों का सहना तथा कषायों का जीतना पाया जाता है और पापारम्भ का अभाव होता है। इस प्रकार की दीक्षा अन्यमत में नहीं है।।४५।।**

गाथा-४५ पर प्रवचन

अब प्रव्रज्या का (विवरण)। प्रव्रज्या कैसी होती है? मुनि की प्रव्रज्या—दीक्षा कैसी होती है? वर्णन आवे न? आवे तो थोड़ा-थोड़ा आवे। सर्वज्ञ के पन्थ में मुनि कैसे होते हैं? जिनेश्वर की आज्ञा में मुनि कैसे होते हैं, उसकी यह व्याख्या है।

गिहगंथमोहमुक्का बावीसपरीसहा जियकषाया।
पावारंभविमुक्का पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४५।।

कुन्दकुन्दाचार्य मुनि दिगम्बर सन्त थे। भगवान के पास आठ दिन गये थे। सीमन्धर भगवान के पास। वे आकर यह लिखते हैं। भगवान ने तो ऐसी प्रव्रज्या कही है,

भाई! दीक्षा और साधुपद तो ऐसा होता है।

अर्थ – जिसे गृह (घर)... न हो। उन्हें मकान नहीं होता। घर का बँगला बाँधकर रहे और हम साधु हैं। समझ में आया? आहाहा! बहुत बदल गया।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आघा नहीं, घर नहीं। वे तो आघा नहीं, घर नहीं। हमारा घर कहाँ है, वह तो किसी का घर है। अभी थे न? उतरे थे न बाबूभाई के मकान में। अहमदाबाद। वहाँ दो साधु गुरु-शिष्य है। एक लाख रुपये इकट्ठे किये, वहाँ मकान बनाने के लिये। आजीवन वहाँ रहना। दो गुरु-शिष्य के अतिरिक्त तीसरे का हक नहीं। तब बात करते थे। बाबूभाई कहते थे। यह गोपालदास। तुम्हारी ही जमीन है न वहाँ वह? उनकी जमीन पास में ही है। यह पूनमभाई बनानेवाले हैं। नहीं? इनके साथ में वह जमीन है। बाबूभाई के सामने। हम बहुत बार वहाँ ही बाबूभाई के घर में ही उतरते हैं न। वे कहते थे, यहाँ साधु घर बनाकर रहनेवाले हैं। एक लाख रुपये इकट्ठे किये हैं। उनके आश्रित यहाँ मकान बनायेंगे। फिर आजीवन यहीं रहेंगे। विहार नहीं, चौमासा नहीं। सदा यहीं (रहेंगे)। अरे! भगवान! अभी तो वस्त्र सहित ही मुनिपना नहीं होता, उसमें और वापस घर बनाकर रहे।

मुमुक्षु : घरसहित मुनिपना।

पूज्य गुरुदेवश्री : घरसहित मुनिपना। अरे! भगवान! बापू! मुनि तो कैसे होते हैं। अनगार। उन्हें आगार—घर नहीं होता। अहो! जिनकी आनन्द की दशा...

मुमुक्षु : पंचम काल में ऐसी सूक्ष्मता किसे है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल हो या चौथा काल हो। सुखड़ी (एक मिठाई) वह कहीं गुड़ से होती होगी या मिट्टी से होती होगी? वे कहते थे अभी। नागनेश में मोहनलालजी साधु। बरवाला में। साधु के... आहार माँगोगे तो साधु नहीं होते थे ऐसे। करने दो न बेचरे ऐसे तो ऐस, ऐसा कहते थे। आहाहा! जो साधु हो बेचारे इतना तो रखेंगे, पालन करेंगे। दीया उतना पुण्य और खाया उतना अन्न—ऐसा। धूल में भी नहीं। मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा!

साधुपद कहलवाना और साधुपद पालना नहीं। साधुपद में जो दृष्टि, ज्ञान चाहिए

वह होता नहीं, चारित्र होता नहीं। भ्रष्ट है। कहा न ? उसकी तो यह व्याख्या है। मार्ग तो ऐसा है, भाई ! उसे श्रद्धा कराते हैं। दूसरे साधु नहीं, उन्हें साधु मानना, वह मिथ्यात्व है। असाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व, साधु को असाधु माने तो मिथ्यात्व। आता है। प्रतिक्रमण में आता है, रतिभाई ! पच्चीस मिथ्यात्व। देखो ! आहाहा !

गृह (घर) और ग्रन्थ (परिग्रह)... नहीं। वापस कोई वस्त्र का एक टुकड़ा भी होता नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु : पैसे तो होते हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे हों। लो ! कौन कोई कहता था न कि मैं गया तब पैसे गिनते थे। तुम। (हरखचन्दजी महाराज) भावनगर। पैसे गिनते थे। हमारे पालेज में आवे। दुकान में लाभ लेते। सोगठी आती है न मरण के समय ? क्या कहलाता है ? हिरणकण। मरते हो न तब जरा घिसकर दे। बोले जरा... ऐसी सोगठी आती है। ऐसी एक व्यक्ति के पास से ली थी। मैंने कहा, यह साधु क्या करते होंगे इसका ? यह तो बहुत समय की बात है। (संवत्) ६७ की—१९६७। परन्तु तब तो हम अनजाने। अपने को तो कुछ खबर नहीं की यह क्या होगा। वे बेचने निकलते हैं न ? काबुली। उनके पास सोगठी थी। तो सोगठी (ली)। मैंने कहा, यह क्या करते हैं ? ६७ की बात है। आहाहा !

कहते हैं कि जिसे घर नहीं होता। जिसे घर नहीं होता परन्तु फिर उसे वस्त्र के टुकड़े का परिग्रह भी नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? **इन दोनों से मुनि तो मोह ममत्व,...** वापस दो तो नहीं होते। परन्तु वापस उनका मोह-ममत्व भी नहीं होता, ऐसा। दो चीज़ें छोड़ी हों परन्तु चीज न हो परन्तु अन्दर मोह और ममत्व होवे तो वह साधु है नहीं। **इन दोनों से मुनि तो मोह ममत्व, इष्ट-अनिष्ट बुद्धि से रहित ही है,...** आहाहा ! इष्ट-अनिष्ट वृत्ति ही नहीं जिन्हें। अनुकूलता में इष्ट और प्रतिकूलता अनिष्ट, (ऐसा है नहीं)। ओहो ! स्वयं परमेश्वर हुए। पंच पद में सम्मिलित हुए। णमो लोए सव्वसाहूणं। उन्हें इष्ट-अनिष्ट बुद्धि नहीं होती। मिथ्यात्व नहीं होता और इष्ट-अनिष्ट के राग-द्वेष भी नहीं होते। ऐसी जिनकी दशा। आहाहा !

जिनमें बाईस परीषहों का सहना होता है,... ताप, सर्दी, धूप, क्षुधा, तृषा

आनन्द से सहन करते हैं। आनन्द से सहन करते हैं, हों! मजबूरी से, दुःख से नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त होते हैं। क्षुधा, तृषा, ताप, धूप, इन सबको शान्ति... शान्ति... शान्ति... ज्ञाता-दृष्टारूप से सहन करते हैं। कष्ट लगे और सहन करे, वह सहन किया नहीं कहलाता। वह तो द्वेष हुआ। और **कषायों को जीतते हैं...** कषाय क्रोध-मान-माया अत्यन्त जीते हैं। क्षमा, आनन्द की दशा। स्थिरता, सरलता, वीतरागता जहाँ अन्दर प्रगट हुई होती है। ओहो!

और **पापरूप आरम्भ से रहित हैं,...** उनके लिये बनाया हुआ आहार-पानी आदि पापारम्भ उन्हें नहीं होता। आहार-पानी उनके लिये बनाया हो, उसे नहीं लेते। उनके लिये मकान आदि बनाये हों, उसे नहीं लेते। उनके लिये चौका किया हो तो नहीं लेते। आहाहा! **पापरूप आरम्भ से रहित हैं, इस प्रकार प्रव्रज्या जिनेश्वरदेव ने कही है। 'भणिया'** है न अन्दर? **'एरिसा भणिया'** ऐसी दीक्षा और साधुपद... बापू! आहाहा! भगवान के मार्ग में भगवान ने तो ऐसा कहा है। समझ में आया?

जैनदीक्षा में कुछ भी परिग्रह नहीं,... वीतरागी दीक्षा में एक वस्त्र का धागा नहीं और पात्र का टुकड़ा नहीं। छोटी पात्री रखे, सब्जी का पात्र अलग, दाल का अलग। उन्हें नहीं होता। **सर्व संसार का मोह नहीं,...** पूरे संसार का (मोह नहीं है)। वीतरागता अन्दर प्रगट हुई है। सर्व संसार का मोह उड़ गया है। **जिसमें बाईस परीषहों का सहना तथा कषायों का जीतना पाया जाता है और पापारम्भ का अभाव होता है। इस प्रकार की दीक्षा अन्यमत में नहीं है।** ऐसा साधुपद अन्यमत में नहीं हो सकता। जिनेश्वर वीतराग मार्ग में यह होता है। बाकी अन्यत्र नहीं होता। कहो, समझ में आया?

इस प्रकार की दीक्षा अन्यमत में नहीं है। अन्य में नग्न (होकर) घूमे परन्तु उसे दृष्टि की खबर नहीं और शान्ति की खबर नहीं। ऐसी दीक्षा जैन परमेश्वर के मार्ग के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं होती।

गाथा-४६

आगे फिर कहते हैं –

धणधण्णवत्थदाणं हिरण्णसयणासणाइ छत्ताइं।
कुद्दाणविरहरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४६।।

धनधान्यवस्त्रदानं हिरण्यशयनासनादि छत्रादि।
कुदानविरहरहिता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता।।४६।।

धन धान्य वस्त्र प्रदान शैया छत्र आसन स्वर्ण भी।
इत्यादि कुत्सित दान बिन है प्रव्रज्या ऐसी कही।।४६।।

अर्थ – धन, धान्य, वस्त्र इनका दान, हिरण्य अर्थात् रूपा, सोना आदिक, शय्या, आसन आदि शब्द से छत्र, चामरादिक और क्षेत्र आदि कुदानों से रहित प्रव्रज्या कही है।

भावार्थ – अन्यमती, बहुत से इस प्रकार प्रव्रज्या कहते हैं – गौ, धन, धान्य, वस्त्र, सोना, रूपा (चाँदी), शयन, आसन, छत्र, चंवर और भूमि आदि का दान करना प्रव्रज्या है। इसका इस गाथा में निषेध किया है – प्रव्रज्या तो निर्ग्रन्थस्वरूप है, जो धन, धान्य आदि रखकर दान करे उसके काहे की प्रव्रज्या? यह तो गृहस्थ का कर्म है, गृहस्थ के भी इन वस्तुओं के दान से विशेष पुण्य तो होता नहीं है, क्योंकि पाप बहुत हैं और पुण्य अल्प है, वह बहुत पापकार्य तो गृहस्थ को करने में लाभ नहीं है। जिसमें बहुत लाभ हो वही काम करना योग्य है। दीक्षा तो इन वस्तुओं से रहित ही है।।४६।।

गाथा-४६ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं –

धणधण्णवत्थदाणं हिरण्णसयणासणाइ छत्ताइं।
कुद्दाणविरहरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४६।।

ओहो! देखो तो सही, क्या कहते हैं।

अर्थ – धन, धान्य, वस्त्र इनका दान,... मुनि इनका दान नहीं देते। मुनि के पास ये होते नहीं, ऐसा कहते हैं। देखो! (वे कहे), भगवान ने दान दिया। आहाहा! देखो न, इसलिए तो स्पष्ट करते हैं। अर्ध फालक दिया। उसकी महिमा अमरचन्दजी करते हैं। जैन करुणा है ऐसी। साधुपद में वस्त्र स्वयं के पास नहीं होता, वे वस्त्र दे किसे? यह तो महावीर भगवान को इन्द्र ने एक वस्त्र दिया था। उसमें उसने क्या कहा... उनके मामा का मित्र ब्राह्मण कोई आया (वह कहे)। महाराज! मैं रह गया वर्षीदान में। फिर आधा फाड़कर दिया। भगवान महावीर छद्मस्थ में, हों! ऐसी प्रव्रज्या नहीं होती, बापू! साधारण साधु को वस्त्र नहीं होता और नहीं देते, तो भगवान महावीर तीर्थंकर ने (दिया)! इतना विरोध कर डाला है! आहाहा! वापस उस साधु का अनुमोदन उसके बड़े करें। वहाँ आगरा में अमरचन्द पढ़े हुए कहलाते हैं। बहुत वाँचन। भगवान ने अर्धवस्त्र दिया। देखो करुणा! जैनदर्शन की करुणा तो देखो! ओहो! कहाँ तक उसकी करुणा जाती है, ऐसा कि मुनि... यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि धन, धान्य, वस्त्र उनके पास होता नहीं। होता नहीं तो दान किसे करे वे? वर्षीदान भी नहीं। उनके पास कहाँ था कुछ? समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : रुके किसके? वैराग्य से बाहर आकर कहाँ से रुके दान देने?

मुमुक्षु : नेमिनाथ भगवान कितने महीने रुके होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ गिरनार जाने के बाद बारह महीने में वापस घर में गये होंगे। वैराग्य हुआ। बारह महीने में वर्षीदान दे। झूठ बात है, वह यहाँ इसमें कहना है। समझ में आया? बारह महीने दान दे, उसमें रुकते होंगे? वैराग्य हुआ मानो अन्दर से। आहाहा! हे सारथी! विवाह करने गये हैं और ऐसा देखते हैं उन पशुओं को पीड़ित। हिरण भरे हैं। अरे! सारथी! यह क्या है? प्रभु! आपके विवाह प्रसंग में राजाओं के लिये आहार के लिये भरे हैं। अरे! तीन ज्ञान के धनी हैं। क्षायिक समकिती हैं। अभी तो राजकुमार थे। रथ में बैठे थे। विवाह करने जाते थे, आवाज सुनकर कहते हैं, सारथी! रथ मोड़, रथ मोड़। हमारे यह संयोग प्रसंग नहीं होगा। हम मुनि होना चाहते हैं। आहाहा! साथ में श्रीकृष्ण, वासुदेव थे।

बलदेव, श्रीकृष्ण साथ में भाई थे। बड़े भाई थे और यह छोटे थे। रथ मोड़ता है, वहाँ खबर पड़ती है कि अरे! प्रभु! यह क्या हुआ? बस, हमारे (निमित्त से) इन पशुओं को बाँधा। हमारी इस स्थिति में ऐसा विवाह नहीं होगा, हमें विवाह नहीं होगा। यहाँ से फिर वर्षीदान देने को रहे बाहर के लिये? कहते हैं कहो, ऐसा वैराग्य हो गया, वे वर्षीदान देने रहते होंगे? बारह महीने तक देते होंगे?

मुमुक्षु : लौकिक व्यवहार होता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : लौकिक व्यवहार हो... दरबार को ठीक बैठता है। यह तो लौकिक व्यवहार वापस हो गया। बाहर में ऐसा वैराग्य हुआ और वापस रुकने जाये? ऐसा श्वेताम्बर में आता है। बारह महीने दान किया। बिल्कुल नहीं। यह तो अन्तर का दान जहाँ... आहाहा!

सारथी पुकार करता है, प्रभु! यहाँ तक आये। बलदेव, वासुदेव के साथ। वह राजुलमति गोख में राह देखती है, रोती है। मोड़, रथ मोड़। वापस मोड़। आहाहा! इन्द्र जिन्हें पूजें, ऐसे पुरुष एकदम (वापस) मुड़ते हैं। हमारे यह नहीं होगा। यह विवाह और यह प्रसंग हमारे नहीं होगा। मुनिपना ले लिया। नग्न मुनि दिगम्बर, वे करोड़ों-अरबों के गहने थे, वे उतारे। एकदम। अरबों रुपये के। एक के बाद एक। तोरण... क्या आता है न? 'तोड्या कंकण, दोरडा ने तोड्या नवतर हार' यह तो बड़े महापुरुष हैं। श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष इनके भाई हैं। ये सब तीर्थंकर होनेवाले हैं। सब मोक्ष जानेवाले हैं। बलदेव मोक्ष गये या स्वर्ग में गये भले। समझ में आया? रामचन्द्रजी मोक्ष पधारे। उसमें की जाति के सब हैं।

एक के बाद एक उतारते हैं। अपने को नाटक में दिखाव दिखाते हैं। नाटक में दिखाते हैं। उसमें वह शान्तिलाल था, वह गजब दिखाता था, भाई! वह शान्तिलाल था न? गायक। अजमेर का। ओहो! वह राजोमति थी। उनके भाई हीरालाल थे। बहुत गाये बेचारा, छोटी उम्र में गुजर गया। शान्तिभाई नहीं? एक बार अपने यहाँ आया था। यहाँ एक महीना रहा था। बहुत कण्ठ, ऐसा कण्ठ। उसमें उतारते थे। क्या कहलाता है तुम्हारे? रेडियो। परन्तु छोटी उम्र में रोग हुआ। मर गया बेचारा। ऐसा गाये न राजोमति हो, तब और वह मूलचन्द हो उसकी सखी। मूलचन्द, चाँदी का व्यापारी। चाँदी का व्यापारी है न? हार

पहनाया और वह हो सखी। फिर देखो इन दोनों व्यक्ति के बीच बात चले। वहाँ अपने कहीं हुआ था। राजकोट या कहीं नाटक (हुआ था)। वैराग्य का नाटक। हार उतारे। 'तोड्या कंकण...' क्या कहा? नवतर हार। नवतर हार। नग्न मुनि हो जाये। आहाहा!

इन्द्र आकर लोकान्तिक देव प्रशंसा करते हैं, प्रभु! जगत के प्राणी आपकी देशना की राह देखते हैं। आहाहा! ऐसा ही साधुपना साधारण का होता है। वे भगवान थे तो क्या है। समझ में आया? यह वस्त्र के दान, धान के दान भी उन्हें नहीं होते। भगवान ने आधा वस्त्र दिया, यह बात ही एकदम कल्पित.. कल्पित... गल्पित... है। कल्पित-गल्पित। गले की बनायी हुई है। भगवान को वस्त्र कैसा? आधा वस्त्र दान में दे, ऐसा कैसा? अरे रे! वाडा बाँधकर जगत को मार डाला। स्वार्थी लोगों ने अपना स्वार्थ पोषण करने के लिये वाडा बाँधा। मार्ग रह गया एक ओर। ऐई! जयन्तीभाई! उसमें थे न यह सब पूरे?

धन, धान्य, वस्त्र... का दान वह उन्हें नहीं होता। **हिरण्य अर्थात् रूपा, सोना आदिक, शय्या, आसन आदि शब्द से छत्र, चामरादिक और क्षेत्र आदि कुदानों से रहित...** ऐसा उन्हें नहीं होता। अन्यमत में सिद्ध करते हैं न यह क्षेत्रदान और भूदान और देखो न, अभी नहीं चलता? गौदान। आता है। उसमें होगा अन्दर। उसमें है। गौदान। टीका में है।

मुमुक्षु : गौधन।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह गौधन। बस यह। यह है। भावार्थ में है। यह है। देखो गौधन इसमें है।

अन्यमती, बहुत से इस प्रकार प्रव्रज्या कहते हैं – गौ,... दान। गायों का दान देना। वे मरते हुए नरक में जाये तो वहाँ फिर गाय आकर उसकी पूँछ पकड़े। यह तो नरक में जाना न? यह तो निश्चित हो गया न पहले? वहाँ गाय आवे और पूँछ पकड़कर उतारे, गाय का दान किया हो। ऐसी बातें गप्पागप्प चलती है। अभी भी कहीं हुआ था। कैसा वह गाँव? दो दिन रहे न वहाँ नहीं था? 'साबली'। हम तो गाय को देव मानते। ३ करोड़ देव, पुत्र देव और हम उसे पूज्य मानते हैं। मैंने कहा, परन्तु देव होवे तो मार डालते हैं न? गाय

को मार डालते हैं तो देव... ? तो कहे, वे तो नहीं मानते, वे मारते हैं। ऐसा कि नहीं मानते, वे मारते हैं। परन्तु देव है, उसे क्या करना मारने दे उसके देव होवे तो ? गप्पागप्प मारते हैं। आहाहा ! धंधुका में तो एक गाय को मुसलमान ने ऐसा किया... याद है न ? शृंगार करके पहले गाँव में घुमाया। हिन्दू का मन दु:खाने के लिये और फिर रात्रि में बाँधकर पैर के बारीक-बारीक टुकड़े किये। आहाहा ! फिर मुसलमान के घर-घर में वितरण किया। आहाहा ! यह और गौदान का दान। यह और गाय को मार डालने में धर्म माने। आहाहा ! गजब बातें हैं !

गौ, धन,... धन का दान। लो ! लक्ष्मी का दान। कुदान, हों ! **धान्य,...** का दान। यह मकर संक्रान्ति में देते हैं न ? धान उड़द का दान। वस्त्र का दान। धोतियाँ देते हैं, पहनावा देते हैं। तैयार वस्त्र अभी बहुत बनते हैं। मुम्बई में तो यह बहुत तैयार मिलते हैं। बहुत तैयार मिलते हैं। कितनों को तो यह पुराने फटे हुए ले लेवे। उन्हें बेचनेवाले होते हैं न ? जोड़-जोड़कर अच्छे करे। बेचने बैठे। यह राजकोट में भी बैठते हैं। **सोना, रूपा (चाँदी), शयन, आसन,...** खाट और गद्दों का दान, ऐसा कहते हैं। आसन का दान। **छत्र, चंवर..** का दान। **और भूमि आदि का दान करना प्रव्रज्या है।** ऐसा अन्यमति कहते हैं। **इसका इस गाथा में निषेध किया है –** मुनि के कुछ दान देना ? स्वयं एक आहार-पानी लेने जाये, इतना आहार ले। बस। बाकी कुछ उन्हें देने-लेने का नहीं होता। आहाहा ! ऐसी दशा किये बिना मुनिपना होगा नहीं और मुक्ति जाये, उसे ऐसी दशा प्रगट होती ही है। इसलिए उसके लिये यह बात करते हैं कि अन्त में तुझे यह दशा ग्रहण करनी पड़ेगी। यदि मुक्ति को-मोक्ष को (प्राप्त करना हो तो और) संसार का नाश करना हो तो। उसकी पहले पहिचान बतलाते हैं। समझ में आया ?

प्रव्रज्या तो निर्ग्रन्थस्वरूप है,... निर्ग्रन्थस्वरूप। बाह्याभ्यन्तर निर्ग्रन्थ। बाह्य में वस्त्र नहीं, अन्तर में राग नहीं। ऐसी आनन्द की दशा में झूलते हुए। जिन्हें इन्द्र के आमन्त्रण भी तुच्छ लगते हैं। जिन्हें मोक्ष का आमन्त्रण मिला है। सिद्ध होने को ऐसी जिनकी तैयारी है। ऐसे मुनि की दशा को प्रव्रज्या कहा जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? **जो धन, धान्य आदि रखकर दान करे उसके काहे की प्रव्रज्या ?** लक्ष्मी रखे, अनाज रखे। वस्त्र रखे और फिर दूसरे को दान दे। आहाहा ! आचार्य की कथनी में बहुत दर्द है। श्वेताम्बर

में सब गड़बड़ उठी थी न, उसके सामने यह सब बात है। **यह तो गृहस्थ का कर्म है, गृहस्थ के भी इन वस्तुओं के दान से विशेष पुण्य तो होता नहीं है,...** ऐसा सोना-चाँदी...

मुमुक्षु : आदि शब्द में...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह डाला न। डाला न अन्दर। अन्दर आया। शयन, आसन। शयन-आसन आया।

क्योंकि पाप बहुत हैं और पुण्य अल्प है, वह बहुत पापकार्य तो गृहस्थ को करने में लाभ नहीं है। ऐसे पाप करने का तो गृहस्थ को भी नहीं होता तो मुनि को तो होता ही नहीं। बाग-बगीचा देना और यह करना और वह करना।

मुमुक्षु : अन्यमत में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अन्यमत में लिखा है न। उस अन्यमत में ऐसा है। बाकी यहाँ नहीं होता। इस मार्ग में—वीतरागमार्ग में नहीं होता। साधु-सन्त किसे कहे! आहाहा! जिनकी नग्न दशा, दिगम्बर दशा, बालक जैसी दशा (होती है)।

जिसमें बहुत लाभ हो वही काम करना योग्य है। दीक्षा तो इन वस्तुओं से रहित ही है। लो! गृहस्थ को भी ऐसे बहुत पापवाले दान नहीं होते तो मुनि को तो कैसे हों? ऐसा कहते हैं। **दीक्षा तो इन वस्तुओं से रहित ही है।** ऐसी वस्तु उन्हें नहीं होती।

गाथा-४७

आगे फिर कहते हैं -

सत्तूमित्ते य समा पसंसणिंदा अलद्धिलद्धिसमा।
तणकणए समभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४७।।

शत्रौ मित्रे च समा प्रशंसानिन्दाऽलब्धिलब्धिसमा।
तृणे कनके समभावा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता।।४७।।

निन्दा-प्रशंसा शत्रु-मित्र अलाभ-लाभ समान है।
तृण-स्वर्ण में सम-भाव ऐसी प्रव्रज्या जिन-कथित है।।४७।।

_अर्थ_ - जिसमें शत्रु-मित्र में समभाव है, प्रशंसा-निन्दा में, लाभ-अलाभ में और तृण-कंचन में समभाव है। इस प्रकार प्रव्रज्या कही है।

_भावार्थ_ - जैनदीक्षा में राग-द्वेष का अभाव है। शत्रु-मित्र, निन्दा-प्रशंसा, लाभ-अलाभ और तृण-कंचन में समभाव है। जैनमुनियों की दीक्षा इस प्रकार ही होती है।।४७।।

गाथा-४७ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं -

सत्तूमित्ते य समा पसंसणिंदा अलद्धिलद्धिसमा।
तणकणए समभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४७।।

आहाहा! 'शत्रु-मित्र के प्रति भी वर्ते समदर्शिता।' आता है न श्रीमद् में? 'शत्रु-मित्र के प्रति भी वर्ते समदर्शिता। मान अमान में वर्ते वही स्वभाव जो।' संसार या मोक्ष हो, परन्तु समभाव वर्तता है। आहाहा! ऐसा मुनिपना हमें कब आयेगा? ऐसी श्रीमद् भी भावना भाते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र आता है न? संसार-मोक्ष आता है न उसमें? 'भव-मोक्ष में भी वर्ते समभाव जो।' भाव-मोक्ष में। भव हो या मोक्ष हो, जिन्हें वीतरागता ही वर्तती है। हमारे मक्खनभाई एक बार कहते थे कि यह भव-मोक्ष में भी वर्ते समभाव, इसलिए ही भव हुआ, वे ऐसा कहते थे। वह ... थे न? अभी 'गढडा' गये हैं। 'भव मोक्ष में भी वर्ते समभाव' तब उन्हें भव करना पड़ा। अरे! तुम समझते नहीं। भव नहीं अकेले मोक्ष चाहिए। यह बात कहाँ है उसमें, सुन न! भव हो या मोक्ष हो, यहाँ वीतरागता वर्तती है - ऐसा कहते हैं। ऐसी शैली। नहीं तो वैसे तो लाखों का मोती का व्यापार था। श्रीमद् की छोटी उम्र थी। ३३ वर्ष में देह छूट गयी। उन्होंने 'अपूर्व अवसर' में ऐसा डाला है, लो! 'भव मोक्ष में वर्ते समभाव जो, अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा? कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब' बाह्य और अभ्यन्तर अत्यन्त निर्ग्रन्थदशा-वीतरागपना। बाह्य में लंगोटी का

टुकड़ा नहीं। 'नग्न भाव मूंड भाव सह अस्नानता' श्रीमद् में आता है। अपूर्व अवसर में बहुत अच्छी बात है।

कहते हैं, **जिसमें शत्रु-मित्र में समभाव है,...** लो! आहाहा! छुरी से छेदनेवाले आवें और चन्दन लगानेवाले आवें, दोनों के प्रति समभाव है। दोनों के प्रति समभाव। गर्मी में चन्दन से लेप करने आवे और कुल्हाड़ी से छेदे-शस्त्र से छेदे (तो भी समभाव है)। ऐसी प्रव्रज्या। इसका नाम साधुपना और इसका नाम मुनिपना है। समझ में आया? दो-दो बोल लिये हैं। **प्रशंसा-निन्दा में,...** दुनिया में प्रशंसा के ढ़ेर आते हों तो भी समभाव। किसकी प्रशंसा? निन्दा होवे तो भी समभाव है। निन्दा में द्वेष नहीं, प्रशंसा में राग नहीं। शत्रु के प्रति द्वेष नहीं, मित्र के प्रति राग नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

लाभ-अलाभ में... शिष्यों का लाभ मिले, आहार का लाभ मिले। और आहारादि का लाभ न मिले तो भी समभाव है। समझ में आया? आहाहा! भगवान ऋषभदेव भगवान को, देखो न! छह महीने तक आहार नहीं मिला। छह महीने के उपवास पहले थे। बारह महीने। वीतराग... वीतराग... अतीन्द्रिय आनन्द के अन्तर से मीणा चढ़ा है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। उसमें उग्ररूप से स्थिर होकर ठहर गये हैं। आहाहा! इसका नाम मुनिपना और साधुपना है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : और वह चारित्र है न वापस यहाँ तो। चारित्र अर्थात् तो बहुत उग्र (दशा है)। अन्दर से राग घटकर स्वरूप में लीनता हुई। मात्र आनन्द के प्याले प्रस्फुटित हुए हैं। आहाहा!

कहते हैं, जिसे लाभ और अलाभ में समभाव है। राजाओं के राजा ऐसे चक्रवर्ती आकर वन्दन करे, तो भी समभाव है और दुनिया निन्दा करे तो भी समभाव है। सिद्ध भगवान हैं, लो! है उन्हें कुछ? कि भाई! यह जैनधर्म बड़े तो ठीक, यह मेरी निन्दा करनेवाले निकले, वे शिष्य नहीं। ऐसा विकल्प उठता है उन्हें? बस, यह वीतराग मुनि भी ऐसे ही होते है। आहाहा!

तृण-कंचन में समभाव है। लो! यह तिनका हो या ढ़ेर दिखाई दे ऐसे जंगल में

दिशा-बिशा को गये हों और साधु तो नीचे हीरा दिखाई दे। अरबों रुपये का हीरा ऐसे दिखाई दे। किसी का... क्या कहलाता है वह ? चरु। चरु दिखाई दे। अकेले हीरे हैं। तो भी समभाव है। लाओ ले लें थोड़ा, गाँव में आकर दान तो देंगे। ऐसा विकल्प नहीं आता। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी हीरा-माणिक की खान देखे तो भी समभाव। सड़ा हुआ तिनका देखे तो भी समभाव। ऐसा जिनका स्वरूप है। स्वरूप में स्थिर हुआ, इसलिए ऐसा उन्हें ही समभाव आता है। आहाहा! यहाँ तो एक शिष्य जरा ठीक से हुआ तो ऐसा ... शिष्य ठीक न हुआ हो तो पेट जलता है, अन्दर छाती जलती है। कलेजा ऐसा सडसडे है। आहाहा!

तृण-कंचन में समभाव है। ऐसा जिनका ज्ञाता-दृष्टा का स्वरूप जहाँ अनुभव में आया और आगे बढ़कर जहाँ चारित्र की लीनता प्रगट हुई, समाप्त हो गया। ज्ञेयों में दो प्रकार ही नहीं हैं न! यह ठीक-अठीक, ऐसा है नहीं। ऐसे समभाव **इस प्रकार प्रव्रज्या कही है।** परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने ऐसी प्रव्रज्या-साधुपना कहा है। आहाहा! यहाँ तो आहार के लिये विवाद करे। बँटवारा करे आहार, नहीं तो विवाद। उसके लिये यह। अच्छे घर में आहार हो, वहाँ जायें। यह कहेंगे, हों! देखो! अब यह ही आता है। अब यह ही आता है।

जैनदीक्षा में राग-द्वेष का अभाव है। अन्तर में जिसे राग और द्वेष नहीं। वीतरागता का आनन्द अन्दर प्रगट हुआ है, आनन्द की खान प्रगट हुई है, उस आनन्द की खान के वेदन में जिन्हें राग-द्वेष का बिल्कुल अभाव है। और प्रशंसा को आ गया है। जातें-जिससे... **शत्रु-मित्र,...** उसमें शत्रु शब्द है। **निन्दा-प्रशंसा, लाभ-अलाभ और तृण-कंचन में समभाव है।** आहाहा! **जैन मुनियों की दीक्षा इस प्रकार ही होती है।** ऐसी वीतरागता का ज्ञान भी करने से जिसे निर्जरा होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वीतरागता हो, उसकी तो बात क्या करना ? ऐसी वीतरागता हो, ऐसा जो अन्तर में ज्ञान और श्रद्धा में ले, उसे भी निर्जरा (होती है) और अशुद्धता टलती है। समझ में आया ?

गाथा-४८

आगे फिर कहते हैं –

उत्तममज्झिमगेहे दारिद्दे ईसरे णिरावेक्खा।
सव्वत्थ गिहिदपिंडा पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४८।।

उत्तममध्यगेहे दरिद्रे ईश्वरे निरपेक्षा।
सर्वत्र गृहीतपिंडा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता।।४८।।

उत्कृष्ट–मध्यम घर सधन–निर्धन अपेक्षा से रहित।
सर्वत्र भोजन ग्रहण ऐसी प्रव्रज्या जिनवर–कथित।।४८।।

अर्थ – उत्तम गेह अर्थात् शोभा सहित राजभवनादि और मध्यमगेह अर्थात् जिसमें अपेक्षा नहीं है। शोभारहित सामान्य लोगों का घर इनमें तथा दरिद्र–धनवान् इनमें निरपेक्ष अर्थात् इच्छारहित हैं, सब ही योग्य जगह पर आहार ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार प्रव्रज्या कही है।

भावार्थ – मुनि दीक्षासहित होते हैं और आहार लेने को जाते हैं, तब इस प्रकार विचार नहीं करते हैं कि बड़े घर जाना अथवा छोटे घर वा दरिद्री के घर या धनवान के घर जाना इस प्रकार वांछारहित निर्दोष आहार की योग्यता हो वहाँ सब ही जगह से योग्य आहार ले लेते हैं, इस प्रकार दीक्षा है।।४८।।

गाथा-४८ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं – देखो! मुनि की प्रव्रज्या का बोल।

उत्तममज्झिमगेहे दारिद्दे ईसरे णिरावेक्खा।
सव्वत्थ गिहिदपिंडा पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४८।।

अर्थ – उत्तम गेह अर्थात् शोभा सहित राजभवनादि... वहाँ तो बड़े राजमन्दिर

हैं, शोभावन्त हैं, इसलिए वहाँ आहार लेने जाऊँ, ऐसा है नहीं। **और मध्यमगेह...** शोभारहित सामान्य घर (हो)। साधारण गायें हों।... हो, ऐसे घर में नहीं जाना या ऐसे ही घर में जाना, ऐसा कोई आग्रह नहीं है। निर्दोष आहार-पानी मिले, वहाँ चले जाते हैं। लेकर जंगल में चले जाते हैं। आहाहा! जिनकी निवृत्ति... निवृत्ति... निवृत्ति... राग तो जलकर राख होता है। आनन्द की शीतलता जहाँ बढ़ती है। आहाहा! ऐसी दशा! उसे भगवान प्रव्रज्या कहते हैं। उसे साधुपद कहते हैं।

शोभारहित सामान्य लोगों का घर इनमें तथा दरिद्र-धनवान्... दोनों की अपेक्षा जिन्हें नहीं होती। दरिद्री के यहाँ जायें तो मान दे, धनवान के यहाँ जायें तो अच्छा आहार मिले, ऐसी भी जहाँ अपेक्षा नहीं है। देखो! यह साधुपद की दशा! आहाहा! नमूना देखना मुश्किल है अभी तो। धनवान और गरीब, **इनमें निरपेक्ष...** जिसकी अपेक्षा नहीं कि गरीब व्यक्ति तो मुझे आदर देगा, आहार देने में, धनवान में अच्छा आहार मिलेगा। दोनों की अपेक्षा नहीं। जैसा हो वैसा होगा। मिलने का होगा, वह मिलेगा; होना होगा, वह होगा। समभाव में झूलते मुनि। 'ऐगंत सुखी मुनि वीतरागी।' वे सुखी हैं। बाकी सब दुःखी हैं। दुःखी होंगे यह ? यह न्यालभाई और सब सुखी होंगे ? शरीर तो सब स्थूल होता है। दुःखी हो तो सूख जाये। परन्तु अन्दर में सूख जाते हैं, आकुलता से जलते हैं। अन्दर आकुलता होती है, उसमें से सुलगते हैं, जलते हैं। यह पैसा मेरा, यह व्यापार करूँ, इसका यह करूँ। आहाहा! आकुलता की अग्नि सुलगती है। वहाँ आत्मा की शान्ति सुलगती और जलती है।

मुनि को तो... आहाहा! धन्य-धन्य अवतार! अनाकुल आनन्द का उफान आया है। उनकी शान्ति के समक्ष जगत के चक्रवर्ती के राज जिनको तृणवत् लगते हैं। आहाहा! सड़े हुए तिनके जैसे इन्द्र के इन्द्रासन (लगते हैं)। ऐसा समभाव। अमृत समामृत का अनुभव, वीतरागभाव का अमृत का अनुभव। आहाहा! यह तो उनके सामने विकार आवे, वह आकुलता का वेदन है। यह समभाव समामृत (का) वेदन है। वीतरागता के अमृत भाव का वेदन है। यह स्वरूप है, वह धर्म है, वह आत्मा है, वह शान्ति है और दीक्षा है। आहाहा! अभी तो दीक्षा कैसी होती है, यह सुना न हो और हो गयी दीक्षा। मुँडाकर बैठे, (इसलिए) हो गये साधु। फिर सब जय नारायण करे। ऐसी बात है, बापू! आहाहा! ऐसा मार्ग मुनि का!

सब ही योग्य जगह पर आहार ग्रहण किया जाता है। आहार जो निर्दोष। पेट को चाहिए गड्डा भरने को। गड्डा तो चाहे जिस प्रकार भरे। मिट्टी से भरे, कंकड़ से भरे, कंकड़ी से भरे। इसी प्रकार जहाँ निर्दोष आहार हो चाहे जहाँ से ले ले। **सब ही योग्य जगह पर...** धन हो या दरिद्री हो ऐसा। सुन्दर घर हो या साधारण घर हो। निर्दोष आहार लेकर वन में चले जाते हैं। आहाहा! जंगल में मकान तो नहीं परन्तु मनुष्यों का पगरव नहीं। ऐसे स्थान में आनन्द में महालता होते हैं। ऐसी प्रव्रज्या को साधुपद कहा जाता है। यह सुखरूप आनन्द है। इसके पिता ने पूछा था एक बार।

मुमुक्षु : आनन्द ऐसा ही होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके पिता ने इससे पूछा था। गत वर्ष की बात है। महाराज ऐसा कहते हैं कि साधु जंगल में रहते हैं। जंगल में रहे, उन्हें कैसे सुहाता होगा? अकेले कैसे सुहाता होगा? ऐसा इसके पिता ने इससे पूछा था। अरे! पापा! वे मुनि तो अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त होते हैं। सुहावे क्या, सुहावे क्या, क्या करते हो? यह तो इसके दादा बैठे हैं परन्तु उस इसके पिता को कहा। पापा! क्या कहते हो यह? आनन्द में नहीं सुहाता होगा उन्हें? सिद्ध अकेले होंगे या कैसे होंगे? फिर वकील की तरह तर्क दिया। सिद्ध भगवान अकेले हैं वहाँ। उन्हें नहीं सुहाता होगा? हिम्मत दरबार! ऐसा है यह।

सिद्ध भगवान को नहीं सुहाता होगा, वहाँ अकेले को? अशरीरी परमात्मा हुए उन्हें। पापा! तुम्हारे कलवलाहट चाहिए है। यह देना और देना... यह और यह धमाल के कारण तुम्हें निवृत्ति नहीं सुहाती। बावत तो सच्ची है या नहीं? एक लड़का बोले तो भी सच्चा। सच्चा है उसमें कहीं... सब ले और दे, इकट्ठे हों, विवाह हो, यह मनुष्य हो, मण्डप डाले और अमुक हों, वह धूल में भी नहीं अब। आनन्द में मस्त हैं। आहाहा! नहीं सुहाता होगा? धमाल में सुहाता होगा।

यहाँ कहते हैं, **सब ही योग्य जगह पर आहार ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार प्रव्रज्या कही है।** लो! भावार्थ आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१७०, गाथा-४८ से ५१, शनिवार, पौष शुक्ल १३, दिनांक ०९-०१-१९७१

प्रव्रज्या दीक्षा। दोपहर में समकित की व्याख्या मुख्य है। जैनशासन में वीतराग की आज्ञा प्रमाण समकित के पश्चात् चारित्र कैसा होता है, उसकी व्याख्या है।

मुनि दीक्षासहित होते हैं... अर्थात् कि उन्हें अन्तर में आनन्द और वीतरागता प्रगट हुई होती है। दीक्षासहित अर्थात् उन्हें चारित्रदशा अन्दर में होती है। वीतरागता और परम आनन्द का परम—बहुत वेदन होता है। **और आहार लेने को जाते हैं, तब इस प्रकार विचार नहीं करते हैं कि बड़े घर जाना अथवा छोटे घर...** जाना। ऐसा विकल्प उन्हें नहीं होता। **दरिद्री के घर या धनवान के घर जाना इस प्रकार वांछारहित निर्दोष आहार की योग्यता हो...** निर्दोष आहार हो। उनके लिये बनाया हुआ न हो, ऐसी योग्यता हो। **वहाँ सब ही जगह से योग्य आहार ले लेते हैं, इस प्रकार दीक्षा है।** बहुत सूक्ष्म बात है। दीक्षा की। चौका करके आहार लेते हैं, वह कहीं दीक्षा नहीं है। व्यवहार से भी जहाँ साधुपद नहीं है।

आत्मा के अनुभवसहित एक रजकण और राग के कण का भी जहाँ स्वामी नहीं, ऐसा अन्तरात्मा अपने निजानन्द का स्वामी है। ऐसे अन्तर में स्वभावभाव में प्रगट हुआ होता है। समझ में आया? तदुपरान्त उन्हें राग की बहुत ही अभाव दशा हो गयी है। ऐसी दीक्षा में चारित्र (सहित) नग्नमुनि जंगल में बसते हैं। मुनियों की दशा तो जंगल में बसते हैं, वनवास में होते हैं। आहार के लिये आवे तो निर्दोष आहार हो, वहाँ चाहे जहाँ से लेकर चले जाते हैं। ऐसी दशा। ऐसी दशा ही मुनि की है। इसके अतिरिक्त मुनि की दशा दूसरी नहीं होती। ऐसा श्रद्धा और ज्ञान कराते हैं। नवतत्त्व में संवर-निर्जरा का ज्ञान चाहिए न? नव तत्त्व में संवर-निर्जरावाले ऐसे साधु हों, ऐसे साधु को वह संवर-निर्जरारूप से माने।

गाथा-४९

आगे फिर कहते हैं -

णिग्गंथा णिस्संगा णिम्माणासा अराय णिद्दोसा।
णिम्मम णिरहंकारा पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४९।।

निर्ग्रंथा निःसंगा निर्मानाशा अरागा निर्द्वेषा।
निर्ममा निरहंकारा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता।।४९।।

निर्ग्रन्थ निर्मद संग-बिन आशा-बिना निर्द्वेष ही।
निर्मम निराग अहं-रहित ऐसी प्रव्रज्या जिन कही।।४९।।

अर्थ – कैसी है प्रव्रज्या? निर्ग्रन्थस्वरूप है, परिग्रह से रहित है, निःसंग अर्थात् जिसमें स्त्री आदि परद्रव्य का संग-मिलाप नहीं है; जिसमें निर्माना अर्थात् मान कषाय भी नहीं है, मदरहित है, जिसमें आशा नहीं है, संसारभोग की आशा रहित है, जिसमें अराग अर्थात् राग का अभाव है, संसार-देह-भोगों से प्रीति नहीं है, निर्द्वेषा अर्थात् किसी से द्वेष नहीं है, निर्ममा अर्थात् किसी से ममत्वभाव नहीं है, निरहंकारा अर्थात् अहंकाररहित है, जो कुछ कर्म का उदय होता है, वही होता है। इस प्रकार जानने से परद्रव्य में कर्तृत्व का अहंकार नहीं रहता है और अपने स्वरूप का ही उसमें साधन है, इस प्रकार प्रव्रज्या कही है।

भावार्थ – अन्यमती भेष पहिनकर उसी मात्र को दीक्षा मानते हैं, वह दीक्षा नहीं है, जैनदीक्षा इस प्रकार कही है।।४९।।

गाथा-४९ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं -

णिग्गंथा णिस्संगा णिम्माणासा अराय णिद्दोसा।
णिम्मम णिरहंकारा पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४९।।

भगवान तीर्थंकरदेव ने ऐसी प्रव्रज्या कही है, ऐसा कहते हैं। पद-पद में ऐसा कहा, देखो प्रत्येक में। **'एरिसा भणिया'** गणधरों ने, तीर्थंकरों ने, अहो! संसार से छूटने का मार्ग, मोक्ष के मार्ग की जिसकी दशा, मोक्ष के नजदीक जो वर्तते हैं, ऐसे मुनियों की दशा भगवान ने ऐसी कही है।

अर्थ - कैसी है प्रव्रज्या? निर्ग्रन्थस्वरूप है, परिग्रह से रहित है,... जिसमें एक राग नहीं और वस्त्र का तिलमात्र भी टुकड़ा नहीं। आहाहा! ऐसी निर्ग्रन्थ दशा जिनकी होती है। समझ में आया? टीकाकार ने तो थोड़ा दूसरा अर्थ किया है। नि-ग्रन्थ। नि-विशेष शास्त्र के ज्ञान से सहित हैं। ग्रन्थ अर्थात्। निर्ग्रन्थ। नि-विशेष, अतिशय से। जिन्हें अन्तर आत्मज्ञान बहुत उग्र हो। टीका में है। लिखा है? यह अभी पढ़ा।

दो अर्थ किये हैं। एक तो निर्ग्रन्थ—जिन्हें राग का ग्रन्थ नहीं और वस्त्र के टुकड़े का बाह्य ग्रन्थ नहीं। ऐसी दशा मुनि की होती है। और दूसरा निर्ग्रन्थ। नि—अतिशय से, विशेष से जिन्हें वीतराग के शास्त्र का भावज्ञानसहित वे होते हैं। बुद्धि बिना के, ज्ञान बिना की प्रव्रज्या हो, ऐसी प्रव्रज्या नहीं होती, ऐसा कहते हैं। जिन्हें राग के विकल्प से भिन्न पड़कर आत्मज्ञान जिन्हें आत्मा में हुआ है, ऐसा तो सम्यग्दर्शन में गृहस्थाश्रम में वह तो होता है। समझ में आया? परन्तु यह तो तदुपरान्त प्रव्रज्या में... आहाहा! वीतरागपने में डोलते हैं। वीतराग... वीतराग... परिणति में निर्मल आनन्द में जो झूलते हैं। आहाहा! ऐसी प्रव्रज्या को दीक्षा कहा है।

निःसंग अर्थात् जिसमें स्त्री आदि परद्रव्य का संग-मिलाप नहीं है;... स्त्री तो नहीं परन्तु उन्हें नौकर-चाकर कोई संग करे, चाकरी करे, ऐसा उन्हें नहीं होता। मूल तो यह कहना है। **'णिस्संगा'** कोई नौकर काम करे या एक मनुष्य रखे। शरीर की वृद्धावस्था हो गयी है, इसलिए एक व्यक्ति चाहिए, ऐसा संग मुनि को नहीं होता। आहाहा! शिष्य भी उन्हें नहीं है। शिष्य कहाँ था? शिष्य नहीं होता। परमार्थ से अन्दर में संग नहीं। राग का संग नहीं और पर का कहाँ से आया? समझ में आया?

मुमुक्षु : वे परद्रव्य हो गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य ही है। राग परद्रव्य है तो फिर शिष्य तो कहीं दूर रह

गया। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! वीतराग-सर्वज्ञ का मार्ग, सम्यग्दर्शन का और सम्यक्चारित्र का अपूर्व और अलौकिक मार्ग है। दोनों मार्ग कहीं अन्यमत में ऐसे नहीं होते। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव, तीर्थंकर केवलज्ञानी परमात्मा में ऐसा मार्ग होता है। समझ में आया?

जिसे मनुष्य का भी संग नहीं। समीप नहीं रहता। क्या शब्द कहा है? समीप रहे परन्तु शरीर का संग नहीं। ऐसा आता है। 'मुनि जो ... सर्व जन समीप है पण नहीं शरीर का संग।' शरीर का संग नहीं। शरीर परद्रव्य है। आत्मा अन्दर स्व भिन्न है। आहाहा! 'एकाकी विचरूँगा...' एक ही आसन में। एकान्त में बसूँ एक ही आसन में। अन्दर आनन्द में। ऐसा मार्ग अन्तर (में प्रगट हुआ है), जिसे मुक्ति-मोक्ष नजदीक में है, उसे ऐसी चारित्र दशा सम्यग्दर्शनसहित अनुभवसहित होती है।

जिसमें निर्माना अर्थात् मान कषाय भी नहीं है, मदरहित है,... मद नहीं, मद। हम इतना पढ़े हैं, हम ऐसे त्यागी हुए हैं, हम नग्न रहते हैं, ऐसा उन्हें मद नहीं होता। निर्मान... निर्मान... निर्मान... आहाहा! **मदरहित है, जिसमें आशा नहीं है,...** दो शब्द हैं। **'निर्मानाशा'** एक शब्द में दो है। आशारहित है। संसार भोग की आशा रहित है। अहो! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की अन्तर में जिसकी रुचि हुई है। अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे अन्तर में स्वाद आया है, उसे पर की आशा क्या होगी? आहाहा! समझ में आया? अतीन्द्रिय अनाकुल शान्तरस प्रभु का, यह तो अन्तर के वेदन में अन्तर में उग्ररूप से वर्तते हैं। उन्हें आशा किसकी? भावना होवे तो अन्दर में एकाग्र होकर केवलज्ञान प्राप्त करने की होती है। देखो! यह वीतरागमार्ग का मुनिपना! उसकी इसे श्रद्धा और पहिचान तो करनी पड़ेगी न? जिसे-तिसे मान बैठता है कि यह साधु है और मुनि है।

संसारभोग की आशा रहित है,... राग की आशा नहीं और भोग के अनुकूल से आशा नहीं। आनन्द के भोग में, अहो! प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में पड़ा है। उसे यह चमड़े को चूंथने का-भोग का भाव नहीं होता। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को भी भोग की रुचि नहीं। यह तो आसक्ति का अभाव बताते हैं। सम्यग्दृष्टि जहाँ आत्मा धर्म को प्राप्त हुआ, अपूर्व आनन्द के स्वाद में आया, उसे कहीं रुचि भोग में सुखबुद्धि नहीं लगती। इन्द्र के इन्द्रासन भी जहाँ दुःख के निमित्त हैं। सुख तो भगवान आत्मा में है। आत्मा में आनन्द है, अनाकुल शान्ति आत्मा में है। ऐसा तो सम्यग्दर्शन होने पर चौथे गुणस्थान में श्रद्धा और

भान (होकर) आनन्द का स्वाद आया है। भासित होकर श्रद्धा हुई है कि यह आत्मा तो आनन्दस्वरूप है। उसमें विकल्प और दु:ख है नहीं। ऐसे आत्मा का जहाँ आत्मज्ञान हो और आत्मदर्शन हो और उसकी श्रद्धा हो, उसे आत्मा में आनन्द भासित होता है, वहाँ अन्यत्र कहीं आनन्द नहीं होता। अन्यत्र कहीं भी यदि आनन्द भासित हो तो वह मिथ्यादृष्टि हो जाता है। समझ में आया ? क्योंकि कहीं नहीं है और मानता है तथा जहाँ है, वहाँ मानता नहीं। आहाहा !

आत्मा के आनन्द के समक्ष उसे कहीं सुखबुद्धि, अनुकूलता के ढ़ेर और गंज पड़े हों, उत्पन्न नहीं होती। ऐसी तो समकिती की दृष्टि होती है। समझ में आया ? यहाँ तो आसक्ति का त्याग बताते हैं। समकिती को अभी थोड़ी आसक्ति होती है। रुचि नहीं परन्तु आसक्ति। यह संसार देह की आसक्ति की जिसे प्रीति नहीं। भोग की आशा नहीं। वह आशा टूट गयी है। 'आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञान सुधारस पीजे, आशा औरन की क्या कीजे।' आत्मा के आनन्द का निर्विकल्प सुधारस, आनन्द का रस, उसे जहाँ अनुभव में आया, वह आशा किसकी करे ? समझ में आया ? आहाहा !

जिसमें अराग अर्थात् राग का अभाव है, संसार-देह-भोगों से प्रीति नहीं है,... संसार की कोई भी गति, भोग और देह, उसमें जिसे प्रीति नहीं है। **निर्द्वेषा अर्थात् किसी से द्वेष नहीं है,...** और निर्दोष है। **किसी से द्वेष नहीं है,...** द्वेष भी नहीं है। ज्ञाता-दृष्टा आनन्द में रहता है, उसे कोई द्वेष होता ही नहीं। चलते हुए काँटा लगे, कंकड़ चुभे, सर्प डसे, बिच्छू काटे,... आहाहा ! कहते हैं, मुनि को वहाँ द्वेष नहीं है। देखो तो दशा ! इतनी वीतरागता समभाव प्रगट हुआ है, जिसे बिच्छू के काटने में (द्वेष नहीं)। जंगल में हो, कठोर बिच्छू कहीं रात्रि में काटे, सर्प आकर डसे (परन्तु) द्वेष नहीं। समभाव-समभाव। समामृत सेईये। समभाव में अमृत का सेवन करनेवाले को प्रतिकूलता का द्वेष नहीं है। यह वस्तुस्थिति है, हों ! ऐसी। आहाहा ! इतनी मुनि को समभाव की वीतराग दशा प्रगट हुई है। उसे मुनि और चारित्र कहते हैं। आहाहा !

निर्ममा अर्थात् किसी से ममत्वभाव नहीं है,... यह मेरा है, ऐसा भी कहाँ ? मेरा है, वह तो आत्मा-आनन्द है। परवस्तु मेरी है, वह तो बुद्धि है नहीं। अपने को मम अर्थात् मेरा वह तो सचेतन प्रभु है। आत्मा आनन्द और ज्ञानवाला, वह आत्मा मेरा है।

इसके अतिरिक्त कोई चीज़ मेरी नहीं है। आहाहा! देखो! यह वीतरागमार्ग के साधु! समकित उपरान्त लेना है न यहाँ तो? आसक्ति का भी त्याग। **निरहंकारा...** यह मेरा नहीं। यह अहं—मैं उसका कर्ता नहीं। **जो कुछ कर्म का उदय होता है, वही होता है। इस प्रकार जानने से परद्रव्य में कर्तृत्व का अहंकार नहीं रहता है...** शरीर को ऐसा रखूँ, ऐसा बोलूँ, दुनिया को इस प्रकार ठीक से रहे, ऐसा रखूँ—ऐसा अहंकार नहीं है। जैसे कर्म का उदय हो तो वैसे शरीर की क्रिया होओ। आहाहा!

जो कुछ कर्म का उदय होता है, वही होता है। इस प्रकार जानने से परद्रव्य में कर्तृत्व का अहंकार नहीं रहता है... मैंने इन शिष्यों को सुधार दिया, मैंने उन्हें तार दिया, ऐसा उन्हें अहंकार नहीं होता। कहो, समझ में आया? आहाहा! अन्दर ज्ञान और आनन्द की जहाँ लहर उठती है, उसे यह पर का कर्तापना और पर का मैं करता हूँ, यह होगा कहाँ से? ऐसी उदास... उदास वीतरागदशा नग्नदशा। जंगल में आनन्द में बसते हैं। समझ में आया? उन्हें चारित्र और उसे संवर-निर्जरा की उत्कृष्ट दशा का सेवन करनेवाला कहा जाता है। आहाहा! यहाँ तो अभी इसे संवर-निर्जरा किसे कितनी होती है और कैसी दशा होती है, इसकी खबर नहीं होती और कहे कि मुझे समकित है। आहाहा!

इस प्रकार जानने से परद्रव्य में कर्तृत्व का अहंकार नहीं रहता है... शरीर में भी जैसा कर्म का उदय (हो) तत्प्रमाण रोगता-सरोगता होती है। कण्ठ और कला यह सब कर्म के उदय के कारण से है, ऐसा कहते हैं। इसमें उसे अहंकार नहीं होता। मूल तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह मेरे कण्ठदशा बहुत ऊँची है। कण्ठ तो जड़ है। मीठा गायन-भक्ति निकलती है, वह तो जड़ है। उसमें इसका अहंपना और कर्तापना (नहीं है)। (उसमें) मैं हूँ, ऐसा नहीं, इसलिए उसका कर्तापना उसमें नहीं है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

और अपने स्वरूप का ही उसमें साधन है,... देखो! एक आनन्द प्रभु, अतीन्द्रिय स्वभाव का सागर आत्मा, उसका अन्तर में घोलन और साधन होता है। आहाहा! देखो! उसमें पंच महाव्रत के विकल्प का भी साधन नहीं है। (विकल्प) हो। वह दूर-दूर (वर्तता है)। स्वरूप का साधन है। आहाहा! साधु है न? स्व-रूप। वह स्वरूप। स्वरूप कैसा? आत्मा का स्वरूप, हों! शरीर का नहीं। आहाहा! स्व चैतन्य का स्व-

अपना रूप जानना, देखना, श्रद्धा, आनन्द—ऐसा जो त्रिकाली स्वभाव का रूप, वह चैतन्य का स्वरूप है। आहाहा! उसका साधन है। उस स्वरूप का साधन साधु को है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार का, राग का, निमित्त का साधन उन्हें है नहीं। वह तो जानते हैं कि यह रागादि हैं। उनका साधन नहीं। आहाहा!

साधे, वह साधु। किसे साधे? राग को? अपना स्वभाव, ज्ञानानन्दस्वरूप। जिसमें ज्ञान और आनन्द ही पूर्ण का पुंज वह प्रभु है। ज्ञान-आनन्द का पूर्ण का पुंज वह है। उसका अन्दर साधन करे, उसे साधु कहा जाता है। आहाहा! यह बात ऐसी चीज़ है, इसे विचार में लेना इसको मुश्किल पड़ता है। ऐसा बैठना। यह तो कोई भी साधु हो गये। कठिन बात है, भाई! और ऐसे पुरुषार्थ बिना उन्हें मुक्ति कैसे मिले? ऐसी दशा जहाँ वीतरागपना ही अकेला घोलन किया जाता है। अकेला अविकारी स्वभाव उसके ही घोलन में, रमणता में पड़ा है, उसे अपने स्वरूप का ही साधन है। कहो, इसमें विकल्प का साधन है, वह नहीं। निमित्त को मिलाना और (ऐसा कुछ नहीं।) समझ में आया? ऐसी प्रव्रज्या भगवान ने कही है। आहाहा! ऐसी दीक्षा तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा परमेश्वर वीतरागदेव ने ऐसी कही है। कहो, रतिभाई! ऐसी प्रव्रज्या है। साधु (कहे परन्तु) साधु की खबर नहीं होती। जिस-तिस को जय नारायण!

अन्यमती भेष पहिनकर उसी मात्र को दीक्षा मानते हैं,... देखो! नग्नपना धारण करे और दीक्षा मानते हैं। **वह दीक्षा नहीं है, जैनदीक्षा इस प्रकार कही है।** आहाहा!

गाथा-५०

आगे फिर कहते हैं –

णिण्णेहा णिल्लोहा णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा।
णिब्भय णिरासभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।५०।।

निःस्नेहा निर्लोभा निर्मोहा निर्विकारा निःकलुषा।
निर्भया निराशभावा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ।।५०।।

निस्नेह निर्भय निर्विकार निराश कालुष-लोभ-बिन।
निर्मोह भावमयी प्रव्रज्या जैन-शासन में कथित।।५०।।

अर्थ – प्रव्रज्या ऐसी कही है – नि:स्नेहा अर्थात् जिसमें किसी से स्नेह नहीं, जिसमें परद्रव्य से रागादिरूप सचिक्कणभाव नहीं है, जिसमें निर्लोभा अर्थात् कुछ परद्रव्य के लेने की वांछा नहीं है, जिसमें निर्मोहा अर्थात् किसी परद्रव्य से मोह नहीं है, भूलकर भी परद्रव्य में आत्मबुद्धि नहीं होती है, निर्विकारा अर्थात् बाह्य-आभ्यन्तर विकार से रहित है, जिसमें बाह्य शरीर की चेष्टा तथा वस्त्राभूषणादिक का तथा अंग-उपांग का विकार नहीं है, जिसमें अन्तरंग काम क्रोधादिक का विकार नहीं है। नि:कलुषा अर्थात् मलिनभाव रहित है। आत्मा को कषाय मलिन करते हैं, अत: कषाय जिसमें नहीं है। निर्भया अर्थात् जिसमें किसी प्रकार का भय नहीं है, अपने स्वरूप को अविनाशी जाने उसको किसका भय हो, जिसमें निराशभावा अर्थात् किसी प्रकार के परद्रव्य की आशा का भाव नहीं है, आशा तो किसी वस्तु की प्राप्ति न हो उसकी लगी रहती है, परन्तु जहाँ परद्रव्य को अपना जाना ही नहीं और अपने स्वरूप की प्राप्ति हो गयी तब कुछ प्राप्त करना शेष न रहा फिर किसकी आशा हो ? प्रव्रज्या इस प्रकार कही है।

भावार्थ – जैनदीक्षा ऐसी है। अन्यमत में स्व-पर द्रव्य का भेदज्ञान नहीं है, उनके इस प्रकार दीक्षा कहाँ से हो।।५०।।

गाथा-५० पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं – यह आठ बोल थे उसमें। **'णिग्गंथा णिस्संगा, णिम्माणासा अराय णिद्दोसा। णिम्मम णिरहंकारा'** आठ थे। उसमें आठ बोल की व्याख्या थी। इसमें सात बोल है। अहो! कुन्दकुन्दाचार्य जंगल में बसकर यह एक शास्त्र रचने में निमित्त कहलाये।

णिण्णेहा णिल्लोहा णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा।
णिब्भय णिरासभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया।।५०।।

ऐसी प्रव्रज्या कही। यह ४८ (गाथा) में से चला आता है। ४७ में से। ठेठ ४६, ४५। **'पव्वज्जा एरिसा भणिया'** ठेठ से आता है। ४५ से आता है। शुरु किया वहाँ से चलता है। **'पव्वज्जा एरिसा भणिया'** परमात्मा सर्वज्ञदेव प्रव्रज्या इसे कहते हैं, साधु इसे कहते हैं। आहाहा! शुरुआत की वहाँ से ही चला आता है।

और, **प्रव्रज्या ऐसी कही है – निःस्नेहा अर्थात् जिसमें किसी से स्नेह नहीं,...** राग की चिकनाहट नहीं है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। यह मेरा शिष्य है, यह मेरा भगत है, ऐसी राग की चिकनाई मुनि को, धर्मात्मा-वीतरागभाव में रमनेवाले को नहीं होती। स्नेह-स्नेह। यह मेरे स्नेही हैं, ऐसा नहीं कहते? संसार में ऐसा कहते हैं न? यह मेरे स्नेही हैं। इसका अर्थ स्वयं रागी हुआ। स्नेह किसके साथ? स्नेह तो चिकनाहट है। चिकनाहट तो राग है और राग, वह बन्ध का कारण है। आहाहा!

निःस्नेहा अर्थात् जिसमें किसी से स्नेह नहीं, जिसमें परद्रव्य से रागादिरूप सचिक्कणभाव नहीं है,... लो! ऐसा अर्थ किया। देखो न! राग और द्वेष की चिकनाहट, भगवान आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य में उसे होती नहीं। अपने में पड़ा है, उसे पर में कहाँ चिकनाहट? आहाहा! देह में रहा होने पर भी देह से भिन्न साधन करता है, ऐसा कहते हैं। उसे देह का स्नेह नहीं होता। देह का स्नेह नहीं होता, ऐसा कहते हैं। भाई! यह धर्म का साधन है, इसलिए जरा इसे स्नेह करना। बहुत से लिखते हैं न अभी... ऐसा करना... ऐसा करना... देह की स्फूर्ति अच्छी हो तो मन की स्फूरणा अच्छी होती है, तो धर्म होता है। कहते हैं, जिसे राग की चिकनाहट नहीं होती।

जिसमें निर्लोभा अर्थात् कुछ परद्रव्य के लेने की वांछा नहीं है,... जिसे लोभ नहीं है। इच्छा ही नहीं। अमृत का सागर जहाँ उछला, (वहाँ) अमृत से तृप्ति है। अमृत की तृप्ति है। अहो! भगवान अमृत का स्वभाव पूरा भरा है। ऐसी स्थिरता में रमे, उसे अमृत के वेदन में पर का लोभ कहाँ है? समझ में आया? जिस चीज़ की श्रद्धा-ज्ञान हुआ है, उस चीज़ की भावना होती है कि वह बढ़े और एकाग्र होऊँ। परवस्तु में तो स्नेह है ही नहीं। लोभ ही नहीं है।

परद्रव्य के लेने की वांछा नहीं है,... आहाहा! आहारादि लेते हैं न? लेते ही नहीं। लेता ही नहीं। कहा न? निर्जरा अधिकार में। न इच्छई। आहार-पानी को इच्छता ही

नहीं। वह तो आ जाता है जरा विकल्प। विकल्प की इच्छा नहीं। मुनि-धर्मात्मा को इच्छा की इच्छा नहीं। आहाहा! अरे! समकिती को समकित में भी इच्छा की इच्छा नहीं होती। आहाहा! ऐसा मार्ग विकट और सहज घर का। परन्तु समझे नहीं, इसलिए ऐसा लगता है। ऐसी बातें ऊँची-ऊँची निश्चय-निश्चय कर-करके माने। यह व्यवहार है, उसे मानता नहीं। इसमें व्यवहार है, वह तो जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य है? उस व्यवहार का भी उसे लोभ नहीं है। आहाहा!

निर्मोहा अर्थात् जिसमें किसी परद्रव्य से मोह नहीं है,... अर्थात्? भगवान आत्मा की सावधानी में पर में जिसकी सावधानता का अभाव हो गया है। अपना स्वरूप ज्ञान और आनन्द का धाम, उसकी अन्तर में धर्मी को सावधानी वर्तती है। उसे पर में सावधानी नहीं होती। **किसी परद्रव्य से मोह नहीं है,...** आहाहा! नियमसार में आता है कि बैरी के प्रति राग नहीं और धर्मात्मा होवे तो धर्मी के प्रति भी राग नहीं, ऐसा आता है। एक श्लोक आता है। ऐसा कलश कहीं आता है। नियमसार। यह हमारे साधर्मी हैं, ऐसा जिसे राग नहीं। यह मेरे देव-गुरु हैं। आहाहा! ऐसा श्लोक आता है, समभाव की व्याख्या में (आता है)। धर्मी जीवों के प्रति भी जिसे स्नेह नहीं। वहाँ विषमभाव नहीं। समभाव है तो जानता है। एक श्लोक है कहीं। निर्मोहा।

भूलकर भी परद्रव्य में आत्मबुद्धि नहीं होती है,... अपना निज स्वभाव भगवान, ऐसा आनन्द का धाम जिसे अन्तर में अपनी चीज़ बैठी है। दृष्टि हुई है, भान हुआ है, उसे परद्रव्य में आत्मबुद्धि नहीं होती। आहाहा! आत्मा में आत्मबुद्धि हुई है, उसे राग में और शरीर में अपनी बुद्धि नहीं होती, ऐसा कहते हैं। गजब मार्ग, भाई! यहाँ तो जरा लिखना आवे, बोलना आवे, समझाना आवे, वहाँ कहे, हमें यह आता है। अरे! भगवान! यह तो सब भाषा की क्रियायें हैं। पर को बतलाना, यह भी एक विकल्प है। समझ में आया? उसमें आत्मबुद्धि करे कि यह मुझसे होता है, ऐसाा धर्मी को नहीं होता। आहाहा! शुभराग का कण भगवान की भक्ति का उठे, उसमें आत्मबुद्धि नहीं है। पंच महाव्रत के विकल्प में आत्मबुद्धि नहीं है। किसमें आत्मबुद्धि करे? यह आत्मा कहाँ है? राग का भाग है, वह आत्मा कहाँ है, वह उसमें आत्मबुद्धि हो? आत्मा तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसमें आत्मबुद्धि होती है। समझ में आया? दृष्टि में अन्तर पड़ गया है।

वीतरागमूर्ति प्रभु अकषायस्वभाव का रूप, वह चैतन्य है। उसमें जिसे आत्मबुद्धि हुई है। उससे विपरीत में उसे अपनेपने की (बुद्धि नहीं होती) । आत्म अर्थात् ? अपनेपने की बुद्धि-यह मेरे, (ऐसे) अपनेपने की बुद्धि उसे नहीं होती। आत्मबुद्धि अर्थात् अपनापन-यह मेरा है। समझ में आया ? लोग नहीं कहते ? यह मेरे निकटवर्ती मनुष्य है, यह मेरे स्नेही-सगे हैं, सगे-स्नेही हैं। और सही समय में हमारे पास आकर खड़े रहते हैं। हमें साथ देनेवाले हैं। सत्य होगा यह ? आहाहा! साथी-संगाति तेरे आनन्द के स्वभाव का है। दूसरा साथ किसका ? साथ किसका ? स्नेह किसका ? आहाहा!

देखो न! यह रोग से चारों ओर से घिर जाये। फिर ऐसा हो जाये कि हाय... हाय... झपट्टे मारे। इस दवा से मिटेगा... इस दवा से मिटेगा... इस दवा से मिटेगा... कितनी दवा रखे घर में। अलमारी भर रखे। अभी तो रोग ऐसे हैं। एक-एक शीशी। लिखकर रखे। ऐसा होवे तो यह लेना... ऐसा होवे तो यह लेना... ऐसा होवे तो यह लेना। मगनभाई! कल चन्द्रकान्तभाई कहते थे कि अमुक होवे तो दो गोली लूँ... अमुक होवे तो दो गोली लूँ। क्या करे बेचारा ? अरे रे! प्रभु! तुझे कहाँ गोला कैसा और गोली कैसी ? यह हो, पश्चात् विकल्प और विकल्प का कर्ता नहीं। आहाहा! मार्ग तो मार्ग है न!

कहते हैं, उसे **परद्रव्य में आत्मबुद्धि नहीं होती है,...** कितना भरा है इसमें! निर्मोह में। निर्मोह कहा न। पर में सावधानी नहीं अर्थात् पर में आत्मबुद्धि नहीं। आहाहा! यह व्यापार-धन्धा चलता हो तो भी धर्मी को कहीं आत्मबुद्धि नहीं है। आत्मबुद्धि अर्थात् अपनेपने का भाव नहीं है। अपनेपने का भाव तो आत्मा आनन्द है, वहाँ अपनेपन का भाव है। आहाहा! जहाँ आत्मा है, वहाँ अपनेपन का भाव है। आनन्द और ज्ञान। जहाँ आत्मा नहीं, वहाँ अपनेपन का भाव, अपनापन नहीं, वहाँ अपनेपन का भाव कैसे होगा ? आहाहा! व्यवहार के विकल्प उठें, वहाँ भी अपनेपन का भाव नहीं है। समझ में आया ?

परद्रव्य में... भूल करके भी **आत्मबुद्धि नहीं होती है,...** ऐसा। भूल जाये बात अलग, परन्तु अन्दर में अपनेपने की बुद्धि ज्ञानी को नहीं होती। आहाहा! ऐसा मार्ग है। सम्यग्दर्शन में ऐसा होता है। यह तो और आसक्तिरहित की वीतरागता के जोर की दशा की बात चलती है। आहाहा! ऐसी धर्म की कसौटी में चढ़ा आत्मा, जिसमें से जगमगाहट शान्ति और वीतरागता प्रगट हो। आहाहा! कहते हैं कि उसे परद्रव्य में कोई राग और

रजकण के अंश में अपनेपने की बुद्धि नहीं है। अर्थात् कि आत्मबुद्धि नहीं है। अर्थात् कि वह मैं हूँ, ऐसी बुद्धि नहीं है। आहाहा!

मैं हूँ, वहाँ वे नहीं और वे हैं, वहाँ मैं नहीं। मैं हूँ, वहाँ राग नहीं और राग है, वहाँ मैं नहीं। ऐसी धर्मबुद्धि में भी शुरुआत सम्यग्दर्शन में ऐसी होती है। यह तो मुनि हैं। इन्हें तो अभी अस्थिरता का भाग अभी समकिती को आता था, मैंपनेरूप नहीं परन्तु अस्थिररूप से आता था, वह भाव भी जिन्हें नाश हो गया है। ऐसी मीठी दशा, अहो! मुक्ति को, संसार के किनारे आकर खड़ा है। मोक्ष में पैर रखने की अब तैयारी है। आहाहा! समझ में आया? पूर्ण आनन्द की प्राप्ति करना, इसका नाम मुक्ति। उस पूर्णानन्द में कदम रखने की तैयारी है। उसे दीक्षा और प्रव्रज्या कहते हैं। समझ में आया? देखो न! जंगल में रहकर मुनियों ने कैसा शास्त्र रचा है! ओहोहो!

मुमुक्षु : बोधपाहुड़ इसलिए बोध ही किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोध कराते हैं। वास्तविक चारित्र ऐसा (होता है), उसका ज्ञान (कराते हैं)।

और **बाह्य-आभ्यन्तर विकार से रहित है,...** दीक्षा होती है। **जिसमें बाह्य शरीर की चेष्टा...** शरीर की चेष्टा में राग दिखाई दे, ऐसा उन्हें नहीं होता। आहाहा! पाँच इन्द्रियों की चेष्टा। आँख की,... जिसमें राग का कण नहीं, उसकी शरीर की चेष्टा अलग प्रकार की हो गयी होती है। समझ में आया? **शरीर की चेष्टा तथा वस्त्राभूषणादिक का...** शरीर की चेष्टा विकारी नहीं होती, ऐसा कहते हैं। वस्त्र-आभूषण। वस्त्र तो मुनि को होते नहीं। उन्हें विकार नहीं होता। वस्त्र रखना, वह तो विकार का कारण है। आभूषणादि। गहने पहनते हैं न? हीरा लटकाते हैं यहाँ। यह करे और वह करे। आहाहा! मुर्दे का श्रृंगार करते हैं। माँस का सूखा शरीर। यह माँस और हड्डियों का सूखा शरीर है पूरा। उसे वस्त्र और आभूषण से करता नहीं। आभूषणादिक का विकार नहीं है -ऐसा कहते हैं। **तथा अंग-उपांग का विकार नहीं है,...** ऐसा कहते हैं। अंग अर्थात् पूरा शरीर और उपांग अर्थात् उसके दो हाथ-पैर और सिर आदि। उसमें कहीं भी विकृति-विकार आँख की चेष्टा में, चलने की चेष्टा में, वाणी की चेष्टा में कहीं विकार मुनि के दिखाई नहीं देता। आहाहा! देखो! ऐसी चारित्र की दशा अंगीकार करेगा, तब मुक्ति होगी। समझ

में आया ? ऐसा चारित्र होता है, ऐसा उसकी दृष्टि में पहले निर्णय करना पड़ेगा। ऐसे चारित्र के बिना उसे मुक्ति और मोक्ष हो, तीन काल में नहीं होगा। अकेले सम्यग्दर्शन-ज्ञान से कहीं मुक्ति हो जाये, ऐसा नहीं है। उसे ऐसा चारित्र होता है। आहाहा! समझ में आया ?

छहढाला में आता है न ? भाई! क्या ? लेश न संयम। चारित्रमोहवश। 'सुरनाथ जजे हैं।' परन्तु भावना तो यह है। ऐसा आता है न कुछ ? चारित्र की भावना होती है। चारित्र की भावना होती है। ओहो! मैं कब स्थिर होऊँ ? मेरी भूमि आनन्द की-ज्ञान की, उस भूमि में मैं कब अत्यन्त निरन्तर रमण करूँ ? निरन्तर रमना, वह चारित्र है। समझ में आया ? ऐसी भावना समकिती को तो हमेशा होती है। उसे यह भावना नहीं होती कि इस बाहर में राग करूँ, इसमें बढ़ूँ... और इसमें बढ़ूँ।

जिसमें अन्तरंग काम क्रोधादिक का विकार नहीं है। अर्थात् बाहर में यह नहीं। शरीर की चेष्टा में, वस्त्र-आभूषणादि में, अंग-उपांग में विकार नहीं। वह बाहर में आ गया। **अन्तरंग काम क्रोधादिक का विकार नहीं है।** अहो! विषय की मिठास! काम की मिठास की वृत्ति उठे, वह धर्मी को-मुनि को नहीं होती। आहाहा! आनन्द की मिठास के समक्ष उसे काम की मिठास की वृत्ति उठती नहीं। आहाहा! देखो! यह वीतरागी मार्ग! **क्रोधादिक का विकार नहीं है।** क्रोध भी नहीं, मान-माया-लोभ भी नहीं। वह तो स्वयं वीतरागी बालक है। पूर्ण वीतराग होने के इच्छुक हैं। राग होने के इच्छुक नहीं।

और **निःकलुषा अर्थात् मलिनभाव रहित है। आत्मा को कषाय मलिन करते हैं, अतः कषाय जिसमें नहीं है।** लो! क्रोध, मान, माया, राग, प्रेम, लोभ वे आत्मा को मलिन करते हैं। मुनि को मलिन करे, ऐसे भाव नहीं होते। निर्मल करे, ऐसे भाव होते हैं। आहाहा! शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... अविकारी भाव बढ़ाकर उछाले मारता वीतरागभाव बढ़कर केवलज्ञान को प्राप्त करने का अभिलाषी होता है। समझ में आया ? कुछ पैसा हो, पाँच-दस लाख, उसमें दो-चार लाख पैदा करे तो ऐसा मानो हर्ष का पार न हो। मानो ओहोहो! क्या करें ? क्या किया हमने मानो, क्या बढ़ गये ? सोजिस में बढ़ गये। क्या कहा श्रीमद् में ? 'अधिकार बढ़ने से क्या बढ़ा, बढ़वारी संसार की।' यह कहा। बढ़ा, वह संसार बढ़ा है। लक्ष्मी बढ़ी, इज्जत बढ़ी, शरीर अच्छा, लड़के अच्छे, आबाल-गोपाल हाम, दाम और ठाम—ऐसा सब कहते हैं न बातें ? हाम, दाम और ठाम कहते हैं

न ? भाई, इसे तो हाम, दाम और ठाम तीनों हैं। धूल भी नहीं, सुन न अब। हाम अर्थात् होशियारी, दाम अर्थात् पैसा, ठाम अर्थात् रहने के मकान और जगह। बस, यह है न पूँजी घर की ? हाम, दाम और ठाम। हाम तो पुरुषार्थ अपना करे, वह हाम है। दाम अपनी लक्ष्मी, ठाम अपना असंख्यप्रदेशी क्षेत्र। यहाँ हाम, दाम और ठाम है। आहाहा! भारी कठिन! लोगों को (ऐसा लगे) ऐसा धर्म भारी महँगा। महँगा नहीं परन्तु तू मान बैठा है। तेरे घर की चीज़ है। घर में से निकालना है, कहीं बाहर से लाना नहीं है। परन्तु इसे घर की कीमत नहीं। उस परघर की कीमत में भटका है। आहाहा!

और **निर्भया अर्थात् जिसमें किसी प्रकार का भय नहीं है,...** भय किसका ? आहाहा! सोने की ईंट थी न ? आता है न गोरख का ? मछन्दर। 'चेत मछन्दर गोरख आया।' मछन्दर को एक सोने की ईंट मिल गयी थी कहीं से। झोले में रखा करता था। फिर जहाँ-जहाँ जाये वहाँ, दस्त के लिये जाये वहाँ। ऐ गोरख! ध्यान रखना इसका। ध्यान रखना। एक बार दस्त के लिये गया तो डाल दी। गोरख! ध्यान रखना। अपने कोई... यह भय कुएँ में डाल दिया है। भाई! वह अब अपने को अवरोधक नहीं है। 'चेत मछन्दर गोरख आयो।' यह करके बैठा। ईंट एक आयी सोने की पकड़ी ... हीरा और माणिक पकड़े। यह भय छोड़ दिया है। गोरख! यहाँ तो भय नहीं न रास्ते में ? भय नहीं। भय तो डाल दिया, साहेब! क्या किया ? भय कुँए में डाल दिया। निर्भय है चलो, अपने चलो। ऐसा आता है। गुरु को शिष्य समझाता था। गुरु जरा लोभ में पड़ गया था। आहाहा!

उसमें भी आता है न अपने ? आत्मानुशासन। कर्ता कौन ? गुणभद्राचार्य। गुणभद्राचार्य का। शुभचन्द्राचार्य। उनके भाई का था न ? भाई को ऐसा हो गया। उनके भाई को लब्धि प्रगट हुई थी। एक रसायन। रसायन तैयार किया। लो, यह थोड़ी रसायन। अर र! इतने वर्ष की मेरी मेहनत ? यह किया था तूने साधु होकर ? रसायन के लिये चमत्कार करने के लिये ? इसके लिये तेरा साधु ? छोड़ तेरा रसायन। तुंबड़ी भरकर रसायन लाया बेचारा। लोहे को स्पर्श करे तो सोना हो जाये। ऐसा रस-रस। ऐसा कुछ किया होगा। वह कहे, अर र र! इतनी वर्ष की (मेहनत गयी)। अब छोड़ न तेरी। पत्थर पर पेशाब की धारा की (और कहा), ले, यह सोना ले। पकड़। कितना लेना है तुझे। परन्तु क्या है यह ? कहाँ गया तू ? भूलकर यहाँ भटकने आया ? कोई चमत्कार चाहिए है और धूल चाहिए है और यह चाहिए

है। आत्मा चैतन्य चमत्कार प्रभु है। उसके चमत्कार के गीत गाता नहीं और यह क्या गाने तेरे रस के? रसकूप्पी... रसकूप्पी... आहाहा! शुभचन्द्राचार्य का (आता है)। समझ में आया? आहाहा! भय ही नहीं, यहाँ कहते हैं।

जिसमें निराशभावा अर्थात् किसीप्रकार के परद्रव्य की आशा का भाव नहीं है,... साधन परद्रव्य से नहीं, फिर परद्रव्य की आशा क्या? साधन तो अन्दर स्वद्रव्य का है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा ही स्वयं स्वरूप का साधन है। इसलिए पर के साधन में पर का कुछ साधन है नहीं। इसलिए उसकी आशा नहीं होती। **आशा तो किसी वस्तु की प्राप्ति न हो, उसकी लगी रहती है, परन्तु जहाँ परद्रव्य को अपना जाना ही नहीं...** निज स्वरूप के समक्ष परद्रव्य अपना माना नहीं। अपना भगवान निधान आनन्द और ज्ञान का अपना भाव, अपने रूप से जहाँ जाना, अनुभव किया। **परन्तु जहाँ परद्रव्य को अपना जाना ही नहीं और अपने स्वरूप की प्राप्ति हो गयी, तब कुछ प्राप्त करना शेष न रहा...** क्या प्राप्त करना? प्राप्त करना था, उसे आत्मा प्राप्त कर गया। अपनी चीज़ आनन्दस्वरूप है, उसे श्रद्धा-ज्ञान में प्राप्त कर गया। स्थिरता में प्राप्त करता है। उसे करना क्या है? **फिर किसकी आशा हो? ऐसी प्रव्रज्या...** आनन्द में डोलते सन्तों की होती है, कहते हैं। आहाहा! यह तो कीमत घटा डाली।

जैनदीक्षा ऐसी है। अन्यमत में स्व-पर द्रव्य का भेदज्ञान नहीं है,... देखो! क्या कहा? राग से और पर का अस्तित्व माना हो और अपना अस्तित्व भिन्न माना हो तो उसे पर से भेदज्ञान हो। परन्तु पर और स्व की कुछ भेदज्ञान की खबर नहीं, इसलिए पर में ही अपनापना माना हो, उसे ऐसी दीक्षा नहीं हो सकती, ऐसा कहते हैं। **अन्यमत में स्व-पर द्रव्य का भेदज्ञान नहीं है,...** अन्यमत में स्वरूप द्रव्य का और भेदज्ञान नहीं है। आत्मा अर्थात् अपना स्वरूप क्या है, उसका भान नहीं और पर रागादि से भेदज्ञान नहीं। रागादि, शरीर से भिन्न नहीं पड़ा; इसलिए उसे ऐसी प्रव्रज्या नहीं होती। **उनके इस प्रकार दीक्षा कहाँ से हो।** ऐसी दीक्षा जिसने दो द्रव्य माने हों, विकार-अविकार ऐसे दो तत्त्व माने हों, उसमें निजस्वरूप विकाररहित जाना हो, विकार मेरा नहींऐसा अनुभव किया हो, उसे प्रव्रज्या स्थिरता की होती है। परन्तु जिसे अभी स्व-पर का भान नहीं। स्व में क्या ताकत है, पर में क्या है? मुझसे भिन्न चीज़ (क्या है)? उसे भेदज्ञान न हो तो उसे दीक्षा और प्रव्रज्या नहीं होती। आहाहा! देखो न!

गाथा-५१

आगे दीक्षा का बाह्यस्वरूप कहते हैं –

जहजायरूवसरिसा अवलंबियभुय णिराउहा संता।
परकियणिलयणिवासा पव्वज्जा एरिसा भणिया।।५१।।

यथाजातरूपसदृशी अवलंबितभुजा निरायुधा शांता।
परकृतनिलयनिवासा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता।।५१।।

है यथाजात स्वरूप–सम लम्बित भुजा आयुध बिना।
पर–कृत वसतिका–वास शान्त स्वभावमय है प्रव्रज्या।।५१।।

अर्थ – कैसी है प्रव्रज्या ? यथाजातरूपसदृशी अर्थात् जैसा जन्म होते ही बालक का नग्नरूप होता है वैसा ही नग्नरूप उसमें है। अवलम्बितभुजा अर्थात् जिसमें भुजा लम्बायमान की है, जिसमें बाहुल्य अपेक्षा कायोत्सर्ग खड़ा रहना होता है, निरायुधा अर्थात् आयुधों से रहित है, शान्ता अर्थात् जिसमें अंग–उपांग के विकार रहित शान्तमुद्रा होती है। परकृतनिलयनिवासा अर्थात् जिसमें दूसरे का बनाया निलय जो वस्तिका आदि उसमें निवास होता है, जिसमें अपने को कृत, कारित, अनुमोदना, मन, वचन, काय द्वारा दोष न लगा हो ऐसी दूसरे की बनाई हुई वस्तिका आदि में रहना होता है ऐसी प्रव्रज्या कही है।

भावार्थ – अन्यमती कई लोग बाह्य में वस्त्रादिक रखते हैं, कई आयुध रखते हैं, कई सुख के लिए आसन चलाचल रखते हैं, कई उपाश्रय आदि रहने का निवास बनाकर उसमें रहते हैं और अपने को दीक्षासहित मानते हैं, उनके भेषमात्र है, जैनदीक्षा तो जैसी कही वैसी ही है।।५१।।

गाथा-५१ पर प्रवचन

आगे दीक्षा का बाह्यस्वरूप कहते हैं –

जहजायरूवसरिसा अवलंबियभुय णिराउहा संता।
परकियणिलयणिवासा पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।५१।।

ओहोहो! '**एरिसा**' सब जगह आता है, हों! ओहोहो! एक अक्षर भी अधिक नहीं डालना। उसके बदले प्रत्येक गाथा में यह डालते हैं। इसका जोर है। ऐसी दीक्षा होती है, ऐसा मुनिपना होता है, ऐसी प्रव्रज्या होती है। बाकी सब प्रव्रज्या माननेवाले मूढ़ हैं, ऐसा कहते हैं। **कैसी है प्रव्रज्या? यथाजातरूपसदृशी अर्थात् जैसा जन्म होते ही बालक का नग्नरूप होता है, वैसा ही नग्नरूप उसमें है।** यथाजात। माता ने जन्म दिया, ऐसी उसकी दीक्षा होती है—नग्न। आहाहा! हल्के फूल जैसा। फूल ऐसा होगा? वनस्पति का फूल ऐसा होवे न? हल्के फूल जैसा। माता से जन्मा ऐसा नग्न शरीर। किसे कहाँ रखना, किसे कहाँ रखना, किसके पास सम्हाल। कुछ नहीं होता। आत्मा भगवान है, उसकी सम्हाल करते हैं। शरीर की नग्नदशा हो गयी है। '**जहजायरूवसरिसा**' सरीखा, ऐसा लिया है न? **जन्म होते ही बालक का नग्नरूप होता है, वैसा ही नग्नरूप उसमें है।** उपमा दी है न? उपमा दी है। जैसा जन्मा हुआ बालक होता है, ऐसी जिनकी नग्नदशा होती है। आहाहा! २५-२५ वर्ष के युवक राजकुमार, यह महल और मकान, हीरा और माणिक जड़े हुए महल छोड़कर-त्यागकर चले जाते हैं। अरे! हमारा जहाँ है, वहाँ यह कहाँ है? यह घर कैसा और महल कैसा? स्त्री कैसी? आहाहा!

'**जहजायरूवसरिसा**' उपमा दी है न? जैसा बालक को माता जन्म देती है, ऐसी तो जिनकी—मुनि की नग्नदशा होती है। अनादि का स्वरूप ऐसा है। यह वस्त्र-पात्र मुनि को मनवाकर विपरीत दृष्टि-मिथ्यात्व के सेवन किया है। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर, वीतराग ने अरिहन्ता 'निममं' आया था। समयसार में अन्त में। भगवान ने तो बाह्य वेश नग्नपना, उसकी ममता छोड़कर अन्तर चारित्र में आरोहण किया है। अन्तिम गाथाओं में। अरिहन्त ने ऐसा किया है, भाई! जिनकी मुक्ति निश्चित है। तीर्थंकर को तो उस भव में मुक्ति निश्चित है, तथापि नग्नपने के वेश का अहंपना छोड़कर स्वरूप में स्थिर हुए थे। आहाहा! नग्नपना, वह कोई मुक्ति का कारण नहीं, परन्तु नग्नपना दिखे बिना रहता नहीं। परन्तु कोई वापस ऐसा कहते है कि नग्नपना मुक्ति का कारण नहीं, तो फिर चाहे जो वेश हो और मुक्ति हो और साधु हो। ऐसा नहीं होता। गजब! साधु हो,

उसकी दशा नग्न हो जाती है। एकदम नग्नदशा। माता का... देखो न! उपमा दी है।

बालक आठ वर्ष का जैसा जन्मा और जैसे निर्विकारी दिखता है, ऐसी जिनकी २५-२५ वर्ष की उम्र और राजकुमार हो, जंगल में चले जाये। मोरपिच्छी और कमण्डल (हाथ में)... आहाहा! मानो चलते सिद्ध! आनन्द के घोलन में अकेले जंगल में बसना। जहाँ किसी का साथ नहीं। साथ है वह अपने पास अपने आनन्द का है। आहाहा! ऐसी अन्तर की दशा, उन्हें बाह्य की नग्नदशा हो जाती है, हो जाती है और हो जाती है। नग्नदशा न हो और ऐसा मान बैठे कि हमें मुनिपना हो गया है (तो वह झूठा है)। तब कोई कहे, ऐसा सब जोर किसका बाहर का दिया? बाहर का जोर नहीं, यह वस्तु की स्थिति है। समझ में आया? इसलिए पहला बोल यह दिया है, देखो! **'जहजायरूवसरिसा'** जैसे बालक जन्मा हो, और वैसा ही उनका स्वरूप नग्नमुनि। आहाहा! एकदम कोरी चमड़ी, ऊपर वस्त्र का धागा नहीं। निर्विकारी मुद्रा जिसकी दिखाई दे। जिसे देखने से दूसरे को ऐसा लगे कि आहाहा! निर्विकार... निर्विकार... निर्विकार... सब इन्द्रियाँ शिथिल होकर वैराग्य की झलक देती हो, ऐसी जिसकी दशा हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **'सरिसा'** कहकर उपमा यह दी है, देखो न! जैसा बालक जन्मे, वैसी दशा हो गयी होती है। अन्तर में वीतरागता ऊपर कही वह। ऊपर यह पहले कहा। पश्चात् यह लिया। अन्दर में पहले वह (वीतरागता) होवे तो यह कहलाये। वह पहला है, वह न हो और फिर अकेला नग्न हो तो उसे कुछ है नहीं। समझ में आया?

अवलम्बितभुजा अर्थात् जिसमें भुजा लम्बायमान की है, जिसमें बाहुल्य अपेक्षा कायोत्सर्ग खड़ा रहना होता है,... ऐसे ध्यान में ही रहते हैं, ऐसा कहना है। ऐसी दशा। हाथ में कुछ काम करना बाकी नहीं। अन्दर में स्थिर हो गये हैं। ऐसी दशा को, ऐसी भाववाली नग्नदशा को भगवान ने मुनिपना और प्रव्रज्या कहा है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१७१, गाथा-५१ से ५४, रविवार, पौष शुक्ल १४, दिनांक १०-०१-१९७१

यह बोधपाहुड़ की ५१वीं गाथा। प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा अर्थात् साधुपना कैसा होता है, उसे जानना पड़ेगा या नहीं ? अरिहन्तदेव को पहले बतलाया। धर्म को पहले बतलाया। अब यह गुरु कैसे होते हैं ? प्रव्रज्या चारित्र। बड़ी गड़बड़ उठी है न, इसलिए यह चार (बातें कही) स्पष्टीकरण-निश्चितता करते हैं।

मुमुक्षु : स्पष्टीकरण करने की बहुत आवश्यकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (कोई) ऐसा कहे साधुपने का हमारे क्या काम ? परन्तु साधुपना कैसा होता है, उसे जानना चाहिए न ? चारित्रपर्याय कैसी होती है। आत्मा का ज्ञान सम्यग्दर्शनसहित अन्तर का आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, उसकी अन्तर में सम्यग्दर्शनरूप श्रद्धा, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन अनुभव, इसका नाम सम्यग्दर्शन। तदुपरान्त चारित्र प्रव्रज्या कैसा होता है, उसकी व्याख्या करते हैं।

कैसी है प्रव्रज्या ? यथाजातरूपसदृशी अर्थात् जैसा जन्म होते ही बालक का नग्नरूप होता है, वैसा ही नग्नरूप उसमें है। आहाहा ! जैसा माता से जन्मा, ऐसा उनका शरीर का नग्नपना होता है। वस्त्र का धागा नहीं होता, पात्र नहीं होता। ऐसा अन्तर में गुण के भानसहित ऐसी जिनकी नग्नदशा होती है। जयन्तीभाई ! जैन में ऐसे साधु होते हैं, ऐसा कहते हैं। यह सब वस्त्र और पात्र रखकर साधु मानते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं—ऐसा कहते हैं।

और, **अवलम्बितभुजा अर्थात् जिसमें भुजा लम्बायमान की है,...** ओहोहो ! साधु तो अत्यन्त वीतरागमूर्ति हैं। उन्हें तो ध्यान ही करना होता है, ऐसा कहते हैं। हाथ लम्बे करके ध्यान में ही खड़े होते हैं। उन्हें दूसरा क्या करना हो ? आहाहा ! बाहुल्यता से प्राय: बहुत करके। **अवलम्बितभुजा...** आहाहा ! जिन्हें आत्मा आनन्दरूप से साधना है और जिनकी चारित्र प्रव्रज्या दशा प्रगट हुई है, उन्हें दूसरा क्या होगा ? भुजा ऐसी लम्बी करके ध्यान में-आनन्द में खड़े होते हैं। देखो ! यह प्रव्रज्या।

मुमुक्षु : शिष्य को समझावे कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझाना था कब वहाँ ? वह तो वाणी आती है, विकल्प हो और आयी तो आयी। उसमें वह वस्तु कहाँ है। मुनि को करने का तो यह है। आहाहा! अपना आत्मा पूर्ण आनन्द का धाम, वीतरागस्वभावी, उसे जिसने अन्दर में साधा है, और जिसे संसार का किनारा नजदीक हो गया है, मोक्ष के किनारे ऐसे निकट आ गये हैं। अल्प काल में केवल (ज्ञान) लेंगे, ऐसी दशा मुनि की होती है। आहाहा!

कहते हैं, **जिसमें बाहुल्य अपेक्षा कायोत्सर्ग खड़ा रहना होता है,...** ऐसी प्रव्रज्या मुनिपने की। वीतरागमार्ग में केवली ने ऐसा कहा है। परमेश्वर वीतरागदेव ने ऐसा कहा है। यह सब गड़बड़ हो गयी। **निरायुधा...** हाथ में दण्ड रखे। दण्ड-आयुध। यह उन्हें नहीं होता, ऐसा कहते हैं। कहने का आशय यह है। हाथ में दण्ड रखते हैं न बड़ा ? उसे आयुध कहते हैं। यहाँ कहने का आशय यह है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें लकड़ी होती ही नहीं। आहाहा! रखी थी या नहीं लकड़ी ? यह दो व्यक्ति रहे।

मुमुक्षु : उसमें वापस भगवान के चित्र बनावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे... अरे! बापू! चारित्र कैसी दशा! आहाहा! धन्य अवतार है! जिन्हें संसार एकाध भव रहा होता है, ऐसी उनकी दशा होती है। क्लेशित संसार, दुःखरूप संसार, चार गति दुःखरूप है। उसका जहाँ अन्त आया है, ऐसी चारित्रदशा होती है। आहाहा! वीतरागस्वभाव में झूलते, अतीन्द्रिय आनन्द में मजे लेते हैं, कहते हैं कि उन्हें दण्ड आदि कोई आयुध नहीं होता। कहो, समझ में आया ? आहाहा!....

यहाँ तो चारित्र की व्याख्या चलती है। आहाहा! शरीर चाहे तो श्वास चलता हो, दम चलता हो... आहाहा! मुनि को, परन्तु जिन्हें शरीर में अंश भी ममता नहीं। आहाहा! शरीर से भिन्न नारियल का गोला, जैसे पृथक् होता है, ऐसा अन्दर भिन्न (पड़ गया है)। शरीर के स्पर्श का कुछ सम्बन्ध ही नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार से चैतन्य की साधक दशा जहाँ चारित्र की प्रगट हुई है, कहते हैं कि उन्हें आयुध में दण्ड आदि नहीं होते। हाथ में बड़ी लकड़ी रखते हैं न ? वह साधु को नहीं होता, वस्त्र नहीं होता, पात्र नहीं होता और दण्ड भी नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी दशा में जंगल में सन्त रहते हैं।

शान्ता अर्थात् जिसमें अंग-उपांग के विकार रहित शान्तमुद्रा होती है। अंग और उपांग में कहीं विकृत अवस्था नहीं दिखती। जैसा बालक निर्विकारी दिखता है, ऐसे जिनके अंग और उपांग निर्विकारी शान्त... शान्त... शान्त (है)। अन्तर में शान्ति बहुत जमकर उग्र हो गयी है। शरीर भी ऐसे शान्त... शान्त दिखता है। आहाहा! शान्त अंग और उपांग, ऐसा। पूरा शरीर और उपांग हाथ-पैर आदि। चेष्टा में कहीं विकार नहीं दिखता।

और **परकृतनिलयनिवासा...** यह आया, भाई! रात्रि में कहा था। अभी बहुत चलता है। साधु के लिये बस्ती चाहिए। नग्नमुनि के लिये, हों! श्वेताम्बरादि तो मुनि है ही नहीं साधु ही नहीं; इसलिए प्रश्न है नहीं। परन्तु दिगम्बर मुनियों के लिये कोई बस्ती चाहिए, ऐसा चाहिए-ऐसा पत्रों में बहुत आता है। **परकृतनिलयनिवासा अर्थात् जिसमें दूसरे का बनाया निलय जो वस्तिका आदि उसमें निवास होता है,...** श्रावक ने बनाये हुए घर में स्वयं के लिये। साधु के लिये नहीं। ऐसा तो कहे साधु के लिये बनाया हो तो उसने किया ऐसा नहीं। यह नहीं। यह कहते हैं, देखो! सर्प-सर्प रहते हैं न? सर्प का दृष्टान्त है। पण्डितजी! उसमें सर्प का दृष्टान्त है। सर्प। जैसे सर्प किसी का बिल बनाया हुआ हो और उसमें जाये, ऐसी बात है। चूहे ने बिल बनाया हो, उसमें सर्प जाये। अपने लिये बनाया नहीं हो। बिल उसके—सर्प के लिये कौन बनावे? उसके लिये **दूसरे का बनाया निलय जो वस्तिका आदि...** कमरा, बस्तिका ऐसा कोई भी स्थान, उसमें नहीं होता।

जिसमें अपने को कृत, कारित, अनुमोदना, मन, वचन, काय द्वारा दोष न लगा हो... देखो! मन, वचन और काया, करना, कराना और अनुमोदन करना। **दोष न लगा हो, ऐसी दूसरे की बनाई हुई वस्तिका आदि में रहना होता है, ऐसी प्रव्रज्या कही है।** ऐसा तो पर ने ही बनाया हो। यहाँ तो कहते हैं, किया, कराया और अनुमोदन किया हुआ न हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? साधु के लिये रहने के मकान बनावे, कमरे बनावे। बहुत जंगल में नहीं रह सके। वह सब उनके लिये बनाया हुआ नहीं चलता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : श्रावक के लिये प्रौषध बनावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रावक नाम दे प्रौषध का। है तो साधु के लिये। प्रौषध नाम दे। हमारे बहुत बड़ा विवाद हुआ था। (संवत्) १९६८ में। ६८ के वर्ष में यह बड़ा प्रश्न उठा

था। साधु के लिये बनाया हुआ उपाश्रय साधु प्रयोग करे तो निर्ग्रन्थपने से भ्रष्ट होता है। ऐसी ६८ के वर्ष में बड़ी चर्चा चली। संवत् १९६८। कितने वर्ष हुए ? ५९। ५९ वर्ष हुए। हमने सुना हुआ नहीं। दीक्षा लेने का भाव हुआ। गुरु के पास तीन महीने घर के विषय में रखकर रहे थे। किसी का मकान गृहस्थ था, उसके घर में मैं तीन महीने यहाँ भोजन करूँगा। पैसा तुमको देना है। उपाश्रय के सामने एक मकान था। 'पालियाद-पालियाद' वे बहिन बेचारी अच्छी थी। होशियार। एक बार आहार करता। तीन महीने वहाँ पैसे देकर रहे। वहाँ पढ़ते थे तीन महीने पढ़ते थे। उसमें यह बात आयी। पालेज जाने को निकला, वहाँ बीच में बोटाद आया। वहाँ गुलाबचन्द गाँधी राजकोट के थे। गुलाबचन्द गाँधी मिले। वे साधु थे। वे कहें, साधु के लिये उपाश्रय बनावे तो साधु नहीं। ... मैंने कहा, यह क्या ? हमने कभी सुना हुआ नहीं। रतिभाई ! पहिचानते होंगे तुम ? मूली में था एक बार चौमासा, परन्तु बहुत वर्ष (पहले की) बात है। (संवत्) १९७० में तो गुजर गये। ७० में तो भाद्र शुक्ल चौथ को राजकोट में गुजर गये। परन्तु मूली में थे। बहुत कड़क थे। भाषा भी कड़क थी। साधु को बगुला-बगुली रूप से बुलावे। सफेद कपड़े पहना न, इसलिए बगुला-बगुली साधुडा (ऐसा कहे)। ऐई ! खबर थी या नहीं तुम्हें ? ६९ में 'वढवाण' में चातुर्मास था। सुन्दरवोरा के उपाश्रय के सामने। यह मैंने पहले सुना। साधु के लिये उपाश्रय बनाया हुआ प्रयोग करे तो साधु नहीं। यह क्या ? अपने को कुछ खबर नहीं। बहुत चर्चा चली। चलो भाई महाराज के पास। महाराज क्या कहते हैं ? गाड़ी जोतकर बहुत गये। भगवानजीभाई थे न ? कच्छी। मूलीवाले। मूलीवाले। रतिभाई नहीं जानते होंगे। भगवानजीभाई थे। भगवानजी मूलीवाले। कच्छी-कच्छी। पीछे रहते थे। बहुत वर्ष हुए। सब गये, पूछने गये। यह क्या कहते हैं वे ? साधु के लिये बनाया हुआ... ऐई ! फिर तीखे हो गये। मूलचन्दजी हमारे, हों ! ऐई ! .... कौन ऐसा कहता है ? वह चाहे जो हो परन्तु इसका अर्थ क्या है, कहा इसका ? यह साधारण दोष कहलाता है, अमुक कहलाता है, अमुक कहलाता है। उसमें साधुपना नहीं जाता। उन्होंने तो ऐसा कहा।

पश्चात् मैंने १९६९ में प्रश्न किया। अन्तिम चातुर्मास था। महाराज ! यह साधु के लिये मकान बनाया हो, उसे प्रयोग करे तो नव कोटि में कौन सी कोटि टूटती है। करना, कराना, अनुमोदन, मन, वचन और काया। १९६९ की बात है। दीक्षा लेने से पहले। कहा,

इसका क्या ? हीराजी महाराज बेचारे भद्रिक थे। उन्होंने ऐसा कहा कि खुशालभाई ने तुम्हारे लिये मकान बनाया हो... ऐसा दृष्टान्त उन्होंने दिया। तुम उसे प्रयोग करो। उसमें तुम्हारे क्या दोष है ? ऐसा दृष्टान्त दिया। हीराजी महाराज, ऐसा जाने न, परिवार को जाने।

देखो ! भाई ! अपने को जँचता नहीं। उसके लिये बनाया हो और प्रयोग करे तो उसमें से करना... भले ही करना-किया नहीं परन्तु उसे अनुमोदन का दोष लगता है। कोटि टूटती है। उसे नव कोटि नहीं रहती। पाप के त्याग की नव कोटि नहीं रहती। यह तो १९६९ की बात है। दीक्षा लेने से पहले की बात है। समझ में आया ? यह मूलचन्दजी थोड़े तप गये, तीखे हो गये। उन्हें लगा, यह मुश्किल से दीक्षा लेता है, उसमें और यह लकड़ी कहाँ डाली ?

यहाँ तो निवास। उनके लिये कमरा हो। वस्त्र-पात्र तो होते नहीं। परन्तु कमरा कहीं बनावे, कहीं उन्हें सोने का स्थान बनावे, ऐसे मकान साधु को (नहीं होते)।

मुमुक्षु : मकान तो बनाना चाहिए न, नहीं तो आहार कहाँ करे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहार करे कहाँ ? जंगल में से आकर हाथ में लेकर आहार करके चले जाते हैं। आहार कहाँ करना ? पात्र है तो लेकर जाये ? पात्र लेकर माँगने जाये, वह तो भिखारी कहलाता है। वह साधु नहीं होता। भिक्षुक अर्थात् कि एकदम जिसके लिये बनाया हुआ नहीं। निर्दोष आहार (के लिये) जहाँ खड़े होकर, खड़े रहे इतना ले, उसका नाम भिक्षु। भिक्षा माँगे, वह भिक्षु ? याचना करना, वह भिक्षु है ? वह तो भिखारी है। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया न ? याचना परीषह का अर्थ माँगना, वह परीषह नहीं है। माँगे बिना मिले, इसका नाम परीषह है। आहाहा ! पण्डितजी ! ऐसा मार्ग। इसे अभी खबर नहीं। साधुपद कैसा होता है, इसकी खबर नहीं होती। तो धर्म कैसे होगा और धर्मी की आगे बढ़कर कैसी दशा होती है, इसकी खबर नहीं होती, उसे धर्म किस प्रकार होगा ? जयन्तीभाई !

मन, वचन और काया से करना, कराना और अनुमोदन का दोष न लगा हो। आहाहा ! ऐसा वस्तिका दोष न हो। पाठ में रखा है, देखो ! '**परकियणिलयणिवासा**' ऐसा निकालते हैं कि वह तो परकृत है। श्रावक ने स्वयं के लिये किया है। साधु ने कहाँ किया है ? परन्तु किया उसके लिये है...

मुमुक्षु : किसी ने किया हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके लिये किया हो। उसके लिये करते हैं न अभी तो? सब उसके लिये करते हैं रहने का। वह स्वयं के लिये किया हो। अपने परिवार के लिये। उसमें से मकान में थोड़ी जगह खाली हो, शून्य घर हो। उसमें रहे।

मुमुक्षु : उसे जाने का दो-चार दिन में हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे गाँव में तो थोड़ा जाने का होता है। उन्हें जंगल में ही (रहना) होता है।

भावार्थ – अन्यमती कई लोग बाह्य में वस्त्रादिक रखते हैं,... देखो! वस्त्र, पात्र, दण्ड रखते हैं। **कई आयुध रखते हैं,...** दण्ड आदि। **सुख के लिए आसन चलाचल रखते हैं,...** पाटिया रखे यह सब। यहाँ से यहाँ ले जाये और यहाँ से यहाँ से पाटिया ले जाये। **कई उपाश्रय आदि रहने का निवास बनाकर उसमें रहते हैं...** लो! इसमें उपाश्रय का नाम दिया। **और अपने को दीक्षासहित मानते हैं, उनके भेषमात्र है,...** साधु नहीं, चारित्र नहीं। समझ में आया? आहाहा!

जैनदीक्षा तो जैसी कही वैसी ही है। वीतराग की दीक्षा ऐसी है। राजकोट में बहुत खलबलाहट होती थी। वे साधु रहे थे न? उनके भाई के मकान में रहे थे। गुलाबचन्दजी। अमृतलाल। उसके भानेज अमृतलाल। नहीं? कैसे कहलाते हैं? जसाणी। उनके मकान में रहते थे। इस ओर का मकान जालीवाला है, उस ओर वहाँ रहते थे। वहाँ गुजर गये। उस ओर घुसने का मकान है। वहाँ गुजर गये। हमने वहाँ देखा है। वहाँ रहते थे। वहाँ गुजर गये। वह सख्त कहे, हों! बहुत कहे।

मुमुक्षु : आयुष्य वहाँ पूरा हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ ही देह छूट गया। प्रतिक्रमण करते हुए देह छूट गया।

कहते हैं, **अपने को दीक्षासहित मानते हैं,...** वह दीक्षा नहीं कहलाती। जैन की दीक्षा तो नग्न मुनि... आहाहा! हल्के... हल्के... हल्के... एक मोरपिच्छी और कमण्डल-दो धर्म के उपकरणरूप से होते हैं। ऐसा चारित्रपना है। इससे विरुद्ध माने तो उसकी श्रद्धा मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। उसे जैन की श्रद्धा नहीं है। ऐसा कहते हैं।

गाथा-५२

आगे फिर कहते हैं –

उवसमखमदमजुत्ता सरीरसंकारवज्जिया रुक्खा।
मयरायदोसरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया।।५२।।

उपशमक्षमदमयुक्ता शरीरसंस्कार वर्जिता रूक्षा।
मदरागदोषरहिता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता।।५२।।

उपशम क्षमा दम–युक्त तन संस्कार–वर्जित रूक्ष है।
मद–राग–दोष–विहीन ऐसी प्रव्रज्या जिन–कथित है।।५२।।

अर्थ – कैसी है प्रव्रज्या? उपशमक्षमदमयुक्ता अर्थात् उपशम तो मोहकर्म के उदय का अभावरूप शान्तपरिणाम और क्षमा अर्थात् क्रोध का अभावरूप उत्तमक्षमा तथा दम अर्थात् इन्द्रियों को विषयों में नहीं प्रवर्ताना, इन भावों से युक्त है, शरीरसंस्कारवर्जिता अर्थात् स्नानादि द्वारा शरीर को सजाना इससे रहित है, जिसमें रूक्ष अर्थात् तेल आदि का मर्दन शरीर के नहीं है। मद, राग, द्वेष रहित है – इस प्रकार प्रव्रज्या कही है।

भावार्थ – अन्यमत के भेषी क्रोधादिरूप परिणमते हैं, शरीर को सजाकर सुन्दर रखते हैं, इन्द्रियों के विषयों का सेवन करते हैं और अपने को दीक्षासहित मानते हैं, वे तो गृहस्थ के समान हैं, अतीत (यति) कहलाकर उलटे मिथ्यात्व को दृढ़ करते हैं; जैनदीक्षा इस प्रकार है, वही सत्यार्थ है, इसको अंगीकार करते हैं, वे ही सच्चे अतीत (यति) हैं।।५२।।

गाथा-५२ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं –

उवसमखमदमजुत्ता सरीरसंकारवज्जिया रुक्खा।
मयरायदोसरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया।।५२।।

आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य प्रत्येक गाथा में (कहते हैं), प्रव्रज्या भगवान ने ऐसी कही है, प्रभु! तू उसे पहिचान। समझ कर। इसके बिना प्रव्रज्या-चारित्र नहीं हो सकता। आहाहा!

अर्थ – कैसी है प्रव्रज्या ? उपशमक्षमदमयुक्ता अर्थात् उपशम तो मोहकर्म के उदय का अभावरूप... शान्त परिणाम। जिसके तीन कषाय तो नाश होकर शान्तरस चैतन्य का शान्त... शान्त... शान्त... शीतलरस आत्मा का शान्त अकषाय है, वह जिसे प्रगट हुआ है। यह कषाय अग्नि से जलकर राग और पुण्य-पाप से रहता है। समझ में आया? शुभ और अशुभराग उस कषायअग्नि से जीव जल रहे हैं। शान्ति... शान्ति... शान्ति... देखे तो उसे खबर पड़े कि यह कषाय भट्ठी-अग्नि है। जलता है। शुभ-अशुभभाव, पुण्य-पाप का भाव, शुभ-अशुभभाव वह अग्नि की भाँति जलता है। आहाहा! यह दुकान में बैठे हों और मजा मानता हो। यह कहते हैं वह जलता है, अग्नि में सुलगता है, उसका इसे भान नहीं है। दुकान में बैठा हो और लड़के को कहता हो कि बेटा! जाओ अमुक करो, अमुक करो। आज पचास हजार की आमदनी हुई है। अमुक करो। उसमें से थोड़ा सा ऐसा करो। उसमें कषायअग्नि सुलगी है, ऐसा कहते हैं। छाती में जलहल जलहल होता है। बारीकी से जले। परन्तु आत्मा की शान्ति की खबर नहीं, इसलिए इसे जलन की खबर नहीं पड़ती। समझ में आया? शान्त... शान्त... विकल्प उठे तो वहाँ दाह है। आहाहा! गुलाबचन्द गाँधी को देखा था न तुमने? परसोत्तमभाई! वे वहाँ थे न चातुर्मास में। शान्त। आहाहा!

मुनि, सम्यग्दर्शन में 'शान्तदशा तिनकी पहिचानी, करे कर जोड़ी बनारसी वन्दन।' आता है न? शान्त। सम्यग्दर्शन में भी शान्ति होती है। एक कषाय का अभाव (हुआ है)। इसलिए शान्त अकषायस्वभाव है, उसका अंश—झलक—नमूना तो उसे आ गया है। मुनि को तो... आहाहा! कहते हैं कि जिनकी मुद्रा शान्त होती है और अन्तर मोह के अभाव से जिनके शान्त परिणाम होते हैं।

क्षमा अर्थात् क्रोध का अभावरूप उत्तमक्षमा... मुनि को होता है न दस प्रकार का धर्म? उत्तम क्षमा का अर्थ यह कि आत्मा के अनुभव में आनन्द के स्वादसहित जिसे क्षमा (प्रगट हुई है)। बालक भी उससे खेल कर जाये, अपमान कर जाये तो भी शान्ति...

शान्ति। अरे! मैं तो निरपराधी अन्दर बैठा हूँ। यह कैसे करे? ऐसा कैसे करता है? ऐसा उन्हें नहीं होता।

श्रीकृष्ण वासुदेव जंगल में सो रहे हैं और बाण लगता है। सम्यग्दृष्टि हैं। श्रीकृष्ण वासुदेव, वन में—कौशम्बी वन में तृषा से इतना तड़पते हैं। कोई नहीं पानी पिलानेवाला। तीन खण्ड के धनी। वे सो रहे हैं और जहाँ बाण लगा और एकदम खड़े हुए, एकदम। अरे! कौन है? निरपराधी को बाण मारनेवाला है कौन? आवे न? विकल्प है न वहाँ? मैं जंगल में हूँ, निरपराधी हूँ। आहाहा! जिनकी आठ-आठ आठ हजार देव सेवा करते थे। चले गये। नवनीतभाई! आठ हजार।

मुमुक्षु : वे सेवक कैसे कि सामने खड़े न रहें वे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन खड़े रहते थे? यह तो पुण्य हो तो रहे। पुण्य बदले तो उसका सगा पुत्र और स्त्री भी चले जाते हैं। परन्तु उसमें है क्या? आहाहा!

'तरसे तडफड़े त्रिकमो नहि कोई पानीना पानार।' धर्मी जीव समकिती ज्ञानी धर्मात्मा है। आहाहा! उनके ही बड़े भाई ने बाण (चलाया)। उनके विरह में बारह वर्ष से बेचारा जंगल में रहता (था)। नहीं बदले जिनवर के वचन। वीतराग के वचन नहीं बदलते। भगवान ने पहले कहा था कि हे जरतकुमार! तेरे हाथ से श्रीकृष्ण की मृत्यु होगी। अरे! जिनके विरह में बारह-बारह वर्ष मैं रहा, अरे! कर्म आकर यह जोग मुझे? रोवे... रोवे... रोवे। वह तो कहे, कौन है निरपराधी को कि मुझे भी मारना है। यह मुनि को नहीं होता, ऐसा यहाँ तो सिद्ध करना है। निरपराधी को मारनेवाला इस जंगल में कौन है? खड़ा हो। मुनि को नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

क्रोध का अभावरूप उत्तमक्षमा... आहाहा! परन्तु यह तो जिसे जन्म-मरण टालना हो, उसे अच्छा लगे ऐसा है। यह जन्म-मरण के अवतार करने हों—देव के, पशु के, नारकी के। उसे यह अन्दर रुचे, ऐसा नहीं है। आहाहा! चौरासी के अवतार अकेले दुःख के दावानल के अवतार गये हैं। उन्हें शान्त करने के लिये ऐसी चारित्रदशा उपशमरस की होती है। यह दावानल का शान्तपना चारित्र से होता है। समझ में आया?

दम अर्थात् इन्द्रियों को विषयों में नहीं प्रवर्ताना,... दम-दम। अरे! अतीन्द्रिय

आनन्द के स्वाद में इन्द्रिय के विषय का उसे अभाव होता है। जहाँ अन्दर अमृतसागर उछलता है। मुनि को तो अमृतसागर भगवान आत्मा, अमृत से भरपूर, आनन्द का अमृतस्वरूप उसका है, उसमें डुबकी मारकर अमृत के स्वरूप में झूलते सन्तों को इन्द्रिय के विषय क्यों होंगे? आहाहा! समझ में आया? जिसे जन्म-मरण मिटाना हो, उसे यह स्थिति प्रगट करनी पड़ेगी। ऐसी पहले श्रद्धा तो करे। समझ में आया? अरे! चौरासी के अवतार में भटकते-रुलते रंक को कोई शरण नहीं है। शरण तो चैतन्यमूर्ति भगवान है। उसकी जिसने शरण ली, कहते हैं कि उसे चारित्र की दशा जहाँ उग्ररूप से शान्ति प्रगटी, कौन अपराध करनेवाला है, यह भी जिसे देखना नहीं। कौन है यह? एकान्त में बैठे शान्त को कौन पत्थर मारता है? शान्त... शान्त... ऐसी जिनकी चारित्रदशा है।

और कहते हैं, **शरीरसंस्कारवर्जिता...** कहते हैं। यह स्नान और दन्त धोवन आदि उन्हें नहीं होते। आता है न? अदन्त धोवन आदि प्रसिद्ध जो। अदन्त धोवन आदि प्रसिद्ध है। दाँत नहीं धोते। आहाहा! वे कहे, दाँत नहीं धोते। देखो! साधु गन्धाते हैं। पैसे चिपक जायें इतनी चिकने हैं। यह कहाँ साधु थे? साधु तो अन्दर सुगन्ध मारे शरीर में, दाँत न धोये तो भी। समझ में आया? ऐसा पुण्य इकट्ठा होता है। आता है न? समयसार नाटक में आता है। शरीर में सुगन्ध होती है। आता है एक जगह।

मुमुक्षु : चौदह गुणस्थान का कथन है न, उसमें आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें आता है। चौदह गुणस्थान में छठवें (काव्य) में होगा। छठवाँ है। ... वस्तु न ग्रहे। देखो! इसमें आया। ग्यारह प्रतिमा का है। यह श्रावक का। उनके लिये नहीं होता, ऐसा कहते हैं। साधु को अट्ठाईस मूलगुण है।

पंच महाव्रत पालै पंच समिति संभालै,
पंच इंद्री जीति भयौ भोगी चित चैनको।
षट आवश्यक क्रिया दर्वित भावित साधै,
प्रासुक धरामैं एक आसन है सैनको।।
मंजन न करै केश लुंचैन तन वस्त्र मुंचै,
त्यागै दंतवन पै सुगंध स्वास वैनको।

मंजन न करै केश लुंचै तन वस्त्र मुंचै,
त्यागै दंतवन पै सुगंध स्वास वैनको।।

ऐसा है। **दन्तवन नहीं करते, तो भी वचन और श्वास में सुगन्ध ही निकलती है,...** चारित्रदशा प्रगट हुई, वहाँ उनका पुण्य ऐसा होता है। आहाहा! समझ में आया? नग्नपने की निन्दा करते हैं न कितने ही? यह तेरापन्थी के साधु देखकर और दूसरे को देखकर।... यहाँ तो कहते हैं, नग्न मुनि दिगम्बर को इतनी शान्त दशा हो गयी है कि दन्तधोवन न करे तो भी उनके श्वास में और वाणी में सुगन्धता होती है। आहाहा! देखो! यह बनारसीदास कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसा बहुत सूक्ष्म चले?

पूज्य गुरुदेवश्री : चले। काल कौन सा था यहाँ? ... है, ऐई! ऐसा बहुत सूक्ष्म चलता है अभी? ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म कहाँ, वस्तु की स्थिति ही ऐसी है वहाँ। आरा— काल चौथा हो या पाँचवाँ हो, या दूसरा, तीसरा-चौथा हो, लो न। वस्तु तो यह है। आहाहा!

कहते हैं कि जिसे पाँच इन्द्रिय का दमन (होता है)। **शरीरसंस्कारवर्जिता अर्थात् स्नानादि द्वारा शरीर को सजाना इससे रहित है,...** आहाहा! शरीर के संवारने से रहित हैं। और **जिसमें रूक्ष अर्थात् तेल आदि का मर्दन शरीर के नहीं है।** देखो! यह तेल आता है न? मर्दन करे। साधु बहुत तेल रखे। अन्यमति के बाबा राख चोपड़ते हैं। यह राख नहीं चोपड़ते तो फिर तेल रखते हैं। बहुत प्रकार के तेल आते हैं। दो-दो, तीन-तीन प्रकार के तेल रखते हैं। ऐसा सुना था। कोई कहता था। रात्रि (में) चोपड़ दे। अब यह तो वस्त्र का बाप हुआ। साधु को तेलमर्दन नहीं होता। आहाहा! चिकनाहट शरीर को करे और हवा न लगे, इसलिए दु:ख न लगे, ऐसा उन्हें नहीं होता।

कहते हैं, **मद, राग, द्वेष रहित है...** जिन्हें अभिमान नहीं है। आहाहा! निर्मानी... निर्मानी पुतले हैं। **इस प्रकार प्रव्रज्या कही है।** लो! ऐसा चारित्रपना त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने, केवलज्ञानी ने इन्द्र और गणधरों के समक्ष में ऐसा वर्णन किया है। आहाहा! इस प्रकार से नहीं मानते, वे भगवान (को) भी नहीं मानते। जादवजीभाई! ऐसी चारित्रदशा है। **अन्यमत के भेषी क्रोधादिरूप परिणमते हैं,** विचारा हुआ न किया हो (इसलिए) क्लेश करे।

मुमुक्षु : ... साधु को आहार देना नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न।.... एक बार वहाँ गये थे। कौन सा गाँव? वीछिया के पास कहा न? वीछिया के पास नहीं वह। 'हालोडा' हालोडा... हालोडा। नहीं? यह अमरपुर नाम रखा है। वहाँ मन्दिरमार्गी के घर हैं। स्थानकवासी के कितने ही होंगे? परन्तु मन्दिरवासी कितने ही घर इन बेचरभाई का ससुराल। आहार लेने गये और उसमें उन लोगों को बहुत खबर नहीं, इसलिए ऐसे रखा होगा उसके ऊपर। रखा हुआ हो वह ले नहीं। साधु को लिये रखा हो न ऐसे ऊपर। हरितकाय के टुकड़े हों और फिर आहार न ले और फिर तीखे हो जायें ऐसे। ऐई! किसी दिन आयेंगे, गृहस्थ को ऐसा भान नहीं होता। परन्तु तू किसलिए ऐसा कहता है? ऐसा करे। परन्तु अपने ऐसा नहीं कहा जाता। तुम्हें मिला नहीं। उसे ... दो-चार वर्ष आये हों। इससे क्या? अपने तो समता रखनी चाहिए। तुम्हें आहार देने का भान नहीं। किस प्रकार से साधु को आहार देना। स्वयं को सुविधा न हुई उसकी सब जलन।

मुमुक्षु : घड़ीक में क्रोध चढ़ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखा न? तुम्हें तो सब खबर है।

शरीर को सजाकर सुन्दर रखते हैं,... यह विभूषा करे। मुँह धोवे, पैर धोवे, हाथ धोवे, शरीर धोवे। **इन्द्रियों के विषयों का सेवन करते हैं और अपने को दीक्षासहित मानते हैं, वे तो गृहस्थ के समान हैं,...** वे तो गृहस्थ हैं। **अतीत (यति) कहलाकर उलटे मिथ्यात्व को दृढ़ करते हैं;...** अतीत कहलाते हैं न? उनका किसी के साथ सम्बन्ध नहीं होता। वे तो यति हैं। उनके लिये बनाया हो, वह कब आयेगा....

मुमुक्षु : अतीत है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अतीत हैं न परन्तु यह तो वास्तविक अतीत है, ऐसा। अतीत अर्थात् सबसे छूट गया है, ऐसा। अनमेल हो गया है अतीत। राग से, द्वेष से, ऐसी सदोष क्रिया से अतीत है-दूर हो गया है। ऐसा अतीत नाम धरावे और उल्टा मिथ्यात्व दृढ़ करे, मिथ्यात्व दृढ़ करे। आहाहा!

जैनदीक्षा इस प्रकार है, वही सत्यार्थ है, इसको अंगीकार करते हैं, वे ही

सच्चे अतीत (यति) हैं। अतीत—अनमेल हो गये सबसे। उनके लिये बनाये हुए मकान से,... अनमेल... अनमेल... अनमेल... इसका नाम अतीत कहलाता है। बाबा अतीत नाम धरावे तो क्या हो गया?

गाथा-५३

आगे फिर कहते हैं -

विवरीयमूढभावा पणट्ठकम्मट्ठ णट्ठमिच्छत्ता।
सम्मत्तगुणविसुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया॥५३॥

विपरीतमूढभावा प्रणष्टकर्माष्टा नष्टमिथ्यात्वा।
सम्यक्त्वगुणविशुद्धा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता॥५३॥

सब मूढ भाव विहीन नहिं कर्माष्ट नहिं मिथ्यात्व भी।
सम्यक्त्व गुण से शुद्ध ऐसी प्रव्रज्या जिनवर कही॥५३॥

***अर्थ* - कैसी है प्रव्रज्या - कि जिसके मूढ़भाव, अज्ञानभाव विपरीत हुआ है अर्थात् दूर हो गया है। अन्यमती आत्मा का स्वरूप सर्वथा एकान्त से अनेक प्रकार भिन्न-भिन्न कहकर वाद करते हैं, उनके आत्मा के स्वरूप में मूढभाव है। जैन मुनियों के अनेकान्त से सिद्ध किया हुआ यथार्थ ज्ञान है, इसलिए मूढ़भाव नहीं है। जिसमें आठकर्म और मिथ्यात्वादि प्रणष्ट हो गये हैं, जैनदीक्षा में अतत्त्वार्थश्रद्धानरूप मिथ्यात्व का अभाव है, इसीलिए सम्यक्त्वनामक गुण द्वारा विशुद्ध है, निर्मल है, सम्यक्त्वसहित दीक्षा में दोष नहीं रहता है, इस प्रकार प्रव्रज्या कही है॥५३॥**

गाथा-५३ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं -

विवरीयमूढभावा पणट्ठकम्मट्ठ णट्ठमिच्छत्ता।
सम्मत्तगुणविसुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया॥५३॥

देखो ! वापस समकित लाये।

अर्थ – कैसी है प्रव्रज्या – कि जिसके मूढ़भाव, अज्ञानभाव विपरीत हुआ है अर्थात् दूर हो गया है। मूढ़भाव, अज्ञानभाव निकल गया है। मूढ़भाव हो और प्रव्रज्या हो, ऐसा नहीं हो सकता। विरुद्ध है। श्रद्धा का ठिकाना नहीं हो। किसे समकित कहना और किसे मिथ्यात्व कहना, कुछ भान नहीं हो और दीक्षा ले लेवे। **अन्यमती आत्मा का स्वरूप सर्वथा एकान्त से अनेक प्रकार भिन्न–भिन्न कहकर वाद करते हैं,...** कहो, कोई एकान्त नित्य माने, कोई एकान्त अनित्य माने। कहो, समझ में आया ? कोई एकान्त शुद्ध ही माने। द्रव्य से शुद्ध और पर्याय से शुद्ध माने। एकान्त अशुद्ध ही माने। पर्याय अशुद्ध और वस्तु भी अशुद्ध। यह सब एकान्त है। उसकी इसे खबर नहीं। ऐसे एकान्त माननेवाले मूढ़भाव सहित हैं, उन्हें चारित्र नहीं होता।

सर्वथा एकान्त से अनेक प्रकार भिन्न–भिन्न कहकर वाद करते हैं, उनके आत्मा के स्वरूप में मूढभाव है।

आत्मा भगवान ने, सर्वज्ञ परमेश्वर ने नित्यानित्य (कहा है)। अभी दिलीप ने प्रश्न किया था। भूतार्थ और नित्य में क्या अन्तर है ? भूतार्थ विद्यमान–विद्यमान–विद्यमान ज्ञायकभाव त्रिकाल। ऐसी अपेक्षा बतलानी है। है तो नित्य। परन्तु नित्य की अपेक्षा से कायम रहना इतना। यह तो अन्दर वस्तु विद्यमान भाव है। त्रिकाल ज्ञायकभाव। शुद्ध भाव ज्ञायक कहा है न वहाँ ? समझ में आया ? त्रिकाल ज्ञायकभाव शुद्ध, वह भूतार्थ है। उसी और उसी को त्रिकाल रहता है, इसलिए अपेक्षा से नित्य कहा है। भाव... भाव... समझ में आया ? त्रिकाल भाव को भूतार्थ कहते हैं। टिकने को नित्य कहते हैं। समझ में आया ? भूतार्थ आता है न ? **'भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो'** सम्यग्दृष्टि कब होगा ? विद्यमान त्रिकाली ज्ञायकभाव, परमानन्द भाव, शुद्ध ध्रुव भाव है, उसका आश्रय करे तो सम्यग्दर्शन हो। समझ में आया ? छठवीं गाथा में ज्ञायकभाव लिया है।

मुमुक्षु : वहाँ से तो शुरु की।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुरु की। **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।'** आया था न ? ज्ञायकभाव, ऐसा आया। उसमें भाव शब्द पड़ा है। चैतन्यभाव।

पूर्ण-पूर्ण चैतन्य की खान, स्वभाव सागर आनन्दादि ध्रुव पदार्थ अविनाशी। उसका आश्रय, ऐसे स्वरूप का आश्रय करे, उसे समकित (कहते हैं) । अज्ञानी को ऐसे तत्त्व की खबर नहीं होती। कोई पर्याय में भूल, कोई द्रव्य में भूल, कोई गुण में भूल, कोई एकान्त नित्य माने, कोई एकान्त अनित्य माने, एकान्त शुद्ध माने इत्यादि। अज्ञानियों को सच्ची श्रद्धा नहीं होती, इसलिए उन्हें प्रव्रज्या भी नहीं होती। भले नग्न होकर घूमे।

देखो! यह वस्तु ऐसी है। जिसे शान्ति और मुक्ति का मार्ग जानना हो तो। जिस मार्ग में जाना है, उस मार्ग का इसे ज्ञान तो करना पड़ेगा या नहीं पहले? धूल में भी चैन नहीं उसमें। समझ में आया? शरीर अच्छा हो, तब धर्म होगा नहीं और शरीर बिगड़े, तब फिर उलझ जाये। ऐई! कपूरभाई! कहाँ गये? कपूरभाई का कहता हूँ। शरीर अच्छा था, तब (कुछ किया नहीं), अब क्या करना? लड़के के पास जाना या अकेले रहना? लड़के के पास जाये तो थोड़ी पराधीनता होती है, अकेले रहे तो यह सब शरीर ठीक सा नहीं रहता। लड़का, लड़के की बहू, उन्हें स्वतन्त्र रहना हो, यह वृद्ध उनके पास बैठा हो। कपूरभाई! भाई को ऐसा होगा। बहू को ऐसा होगा पूरे दिन वृद्ध (घर में होता है) । हमें स्वतन्त्र किस प्रकार बैठना? किस प्रकार करना? यह कहे, वहाँ जायें तो ऐसा होगा, अकेले रहें तो ऐसा होगा। अब करना क्या? सरौता के बीच में सुपारी। सोनगढ़ रहना। बात सत्य। भाई ने कहा था—तुम्हारे भतीजे ने। चिमनभाई ने यह कहा था, अब क्या पड़े हो वहाँ? वहाँ अब कोई रहा नहीं। कौन जाने अभी कोई एक मकान है और अमुक है... मर जायेगा, तब कहाँ वहाँ मकान साथ में आयेगा। कहो, समझ में आया? आहाहा!

जिसे मूढ़भाव जरा भी न हो, ऐसा कहते हैं। कैसे होगा यह? स्वभाव कैसा होगा? आत्मा की शक्ति कैसी होगी? ऐसा स्वरूप भगवान वर्णन करते हैं। एक समय में पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्ति। ऐसी-ऐसी तो अनन्त शक्ति, और अनन्त शक्ति का एक समय में उनका निर्मल परिणमन। आहाहा! किसी भी बात में उलझन हो, मूढ़ता हो, उसे धर्म नहीं हो सकता। समकित नहीं हो तो फिर प्रव्रज्या होती ही नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा के स्वरूप में मूढभाव है। परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने कहा, इसके अतिरिक्त दूसरे अज्ञानियों ने जो कहा, उसमें सब विपरीत... विपरीत... और विपरीत... समझ में

आया ? जैन में भी जैन परमेश्वर को क्या कहना है, इसके भान बिना वह भी मूढ़भाव में पड़े होते हैं। उस मूढ़ को प्रव्रज्या नहीं हो सकती। आहाहा! **जैन मुनियों के अनेकान्त से सिद्ध किया हुआ यथार्थ ज्ञान है,...** वस्तु का स्वरूप मैं आत्मा हूँ, मैं अनन्त गुण का पिण्ड हूँ। अनन्त परद्रव्य है, वह वस्तु मुझमें नहीं, उसमें मैं नहीं —ऐसा अनेतान्तपना जो वस्तु का है, उसे उसने साधकर स्वरूप का साधन किया है। एक गुण में दूसरा गुण नहीं है। एक गुण में एक समय की पर्याय भी एक गुण में नहीं है। ऐसा अनेकान्त अर्थात् वह स्व रूप से है और पर रूप से नहीं, ऐसा द्रव्य, गुण, पर्याय इत्यादि... इत्यादि... आहाहा! ऐसा जो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कहा, ऐसा आत्मा जिसे समझ में आया है, उसे समकित होता है और उसे चारित्र आवे तो प्रव्रज्या कहलाती है। मूढ़ता को भान नहीं होता और चारित्र-प्रव्रज्या लेकर बैठे, वह तो सब अज्ञानी है, कहते हैं। लो!

मूढ़भाव नहीं है। किसका मूढ़भाव हो ? वस्तु जानी है, ऐसी है। समझ में आया ? ऐसा परन्तु इतने क्षेत्र में ? इतना बड़ा! ऐसी शक्तिवाला! अकेला वीतरागभाव! यह कषायभाव वर्तता है ? तो कहे, नहीं। उससे तो रहित है, उसका स्वभाव। प्रगट होता है पर्याय में तो पूर्ण शान्ति और वीतरागता प्रगट होती है। क्या होगा यह ? कैसा क्या होगा ? जो शक्ति में है, वह बाहर आता है। ऐसे ज्ञानी को, जैन मुनि को, ऐसा कहा न ? **जैन मुनियों के अनेकान्त से सिद्ध किया हुआ यथार्थ ज्ञान है, इसलिए मूढ़भाव नहीं है।** इन्हें मूढ़ता नहीं होती। कैसे होगा इसमें ? उसका सत्य होगा ? उसका सत्य होगा ? जैन में भी कितने ही भेद पड़े हैं। उसका सच्चा ? ऐसी जैन मुनि को अनेकान्त साधते हुए ऐसी शंका नहीं होती, मूढ़ता नहीं होती।

जिसमें आठकर्म और मिथ्यात्वादि प्रणष्ट हो गये हैं,... उन्होंने जरा पूरा अर्थ कर दिया है। '**पणट्ठकम्मट्ठ णट्ठमिच्छत्ता**' सब मिथ्यात्व के साथ कर दिया। परन्तु वास्तव में तो '**पणट्ठकम्मट्ठ**' आठ कर्म ही जिन्हें नहीं। मुनि को आठ कर्म कैसे ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आठ कर्म हैं।

'**पणट्ठकम्मट्ठ**' ऐसा चाहिए। जिन्हें आठ कर्म नहीं। चारित्रवन्त को कर्म कैसा ?

आहाहा! यह पहले आ गया है। आठ कर्म .... चार कर्म बाकी है परन्तु इनके नहीं है। उदय भी इनका नहीं है। एक समय का बन्ध पड़े, वह भी इनका नहीं है। अरिहन्त की व्याख्या में है। ऐसा यह चारित्र की व्याख्या में आया।

मुमुक्षु : आठों ही कर्म में...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। आठों ही नहीं। कर्म ही नहीं आत्मा में, फिर प्रश्न कहाँ? साधुपद को तो मोक्षतत्त्व कहा है। आहाहा! प्रवचनसार। मोक्षतत्त्व। अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते, जिसके आनन्द की मिठास के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़ी हुई बिल्ली जैसे लगें। आहाहा! यह हड्डियाँ और माँस का पिण्ड, उसमें जो सुखबुद्धि, वह तो उनकी उड़ गयी होती है। समझ में आया? परन्तु इन्द्र के इन्द्रासन जिन्हें... वह धान का ढोकला नहीं। मनुष्य तो धान का ढोकला है। दो दिन न खाये तो ऐ... ऐं... हो जाता है। उसको तो हजारों वर्ष में आहार की इच्छा होती है। ऐसे देव-देवी, उनके भोग भी सड़े हुए कुत्ते और बिल्ली के कलेवर होते हैं न, आहाहा! ऐसे उन्हें लगते हैं। द्वेष नहीं, हों! ऐसा उसका स्वरूप है।

भगवान आत्मा आनन्द का धाम, उसकी जिसे चारित्र की दशा प्रगटी है, कहते हैं, आठ कर्म प्रणष्ट (हो गये)। वस्तु में नहीं परन्तु पर्याय में जरा निर्बलता है, उस निर्बलता का वहाँ ज्ञान है परन्तु स्वीकार नहीं। स्वीकार तो स्वभाव का है। आहाहा! और मिथ्यात्व नष्ट हुआ है। आठ कर्म गये। वास्तव में उन्होंने ऐसा लिया। आठों ही कर्म का मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व गया तो सब गया। मिथ्यात्व (अर्थात्) भ्रमणा मिथ्यात्व है। अतत्त्व-श्रद्धान का नाश हुआ है। तत्त्वश्रद्धान में आत्मा परमेश्वर ने कहा वैसा रागरहित, पुण्यरहित, विकल्परहित, निर्विकल्पस्वरूप का भान है, विकल्प है, उसका भी ज्ञान है। है, उसका ज्ञान। मुझमें है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

मिथ्यात्व का अभाव है,... देखो! **जैनदीक्षा में...** साधु नाम धरावे और तत्त्वार्थश्रद्धान की खबर न हो। छह द्रव्य हैं, नव तत्त्व हैं, उसकी खबर न हो। नाम भी न आवे और साधु हुए। क्या सीखे? **जैनदीक्षा में अतत्त्वार्थश्रद्धानरूप मिथ्यात्व का अभाव है, इसीलिए सम्यक्त्वनामक गुण द्वारा विशुद्ध है,...**

फिर लिया तीसरा पद। **'सम्मत्तगुणविसुद्धा'** आहाहा! जिसे आत्मा स्वरूप भगवान ने-परमात्मा ने कहा, ऐसे वीतरागस्वभाव की उसे अन्तर प्रतीति और सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! **'सम्मत्तगुणविसुद्धा'** ऐसा लिया है न? निर्मल है समकित। ऐसी दशा में चारित्रदशा हो सकती है। जहाँ समकित ही नहीं, वहाँ चारित्र और प्रव्रज्या नहीं हो सकते। **सम्यक्त्वसहित दीक्षा में दोष नहीं रहता है,...** आत्मा का स्वभाव परिपूर्ण प्रभु है, उसका जहाँ श्रद्धान और भान है, वहाँ चारित्र में दोष समकिती के कारण से हो नहीं सकता। ऐसा कहा न? **सम्यक्त्वसहित दीक्षा में दोष नहीं रहता है,...** समकित फौजदार है। चोर को आने नहीं देता, हीनता को होने नहीं देता। समकित ने आत्मा पूर्णानन्द को स्वीकार किया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है न? सिद्ध क्यों संसार को नहीं इच्छते? आस्रव को, संसार को, बन्ध को। श्रद्धा का जोर है, श्रद्धा का बल है। आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप शुद्ध अखण्ड अभेद चैतन्यमूर्ति है, उसकी श्रद्धा के जोर से आस्रव-संसार उन्हें उत्पन्न नहीं होता। पण्डितजी! मोक्षमार्गप्रकाशक में है। श्रद्धा का जोर है वह। सिद्ध को श्रद्धा का जोर है तो आस्रव-बन्ध की इच्छा नहीं है। इतना श्रद्धा में (जोर है)। परिपूर्ण आत्मा, भगवान आत्मा। ऐसी जिसे अन्तर में स्वभाव के भानसहित की श्रद्धा हुई है, उसे **दीक्षा में दोष नहीं रहता है,...** उसे दीक्षा में दोष नहीं हो सकता।

भगवान ने **इस प्रकार प्रव्रज्या कही है।** ऐसा चारित्रपना त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कहा है। आहाहा! कितनी छनावट की है, देखो! ऐसा (स्पष्ट होने) पर भी अभी गड़बड़ करते हैं। अब क्या कहना चाहते हैं? कि काल हल्का और संहनन हल्का होवे तो ऐसी प्रव्रज्या होगी? ऐसा कहते हैं। काल हल्का है न? काल हल्का है न? संहनन की ऐसी मजबूताई नहीं है न! कहते हैं, छहों संहनन में प्रव्रज्या होती है, सुन न। क्यों पण्डितजी! ऐसा कहते हैं न कितने ही? संहनन ऐसे नहीं हैं। अभी एक आया था। परन्तु यहाँ तो भगवान कहते हैं कि छहों संहनन में प्रव्रज्या होती है। साधुपने को क्या बाधा है? भले उसका अन्तिम संहनन हो, परन्तु साधुपना प्रगट हो सकता है। ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। कितने ही ऐसा कहते हैं कि अभी संहनन शिथिल है। ऐसा कहते हैं न? वह पन्थ निकला न! अभी इतना पालन नहीं किया जा सकता। इसलिए हम यह करते हैं। एकदम खोटी बात है। इसके लिये तो यह शब्द लिया है।

गाथा-५४

आगे फिर कहते हैं –

जिणमग्गे पव्वज्जा छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा।
भावंति भव्वपुरिसा कम्मक्खयकारणे भणिया।।५४।।

जिनमार्गे प्रव्रज्या षट्संहननेषु भणिता निर्ग्रंथा।
भावयंति भव्यपुरुषाः कर्मक्षयकारणे भणिता।।५४।।

जिन–मार्ग में निर्ग्रन्थ दीक्षा छहों संहनन में कही।
सब भव्य भाएं भावना है कर्म–क्षय कारण यही।।५४।।

अर्थ – प्रव्रज्या जिनमार्ग में छह संहननवाले जीव के होना कहा है, निर्ग्रन्थ स्वरूप है, सब परिग्रह से रहित यथाजातस्वरूप है। इसकी भव्यपुरुष ही भावना करते हैं। इस प्रकार की प्रव्रज्या कर्म के क्षय का कारण कही है।

भावार्थ – वज्रवृषभनाराच आदि, छह शरीर के संहनन कहे हैं, उनमें सबमें ही दीक्षा होना कहा है, जो भव्यपुरुष हैं वे कर्मक्षय का कारण जानकर इसको अंगीकार करो। इस प्रकार नहीं है कि दृढ़ संहनन वज्रऋषभ आदि हैं उनमें ही दीक्षा हो और असंसृपाटिक संहनन में न हो, इस प्रकार निर्ग्रन्थरूप दीक्षा तो असंप्राप्तसृपाटिका संहनन में भी होती है।।५४।।

गाथा-५४ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं –

जिणमग्गे पव्वज्जा छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा।
भावंति भव्वपुरिसा कम्मक्खयकारणे भणिया।।५४।।

देखो! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य स्पष्ट करते हैं। कितने ही कहते हैं, जैसा संहनन पहले था, वैसा नहीं, इसलिए अभी साधुपना ऐसा खोजने बैठेगो तो नहीं मिलेगा। इसलिए

जिस प्रमाण है, वह ठीक है। उसका यहाँ स्पष्टीकरण करते हैं।

प्रव्रज्या जिनमार्ग में छह संहननवाले जीव के होना कहा है,... परमेश्वर ने तो संहनन भले अन्तिम हो। हड्डियों की मजबूताई का अन्तिम भाग हो तो चारित्र हो सकता है। परन्तु ऐसा चारित्र होता है। समझ में आया? संहनन कमजोर हो, इसलिए चारित्र में कुछ गड़बड़ करे कि वस्त्र रखना और पात्र रखना, उसके लिये बनाये हुए आहार-पानी लेना। संहनन कमजोर है, इसलिए क्या करे? बिल्कुल मिथ्यात्वभाव है। पण्डितजी! छह संहनन के नाम दिये हैं। देखो! **निर्ग्रन्थ स्वरूप है,...** भले संहनन अन्तिम हो। साधुपद तो आत्मा के अनुभव सहित पहले लिया। देखो! समकित सहित। प्रव्रज्या और पश्चात् यहाँ संहनन की बात ली है। संहनन अर्थात् हड्डियों की मजबूताई कमजोर हो तो? कि कमजोरी में भी चारित्र हो सकता है।

मुमुक्षु : उनके लिये लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। है न पाठ है न। **'छहसंहणणेसु'** छहों संहनन में साधुपना होता है। इसलिए तू ऐसा कहे कि वज्रनाराच संहनन और उस समय के साधुपना अभी नहीं होता, ऐसा नहीं हो सकता। वज्रनाराच में भी ऐसे साधु होते हैं। अन्तिम संहनन में भी ऐसे साधु होते हैं। इस साधुपने में अन्तर नहीं होता। समझ में आया?

सब परिग्रह से रहित यथाजातस्वरूप है। नग्न मुनि दिगम्बर। भले छह संहनन चाहे जो हो। **इसकी भव्यपुरुष ही भावना करते हैं।** वह भव्यपुरुष तो ऐसे आत्मा की, चारित्र की भावना भाता है। और चारित्र है, उसकी ही एकाग्रता है, ऐसा कहते हैं। **इस प्रकार की प्रव्रज्या...** शब्द बदले अब **कर्म के क्षय का कारण कही है।** लो! **'पव्वज्जा एरिसा भणिया'** ऐसा था अभी तक। ऐसा चारित्र। आहाहा! शान्ति... शान्ति... शान्ति... संहनन भले कमजोर हो। मनुष्य के देह में भले रोगादि हो। वे परद्रव्य उसे कहाँ बाधक है? जैसे नारियल का गोला पृथक् पड़ा होता है, उसी प्रकार शरीर के रजकणों से भगवान अन्दर भिन्न पड़ा होता है। उसके भान में उसे चारित्र की दशा कर्म के क्षय का कारण कही है। ऐसा चारित्र, वह कर्म के क्षय का कारण है। इसके अतिरिक्त चारित्र नहीं हो सकता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१७२, गाथा-५४ से ५६, सोमवार, पौष शुक्ल १५, दिनांक ११-०१-१९७१

यह बोधपाहुड़ है। प्रव्रज्या का अधिकार। ५४ गाथा चलती है। क्या कहते हैं? जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, (उसके लिये यह बात है)। अनादि से चार गति में भटकता है, वह दु:खी है। अपना आत्मा, उसका स्वभाव आनन्द है। चैतन्यस्वरूप है, वह अनादि अविनाशी आनन्दस्वरूपी आत्मा है। उसके भान बिना जो उसमें नहीं, ऐसी चीज़ शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के भाव वे सब मेरे हैं और वह मैं हूँ, ऐसा मानकर दु:खी होकर मिथ्यादृष्टि चार गति में भटकता है। समझ में आया? अपना जो निज स्वभाव... बोधपाहुड़ है न, उसका पहले ज्ञान कराया है। तदुपरान्त यहाँ तो प्रव्रज्या की बात है।

भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से भरपूर पदार्थ है। वस्तु है न? पदार्थ है न? है, वह वस्तु अपने निज गुण से खाली नहीं होती। यह आत्मा अपने अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, ऐसे स्वभाव से भरपूर तत्त्व है, परन्तु उसकी उसे (खबर नहीं है)। अनन्त काल में अनन्त-अनन्त परिभ्रमण के चौरासी के अवतार किये। अनादि का है। है, उसकी उत्पत्ति नहीं होती; है, उसका नाश नहीं होता; है, उसके भान बिना विपरीत श्रद्धा, राग-द्वेष, अज्ञान करके चौरासी के अवतार में भटक रहा है।

यहाँ मनुष्यपना मिले तो इसे ऐसा लगे कि अपने को यह कुछ ठीक मिला है। परन्तु मनुष्यपना वह तो जड़पना है। वह तो जड़-मिट्टी है। आत्मा तो भिन्न चीज़ है। इसलिए मनुष्य में कुछ अनुकूलता बाहर की सामग्री जरा हो (तो) अज्ञानी (सुख) मान लेता है। अनुकूल तो निजानन्दस्वरूप, वह अन्दर अनुकूल है। बाहर की कोई चीज़ अनुकूल नहीं है। शरीर तो मिट्टी, जड़ होकर रहा हुआ है, वह तो अजीव होकर रहा हुआ है। आहाहा! वह कहीं जीव का होकर जीव में रहा नहीं। शरीर, शरीररूप से अजीव होकर अजीवरूप से रहा हुआ है। वह कहीं आत्मा का होकर रहा नहीं। वह तो मिट्टी, जड़, धूल है। उसमें पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे भी वास्तव में तो मलिन, विकार, जहर, दु:ख है। विकार है, दु:ख है परन्तु भान नहीं न। दु:ख क्या है, उसकी इसे खबर नहीं।

आत्मा प्रभु, सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, देखा और वैसा है। वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, चैतन्य के नूर का पूर, वह तो चैतन्य है। परन्तु उसकी ओर की सावधानी कभी

अनन्त काल में (नहीं की)। बाह्य का त्यागी हुआ तो भी नहीं और भोगी हुआ तो भी नहीं। इसने अनन्त काल में निज स्वरूप के सामर्थ्य के ऊपर दृष्टि कभी नहीं दी। इसलिए यह अज्ञान में चार गति में दुःखी है, यह दुःखी, हों! कोई कहे कि हमें पैसा ठीक है, शरीर ठीक है, इसलिए हम सुखी हैं। वह तो जड़ है। जड़ का लक्ष्य करता है, वह राग करता है और राग है, वह तो दुःख है। इसे अनादि से खबर नहीं है। इसलिए यह आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप का पहले भान करके, उसकी पहिचान करके, उसकी कीमत करके, उसकी अधिकता, दूसरी चीज़ पुण्य-पाप, शरीर से अधिक अर्थात् भिन्न हूँ, ऐसा भान करके सम्यग्दर्शन करना, यह पहले में पहले धर्म की शुरुआत है। अर्थात् दुःख से मुक्त होने का यह पहले में पहला उपाय है। तदुपरान्त यहाँ तो बात चलती है। समझ में आया?

प्रभु आत्मा ज्ञान और आनन्द है। यह पुण्य-पाप के भाव विकल्प शुभ-अशुभ हों, उनसे उस चीज़ का अस्तित्व भिन्न है। ऐसा भान हो, तब उसे आत्मा का साक्षात्कार, आत्मा की दृष्टि और आत्मा जैसा है, वैसा उसने स्वीकार किया, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? गजब बात! इस आत्मा को ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर स्वरूप का स्वीकार हुआ। अरे! मैं तो शुद्ध आनन्द पवित्र अनादि-अनन्त। शरीर, वाणी तो मैं नहीं परन्तु पुण्य और पाप के विकल्प, भाव, दोनों राग है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना यह पापराग है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा की वृत्ति उठे, वह पुण्यराग है। दोनों विकार, दोनों दुःख, दोनों जहर हैं। उससे भिन्न अमृतस्वरूप भगवान, ऐसे निज आत्मा का अनुभव करके श्रद्धा करना, वह प्रथम में प्रथम संसार के परिभ्रमण से मुक्त होने का यह पहला उपाय है। समझ में आया? यहाँ तो तदुपरान्त बात अब चलती है।

प्रव्रज्या। साधुपद किसे कहना? समझ में आया? स्त्री, पुत्र छोड़कर बैठा या दुकान छोड़कर बैठा, इसलिए साधु है, ऐसा नहीं है। अन्तर में आनन्दस्वरूप का साधन करने से उसे इतना अधिक राग घट जाता है कि जिसे अन्तर के आनन्द की उमंग (उठती है)। शान्ति का सरोवर प्रभु आत्मा है, उसमें से बहुत शान्ति... शान्ति... शान्ति... वीतरागता जिसे अन्तर में प्रगट हुई होती है, उसे यहाँ प्रव्रज्या और साधुपद कहा जाता है। सूक्ष्म बातें, भाई! इसने अपनी नजर कभी नहीं की। इसकी-अपनी कीमत इसने कभी नहीं की। दूसरे की कीमत आँकी है। यह अच्छा, यह अच्छा,... यह अच्छा... यह... परन्तु मैं

अच्छा कौन हूँ, उसकी इसने कभी खबर नहीं की। मूर्खाई में इसने अनन्त काल ऐसा का ऐसा व्यतीत किया। समझ में आया?

यह अब कहते हैं कि आत्मा का जहाँ भान होता है। अरे! मैं तो शान्त अनाकुल आनन्द हूँ। मेरी मौजूदगी में—अस्ति में अनन्त बेहद अपरिमित ज्ञान और आनन्द है। ऐसे समकित की पहली भूमिका धर्म की प्रगट होने पर, पश्चात् प्रव्रज्या धारण करता है। साधुपद। ऐसे भान बिना साधु हो, वे सब चार गति में भटकने के लिये है। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो! ५४।

अर्थ – प्रव्रज्या जिनमार्ग में... वीतराग परमेश्वर ने त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक का प्रत्यक्ष ज्ञान था, वे भगवान ऐसा कहते हैं कि **छह संहननवाले जीव के होना कहा है,...** हड्डियों की मजबूताई छह प्रकार की होती है। यह हड्डियाँ हैं न हड्डियाँ? उनकी मजबूताई, कठोरता... कठोरता... उसके छह प्रकार हैं। एक व्रजनाराच संहनन। ऐसी हड्डियाँ मजबूत होती हैं कि ऊपर घन पड़े तो भी टूटे नहीं, ऐसा संहनन—हड्डियों की मजबूती होती है। कहते हैं कि ऐसी मजबूती हो तो ही चारित्र हो, तो ही मुनिपना अन्तर आनन्द की रमणता में चारित्र प्रगटे, ऐसा कुछ नहीं है। हड्डियों की छह प्रकार की मजबूती का अन्तिम नम्बर हो तो भी आत्मा के आनन्द में रमता आत्मा (चारित्र प्राप्त कर सकता है)। आहाहा!

बाह्य में तो जिसकी नग्न दशा होती है, अभ्यन्तर में जिसे आनन्द के रस का खजाना खिल गया है। आहाहा! समझ में आया? उदास है। अन्तर का आनन्द का खजाना, अतीन्द्रिय खजाना भरा है भगवान आत्मा, उसका खजाना तो सम्यक् अनुभव होने पर खिल गया। परन्तु चारित्र यहाँ तो कहते हैं... ओहोहो! स्वरूप चारित्र अर्थात्? उस आनन्दस्वरूप आत्मा में रमना, चरना, उसका नाम चारित्र। चारित्र कोई शरीर की क्रिया और बाह्य का वेश—वेश-वेश वह कहीं चारित्र है नहीं। समझ में आया? ऐसी चारित्र दशा, हड्डियों के छह प्रकार की मजबूताई है, उसमें चाहे जिस प्रकार की हो तो भी उसमें आत्मा की शान्ति और आनन्द और चारित्रदशा प्रगट हो सकती है। कोई ऐसा कहे कि भाई! हमको हड्डियाँ मजबूत नहीं हैं, इसलिए अभी ऐसा चारित्र भगवान कहते हैं, ऐसा नहीं होता। तो कहते हैं कि वे झूठे हैं। समझ में आया? वस्तुस्वरूप तो अन्तर छह संहनन

में से किसी भी जीव को **होना कहा है,...** भगवान ने तो।

निर्ग्रन्थस्वरूप है, सब परिग्रह से रहित यथाजातस्वरूप है। जैसा माता से जन्मा, वैसी जिसकी दशा, सम्यग्दर्शन के अनुभवपूर्वक आत्मा के वेदन के भानपूर्वक, ऐसी दशा जिसकी हो जाती है। कहते हैं, माता से जन्मा ऐसा, वह होता है। एक वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं होता, पात्र नहीं होता, ऐसे वनवास में आनन्द में बसनेवाले, आत्मा की अतीन्द्रिय... ऐई! आहाहा! ऐई! इसके पिता ने कहा था न? क्या यह महाराज कहते हैं? साधु जंगल में बसे। इसके पिता ने इससे पूछा। ऐई! जादवजीभाई! तुम्हारे लड़के से इससे पूछा कि महाराज कहते हैं, साधु जंगल में बसते हैं। कैसे सुहाता होगा? उन्हें कैसे सुहाता होगा? यह जवाब देता है। बारह वर्ष हुए। पापा! उन मुनि को अतीन्द्रिय आनन्द होता है। कैसे सुहाता होगा (क्या), तुम्हें यह खलबलाहट सुहाती है, इसलिए तुम्हें खबर नहीं, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : हमारी सब खलबलाहट है?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी खलबलाहट ही है। क्या है दूसरा पूरे दिन? ऐई! इसे तो धन्धा ही पैसा लेने-देने का है। इसे कोई दूसरा धन्धा नहीं। हुण्डी का ब्याज पटाना है इसके पिता को।

मुमुक्षु : वह भी खलबलाहट?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी खलबलाहट है। यह दिये पैसे डेढ़ प्रतिशत और प्रतिशत। अब तो बहुत बढ़ गया है। पहले तो आठ आने, बारह आने सुनते थे। यह तो एक व्यक्ति कहे, दो प्रतिशत में करोड़पति देते हैं। ऐसा और कोई कहता था। वह प्रभुभाई नहीं? भावनगर नहीं रहते? बड़े, बड़ी पाटी। पी. प्रभुदास। कोई कल कहता था। हम तो सुनते हैं। पचास लाख गाँव में ये लिये और पैंसठ लाख बैंक में से लिये। डेढ़-दो-दो प्रतिशत देते हैं। भारी भाव बढ़ गया। तुम्हारे भी कुछ होगा तो सही न? वृद्धि हुई होगी। तुम्हारा पिता सब करता होगा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : होगा कुछ दूसरा। यह तो वह सब खलबलाहट की ममता है।

आहाहा! विकल्प का जाल। परन्तु इसे भान नहीं कि मैं, वह कौन हूँ? इन वृत्तियों का उत्थान अकेले विकल्प का जंजाल, कषाय की अग्नि में सुलग रहा है। इसे भान नहीं है। आहाहा! सन्निपातिया सन्निपात में दाँत निकाले (खिलखिलाकर हँसे)। वात, पित्त और कफ तीनों का वक्री हो गया हो, उसे सन्निपात कहते हैं। सन्निपात अर्थात् जुड़ान। वात, पित्त और कफ। उसकी उग्रता, विक्रता (होना), उसे सन्निपात कहते हैं। खिलखिलाकर हँसे। सुखी है ? मन मूढ़ हो गया है। भान नहीं होता, भान। ऐसे वह क्या सुखी है ? सुख तो आत्मा के आनन्द में सुख है। उसका तो भान (भी नहीं)। गन्ध की भी खबर नहीं। कहाँ था सुख लम्बा ? समझ में आया ?

ऐसा जवाब दिया इसके पिता को लड़के ने। उन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद है। सुहाता होगा... सुहाता होगा... क्या पूछते हो ? और वापस एक दलील दी। वकील जैसा हो गया वह लड़का। पापा! सिद्ध भगवान अकेले रहते हैं या नहीं ? वापस ऐसा जवाब दिया। सिद्ध परमात्मा है। णमो सिद्धाणं। अरिहन्त, पश्चात् सिद्ध हो गये। शरीररहित (हो गये)। अकेले को नहीं सुहाता होगा वहाँ ऐसा न ? ऐई! कान्तिभाई! बहुत शीघ्रता करता है। अकेले को नहीं सुहाता होगा वहाँ ? सिद्ध परमात्मा अशरीरी भगवान हो गये, उन्हें तो कोई दोपना है नहीं। उन्हें नहीं सुहाता होगा ? तुम्हें खलबलाहट चाहिए, इसलिए ऐसी बातें करते हो। तुम्हें निवृत्त नहीं होना है। ठीक, बेटा। क्या करे ? लड़का ऐसा बोले, उसे पिता क्या कहे ? सच्ची बात, सच्ची बात, बापू तेरी। आहाहा! अरे! तुझे कहते हैं कुछ...

भगवान आत्मा सत् शाश्वत् सिद्ध और ज्ञान और आनन्द का कन्द आत्मा है। उस आनन्द का जहाँ सम्यक् भान हुआ, तब उस गृहस्थाश्रम में राग होने पर भी उसे आत्मा के आनन्द का सुख और मजा है। वह छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा, उसे भोग का विकल्प आवे उसे जहर, काला नाग जानता है। आहाहा! अरे! हमारे आनन्द के समक्ष यह क्या ? समझ में आया ? हम तो अतीन्द्रिय आनन्द के धाम, ऐसे हम आत्मा, उसे यह विकल्प की वृत्तियाँ अग्नि, राग की, जहर की काला नाग देखता है। आहाहा! अज्ञानी उसे सुख मानता है। दोनों में अन्तर इतना है। समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं, प्रव्रज्या / साधुपद तो भगवान ने उसे कहा है कि जिसके अन्तर में आनन्द का उफान, अतीन्द्रिय आनन्द फैल जाता है, ऐसे फूल जाता है। आहाहा! समझ में आया ?

और बाह्य में यथाजातरूप है। जैसा माता से जन्मा, वैसा नग्न। यह वस्त्र और पात्र रखकर साधुपना मानते हैं, वे वीतराग की आज्ञा से बाहर हैं। समझ में आया? ऐसा मार्ग है। आहाहा!

इसकी भव्यपुरुष ही भावना करते हैं। जो कोई धर्मात्मा आत्मा की मुक्ति के मोक्ष-आनन्द की जिसे भावना है, वे ऐसे स्वभाव को भाते हैं। अज्ञानी पुण्य और पाप, राग और द्वेष, अज्ञान, विकार को भाता है। दुःख को भाता है और दुःख के फल में जानेवाला है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि भव्य पुरुष जो कोई आत्मा निज घर की सम्हालवाला आत्मा, जिसने परघर की सम्हाल अन्तर में रुचि से छोड़ी है। आहाहा! पुण्य और पाप के भाव की भी सम्हाल जिसने छोड़ी है। आहाहा! जिसका आत्मा प्रभु! वह विकार के विकल्प के पीछे अतीन्द्रिय आनन्द का तत्त्व धाम, उसे स्पर्श कर आनन्द का स्वाद जो लेते हैं, वे भव्य पुरुष ऐसी भावना करते हैं। समझ में आया? आहाहा!

इस प्रकार की प्रव्रज्या कर्म के क्षय का कारण कही है। ऐसा साधुपद कर्म के नाश का कारण है। वस्त्र छोड़कर बैठे, नग्न होकर घूमे या स्त्री-पुत्र छोड़कर बैठे। दया पालते हैं, व्रत पालते हैं, इसलिए साधु हैं। वह साधुपद अलग चीज़ है। समझ में आया? परमेश्वर ने ऐसा कहा। देखो! '**भणिया**' शब्द है न अन्तिम? कर्म क्षय का कारण है, ऐसा कहा है। भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जो सौ इन्द्र के पूजनीक और पूर्ण आनन्द की और ज्ञान की जिन्हें प्राप्ति है, उन भगवान की वाणी में ऐसा आया है। समझ में आया?

इस प्रकार की प्रव्रज्या कर्म के क्षय का कारण कही है। मात्र नग्न होकर घूमे या पंच महाव्रत पालन करे, लो न। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, वह तो विकल्प है, राग है, विकार है। वह धर्म नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा तो विकल्प के रागरहित निर्विकल्प प्रभु है। समझ में आया? आहाहा! कभी सुना भी न हो कि मैं कौन हूँ। कहते हैं कि ऐसी प्रव्रज्या भगवान ने कर्म के नाश का कारण कहा है। लो!

भावार्थ – वज्रवृषभनाराच आदि, छह शरीर के संहनन कहे हैं,... हड्डियों की छह प्रकार की मजबूती है। है न? वज्र, ऋषभ और नाराच। वज्र का पाटा, वज्र की खीली, वज्र जैसी हड्डियाँ तीनों होते हैं अन्दर। वज्र, ऋषभ, नाराच। हड्डियाँ वज्र जैसी, उनके पाटा अन्दर हो हड्डियों के और उसमें अन्दर खीली हो। ऐसे पहले नम्बर की

हड्डियों की मजबूती को वज्रऋषभनाराच कहते हैं। ऐसे करते-करते फिर (नीचे) उतरते हैं। खीली न हो। पाटा हो। पाटा भी आधा हो। ऐसे करते-करते संहनन की मजबूती के अन्तिम नम्बर की हड्डियाँ होती हैं। जैसे थैली में अकेली सुपारी भरी हो, वैसे ऐसी हड्डियाँ भिन्न-भिन्न भरी हों उसमें। अन्तिम नम्बर की हड्डियाँ, हों वे। कहते हैं कि उसमें भी भले हड्डियाँ ऐसी हों। पंचम काल में ऐसी हड्डियाँ (होती हैं), इसलिए ऐसा चारित्र नहीं होता—ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह है। यह अन्तिम का नाम दिया। अन्तिम साधु। अन्त में एक साधु। पंचम काल के अन्त में, उनका नाम। वे साधु। वह भी अन्तिम संहनन होगा और आनन्द... आनन्द... नग्नदशा। अतीन्द्रिय आनन्द में मौज मानते साधु होंगे। अन्त में है न? उनका दृष्टान्त दिया है। खबर है। पंचम काल के अन्त में एक साधु होंगे, एक आर्यिका, एक श्रावक और एक श्राविका अन्त में होंगे।

मुमुक्षु : अन्त में सम्भव है तो मध्य में क्यों नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। उस समय भी हड्डियों की अन्तिम स्थिति... लोग इस बहाने ऐसा कहते हैं कि हमारे ऐसी मजबूताई नहीं है, इसलिए हम वस्त्रसहित मुनिपना पालते हैं और यह करते हैं। सब मिथ्याश्रद्धा, मिथ्यादृष्टि है। कल्पित बातें हैं। वस्तु भगवान आत्मा को संहनन कुछ अवरोधक नहीं है। शरीर तो परचीज़ है, मिट्टी-जड़ है। हड्डियाँ भी हड्डियाँ रूप से होकर रही हैं, चैतन्य भगवान में अन्दर में नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा चैतन्य, उसके आनन्द की भावना, साधु की (भावना) भानेवाले को कहते हैं कि **छह शरीर के संहनन कहे हैं, उनमें सबमें ही दीक्षा होना कहा है,...** सब में चारित्र—अन्तर आनन्द में रमणता। आहाहा! यह वह किसे कहना? जिसे इन्द्र पूजे, गणधर जिसे वन्दन करे। णमो लोए सव्व साहूणं।

जो भव्यपुरुष हैं, वे कर्मक्षय का कारण जानकर इसको अंगीकार करो। देखो! ओहो! आत्मा के सम्यग्दर्शनसहित **भव्यपुरुष हैं वे...** चारित्र अंगीकार करो। आहाहा! और ऐसी चारित्रदशा बिना मुक्ति और मोक्ष कभी तीन काल में किसी को नहीं

हो सकता। समझ में आया? **इस प्रकार नहीं है कि दृढ़ संहनन वज्रऋषभ आदि हैं, उनमें ही दीक्षा हो और असंसृपाटिक संहनन में न हो,...** असंसृपाटिक संहनन अन्तिम है और यह (वज्र)ऋषभनाराच पहला है। ऐसा कि पहले तीन मजबूताई में साधुपद होता है और इन नीचे तीन में साधुपद नहीं होता, ऐसा नहीं है।

इस प्रकार निर्ग्रन्थरूप दीक्षा तो असंप्राप्तसृपाटिका संहनन में भी होती है। अन्तिम संहनन हो तो आत्मा अन्दर अनुभव सम्यग्दर्शन करके स्वरूप की रमणता के आनन्द में चरता हो, रमता हो, ऐसी चारित्रदशा अन्तिम संहननवाले को भी हो सकती है। इसलिए हड्डियों की मजबूताई नहीं है, ऐसा बहाना निकालकर ऐसी चारित्रदशा पालन न करे और दूसरा पालन करके चारित्र नाम धरावे, कहते हैं कि वह वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा! गजब... आहाहा! गजब भाई! हें? आहाहा!

महाविदेह में भगवान त्रिलोकनाथ मनुष्यरूप से विराजते हैं। वहाँ गये थे और वहाँ से आकर यह कहा है। भगवान ऐसा कहते हैं। त्रिलोकनाथ परमात्मा वर्तमान मनुष्यदेह में पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व की देह की आयुष्य की स्थिति है। वर्तमान समवसरण में विराजते हैं। वहाँ रहे थे। आठ दिन वहाँ रहे थे। वहाँ से आकर यह रचा है। भाई! प्रभु! '**भणिया**' ऐसा आया है न? देखो! '**कम्मक्खयकारणे भणिया**' परमेश्वर ने तो ऐसा कहा है। आहाहा! स्वयं मुनि है। समर्थ है। अरे! तेरे पास आनन्द का सागर भरा है। भाई! उसकी खबर नहीं होती। निज की खबर नहीं होती। पर की सब लगायी है। ऐसे कमाया जाता है और ऐसे खाया जाता है और ऐसे शरीर रहता है और धूल रहती है। अकेली मूढ़ता और अज्ञान। कितनी दवायें रखते हो, खबर है न। देखो! डिब्बा रखते हैं। क्योंकि एक तो हार्ट का दर्द, ब्लडप्रेशर का। क्या कहलाता है वह? डायबिटीज का। डायबिटीज में से यह सब हुआ है। पैसे तो बहुत हैं। परन्तु कुछ मदद नहीं करते। लड़के भी मदद नहीं करते। टेलीफोन आया, यहाँ चले आओ फिर तुम्हें डालेंगे वहाँ हॉस्पीटल में। यहाँ घर में कौन सम्हालेगा तुम्हें? ऐसा है। उसकी अपेक्षा यहाँ अच्छा है, पड़े यह।

मुमुक्षु : वहाँ सब साधन (होते हैं न)...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी साधन नहीं। अब साधन किसे कहना? वह तो परमाणु की जो अवस्था होनी हो, वह होकर रहेगी। लाख उपाय करे। डॉक्टर हो तो मर जाता है।

ऐं... ऐं... ऐं... करे। वह डॉक्टर-सर्जन नहीं आया था, हेमन्तकुमार ? पट्टणी के साले का लड़का। किसी का ऑपरेशन करता था, वहाँ स्वयं उड़ गया, मर गया। सर्जन। बड़े हॉस्पीटल में। अपने आ गया है दो-तीन बार यहाँ। देह की स्थिति तो (जो होनी हो, वैसी ही होगी)। जड़ है, यह तो मिट्टी है। इसकी जिस समय की जो अवस्था जिस प्रकार की होनी है, होनी है, होनी है, वह होगी। रोकी नहीं जा सकती और टालने से टलती नहीं। क्या हो ? आहाहा !

अभी देखो न, एक लड़का नहीं मर गया ? भगवानजीभाई के भाई की लड़की का लड़का। पचास लाख रुपये। लड़का। छह महीने का विवाहित। भाई गये हैं न ? भगवानजीभाई वहाँ अफ्रीका गये। छह महीने का विवाहित। साढ़े तेईस वर्ष की उम्र। शॉट लगा। यही लगने का था। उसमें कुछ ध्यान रखे तो न लगे, (ऐसा कुछ नहीं है)।

मुमुक्षु : लोग तो ऐसा कहते हैं कि बराबर ध्यान नहीं रखा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में ध्यान रखे। पर में क्या करे ? वह तो उसकी अवस्था होने की है वहाँ ? ध्यान तुझमें रखे या पर में रखे ? एक सेकेण्ड में एकदम उड़ गया। जो स्थिति हो, उसी प्रमाण होना है। उसमें फेरफार करने को कोई समर्थ नहीं है।

मुमुक्षु : हमें ऐसा लगा कि दवाखाने में जब जाने का हुआ तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो जाने का हो, तब जाया जाता है, होनेवाला हो, वह होता है। उसमें दूसरा कुछ है नहीं। यह परमाणु की जो पर्याय जिस काल में होनी है, वह होनी है। डॉक्टर स्वयं मर जाते हैं न। आहाहा ! कहते हैं, डॉक्टर ने ऑपरेशन नहीं किया भाई अपने ? मनुभाई को। दो वर्ष का विवाहित। क्या कहलाता है ? वाल। वाल कहलाता है न ? तेरह डॉक्टर इकट्ठे हुए थे। ... अब हिलते-चलते-फिरते... करते... करते... करते... अन्त में हाथ जोड़कर ... अब मेरा कुछ नहीं। मनुभाई। अपने शिवलालभाई के पुत्र ... क्या हो ? ... छोटी उम्र। गुजर गये। एकदम ... ... आहाहा ! इस देह के परमाणु अजीव के परघर के हैं। उन्हें कैसे रहना और कैसे टिकना, कैसे जाना, वह उनके आधीन है। तेरी कल्पना और तेरे भाव के आधीन नहीं है। अभी श्रद्धा का भान नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, ऐसी प्रव्रज्या **संहनन में भी होती है।** ओहो ! तेरा स्वभाव प्रगट करने

में कोई किसी पर की आवश्यकता नहीं है, ऐसा कहते हैं। अकेला भगवान आत्मा अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु है। वह अनन्त बल का धनी है, परन्तु पामर होकर बैठा है। गळिया बैल जैसा। उस छप्पनीया के पशु थे न ? सहारा लगाकर खड़ा करे। परन्तु पैर में कस नहीं, इसलिए गिरे। आहाहा !

यह तो मैंने ८१ में देखा था, गढडा। (संवत्) १९८१ में जरा वर्षा की खींच थी न ? जहाँ व्याख्यान चलता था, वहाँ लोग आवे। वर्षा नहीं तो पशु को खड़ा करे। व्याख्यान सुनकर जाये तब। हमने देखा कि खड़े किये और कहीं वहाँ जाये और पड़े। पैर में कस नहीं होता। क्या करे ? छप्पनिया (दुष्काल) के पशु तो बेचारे। यह तो देखा हुआ है। तब दस वर्ष की उम्र। छप्पन में। गायें ऐसी। लाईन से ५०-५० गायें रोवें। चार-चार दिन, पाँच-दिन दिन, छह-छह दिन घास नहीं मिले। नजर से देखा है, हों ! तब। दस वर्ष की उम्र। ग्वाल गाय के ऊपर कम्बल डालकर वह रोवे। नदी के किनारे, हों ! बाहर। आहाहा ! यह छप्पनिया का दिखाव अनन्त बार ऐसे प्रसंग अज्ञान में बने हैं। यह कहाँ नया प्रसंग है। यह मानो कि उसे हुआ, तू भी गया था अनन्त बार, सुन न ! समझ में आया ? गायें रोवे तो सब झुनझुनी हो गयी हों। रोवे इसलिए ...बहुत नहीं इसलिए सूख जाए अन्दर। २५-५० गायें खड़ी हों। नजर से देखा है, हों ! आहाहा ! कितने वर्ष हुए ? ७०-७१ हुए। ५६ के ७१ वर्ष हुए। नजर से देखा है। उमराला के बाहर निकलकर नदी के किनारे गायों के झुण्ड खड़े हों। घास न मिले। एक तिनका नहीं मिले। उसमें फाल्गुन और चैत्र अन्तिम आया। खड़ी-खड़ी सूख गयी बेचारी, घास नहीं। पानी भी कैसे भावे ? ऐसे अवतार मिथ्यात्व में आत्मा के भान बिना आत्मा क्या है, उसके सम्यग्दर्शन बिना, मिथ्यात्व के ऐसे अनन्त अवतार किये। जरा कुछ अनुकूलता आयी, वहाँ मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो गयी। जाओ ! आहाहा ! मानो हम क्या हैं ! धूल भी नहीं, सुन न !

आत्मा अन्तर आनन्द का धाम प्रभु है। उसका साधन कहते हैं, पर के कारण की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। हड्डियाँ भले निर्बल हो परन्तु अपना चारित्र साधन ऐसे में भी कर सकता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

गाथा-५५

आगे फिर कहते हैं –

तिलतुसमत्तणिमित्तसम बाहिरग्गंधसंगहो णत्थि।
पव्वज्ज हवइ एसा जह भणिया सव्वदरसीहिं।।५५।।

तिलतुषमात्रनिमित्तसमः बाह्यग्रंथसंग्रहः नास्ति।
प्रव्रज्या भवति एषा यथा भणिता सर्वदर्शिभिः।।५५।।

तिल–तुष प्रमाण भि नहीं अन्तः–बाह्य परिग्रह का ग्रहण।
होती प्रव्रज्या इस विधि यह सर्वदर्शी का कथन।।५५।।

अर्थ – जिस प्रव्रज्या में तिल के तुषमात्र के संग्रह का कारण इस प्रकार भावरूप इच्छा अर्थात् अन्तरंग परिग्रह और उस तिल के तुषमात्र बाह्य परिग्रह का संग्रह नहीं है इसप्रकार की प्रव्रज्या जिस प्रकार सर्वज्ञदेव ने कही है, उसी प्रकार है, अन्य प्रकार प्रव्रज्या नहीं है, ऐसा नियम जानना चाहिए। श्वेताम्बर आदि कहते हैं कि अपवादमार्ग में वस्त्रादिक का संग्रह साधु को कहा है, वह सर्वज्ञ के सूत्र में तो नहीं कहा है। उन्होंने कल्पित सूत्र बनाये हैं, उनमें कहा है, वह कालदोष है।

गाथा-५५ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं – ५५।

तिलतुसमत्तणिमित्तसम बाहिरग्गंधसंगहो णत्थि।
पव्वज्ज हवइ एसा जह भणिया सव्वदरसीहिं।।५५।।

सर्वदर्शी भगवान ने ऐसा कहा, ऐसा कहते हैं। देखो न! आहाहा! उसमें '**भणिया–भणिया**' कहा। यहाँ कर्मक्षय का कारण '**भणिया**' कहा। '**भणिया**' तो आया। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य महाराज। जगत की करुणा का विकल्प उठा है न। अरे! भाई! सर्वदर्शी

त्रिलोकनाथ परमात्मा ने प्रव्रज्या ऐसी कही है, साधुपद ऐसा होता है कि जिसे कुछ ममता जरा भी नहीं है। आहाहा!

तिल के तुषमात्र के संग्रह का कारण इस प्रकार भावरूप इच्छा अर्थात् अन्तरंग परिग्रह... नहीं होता। एक तिल का छिलका। छिलका-छिलका। तिल का छिलका। पपड़ी का छिलका। तिल का छिलका होता है न ऊपर? अन्दर तेल होता है। छिलका, उसके पपड़ी का छेड़ा—अंश। इतना भी परिग्रह मुनि हो, उसे नहीं होता। ऐसी मुनिदशा बिना मुक्ति तीन काल में प्राप्त नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

तिल के तुषमात्र के संग्रह का कारण... इच्छा लेनी है न? वह परिग्रह बाहर लेंगे बाद में। एक तिल के तुष जितना संग्रह करने की जो इच्छा, ऐसा कहते हैं। वह अन्तरंग परिग्रह है, वह उन्हें नहीं होता। आहाहा! **और उस तिल के तुषमात्र बाह्य परिग्रह का संग्रह नहीं है...** दो बातें ली हैं। अन्दर में इच्छा की वृत्ति इतनी नहीं कि तिल का एक टुकड़ा तुष का छोड़ अर्थात् उसके छिलके को रखूँ, ऐसी इच्छा ही जिन्हें नहीं है और बाहर में एक वस्त्र का टुकड़ा भी जिन्हें नहीं है। आहाहा! चक्रवर्ती, भरत चक्रवर्ती छियानवें हजार स्त्रियाँ, छह खण्ड का धनी, उसने भी यह छोड़कर ऐसी दशा धारण की थी, तब वह मुक्ति को प्राप्त हुए। समझ में आया?

भरत चक्रवर्ती, जिसके घर में छियानवें करोड़ तो सैनिक, छियानवें करोड़ तो गाँव, छियानवें हजार रानियाँ, बहत्तर हजार नगर, अड़तालीस हजार पाटण। आत्मा का समकित लेकर भान किया था पहले से। अहो! हम तो आत्मा हैं, आनन्द हैं। यह विकल्पमात्र, वह हमारी चीज़ नहीं। शरीरमात्र, राग-फाग, वह हमारी चीज़ नहीं। ऐसा भान तो प्रथम गृहस्थाश्रम में भगवान की अस्ति में हो गया। समझ में आया? ऋषभदेव भगवान के पुत्र। फिर भगवान के मोक्ष पधारने के पश्चात् चारित्र हुआ। समझ में आया? परन्तु ऐसी दशा। पाँच सौ धनुष का देह। दो हजार हाथ ऊँचा। नग्न मुनि। एक वस्त्र का टुकड़ा नहीं। यह बाहुबली, लो न। बाहुबली उनके छोटे भाई। सत्तावन फीट की प्रतिमा है न वहाँ? श्रवणबेलगोला। वे दूसरे नम्बर के पुत्र। भगवान ऋषभदेव के पहले पुत्र भरत चक्रवर्ती और दूसरे बाहुबली। सवा पाँच सौ धनुष का उनका देह था। है न वहाँ? हजार वर्ष की मूर्ति है। अन्दर में उतर गये हैं। आनन्द का अनुभव करते हैं।

मुमुक्षु : पूरी जाल लिपट गयी तो भी खबर नहीं पड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी खबर नहीं पड़ी। बेलडियाँ लिपट गयीं। यह बेलड़ी है न! बाहर में नग्न, ऐसी स्थिति है न। जवाहरलाल नेहरु एक बार देखने गये थे। देखकर वे भी प्रसन्न हो गये। नहीं तो वे कहीं बहुत... आहाहा! यह! जिनकी निर्दोष बाह्य दशा दिखती है। तब इन्दिरा साथ में थी। बहुत वर्ष पहले। है, हजार वर्ष की मूर्ति है। श्रवणबेलगोला। भाई! गये नहीं तुम? वहाँ जा आये। वहाँ भी गये नहीं। मूडबिद्री। हम तो दो बार वहाँ जा आये। आहाहा! ध्यान में उतर गये हैं। वे तो उस भव में मोक्ष गये। उस भव में देह छूट गयी। भरत चक्रवर्ती मोक्ष गये।

कहते हैं, जिसे तिल के टुकड़े का तुष अर्थात् छिलका, इतना रखने की इच्छा नहीं और बाहर में चीज़ नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी दशा बिना चारित्र नहीं होता, भाई! ऐसा कहते हैं। चारित्र अर्थात् आनन्द का साधन। मुक्ति का किनारा जिन्हें निकट आया है। आहाहा!

श्रीमद् में आता है न, मूढ़भाव, नग्नभाव, मूढ़भाव सह अस्नानता। उनने भावना भायी है। आत्मा का भान था श्रीमद् राजचन्द्र को। लाखों रुपये का मोती का व्यापार था। मैं यह नहीं, यह मेरी चीज़ नहीं, ऐसा अन्तर के अनुभव में था और उसकी भावना की थी। लो। आहाहा! ओहो! 'नग्नभाव मूढभाव सह अस्नानता, अदन्त धोवन आदि परम प्रसिद्ध जो...' देखो! भाषा कैसी ली है! ऐसा मुनिपना तो प्रसिद्ध है। ऐसा तो वीतरागमार्ग में प्रसिद्ध है, ऐसा कहते हैं। 'अदन्त धोवन..' दाँतुन करे (नहीं)। आनन्दकन्द में झूलता प्रभु, चारित्र अर्थात् क्या! वह तो परमेश्वर के महल में प्रविष्ट हो गया है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, नग्नभाव, मूढभाव सह अस्नानता। अन्तर के आनन्द का उफान आता है, उसे इस बाहर की चीज़ का कुछ भी संयोग सम्बन्ध नहीं होता। आहाहा! अरे! चारित्र कैसा होता है, ऐसा इसने सुना नहीं। अभी धर्म कैसा होता है, चारित्र का धर्म। करे तो कहाँ से? परन्तु यह चारित्र, धर्म समकित सहित का कैसा होता है, ऐसा इसने सुना नहीं। इसे रुचा नहीं, इसे सुहाया नहीं, इसे जँचा नहीं।

कहते हैं, ऐसे **सर्वज्ञदेव ने कही है,...** देखो! जिसे तिल-तुषमात्र बाहर का परिग्रह का कण न हो, उसे संग्रह करने की इच्छा न हो। ऐसी प्रव्रज्या सर्वज्ञदेव ने कही है। है?

आहाहा! त्रिलोकनाथ साक्षात् भगवान, महावीर परमात्मा तो मुक्ति में पधारे। भगवान विराजते हैं। अभी शरीररूप से हैं। अरिहन्त सीमन्धर परमात्मा। ऐसा फरमाते हैं कि भगवान ऐसा कहते हैं। आत्मा के सम्यक् अनुभव के साक्षात्कारसहित, समकित के अनुभवसहित चारित्र होता है तो ऐसा होता है, ऐसा भगवान ने कहा है। समझ में आया?

जिस प्रकार सर्वज्ञदेव ने कही है, उसी प्रकार है, अन्य प्रकार प्रव्रज्या नहीं है, ऐसा नियम जानना चाहिए। श्वेताम्बर आदि कहते हैं कि अपवादमार्ग में वस्त्रादिक का संग्रह साधु को कहा है, वह सर्वज्ञ के सूत्र में तो नहीं कहा है। बहुत बदल गया, अभी बहुत बदल गया। छोटे-छोटे लड़के को अभी कुछ भान नहीं होता। माँ... माँ... करे। खाना है, ऐसा कहे तो फिर हलवाई की दुकान में ले जाये। ऐसा सुना था। यह साधु। अर र! बापू! साधु किसे कहें? अभी उसे श्रद्धा की खबर नहीं, साधु कैसा हो? समझ में आया? इसका उसे ज्ञान नहीं। उसे साधुपना आवे कहाँ से? समझ में आया?

मुमुक्षु : पहले उसे ... फिर तैयार करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : तैयार क्या करे धूल में? अज्ञान है न। आहाहा! साधुपना नाम धराता है और अज्ञानी मिथ्यादृष्टि नाम धरावे, वह तो मिथ्यात्व को पोसता है। जिसे-तिसे मुंडा इकट्ठे करने चलो। यहाँ तो कहते हैं, भगवान ने तो ऐसा कहा है, बापू! कहो, शान्तिभाई! ऐसा मार्ग कहा है। श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापन्थी, तुलसी आदि है न? वे सब कहते हैं कि हमारे तो वस्त्र का संग्रह भगवान ने कहा है। यह अज्ञानी के बनाये हुए शास्त्रों में कहा है। भगवान के शास्त्र में यह है नहीं। आहाहा! भारी काम कठिन पड़े लोगों को। सम्प्रदाय की बात आवे, इसलिए कठिन पड़े, हों!

मुमुक्षु : आत्मा रह जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : रह जाये, बापू! वस्तु तो यह है, ऐसी है। वस्तु की स्थिति तो जैसी है, वैसी है। कोई बदलना चाहे तो कहीं बदल जायेगी? आहाहा!

'कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ?' ऐसा कहा। 'अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा। कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो, सर्व भाव से औदासीन्य वृत्ति करी' इसमें भी आया, देखो! 'मात्र देह वह संयम हेतु होय जब।' एक देह के अतिरिक्त कुछ नहीं। ऐसा

तो उसमें भी आया। अपूर्व अवसर में आता है।'मात्र देह वह संयम हेतु होय जो। अन्य कारणे अन्य कछु चाहूँ नहीं, देह में भी किंचित् मूर्छा न होय जो। अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा।' आहाहा! देखो! यह गृहस्थाश्रम में थे। लाखों का मोतियाँ का व्यापार था। बापू! यह नहीं। यह नहीं। हमें ऐसा मुनिपना कब होगा? बाह्य में और अभ्यन्तर में। आहाहा! धन्य अवतार, धन्य भव, धन्य काल कि हम यह रागरहित निर्ग्रन्थदशा कब धारण करें। समझ में आया?

सर्वज्ञ भगवान के शास्त्र में तो आत्मा का समकित, निर्विकल्प आत्मा का अनुभव उसे कहा है। भगवान आत्मा आनन्द का कन्द प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप, उसका अन्तर में अनुभव करके प्रतीति करना, उसे पहली धर्म की समकित दशा कहा है। आहाहा! और उसके उपरान्त चारित्र तो इसे कहा। **उन्होंने कल्पित सूत्र बनाये हैं, उनमें कहा है, वह कालदोष है।** अरे! काल ऐसा आया कि मार्ग को पूरा बदल डाला। ऐसा आचार्य कहते हैं। बापू! मार्ग तो है, वह रहेगा। किसी के बदलने से बदलेगा नहीं। परन्तु उसका आत्मा बदल गया। समझ में आया?

गाथा-५६

आगे फिर कहते हैं –

उवसग्गपरिसहसहा णिज्जणदेसे हि णिच्च [१]अत्थइ।
सिल कट्ठे भूमितले सव्वे आरुहइ सव्वत्थ॥५६॥

उपसर्गपरीषहसहा निर्जनदेशे हि नित्यं तिष्ठति।
शिलायां काष्ठे भूमितले सर्वाणि आरोहति सर्वत्र॥५६॥

उपसर्ग-परिषह सहें निर्जन देश में ही नित रहें।
सर्वत्र भूतल या शिला या काष्ठ पर ही सब रहें॥५६॥

अर्थ – **उपसर्ग अथवा देव, मनुष्य, तिर्यंच और अचेतनकृत उपद्रव और परीषह**

१. पाठान्तर – अच्छेइ।

अर्थात् दैव–कर्मयोग से आये हुए बाईस परीषहों को समभावों से सहना इस प्रकार प्रव्रज्यासहित मुनि है, वे जहाँ अन्यजन नहीं रहते ऐसे निर्जन वनादि प्रदेशों में सदा रहते हैं, वहाँ भी शिलातल, काष्ठ, भूमितल में रहते हैं, इन सब ही प्रदेशों में बैठते हैं, सोते हैं, 'सर्वत्र' कहने से वन में रहें और किंचित्काल नगर में रहें तो ऐसे ही स्थान पर रहें।

भावार्थ **– जैनदीक्षावाले मुनि उपसर्गपरीषह में समभाव रखते हैं और जहाँ सोते हैं, बैठते हैं, वहाँ निर्जन प्रदेश में शिला, काष्ठ, भूमि में ही बैठते हैं, सोते हैं, इस प्रकार नहीं है कि अन्यमत के भेषीवत् स्वच्छन्दी प्रमादी रहें, इस प्रकार जानना चाहिए।।५६।।**

गाथा–५६ पर प्रवचन

और कहते हैं कैसी होती है प्रव्रज्या? ओहोहो! छनावट, वह छनावट है न। सुनी न हो, सुनी।

उवसग्गपरिसहसहा णिज्जणदेसे हि णिच्च अत्थइ।
सिल कट्ठे भूमितले सव्वे आरुहइ सव्वत्थ।।५६।।

निर्जन देश में मुनि विचरते हैं। वनवास। मनुष्य का पगरव नहीं। हम अकेले आत्मा का साधन करेंगे। मनुष्य का पगरव नहीं। मनुष्य की बसावट नहीं, मनुष्य की बसावट तो नहीं परन्तु मनुष्य का पगरव नहीं। उसमें हम सिद्धपद के साधन चारित्र को वहाँ साधेंगे। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो बड़े बँगले पाँच–पाँच लाख के (बनावे)। आहाहा! अरे! साधु को वनवास होता है, बापू! उनकी स्थिति ही ऐसी हो जाती है। वहाँ उन्हें आत्मा के अतिरिक्त कहीं चैन नहीं पड़ता। समझ में आया?

जब राजकुँवर दीक्षित होते हैं न, आहाहा! उसमें आया है न भाई, नहीं? प्रवचनसार में। माता–पिता की, रानी की आज्ञा लेते हैं। हे माता! तू शरीर की जननी है। आत्मा की जननी तू नहीं है। माँ! आहाहा! मेरा आत्मा कहीं तूने जना नहीं है। इस शरीर की तू जननी है माँ! अब हम हमारे स्वरूप का (साधन करने वन में जाते हैं)। राजकुँवर, हों! जिनके (घर में) नीचे नीलमणि की शिला टाईल्स की जगह बिछी हो। उदास... उदास। श्मशान

में मुर्दे को उठाकर ले जाये। माता! हम स्वयं श्मशान में जाकर ध्यान करेंगे। आहाहा! यह चारित्रदशा, बापू! चारित्र अर्थात् क्या? समझ में आया?

कहते हैं, माता! हम आनन्द में रहने के लिये अब वनवास में जायेंगे, माँ! फिर से माँ नहीं बनायेंगे, हों! अब हम फिर से अवतार नहीं लेंगे। प्रभु! माता! रोना हो उतना रो ले। दूसरी माँ नहीं बनायेंगे। अब हम गर्भ में नहीं आनेवाले। आहाहा! हम आनन्द के स्वरूप के ढ़ेर में पड़ने से अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त करेंगे। हमें अब अवतार नहीं होगा। ऐसा चारित्र अंगीकार करते हैं, उसे चारित्र कहते हैं। कुछ भी कर-करके नाम बनावे साधु और साध्वी। पण्डितजी! आहाहा! जिसका वैराग्य उछल गया होता है। जिसे रजकण-रजकण में शान्ति जिसके शरीर में दिखती है। आहाहा! अकषायस्वभाव प्रगट हुआ है। अकषाय पूर्ण स्वभाव की प्राप्ति के साधन में पड़ा है। आहाहा! प्रगट करना है मोक्ष केवल। उसे कुछ दूसरा नहीं चाहिए। आहाहा!

कहते हैं, उसे **उपसर्ग...** आवे। लो!

उवसग्गपरिसहसहा णिज्जणदेसे हि णिच्च अत्थइ।
सिल कट्ठे भूमितले सव्वे आरुहइ सव्वत्थ।।५६।।

अर्थ - उपसर्ग अथवा देव, मनुष्य, तिर्यंच और अचेतनकृत... देवकृत उपसर्ग आवे तो सहन करे। भूतड़े हा... हो... करे जंगल में। मुनि तो जंगल में बैठे होते हैं। सिंह दहाड़ आती है। आहाहा! पड़े होते हैं। मनुष्य का उपसर्ग हो, किसी अचेतन का। वृक्ष पड़ा, दीवार गिरी, वह अचेतन है। **और परीषह अर्थात् दैव-कर्मयोग से आये हुए बाईस परीषहों को समभावों से सहना...** शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्तिरस में जैसे पूरणपोली गर्म करके ताजा घी में डालकर गर्म-गर्म ऐसी चिमटे से उठाते हैं न? हाथ में नहीं रहती, ऐसी गर्म होती है न पूरणपोली? पूरणपोली। घी में डाले। होवे गर्म। अर्थात् क्या कहलाता है तुम्हारे वह? चिमटा। चिमटा नहीं, संडासी। उसमें डालते हैं न? डुबोते हैं। रस से सराबोर हो गयी होती है। किसके? घी के रस से। आहाहा! ऐसा किया है न? करते हैं न? मेहमान आवे तब। पहले तो जवान मर जाये तो सुखड़ी (एक मिठाई) नहीं खिलाते थे परन्तु ऐसी रोटी खिलाते थे। (संवत्) १९५७ की बात है। ५७ के वर्ष। आहा! यह तो

नजरों से देखी हुई, हमारे घर की बात है। बड़े भाई गुजर गये थे। तो सुखड़ी नहीं खिलाते, परन्तु यह सुखड़ी का बाप है। यह क्या है ? सुखड़ी में तो मर्यादित घी आता है।

यहाँ तो कहना है, आत्मा आनन्द के रस में इतना सराबोर हो जाये कि आनन्द के टपके पड़ते हों, अन्दर झरते हों। अतीन्द्रिय आनन्द झरता हो, उसे चारित्र कहा जाता है। ऐसी मेहमानगति आत्मा अपने लिये करे और वह मोक्ष का मण्डप जिसने डाला और अन्दर शान्ति का सागर उछला है, उसे प्रव्रज्या चारित्र कहा जाता है।

(**श्रोता** : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१७३, गाथा-५६ से ६०, बुधवार, पौष कृष्ण २, दिनांक १३-०१-१९७१

बोधपाहुड़। प्रव्रज्या की व्याख्या है। ओहो! प्रव्रज्या अर्थात् साधुपना चारित्र किसे कहते हैं, उस चारित्रवन्त को ही मुक्ति और मोक्ष होता है। मोक्ष अर्थात् आत्मा की परम आनन्ददशा। अतीन्द्रिय परम आनन्दस्वरूप आत्मा, उसकी मोक्षदशा अर्थात् अतीन्द्रिय पूर्ण आनन्द की दशा प्राप्त (हो), उसे मोक्ष कहते हैं। मोक्ष चारित्रवन्त को होता है। चारित्र सम्यग्दृष्टि हो तो हो सकता है। यह आयेगा।

भावार्थ – जैनदीक्षावाले मुनि... जैन अर्थात् आत्मा की वीतरागता जिसने प्रगट की है। वस्तु का स्वभाव आत्मा तो वीतराग निर्दोष जिनस्वरूप ही है। परन्तु उसे अन्तर में ध्यान करके, एकाग्र करके जिसने वर्तमान दशा में वीतरागपने की दीक्षा मुनि हुए हैं, वे **उपसर्गपरीषह में समभाव रखते हैं...** उन्हें देव, मनुष्य और तिर्यंच की ओर से प्रतिकूलता (हो), वह उपसर्ग, उसमें समभाव रहता है और कर्म के उदय से कोई क्षुधा, तृषा आदि हो, उसमें भी समभाव रहता है। अमृत के स्वादिया को उसमें परीषह में समभाव होता है, ऐसा कहते हैं। मुनि अर्थात् आत्मा का अमृतस्वभाव, अतीन्द्रिय अमृतस्वभाव का जहाँ स्वाद है, चैतन्य की जाति का और वह भी मुनि के योग्य उग्र आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादिया जीव, उसे अनुकूलता-प्रतिकूलता में समभाव होता है, ऐसा कहते हैं।

और जहाँ सोते हैं, बैठते हैं, वहाँ निर्जन प्रदेश में... ओहो! जहाँ मनुष्य का

भी पगरव नहीं। ध्यान आनन्द... आनन्द... आनन्द... जिसे मनुष्य के कोलाहल में भी रहना नहीं रुचता। कलवलाहट में रहना नहीं सुहाता। उसे आत्मा के आनन्द में रहना सुहाता है, ऐसा कहते हैं। तुम्हारे जैसे मकान और स्त्री-पुत्र बिना नहीं चलता, उसी प्रकार उन्हें जंगल के बिना नहीं चलता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जहाँ आत्मा का आनन्द साधते हैं, उसमें भी साधु के योग्य अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद को साधते हैं, उन्हें तो निर्जन एकान्त-एकान्त (होता है), जहाँ कोई शब्द नहीं, मनुष्य का पगरव नहीं, ऐसे आत्मा के ध्यान में रहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

और, **निर्जन प्रदेश में शिला,...** होवे कोई पत्थर की। उसमें बैठते हैं। **काष्ठ,...** की हो। अथवा नीचे **भूमि में ही बैठते हैं, सोते हैं, इस प्रकार नहीं है कि अन्यमत के भेषीवत् स्वच्छन्दी प्रमादी रहें,...** ऐसा कहते हैं, वीतरागस्वभाव का भान होता है और दशा प्रगट हुई है, उसे अन्यमति के वेशवाले चाहे जो खावे-पीवे, पलंग (के ऊपर) सोवे, वस्त्र पहने, जंगल में न रहे और नगर में बाग-बगीचा रखकर सोवे, ऐसा मार्ग वीतराग का नहीं है। ऐसा कहते हैं।

गाथा-५७

आगे अन्य विशेष कहते हैं -

पसुमहिलसंढसंगं कुसीलसंगं ण कुणइ विकहाओ।
सज्झायझाणजुत्ता पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।५७।।

पशुमहिलाषंढसंगं कुशीलसंगं न करोति विकथाः।
स्वाध्यायध्यानयुक्ता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ।।५७।।

वे पशू नारी षंढ-व्यभिचारी का संग नहीं करें।
विकथा नहीं स्वाध्याय ध्यान सहित प्रव्रज्या जिन कहें।।५७।।

अर्थ **- जिस प्रव्रज्या में पशु-तिर्यंच, महिला (स्त्री), षंढ (नपुंसक) इनका संग तथा कुशील (व्यभिचारी) पुरुष का संग नहीं करते हैं; स्त्री कथा, राज कथा, भोजन कथा और चोर इत्यादि की कथा जो विकथा है, उनको नहीं करते हैं तो क्या करते हैं?**

स्वाध्याय अर्थात् शास्त्र जिनवचनों का पठन-पाठन और ध्यान अर्थात् धर्म-शुक्ल ध्यान इनसे युक्त रहते हैं। इस प्रकार प्रव्रज्या जिनदेव ने कही है।

भावार्थ – जिनदीक्षा लेकर कुसंगति करे, विकथादिक करे और प्रमादी रहे तो दीक्षा का अभाव हो जाय, इसलिए कुसंगति निषिद्ध है। अन्य भेष की तरह यह भेष नहीं है। यह मोक्षमार्ग है, अन्य संसारमार्ग है।।५७।।

गाथा-५७ पर प्रवचन

आगे अन्य विशेष कहते हैं –

पसुमहिलसंढसंगं कुसीलसंगं ण कुणइ विकहाओ।
सज्झायझाणजुत्ता पव्वज्जा एरिसा भणिया।।५७।।

ओहोहो! सर्वत्र यही शब्द रखते हैं। भगवान केवलज्ञानी परमात्मा ने ऐसी प्रव्रज्या कही है, भाई! मुक्ति के मार्ग के पन्थ कठिन हैं। संसार के मार्ग में तो अनादि से दुःखी होकर चार गति में भटक रहा है। घड़ीक में मनुष्य (भव) मिले और फिर मनुष्य मरकर जाये चींटी, कौवे, ढोर में। क्योंकि आत्मा का भान नहीं है। मिथ्यात्वभाव में घुट-घुट कर पड़ा है अन्दर। आहाहा! उसके फल में बड़ा राजा हो, वह मरकर ढोर में, पशु में, नरक में जाता है। ऐसे नरक के और चार गति के पर्दे के भव अनन्त किये।

जिसने मुनिपना भव के अभाव के लिये लिया है, वह जीव **पशु-तिर्यंच, महिला (स्त्री),...** का संग नहीं करता। कहते हैं। एकान्त-एकान्त। **तिर्यंच, (स्त्री), षंढ (नपुंसक)...** उनका संग उसे नहीं होता। स्वभाव के संग के समक्ष पर का संग उसे कहाँ हो? आहाहा! भगवान आत्मा स्वयं राग से भिन्न असंग तत्त्व है। वहाँ पर का संग कहाँ है? ऐसा असंग तत्त्व प्रभु, निज स्वरूप के साधन में स्थित, उसे पशु और तिर्यंच और स्त्री का संग नहीं होता, उसे नपुंसक का संग नहीं होता। षंढ अर्थात् नपुंसक। यह पावैया और हीजड़े होते हैं न? बहुत विकारी उनका आत्मभाव होता है। ऐसो का संग धर्मात्मा नहीं करता। आहाहा! **इनका संग तथा कुशील (व्यभिचारी) पुरुष का संग नहीं करते हैं;...** बाकी रहा पुरुष। पुरुष में जो व्यभिचारी पुरुष है, (जो) मात्र विषय की वासना में ही

गदगद होकर पड़े हैं, ऐसे व्यभिचारी पुरुषों का संग भी मुनि नहीं करते। **स्त्री कथा, राज कथा, भोजन कथा और चोर इत्यादि की कथा जो विकथा है, उनको नहीं करते हैं...** स्त्री ऐसी होती, राजा ऐसे होते हैं, भोजन ऐसा होता है, चोरी ऐसे चोरी करे, ऐसी विकथा वे नहीं करते। वह सब पाप कथा है। **तो क्या करते हैं?**

स्वाध्याय अर्थात् शास्त्र जिनवचनों का... सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे हुए सिद्धान्त, शास्त्र की स्वाध्याय करते हैं। अपने आत्मा की बात जो वीतरागदेव ने की है, उनके शास्त्र का स्वाध्याय **पठन-पाठन...** करे। पढ़े-पढ़ावे। उसमें शुभभाव में चित्त को रोके। **ध्यान अर्थात् धर्म-शुक्ल ध्यान इनसे युक्त रहते हैं।** आत्मा का धर्म अर्थात् स्वभाव, उसके ध्यान में मस्त रहे। शुक्ल-उज्ज्वल ध्यान उग्र। **इस प्रकार प्रव्रज्या जिनदेव ने कही है।** लो! ऐसा चारित्र का साधुपना—मुनिपना भगवान ने ऐसा कहा है।

भावार्थ – जिनदीक्षा लेकर कुसंगति करे,... साधु नग्न दिगम्बर मुनि होकर कुसंग ऐसे स्त्री, पशु, व्यभिचारी पुरुष आदि का संग करे **प्रमादी रहे तो दीक्षा का अभाव हो जाय,...** आनन्दस्वरूप वीतरागभाव का तो उसमें अभाव हो जाता है। भगवान आत्मा का स्वरूप ही अतीन्द्रिय आनन्द और वीतरागस्वरूप है। ऐसा जो भान हुआ, वह ऐसे यदि संग करे तो वह भान चला जाता है। जैनदीक्षा रहे नहीं। दुनिया से विरुद्ध है, भाई! यह सब तो। दुनिया में जो रचे-पचे पड़े हैं, वही सब सर्वस्व मानकर बैठे है न? शरीर और पैसा, इज्जत, धूल और धाणी, माँस, हड्डियाँ और चमड़ी। वह तो जगत की चीज़ है। उस चीज़ में जो रचे-पचे हैं, ऐसे जीवों का संग मुनि नहीं करते, ऐसा कहते हैं। क्योंकि वह उनकी बातें करेगा कि इसमें ऐसा होता है, इसमें मजा आता है, इसमें अमुक। दूसरा क्या लायेगा उसके पास से? समझ में आया? **इसलिए कुसंगति निषिद्ध है।** इसलिए कुसंग का धर्मात्मा को निषेध है। **अन्य भेष की तरह यह भेष नहीं है।** दूसरे वेश की तरह वेश नहीं कि ऐई! क्या कहलाये पीवे वह? गाँजा, चरस और वह सब करे। कसुंबा निकाले अफीम का। स्त्रियों का संग करे, परिचय करे। ऐसा मार्ग वीतराग आत्मस्वरूप के साधकजीव का नहीं है।

यह मोक्षमार्ग है, अन्य संसारमार्ग है। वेश नहीं, यह वीतराग तो मोक्षमार्ग है। आत्मा पुण्य-पाप के रागरहित स्वरूप को जहाँ साधता है, ऐसे आनन्द के अनुभवी जीव तो मोक्षमार्ग में हैं और दूसरा तो संसारमार्ग है। संसार में स्त्री, पुरुष, षंढ आदि संग में रहना और कुकथा करना, वह संसारमार्ग है।

गाथा-५८

आगे फिर विशेष कहते हैं -

तववयगुणेहिं सुद्धा संजमसम्मत्तगुणविसुद्धा य।
सुद्धा गुणेहिं सुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया।।५८।।

तपोव्रतगुणैः शुद्धा संयमसम्यक्त्वगुणविशुद्धा च।
शुद्धा गुणैः शुद्धा प्रव्रज्या ईदृशी भणिताः।।५८।।

तप व्रत गुणों से शुद्ध संयम शुद्ध समकित गुण-सहित।
सब शुद्ध गुण से शुद्ध ऐसी प्रव्रज्या जिनवर-कथित।।५८।।

अर्थ - जिनदेव ने प्रव्रज्या इस प्रकार कही है कि तप अर्थात् बाह्य-आभ्यन्तर बारह प्रकार के तप तथा व्रत अर्थात् महाव्रत और गुण अर्थात् इनके भेदरूप उत्तरगुणों से शुद्ध हैं। 'संयम' अर्थात् इन्द्रिय मन का निरोध, छहकाय के जीवों की रक्षा, 'सम्यक्त्व' अर्थात् तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण निश्चय-व्यवहाररूप सम्यग्दर्शन तथा इनके 'गुण' अर्थात् मूलगुणों से शुद्ध, अतिचार रहित निर्मल है और जो प्रव्रज्या के गुण कहे उनसे शुद्ध हैं, भेषमात्र ही नहीं है; इस प्रकार शुद्ध प्रव्रज्या कही जाती है इन गुणों के बिना प्रव्रज्या शुद्ध नहीं है।

भावार्थ - तप व्रत सम्यक्त्व इन सहित और जिनमें इनके मूलगुण तथा अतिचारों का शोधना होता है इस प्रकार दीक्षा शुद्ध है। अन्य वादी तथा श्वेताम्बरादि चाहे जैसे कहते हैं, वह दीक्षा शुद्ध नहीं है।।५८।।

गाथा-५८ पर प्रवचन

आगे फिर विशेष कहते हैं -

तववयगुणेहिं सुद्धा संजमसम्मत्तगुणविसुद्धा य।
सुद्धा गुणेहिं सुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया।।५८।।

ओहोहो ! सब जगह कहा। भगवान ने तो ऐसा कहा है भाई !

अर्थ - जिनदेव (वीतरागदेव ने) ने प्रव्रज्या इस प्रकार कही है कि तप अर्थात् बाह्य-आभ्यन्तर बारह प्रकार के तप... करे। बाह्य-अभ्यन्तर है न ? अनशन, उनोदर, वृत्तिसंक्षेप विस्तार, **व्रत अर्थात् पाँच महाव्रत...** अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। जिसकी दशा बाह्य अत्यन्त नग्न-दिगम्बर होती है। अन्तर में जिसे वीतरागता निर्ग्रन्थता प्रगट हुई हो, ऐसे पंच महाव्रतवाले **और गुण अर्थात् इनके भेदरूप उत्तरगुणों से...** महाव्रत के भेद, उत्तरगुण, **शुद्ध हैं।** उससे शुद्ध हो, निरतिचार हो, ऐसा कहते हैं।

'संयम' अर्थात् इन्द्रिय मन का निरोध,... हो। पाँच इन्द्रिय और मन को रोका हो, आत्मा के आनन्द में जिसका झुकाव हो। आहाहा ! समझ में आया ? मन और इन्द्रिय की प्रवृत्ति रोकी हो, ऐसा कहते हैं। अनीन्द्रिय और मनरहित आत्मा, उसके ज्ञान-ध्यान में तत्पर हो। आहाहा ! देखो ! यह चारित्र। और **छहकाय के जीवों की रक्षा,...** पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति जीव है और त्रस, उन्हें मारने का विकल्प नहीं होता। त्रस। एक शब्द प्रयोग किया है। छह काय की जीव की दया का भाव होता है। एकेन्द्रिय फूल की पंखुड़ी भी दबाने का भाव उसे नहीं होता। फूल की पंखुड़ी में असंख्य एकेन्द्रिय जीव हैं। समझ में आया ?

'सम्यक्त्व' अर्थात् तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण निश्चय-व्यवहाररूप सम्यग्दर्शन... सहित हो, लो ! अकेला नग्नपना-दिगम्बरपना नहीं। आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, अनन्त गुण का साहिबा नाथ, उसका उसे सम्यग्दर्शन, अनुभव साक्षात्कार हुआ हो। समझ में आया ? तत्त्व अर्थात् आत्मा, जड़ आदि तत्त्व सब, उसमें आत्मतत्त्व का उसे भान हुआ हो तो वह दीक्षा, दीक्षा है। बाकी आत्मा के भान बिना की दीक्षायें रण में शोर मचाने जैसी है। नग्न घूमे या बाबा हो। समझ में आया ?

देखो ! **तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण...** निश्चय और व्यवहार दोनों हैं। निश्चय आत्मा का भान, सम्यग्दर्शन अर्थात् धर्म की पहली शुरुआत। वस्तु जो आत्मा अनीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु है, उसकी एकाग्रता में अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद की जिसे प्रतीति है कि मैं आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द हूँ, इसका नाम सम्यग्दर्शन। इस सम्यग्दर्शन बिना मुनिपना नहीं हो सकता। आहाहा ! समझ में आया ? **तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण निश्चय-व्यवहार...** निश्चय

में सम्यग्दर्शन यह। स्वस्वभाव का आश्रय लेकर ज्ञान और आनन्द का जिसे प्रगट पर्याय में वेदन-अनुभव हो और उसमें प्रतीति वर्ते, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन बिना साधु नहीं हो सकता। समझ में आया? और व्यवहार सम्यग्दर्शन; सच्चे देव-गुरु और शास्त्र, नव तत्त्व की श्रद्धा का विकल्प, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन। ऐसा होता है। जब तक पूर्ण वीतराग न हो, निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार, यह राग, उसमें सम्यग्दर्शन का आरोप है, ऐसा उसे होता है। आत्मा का ज्ञान होता है तो इस ओर शास्त्र का ज्ञान भी होता है। यहाँ आत्मा में स्थिरता होती है तो इस ओर पंच महाव्रत के विकल्प भी होते हैं। यह निश्चय-व्यवहारमोक्षमार्ग कहा जाता है।

और **इनके 'गुण' अर्थात् मूलगुणों से शुद्ध, अतिचार रहित निर्मल है...** लो! सब उत्तरगुण समिति-गुप्ति आदि। शान्तरूप से सब निर्मलता वीतरागदशा ऐसी प्रगट हुई होती है कि सब उसके गुणों की निरतिचारता होती है। अर्थात् अतिचार के दोषों का खण्ड उसे नहीं होता। और, **और जो प्रव्रज्या के गुण कहे उनसे शुद्ध हैं, भेषमात्र ही नहीं है;...** ऐसा। नग्न साधु हुए, स्त्री-पुत्र छोड़े, इसलिए साधु—ऐसा नहीं है। वह तो बाहर की चीज़ है। उसके साथ क्या सम्बन्ध? आहाहा! जिसे अभ्यन्तर गुण प्रगट हुए हैं। जैसे कली खिलती है, वैसे भगवान आत्मा में अनन्त शक्ति गुणरूप आत्मा पदार्थ वस्तु है। उसमें एकाग्र होने पर वह खिलता है। शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, निर्मलता, सम्यक्त्व, चारित्र आदि। ऐसी दशा से जीव पर्याय-अवस्था में आत्मा खिलता है। उसे प्रव्रज्या कहते हैं। अकेला वेश मात्र लेकर बैठे और यह वस्तु न हो तो वह साधु नहीं है, प्रव्रज्या नहीं है, मुनि नहीं है।

मुमुक्षु : वेश हो वहाँ अनुमान तो किया जाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं किया जाता। ऐसे वेश तो बहुतों ने धारण किये। उसमें क्या हुआ? नट भी ऐसा वेश धारण करता है। अन्तर की दशा के वेश और आनन्दसहित राग-विकल्प का अभाव करके निर्विकल्प का आनन्द-वेश प्रगट नहीं किया, उसका बाह्य वेश कहीं आत्मा को लाभदायक नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह प्रव्रज्या का अन्तिम बोल है न!

भेषमात्र ही नहीं है; इस प्रकार शुद्ध प्रव्रज्या... ऐसी शुद्ध प्रव्रज्या। आहाहा!

असंग प्रभु आत्मा, पर के-राग के संगरहित। शरीर-बरीर तो थोथा ऊपर कहीं रह गये। सर्प के ऊपर काँचली होती है न? काँचली। वह भिन्न है, सर्प भिन्न है। इसी प्रकार काँचली भिन्न है, भगवान अन्दर भिन्न है। आहाहा! ऐसा जिसे अन्तर में आत्मा के मूलभाव का अनुभव और तत्त्वदृष्टि हुई है, तदुपरान्त स्वरूप की निर्मलता है, उसे साधु कहते हैं। कहो, पण्डितजी! यह तो कहे, नग्न हुए और पंच महाव्रत पालते हैं। महाव्रत भी कब थे भान बिना? भारी कठिन बात, बापू! इसने इस पन्थ को अन्तर में देखा नहीं, जाना नहीं। इसके बिना बाहर के वेशमात्र से कहीं आत्मा को लाभ नहीं है। **इन गुणों के बिना प्रव्रज्या शुद्ध नहीं है।** अभ्यन्तर के आनन्द और अनुभव की दृष्टि बिना, आत्मा के अनुभव की दृष्टि और स्थिरता बिना प्रव्रज्या शुद्ध नहीं कहलाती।

भावार्थ – तप व्रत सम्यक्त्व इन सहित... इच्छा का निरोध और अमृतस्वरूप भगवान आत्मा का उफान अर्थात् ज्वार (आता है)। अन्तर आनन्दस्वरूप है, उसकी दशा में ज्वार आवे और इच्छा की उत्पत्ति न हो, ऐसी दशा को तप कहा जाता है। ऐसे भान बिना यह अपवास-बपवास करे, वह सब लंघन है। समझ में आया? सेठ! आहाहा! जहाँ भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ सचेत साहेबा। अकेला ज्ञान का सागर ऐसा अन्तर स्वभाव है, ऐसी सत्ता का अनुभव नहीं, उसका वेदन नहीं, उसका भान नहीं। ऐसे की यह सब दीक्षा लेकर बैठे, साधु-वेश (धारण करे), उसमें कुछ माल नहीं है। समझ में आया? आहाहा! लोग बाहर वेश धारण करे, वहाँ हो गये मानो... आहाहा! हो गये।

मुमुक्षु : नंगे पैर चले।

पूज्य गुरुदेवश्री : नंगे पैर चले, यह लोंच करावे। नंगे पैर तो यह सब ढोर चलते हैं। लोंच कराते हैं। भेड़ भी कराती है। छह महीने में नहीं निकालते? यह घेंटा। घेंटा समझते हो? घेंटा को क्या कहते हैं? भेड़। कातरे। घेंटा (के बालों) को छह महीने में कैंची से काटते हैं। ऐसी लगे, कहीं तो खून निकले। वह भेड़ देखी है न भेड़िया। भान बिना के। बाहर लोंच करे, उसमें क्या लाभ हो गया? वह तो संयोग की-जड़ की क्रिया है। चैतन्य जागृत ज्योत भगवान अन्दर है, उसका तो अनुभव सम्यग्दर्शन और ज्ञान नहीं और स्वरूप में जो स्थिरता चाहिए, उतनी शान्ति नहीं। अन्तर की शान्ति, इसके बिना तेरे वेश किस काम के? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

तप व्रत सम्यक्त्व इन सहित... हो, ऐसा कहते हैं। तप अर्थात् यह इच्छा का निरोध और अमृतस्वरूप आत्मा का तपना, प्रगट होना। जैसे सोना गेरु से शोभता और ओपता है। सोने को गेरु लगाने से ओपता और शोभता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप में इच्छा का अभाव करके आनन्द से शोभता है। अतीन्द्रिय आनन्द से तपता है, ऐसी दशा को तप कहा जाता है। बाकी अपवास किये, आठम की, अमुक किया और अमुक किया, प्रौषध किया, सब लंघन है। समझ में आया? गजब काम।

मूलगुण तथा अतिचारों का शोधना होता है, इस प्रकार दीक्षा शुद्ध है। पंच महाव्रतादि, अट्ठाईस मूलगुण, छोटे-बड़े दोष हों, उनसे रहित हों, उसे उसका साधुपना शुद्ध कहा जाता है। **अन्यवादी तथा श्वेताम्बरादि...** स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी आदि **चाहे जैसे कहते हैं, वह दीक्षा शुद्ध नहीं है।** वह दीक्षा है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! जयन्तीभाई! भारी कठिन काम। सब वस्त्र लेकर घूमते हैं न? पोटला बाँधे हों और ऐसे चले। वह प्रव्रज्या-साधु की (नहीं है)। मजदूर है।

मुमुक्षु : अब तो मनुष्य साथ में रखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य रखे तो भी कितने ही बाँधते हैं। पीछे बाँधते हैं, दो व्यक्ति रखे, साईकिल साथ में रखे। कोई पोटला साथ में रखे। अरे! भगवान! क्या हो गया यह?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका तो ठीक। उसके लिये करते हैं ... उसका प्रश्न नहीं।

श्वेताम्बर आदि अन्यवादी; वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ आत्मतत्त्व, ऐसा जिसे ज्ञान नहीं, ऐसे अन्यमति और श्वेताम्बर, स्थानकवासी आदि। उन सबकी दीक्षा, वह दीक्षा नहीं है। उनका साधुपना, वह साधुपना नहीं है। भारी कठिन काम। लोगों को कठिन लगे।

गाथा-५९

आगे प्रव्रज्या के कथन का संकोच करते हैं –

एवं [१]आयत्तणगुणपज्जंता बहुविसुद्धसम्मत्ते।
णिग्गंथे जिणमग्गे संखेवेणं जहाखादं।।५९।।

एवं [२]आयतनगुणपर्याप्ता बहुविशुद्धसम्यक्त्वे।
निर्ग्रंथे जिनमार्गे संक्षेपेण यथाख्यातम्।।५९।।

सुविशुद्ध समकित-युक्त जिन-निर्ग्रन्थ-पथ में ज्यों कहा।
है आयतन से प्रव्रज्या पर्यन्त सार यहाँ कहा।।५९।।

अर्थ – इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से आयतन अर्थात् दीक्षा का स्थान जो निर्ग्रन्थ मुनि उसके गुण जितने हैं, उनसे पज्जता अर्थात् परिपूर्ण अन्य भी जो बहुत से गुण दीक्षा में होने चाहिए वे गुण जिसमें हों इस प्रकार की प्रव्रज्या जिनमार्ग में प्रसिद्ध है। उसी प्रकार संक्षेप में कही है। कैसा है जिनमार्ग? जिसमें सम्यक्त्व विशुद्ध है, जिसमें अतिचार रहित सम्यक्त्व पाया जाता है और निर्ग्रन्थरूप है अर्थात् जिसमें बाह्य-अंतरंग परिग्रह नहीं है।

भावार्थ – इस प्रकार पूर्वोक्त प्रव्रज्या निर्मल सम्यक्त्वसहित निर्ग्रन्थरूप जिनमार्ग में कही है। अन्य नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य, वेदान्त, मीमांसक, पातंजलि और बौद्ध आदिक मत में नहीं है। कालदोष से जैनमत में भ्रष्ट हो गये और जैन कहलाते हैं इस प्रकार के श्वेताम्बरादिक में भी नहीं है।।५९।।

इस प्रकार प्रव्रज्या के स्वरूप का वर्णन किया।

गाथा-५९ पर प्रवचन

आगे प्रव्रज्या के कथन का संकोच करते हैं – ग्यारहवाँ बोल अन्तिम है न

१. पाठान्तरः – आयत्तणगुणपव्वज्जता। २. संस्कृत सटीक प्रति में 'आयतन' इसको सं. 'आत्मत्व' इसप्रकार है।

यह ? यहाँ तो सब निश्चय से बात की थी। प्रतिमा कौन ? कि भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, वह प्रतिमा। यह (पाषाण आदि की) प्रतिमा तो व्यवहार है, शुभभाव का कारण है। समझ में आया ? यह सब आया था न ? आयतन कौन ? देरासर / मन्दिर कौन ? मन्दिर आत्म भगवान आनन्द का कन्द, वह स्वयं मन्दिर आयतन है। ये मन्दिर तो बाहर की बात, शुभभाव / पुण्य हो। पुण्यभाव में निमित्त हों। वहाँ सब धर्म-बर्म का आयतन है ? आयतन तो यहाँ अन्दर है। आहाहा! गजब... ग्यारह बोल का वर्णन ऐसा आया। अन्तिम यह चारित्र का वर्णन प्रव्रज्या का आया।

एवं आयत्तणगुणपज्जंता बहुविसुद्धसम्मत्ते।
णिग्गंथे जिणमग्गे संखेवेणं जहाखादं।।५९।।

अर्थ – इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से आयतन अर्थात् दीक्षा का स्थान... वर्णन आया था न पहले ? दीक्षा कहाँ देना ? कोई जिनमन्दिर हो, जंगल हो, अकृत्रिम प्रतिमा और मन्दिर हो, वहाँ सामने दीक्षा देना, रहने के स्थान। **जो निर्ग्रन्थ मुनि उसके गुण जितने हैं,...** दीक्षा का ठिकाना और निर्ग्रन्थ मुनि के गुण। **जितने हैं, उनसे पज्जता अर्थात् परिपूर्ण...** वस्तु है। मुनिपने की। **अन्य भी जो बहुत से गुण दीक्षा में होने चाहिए, वे गुण जिसमें हों, इस प्रकार की प्रव्रज्या जिनमार्ग में...** कही है। लो! वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव ने ऐसी प्रव्रज्या कही है। **प्रसिद्ध है।** लो! यह तो कहते हैं, ऐसा जैन का मार्ग प्रसिद्ध है। बाह्य में मुनि तो ऐसे होते हैं। जंगलवासी, वनवासी, दिगम्बर सन्त आत्मध्यानी, आत्मा में रहनेवाले वे तो प्रसिद्ध हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? **प्रसिद्ध है। उसी प्रकार संक्षेप में कही है।** प्रसिद्ध है, उसे यहाँ थोड़ा संक्षेप में कहा है।

कैसा है जिनमार्ग ? जिसमें सम्यक्त्व विशुद्ध है,... लो! यहाँ से लिया। **'विसुद्धसम्मत्ते' 'बहुविसुद्धसम्मत्ते' विशुद्ध है, जिसमें अतिचार रहित सम्यक्त्व पाया जाता है...** वह आया था न ? **'बहुविसुद्धसम्मत्ते'** अतिचाररहित समकित, ऐसा। आत्मा के अनुभव की समकितदशा निर्दोष और निरतिचार हो। लो, यह पहला धर्म का मूल! **विशुद्ध है, जिसमें अतिचार रहित सम्यक्त्व पाया जाता है...** अर्थात् अतिचाररहित।

देव-गुरु-धर्म की भी व्यवहार श्रद्धा सच्ची हो और निश्चय आत्मा की श्रद्धा सच्ची हो, आत्मा अनुभव होकर।

और, **कैसा है जिनमार्ग? निर्ग्रन्थरूप है...** निर्ग्रन्थ। ग्रन्थ अर्थात् अन्तर में राग की गाँठ नहीं और बाह्य में वस्त्र-पात्र का परिग्रह नहीं। उसे निर्ग्रन्थ मार्ग में गिनने में आया है। आहाहा! नि-ग्रन्थ। **निर्ग्रन्थरूप है अर्थात् जिसमें बाह्य-अंतरंग परिग्रह नहीं है।** बाह्य में तिल के तुष जितना परिग्रह नहीं। अभ्यन्तर में राग का कण नहीं। ऐसी वीतराग दशा जिसे अन्तर (में) प्रगट हुई है, उसे जैनमार्ग में निर्ग्रन्थ कहा जाता है। समझ में आया? यह सब वाड़ा बाँधकर बैठे, उसे भारी कठिन पड़ता है। हमारे साधु नहीं? कहते हैं, लो! तुम्हारे शास्त्र में ऐसा कहा होगा, हमारे शास्त्र में ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : दोनों में से कौन यथार्थ है, यह तो निर्णय करना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र तुम्हारे और हमारे नहीं। सत्य क्या है, यह निश्चित कर न! आहाहा!

भगवान आत्मा 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम, दूसरा कितना कहें कर विचार तो पाम।' किसमें आता है?

मुमुक्षु : श्रीमद् में।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रीमद् में। आत्मसिद्धि। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन...' भगवान आत्मा शुद्ध पवित्र है, अन्दर पूर्ण पवित्र है। बुद्ध अर्थात् ज्ञान का घन है। आहाहा! और चैतन्यघन अर्थात् असंख्य प्रदेशी है। 'स्वयं ज्योति...' स्वयं ज्योति, चैतन्यज्योति अनादि-अनन्त अविनाशी भगवान आत्मा है और सुख का धाम है। सुख का स्थान है। आनन्द का धाम है। आनन्द का ठिकाना, अतीन्द्रिय आनन्द का क्षेत्र है। उस खेत में से अतीन्द्रिय आनन्द पके, ऐसा आत्मा का खेत (क्षेत्र) है। 'कर विचार तो पाम।' उसका ज्ञान कर तो प्राप्त होता है। ज्ञान किये बिना वह मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! परन्तु संसार के कारण निवृत्ति नहीं होती। कहो, समकित ऐसा होता है पहले तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ - इस प्रकार पूर्वोक्त प्रव्रज्या निर्मल सम्यक्त्वसहित... देखो! पहले यह आया। आहाहा! **निर्ग्रन्थरूप...** दो, चारित्र। अन्तर आत्मा शुद्ध, बुद्ध, ज्ञानघन,

ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप आनन्द ऐसा आत्मा है – ऐसा कहते हैं। कहाँ गये ? नहीं आये ? आनन्द नाम आवे वहाँ हँसता है। इसका नाम आनन्द है न ? आनन्दस्वरूप चैतन्य है। आहाहा ! परन्तु किस प्रकार जँचे ? ... तणखा मारता जीव। यह पाँच पैसे मिले, पाँच हजार मिले, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। धूल-धूल में। उसे आत्मा ऐसा है, (यह कैसे जँचे ?) आहाहा ! इज्जत कुछ ठीक हो, शरीर कुछ ठीक हो, वाणी बोलने का कण्ठ की कणी ठीक हो तो इसे ऐसा लगता है कि अपने बहुत ठीक है। भारी भाई !

मुमुक्षु : छप्पर पर चढ़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : छप्पर पर चढ़ा बिच्छू। एक तो मानो बन्दर हो चपल, उसे काटा हो बिच्छू, उसे आया भूत, उसने पी हो शराब। फिर देख लो बन्दर की कला। बन्दर होता है न ? बन्दर-बन्दर। बन्दर समझते हो ? वह स्वयं चपल होता है बैठा-बैठा ऐसे-ऐसे किया ही करता हो। उसकी चपलाई ही इतनी अधिक होती है। उसमें यदि बिच्छू काटा हो उसे... आहाहा ! कूदाकूद करता है। उसमें यदि भूत लगा हो और उसमें यदि उसे शराब पिलायी हो। कहो, सेठ !

मुमुक्षु : यह चार प्रकार होंगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चार प्रकार हैं। एक तो आत्मा की उल्टी श्रद्धा, उल्टी श्रद्धा बन्दर जैसा है। मान्यता का ठिकाना नहीं होता। उसमें जानपने का उघाड़ किंचित हुआ हो। समझ में आया ? उसमें कुछ पुण्य के उदय के कारण बाहर में सुविधा हो, उसमें शरीर की निरोगता हो। शराब पीया। आहाहा ! दृष्टान्त नहीं दिया था उन चार का ? कौन सा ?

मुमुक्षु : बन्ध्या के पुत्र...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह। बन्ध्या का पुत्र था। याद तुरन्त रखता है। बन्ध्या का पुत्र था। उसने खरगोश के सींग का जहाज बनाया। खरगोश के सींग का जहाज बनाया और आकाश के फूल भरे और मृगजल में तिरने को रखा। चारों खोटे। ऐई ! बन्ध्या के पुत्र नहीं होता, खरगोश को सींग नहीं होते, सींग का जहाज कहाँ से बनावे ? आकाश के फूल नहीं होते, कहाँ से जहाज में भरे ? मृगजल में पानी नहीं होता, तो जहाज किसमें तिरे ? चारों खोटे। इसी प्रकार अज्ञानी के सब खोटे। आहाहा !

एक तो मिथ्यात्व के कारण—उल्टी मान्यता के कारण चपलाई का पार नहीं होता। आहाहा! उसमें और किंचित् जानपने का उघाड़ हो गया हो, उसमें और कुछ जगत में इज्जत और कीर्ति बढ़ी हो और निरोग भैंसे जैसा शरीर हो। उसे चारों सरीखे मिल गये। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा... देखो! **सम्यक्त्वसहित निर्ग्रन्थरूप...** हो, ऐसा कहा है। आहाहा! अरे! बाहर की इज्जत किसकी? बापू! पैसा किसका? शरीर किसका? समझ में आया? आत्मा अन्तर वस्तु भगवान ने कही, उसका विचार करके, निर्णय करके जिसने समकित प्रगट किया। ऐसा निर्मल समकितसहित हो और उसमें वापस निर्ग्रन्थपना आवे, कहते हैं। आहाहा! रागरहित दशा प्रगट करे। आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द में रहता हुआ मुक्ति में जायेगा। समझ में आया?

निर्मल सम्यक्त्वसहित निर्ग्रन्थरूप... जिसमें वस्त्र का धागा न हो। **जिनमार्ग में कही है।** वीतरागमार्ग में तो चारित्र को ऐसा कहा है। ऐई! नवलचन्दभाई! क्या है इसमें अब? वस्त्रसहित मुनि माने, वह वीतराग के मार्ग से बाहर है, ऐसा कहते हैं। मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : परन्तु अशुभ से तो बचे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व से कहाँ बचा है? महामिथ्यात्व तो पड़ा है। आहाहा! दुनिया को मार्ग की खबर नहीं होती, बापू! तिरने का उपाय क्या है, (इसकी खबर नहीं होती)। आहाहा! अनादि सर्वज्ञ परमेश्वर से यह मार्ग चला आता है, कहा है वह। उसमें कुछ भी गड़बड़ की तो वीतरागमार्ग से विराधक होकर मिथ्यात्व में जायेगा। समझ में आया?

जिनमार्ग में कही है। ऐसी समकितसहित, आत्मा के अनुभव के भानसहित स्वरूप की रागरहित दशा, उसे वीतरागमार्ग में साधु और निर्ग्रन्थपद, चारित्रपद कहा है। आहाहा! **अन्य नैयायिक, वैशेषिक,...** मत है अन्यमत में। **सांख्य, वेदान्त, मीमांसक, पातंजलि और बौद्ध आदिक मत में (ऐसी दीक्षा) नहीं है।** उन्हें ऐसा मार्ग नहीं होता। एक-एक आत्मा परमानन्द की मूर्ति और उसमें आनन्द के साथ अनन्त गुण और

उन गुणों की अनन्त अवस्था, ऐसा स्वरूप ही वस्तु का है। ऐसा वस्तु का स्वरूप अन्य में अन्य ने जाना नहीं; इसलिए उसमें ऐसी दीक्षा और साधुपना नहीं हो सकता।

कालदोष से जैनमत में भ्रष्ट हो गये... लो! काल के दोष से (भ्रष्ट हुए)। वीतरागमार्ग अनादि का है। निर्ग्रन्थ दिगम्बर आत्मा आनन्दसहित चला आता था। उसमें श्वेताम्बरमत नया निकला। दो हजार वर्ष पहले। कालदोष से जैनमत से तो च्युत हो गये। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो ऐसा आत्मा और ऐसा मार्ग कहा, उससे भ्रष्ट हो गये। **जैन कहलाते हैं...** और हम जैन है, ऐसा कहे। वे जैन नहीं हैं। त्रम्बकभाई! परन्तु लोगों को कठिन पड़ता है, हों! श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापन्थी अभी यह है न? यह सब उसमें आ गये, तीनों। जैनमत से तो तीनों ही भ्रष्ट हैं। जादवजीभाई! ऐसा है। अब तो आ गये। अब तो दिक्कत नहीं। पहले शुरुआत में तो कठिन लगा। नहीं लगा?

मुमुक्षु : लगना हो तो लगे, न लगना हो तो न लगे। परन्तु वे लोग भ्रष्ट तो हैं, इसमें कोई दिक्कत नहीं। यह बात तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरे दादा का वह धर्म था।

मुमुक्षु : मेरे दादा कैसे? और उनका धर्म वह था, वह था परन्तु अब तो यहाँ आ गये न? अब कहाँ दिक्कत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक! आहाहा!

कालदोष से... क्या कहलाता है? क्या कहना है? ऐसे जीव पके हैं कि वीतरागमार्ग का विरोध कर डाला, च्युत हो गये और कहने लगे कि हम भी जैन हैं, हम जैन हैं। दिगम्बर निह्नव है। आहाहा! कैसा लिखा, देखो! बनारसीदास ने नाटक लिखा है न? प्रकरण रत्नाकर में है तो निह्नव का परन्तु बहुत अच्छा है, इसलिए प्रकाशित किया है। प्रकरण रत्नाकर। इतनी-इतनी बड़ी पुस्तक है। सब देखा है। एक-एक देखा है। हजारों। आहाहा! राणपुर में था। उसमें लिखा हुआ है कि यह दिगम्बर निह्नव का है। जैन में से निकले हुए निह्नव हैं। निह्नव अर्थात् चोर, सत्य के। वे गोपन करनेवाले हैं। उन्होंने यह बनाया। परन्तु है अच्छा इसलिए इसमें प्रकाशित कर डाला।

अरे! भगवान! बापू! इसमें श्वेताम्बर-दिगम्बर कहाँ है? वस्तु क्या है? और वस्तु

का धर्म किस प्रकार प्रगट हो, ऐसी वह तो चीज़ है। भगवान आत्मा वह क्या है ? और उसकी दशा प्रगट हो, जैसा स्वयं आनन्दघन प्रभु है, सच्चिदानन्द वह आत्मा सत्-सत् है। सत् अर्थात् शाश्वत् और चिद्घन। चिद् और आनन्द उसका स्वरूप है। यह तो पुण्य-पाप और विकल्प करे, वह तो मैल और बिगाड़ सब कर डाला है। ऐसा स्वरूप है। ऐसा न हो तो दूसरा स्वरूप होगा किस प्रकार से ? समझ में आया ?

वस्तु स्वतन्त्र चैतन्य है। वस्तु है, तत्त्व है तो तत्त्व का भाव कैसा होगा उसका ? अनादि अविनाशी आनन्द, शान्ति इत्यादि उसका भाव होता है। परन्तु उसकी दशा में अनादि से विपरीतता के कारण उसकी इसे खबर नहीं है। एक तो संसार के भोग में पड़े, उसे उसकी खबर नहीं होती और भोग छोड़कर बाह्य क्रिया या हम त्यागी होकर निकले हैं, उसे इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया ?

कालदोष से जैनमत में भ्रष्ट हो गये और जैन कहलाते हैं... हम जैन हैं। **इस प्रकार के श्वेताम्बरादिक में भी नहीं है।** उसमें भी ऐसा साधुपना नहीं हो सकता। नये (लोगों को) जरा कठिन लगे। इसमें अर्थ नहीं है। इसमें शब्दार्थ है। पाठ ही है।

गाथा-६०

आगे बोधपाहुड को संकोचते हुए आचार्य कहते हैं –

रूवत्थं सुद्धत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं।
भव्वजणबोहणत्थं छक्कायहियंकरं उत्तं ।।६०।।

रूपस्थं शुद्ध्यर्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितम्।
भव्यजनबोधनार्थं षट्कायहितंकरं उक्तम् ।।६०।।

रूपस्थ शुद्धी अर्थ जिन-मग में जिनेन्द्रों ने कहा।
षट्काय हितकर भव्य-जन बोधार्थ वैसा ही कहा।।६०।।

अर्थ – **जिसमें अन्तरंग भावरूप अर्थ शुद्ध है और ऐसा ही रूपस्थ अर्थात् बाह्यस्वरूप मोक्षमार्ग जैसा जिनमार्ग में जिनदेव ने कहा है, वैसा छहकाय के जीवों का**

हित करनेवाला मार्ग भव्यजीवों के सम्बोधने के लिए कहा है। इस प्रकार आचार्य ने अपना अभिप्राय प्रकट किया है।

भावार्थ – इस बोधपाहुड में आयतन आदि से लेकर प्रव्रज्यापर्यन्त ग्यारह स्थल कहे। इनका बाह्य–अन्तरंग स्वरूप जैसे जिनदेव ने जिनमार्ग में कहा वैसे ही कहा है। कैसा है यह रूप? छह काय के जीवों का हित करनेवाला है, जिसमें एकेन्द्रिय आदि असैनी पर्यन्त जीवों की रक्षा का अधिकार है, सैनी पंचेन्द्रिय जीवों की रक्षा भी कराता है और मोक्षमार्ग का उपदेश करके संसार का दुःख मेटकर मोक्ष को प्राप्त कराता है, इस प्रकार के मार्ग (उपाय) भव्यजीवों के सम्बोधने के लिए कहा है। जगत के प्राणी अनादि से लगाकर मिथ्यामार्ग में प्रवर्तनकर संसार में भ्रमण करते हैं, इसीलिए दुःख दूर करने के लिए आयतन आदि ग्यारह स्थान धर्म के ठिकाने का आश्रय लेते हैं, अज्ञानी जीव इन स्थानों पर अन्यथा स्वरूप स्थापित करके उनसे सुख लेना चाहते हैं, वह यथार्थ के बिना सुख कहाँ? इसलिए आचार्य दयालु होकर जैसे सर्वज्ञ ने कहे वैसे ही आयतन आदि का स्वरूप संक्षेप से यथार्थ कहा है। इसको वांचो, पढ़ो, धारण करो और इसकी श्रद्धा करो। इसके अनुसार तद्रूपप्रवृत्ति करो। इस प्रकार करने से वर्तमान में सुखी रहो और आगामी संसार दुःख से छूटकर परमानन्दस्वरूप मोक्ष को प्राप्त करो। इस प्रकार आचार्य के कहने का अभिप्राय है।

यहाँ कोई पूछे – इस बोधपाहुड में व्यवहारधर्म की प्रवृत्ति के ग्यारह स्थान कहे। इनका विशेषण किया कि ये छहकाय के जीवों के हित करनेवाले हैं। वह अन्यमती इनको अन्यथा स्थापित कर प्रवृत्ति करते हैं, वे हिंसारूप हैं और जीवों के हित करनेवाले नहीं हैं। ये ग्यारह ही स्थान संयमी मुनि और अरहन्त, सिद्ध को ही कहे हैं। ये तो छहकाय के जीवों के हित करनेवाले ही हैं, इसलिए पूज्य हैं। यह तो सत्य है और जहाँ रहते हैं, इस प्रकार आकाश के प्रदेशरूप क्षेत्र तथा पर्वत की गुफा वनादिक तथा अकृत्रिम चैत्यालय ये स्वयमेव बने हुए हैं, उनको भी प्रयोजन और निमित्त विचार उपचारमात्र से छह काय के जीवों के हित करनेवाले कहें तो विरोध नहीं है, क्योंकि ये प्रदेश जड़ हैं, ये बुद्धिपूर्वक किसी का बुरा–भला नहीं करते हैं तथा जड़ को सुख–दुःख आदि फल का अनुभव नहीं है, इसलिए ये भी व्यवहार से पूज्य हैं, क्योंकि अरहन्तादिक जहाँ रहते हैं, वे क्षेत्र–निवास आदिक प्रशस्त हैं, इसलिए उन अरहन्तादिक के आश्रय से ये क्षेत्रादिक भी पूज्य हैं, परन्तु प्रश्न – गृहस्थ जिनमन्दिर

बनावे, वस्तिका, प्रतिमा बनावे और प्रतिष्ठा पूजा करे उसमें तो छह काय के जीवों की विराधना होती है, यह उपदेश और प्रवृत्ति की बाहुल्यता कैसे है ?

इसका समाधान इस प्रकार है कि गृहस्थ, अरहन्त, सिद्ध और मुनियों का उपासक हैं, ये जहाँ साक्षात् हों वहाँ तो उनकी वन्दना, पूजन करता ही है। जहाँ ये साक्षात् न हों वहाँ परोक्ष संकल्प कर वन्दना पूजन करता है तथा उनके रहने का क्षेत्र तथा ये मुक्त हुए उस क्षेत्र में तथा अकृत्रिम चैत्यालय में उनका संकल्प कर वन्दना व पूजन करता है। इसमें अनुरागविशेष सूचित होता है, फिर उनकी मुद्रा, प्रतिमा तदाकार बनावे और उसको मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा कर स्थापित करे तथा नित्य पूजन करे इसमें अत्यन्त अनुराग से सूचित होता है, उस अनुराग से विशिष्ट पुण्यबन्ध होता है और उस मन्दिर में छह काय के जीवों के हित की रक्षा का उपदेश होता है तथा निरन्तर सुननेवाले और धारण करनेवाले के अहिंसा धर्म की श्रद्धा दृढ़ होती है तथा उनकी तदाकार प्रतिमा देखनेवाले के शान्तभाव होते हैं, ध्यान की मुद्रा का स्वरूप जाना जाता है और वीतरागधर्म से अनुराग विशेष होने से पुण्यबन्ध होता है, इसलिए इनको भी छहकाय के जीवों के हित करनेवाले उपचार से कहते हैं।

जिनमन्दिर वस्तिका प्रतिमा बनाने में तथा पूजा प्रतिष्ठा करने में आरम्भ होता है, उसमें कुछ हिंसा भी होती है। ऐसा आरम्भ तो गृहस्थ का कार्य है, इसमें गृहस्थ को अल्प पाप कहा, पुण्य बहुत कहा है, क्योंकि गृहस्थ के पद में न्यायकार्य करके, न्यायपूर्वक धन उपार्जन करना, रहने के लिए मकान बनवाना, विवाहादिक करना और यत्नपूर्वक आरम्भ कर आहारादिक स्वयं बनाना तथा खाना इत्यादिक कार्यों में यद्यपि हिंसा होती है तो भी गृहस्थ को इनका महापाप नहीं कहा जाता है। गृहस्थ के तो महापाप मिथ्यात्व का सेवन करना, अन्याय, चोरी आदि से धन उपार्जन करना, त्रस जीवों को मारकर मांस आदि अभक्ष्य खाना और परस्त्री सेवन करना ये महापाप हैं।

गृहस्थाचार छोड़कर मुनि हो जावे तब गृहस्थ के न्यायकार्य भी अन्याय ही हैं। मुनि के भी आहार आदि की प्रवृत्ति में कुछ हिंसा होती है, उससे मुनि को हिंसक नहीं कहा जाता है, वैसे ही गृहस्थ के न्यायपूर्वक अपने पद के योग्य आरम्भ के कार्यों में अल्प पाप ही कहा जाता है, इसलिए जिनमन्दिर, वस्तिका और पूजा प्रतिष्ठा के कार्यों में आरम्भ का अल्प पाप है, मोक्षमार्ग में प्रवर्तनेवाले से अति अनुराग होता है और उनकी प्रभावना करते हैं, उनको आहारदानादिक देते हैं और उनका वैयावृत्त्यादि करते

हैं। ये सम्यक्त्व के अंग हैं और महान पुण्य के कारण हैं, इसलिए गृहस्थ को सदा ही करना योग्य है और गृहस्थ होकर ये कार्य न करे तो ज्ञात होता है कि इसके धर्मानुराग विशेष नहीं है।

प्रश्न – गृहस्थी को जिसके बिना चले नहीं इस प्रकार के कार्य तो करना ही पड़े और धर्म पद्धति में आरम्भ का कार्य करके पाप क्यों मिलावे, सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रोषध आदि करके पुण्य उपजावे।

उसको कहते हैं – यदि तुम इस प्रकार कहो तो तुम्हारे परिणाम तो इस जाति के हैं नहीं, केवल बाह्यक्रिया मात्र में ही पुण्य समझते हो। बाह्य में बहु आरम्भ परिग्रह का मन, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि निरारम्भ कार्यों में विशेषरूप से लगता नहीं है, यह अनुभवगम्य है, तुम्हारे अपने भावों का अनुभव नहीं है, केवल बाह्य सामायिकादि निरारम्भ कार्य का भेष धारण कर बैठो तो कुछ विशिष्ट पुण्य नहीं है, शरीरादिक बाह्य वस्तु तो जड़ है, केवल जड़ की क्रिया का फल तो आत्मा को मिलता नहीं है। अपने भाव जितने अंश में बाह्यक्रिया में लगे; उतने अंश में शुभाशुभ फल अपने को लगता है, इस प्रकार विशिष्ट पुण्य तो भावों के अनुसार है।

आरम्भी परिग्रही के भाव तो पूजा, प्रतिष्ठादिक बड़े आरम्भ में ही विशेष अनुराग सहित लगते हैं। जो गृहस्थाचार के बड़े आरम्भ से विरक्त होगा सो उसे त्यागकर अपना पद बढ़ावेगा, जब गृहस्थाचार के बड़े आरम्भ छोड़ेगा, तब उसी तरह धर्मप्रवृत्ति के बड़े आरम्भ भी पद के अनुसार घटावेगा। मुनि होगा तब आरम्भ क्यों करेगा? अत: तब तो सर्वथा आरम्भ नहीं करेगा, इसलिए मिथ्यादृष्टि बाह्यबुद्धि जो बाह्य कार्यमात्र ही को पुण्य–पाप मोक्षमार्ग समझते हैं, उनका उपदेश सुनकर अपने को अज्ञानी नहीं होना चाहिए। पुण्य–पाप के बन्ध में शुभाशुभभाव ही प्रधान हैं और पुण्य–पापरहित मोक्षमार्ग है, उसमें सम्यग्दर्शनादिकरूप आत्मपरिणाम प्रधान है। (हेय बुद्धि सहित) धर्मानुराग मोक्षमार्ग का सहकारी है और (आंशिक वीतरागभावसहित) धर्मानुराग के तीव्र मन्द के भेद बहुत हैं, इसलिए अपने भावों को यथार्थ पहिचानकर अपनी पदवी, सामर्थ्य पहिचान–समझकर श्रद्धान–ज्ञान और उसमें प्रवृत्ति करना अपना भला–बुरा अपने भावों के आधीन है, बाह्य परद्रव्य तो निमित्तमात्र है, उपादानकारण हो तो निमित्त भी सहकारी हो और उपादान न हो तो निमित्त कुछ भी नहीं करता है, इस प्रकार इस बोधपाहुड का आशय जानना चाहिए।

इसको अच्छी तरह समझकर आयतनादिक जैसे कहे वैसे और इनका व्यवहार भी बाह्य वैसा ही तथा चैत्यगृह, प्रतिमा, जिनबिम्ब, जिनमुद्रा आदि धातु पाषाणादिक का भी व्यवहार वैसा ही जानकर श्रद्धान और प्रवृत्ति करनी। अन्यमती अनेक प्रकार स्वरूप बिगाड़कर प्रवृत्ति करते हैं उनको बुद्धि कल्पित जानकर उपासना नहीं करनी। इस द्रव्यव्यवहार का प्ररूपण प्रव्रज्या के स्थल में आदि से दूसरी गाथा में बिंब[1] चैत्यालयत्रिक और जिनभवन ये भी मुनियों के ध्यान करने योग्य हैं इस प्रकार कहा है, सो गृहस्थ जब इनकी प्रवृत्ति करते हैं, तब ये मुनियों के ध्यान करने योग्य होते हैं, इसलिए जो जिनमन्दिर, प्रतिमा, पूजा, प्रतिष्ठा आदिक के सर्वथा निषेध करनेवाले वह सर्वथा एकान्ती की तरह मिथ्यादृष्टि हैं, इनकी संगति नहीं करना।

(मूलाचार पृ. ४९२ अ. १० गाथा ९६ में कहा है कि ''श्रद्धाभ्रष्टों के सम्पर्क की अपेक्षा (गृह में) प्रवेश करना अच्छा है; क्योंकि विवाह में मिथ्यात्व नहीं होगा, परन्तु ऐसे गण तो सर्व दोषों के आकर हैं, उसमें मिथ्यात्वादि दोष उत्पन्न होते हैं, अत: इनसे अलग रहना ही अच्छा है'' ऐसा उपदेश है।)

गाथा-६० पर प्रवचन

आगे बोधपाहुड को संकोचते हुए आचार्य कहते हैं – पूरा करते हैं।

रूवत्थं सुद्धत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं।
भव्वजणबोहणत्थं छक्कायहियंकरं उत्तं।।६०।।

भाषा तो सर्वत्र भगवान... भगवान करते हैं। गाथा दूसरी और नौवीं उसमें आयी थी। पहले आ गया है। छह काय जीव की। दूसरी गाथा और नौवीं गाथा, दो गाथायें। बोधपाहुड़ में है।

अर्थ – जिसमें अन्तरंग भावरूप अर्थ शुद्ध है और ऐसा ही रूपस्थ अर्थात् बाह्यस्वरूप मोक्षमार्ग जैसा जिनमार्ग में जिनदेव ने कहा है,... क्या कहते हैं? इसका इतना अर्थ। **अन्तरंग भावरूप अर्थ शुद्ध है और ऐसा ही रूपस्थ...** अपना शुद्ध

१. गाथा २ में बिंब की जगह 'वच' ऐसा पाठ है।

रूप, उसमें स्थ—रहना। **बाह्यस्वरूप मोक्षमार्ग...** और बाह्य नग्नपना। **जैसा जिनमार्ग में जिनदेव ने कहा है,...** लो! बाहर का रूप नग्न, अन्तर का रूप वीतरागीपना। **भावरूप अर्थ शुद्ध है और ऐसा ही रूपस्थ...** और रूपस्थ कहिये बाह्य स्वरूप मोक्षमार्ग, ऐसा। मुनि का रूप नग्न-दिगम्बर होता है। माता से जन्मा वैसा। अनादि-अनन्त सर्वज्ञ के मार्ग में ऐसा मार्ग है। महाविदेह में यह ही है। महाविदेह में भगवान विराजते हैं। वहाँ यही अकेला मार्ग है। दिगम्बर मुनि, निर्ग्रन्थ मुनि, इसके अतिरिक्त दूसरा जैन में सम्प्रदाय महाविदेह में नहीं है। कालदोष के कारण (यहाँ) यह सब भेद पड़ गया है। समझ में आया?

जिसमें अन्तरंग भावरूप अर्थ शुद्ध है... शुद्ध अर्थ किया। जैसा है वैसा। वीतराग ने कहा वैसा इसमें कहा है। और **रूपस्थ...** बाह्य स्वरूप नग्न-दिगम्बर। ऐसा **मोक्षमार्ग जैसा जिनमार्ग में जिनदेव ने कहा है, वैसा छहकाय के जीवों का हित करनेवाला...** किसी जीव को दुःख न हो, इसके लिये यह मार्ग कहा है। यह तो... समझ में आया? **छहकाय के जीवों का हित करनेवाला मार्ग भव्यजीवों के सम्बोधने के लिए कहा है।** योग्य प्राणी को समझाने के लिये यह कहा है। दूसरी कोई बात इसमें है नहीं। **इस प्रकार आचार्य ने अपना अभिप्राय प्रकट किया है।**

कुन्दकुन्दाचार्यदेव संवत् ४९ में यहाँ मनुष्यक्षेत्र में यहाँ भरत में विचरते थे। भगवान के पास गये थे। सीमन्धर परमात्मा वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, वहाँ गये थे। उस समय में थे और अभी भी हैं। दीर्घ आयुष्य है। वहाँ से आकर यह शास्त्र रचे हैं। कहते हैं, **भव्यजीवों के सम्बोधने के लिए कहा है।** समझाने के लिये। दूसरा कोई हेतु है नहीं। सच्ची पहिचान करे, सच्ची श्रद्धा करे और पश्चात् चारित्र अंगीकार करे। ऐसा मोक्षमार्ग भव्यजीवों को सम्बोधन के लिये। **इस प्रकार आचार्य ने अपना अभिप्राय प्रकट किया है।** मैंने मेरे घर का नहीं कहा, ऐसा कहते हैं। जैसा परमात्मा का मार्ग है, वीतराग का मार्ग जो अनादि चला आता है, ऐसा मार्ग मैंने इसमें सन्तों ने कहा, वह कहता हूँ। समझ में आया?

भावार्थ – इस बोधपाहुड में आयतन आदि से लेकर प्रव्रज्यापर्यन्त ग्यारह स्थल कहे। ग्यारह प्रकार कहे। **इनका बाह्य-अन्तरंग स्वरूप जैसे जिनदेव ने जिनमार्ग**

में कहा, वैसे ही कहा है। भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जैसा बाह्य और अभ्यन्तर स्वरूप कहा है, वैसा इसमें कहा है। **कैसा है यह रूप ? छह काय के जीवों का हित करनेवाला है, जिसमें एकेन्द्रिय आदि असैनी पर्यन्त जीवों की रक्षा का अधिकार है,...** यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति इन एकेन्द्रिय जीव की तो रक्षा की व्याख्या है। मनरहित असंज्ञी प्राणी को नहीं मारने का इसमें उपदेश है।

और, **सैनी पंचेन्द्रिय जीवों की रक्षा भी कराता है...** किसी प्राणी को-संज्ञीवाले को भी नहीं मारना, ऐसा उपदेश है। **और मोक्षमार्ग का उपदेश करके संसार का दुःख मेटकर मोक्ष को प्राप्त कराता है,...** लो! **मोक्षमार्ग का उपदेश करके संसार का दुःख...** मिटाकर... क्या है ? इसमें कैसे भेटी जैसा हो गया है ? संसार के दुःख मिथ्या श्रद्धा और राग-द्वेष के दुःख, अनन्त दुःख आकुलता है। और आत्मा के आनन्द की खबर नहीं तो ऐसी आकुलता उसे दिखती नहीं-लगती नहीं। आहाहा! समझ में आया ? आकुलता में उलझा हुआ है न ? इसलिए आकुलता मुझे है, आकुलता मुझे है, इसकी उसे खबर नहीं। आहाहा!

सर्प की बात नहीं की थी ? चूडा की। हलवाई कुछ भुजिया या कुछ बनाता होगा। बड़ी कढ़ाही तेल की (चढ़ाई हुई)। जैन (था)। ऊपर से सर्प चला जा रहा था। उसे धुँआ लगा तो पड़ा कढ़ाई में। धगधगता तेल। कुँवरजीभाई। वे लोग तो सब मन्दिरमार्गी हो गये। कुँवरजी एक स्थानकवासी थे। वे आते थे। वे सब उनके भाई मन्दिरमार्गी। यह तो आते थे यहाँ। और मुँहपत्ती बाँधकर सामायिक भी करते थे। यह ऐरण और ऊपर से गिरा सर्प। आधा गिरा कढ़ाई में और आधा बाहर। धगधगता तेल। और वे लोग बेचारे जैन। चिल्लाहट (कर गये)। फिर कढ़ाई होती है न ? क्या कहलाता है वह ? भुजिया कुछ बनाते होंगे। उसमें से उसे ऐसे निकाला। आधा पड़ा था अन्दर और आधा बाहर। ऐसे निकाला। निकाला, साथ में उलझ गया। कहाँ जाना और कहाँ नहीं। चूल्हे में गिर गया। अग्नि सुलगती थी धग... धग... धग... नीचे। क्योंकि ऐसे हो गया था। वह मानो कि यहाँ होगा, यहाँ होगा। भान नहीं होता न। चूल्हे में अग्नि में गिर गया, जलकर राख। आहाहा! अग्नि धगधगती जलती थी और तेल की कढ़ाही थी। उसमें गिर गया निकाला वहाँ। क्योंकि इतनी जलन कि सामने जलन का स्थान कौन सा, यह खबर नहीं पड़े।

इसी प्रकार अनादि का अज्ञानी मिथ्यादर्शन में जल रहा है। उसे भान नहीं कि मुझे यह जलन क्यों है ? उल्टे जलन जहाँ राग और अज्ञान है, वहाँ वापस गिरता है। समझ में आया ? एक तो मिथ्याश्रद्धा अज्ञानभाव से जल रहा है वह। और उसमें से जलन में भान नहीं तो यह जलन कैसे मिटाना, इसकी खबर नहीं। परन्तु जिसमें अज्ञान और राग-द्वेष गाढ होता है, उसमें कूद पड़ता है। सर्प जैसा है। वे लोग बेचारे जैन थे न तो त्रास हो गया। यह त्रास हुआ नहीं। आहाहा! कहो, अनादि के (संसार का) दु:ख मेटकर **मोक्ष को प्राप्त कराता है, इस प्रकार के मार्ग (उपाय) भव्यजीवों के सम्बोधने के लिए कहा है**। भव्य के लिये कहा है। लायक प्राणी हो, उसे समझाने के लिये। अभव्य के लिये यह बात नहीं है।

जगत के प्राणी अनादि से लगाकर मिथ्यामार्ग में प्रवर्तनकर संसार में भ्रमण करते हैं,... जगत के प्राणी—जीव, सत्ता-अस्तिवाला तत्त्व होने पर भी, भान बिना अनादि से अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... मिथ्या मार्ग, विपरीत मार्ग, उल्टी श्रद्धा-ज्ञान और राग-द्वेष, ऐसे मार्ग में प्रवर्त कर संसार में भ्रमता है। **इसीलिए दु:ख दूर करने के लिए आयतन आदि ग्यारह स्थान धर्म के ठिकाने का आश्रय लेते हैं,...** ग्यारह बोल कहे पूरे बोधपाहुड़ में। दु:ख को मिटाने के लिये यह आयतन कहे। यह ग्यारह ठिकाने हैं।

ग्यारह स्थान धर्म के ठिकाने का आश्रय लेते हैं, अज्ञानी जीव इन स्थानों पर अन्यथा स्वरूप स्थापित करके उनसे सुख लेना चाहते हैं, किन्तु यथार्थ के बिना सुख कहाँ? यथार्थ बिना सुख कहाँ से मिले ? वास्तविक आत्मा क्या ? प्रतिमा क्या ? मन्दिर क्या ? धर्म क्या ? मोक्षमार्ग क्या ? सम्यग्दर्शन क्या ? चारित्र क्या ? ऐसे स्थान और यथार्थ भान बिना उसे सुख नहीं मिलता, दु:ख नहीं टलता।

इसलिए आचार्य दयालु होकर जैसे सर्वज्ञ ने कहे, वैसे ही आयतन आदि का स्वरूप संक्षेप से यथार्थ कहा है। आचार्य दयालु होकर सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने जैसे स्थान धर्म के आयतन आदि स्वरूप कहा, वह यथार्थ कहा है, लो! **इसको वांचो, पढ़ो, धारण करो और इसकी श्रद्धा करो।** अनादि का भटका हुआ प्राणी दु:खी... दु:खी... दु:खी है। अपनी जाति क्या है, इसकी खबर नहीं। चौरासी के अवतार

में (भटकता है) । पैसेवाले को लोग सुखी कहते हैं। धूल में भी सुखी नहीं। दाह है। अज्ञान और मिथ्याश्रद्धा से सुलग रहे हैं। सेठ! कहाँ सुख है ? देखो न यह! आहाहा! आनन्द और सुख तो आत्मा में है। उसका तो जिसे भान नहीं। अज्ञानी मूढ़ होकर जहाँ-तहाँ झपट्टे मारता है। आहाहा! कहते हैं कि अनादि का... आहाहा! दु:खी, संसार में भटक रहा है। उसे ये बात हमने कही है, इसलिए पढ़ो, इसका विचार करो, निर्णय करो, श्रद्धा करो और फिर स्वरूप में प्रवर्तन करो। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का धाम है, वहाँ अन्दर जा। इसके बिना तुझे शान्ति कहीं है नहीं। लो!

इस प्रकार करने से वर्तमान में सुखी रहो... आत्मा का आनन्दस्वभाव है, उसका भान करके वहाँ रहे तो वर्तमान में सुख होता है। **और आगामी संसार दु:ख से छूटकर...** भविष्य में संसार का दु:ख उसे नहीं रहता। **परमानन्दस्वरूप मोक्ष को प्राप्त करो। इस प्रकार आचार्य के कहने का अभिप्राय है।** इस बोधपाहुड़ में तो निश्चय की बहुत बातें आयी हैं। निश्चय की। प्रतिमा, मन्दिर यह सब निश्चय आत्मा... आत्मा... आत्मा... घटित किया है। यह बाहर का सब व्यवहार। शुभभाव का निमित्त है। यह निश्चय न हो तो, वह सब व्यवहार इसका खोटा। इसकी विशेष व्याख्या करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१७४, गाथा-६०, गुरुवार, पौष कृष्ण ३, दिनांक १४-०१-१९७१

यह बोधपाहुड़ की गाथा ६०, इसका भावार्थ चलता है। नीचे है, नीचे। **यहाँ कोई पूछे...** १५४ पृष्ठ, हिन्दी। **इस बोधपाहुड में व्यवहारधर्म की प्रवृत्ति के ग्यारह स्थान कहे।** धर्म के व्यवहार की प्रवृत्ति के ग्यारह स्थान कहे। आत्मा स्वयं मुनि है न आत्मध्यानी! आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप उसका जिसे ध्यान और स्थिरता आनन्द की विशेष हुई है, मुनि को ही जिनप्रतिमा कहा है। समझ में आया? यह जिनप्रतिमा तो व्यवहार है। वह भी व्यवहार है। मुनि जो है, उन दूसरे को जिनप्रतिमा निश्चय से है। अर्थात् कि उनका मुनिपना जो आनन्दस्वरूप है, जैसा उसका—आत्मा का निर्दोष स्वभाव है, निर्दोष कहो या वीतराग कहो, ऐसा उसका स्वरूप ही आत्मा का है। वस्तु स्वरूप है, वह कहीं सदोष नहीं होता। सदोष तो उसकी दशा में—हालत में अनादि से भूल के कारण सदोष है। वस्तु स्वयं आत्मा सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप है, वह तो निर्दोष है। निर्दोष कहो या रागरहित कहो या विकाररहित कहो, ऐसा उसका त्रिकाली अविनाशी स्वभाव है। उसका जिसे अन्तर भान हुआ और उसे शान्ति की विशेष उग्रता वेदन में आयी, ऐसे मुनि को ही जिनप्रतिमा कहते हैं। जिनप्रतिमा, जिनमुद्रा वह सब मुनि को लागू किया है और या अरिहन्त को। बस, दोनों को। साक्षात् अरिहन्त परमात्मा, जिन्हें पूर्ण निर्दोषता जैसी है, वैसी जिन्हें प्रगट हुई है। ऐसे अरिहन्त को, साक्षात् अरिहन्त को ही अरिहन्त कहा है। यह मन्दिर और प्रतिमा, वह सब शुभभाव में...

मुमुक्षु : व्यवहार का व्यवहार...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार का व्यवहार है। कहा न।

व्यवहारधर्म की प्रवृत्ति के ग्यारह स्थान कहे। इनका विशेषण किया... इनका विशेषण किया। अर्थात्? कि जिनप्रतिमा आदि... आत्मा वीतरागमूर्ति है, ऐसी जिसे दशा प्रगट हुई, वह वास्तव में वीतरागमुद्रा, जिनप्रतिमा आदि कहा जाता है और उसे तीर्थ कहा जाता है। बाह्य तीर्थ तो व्यवहार तीर्थ है। यद्यपि यह भी तीर्थ दूसरे को, इसलिए व्यवहार है। उसकी अपेक्षा से इसका निश्चय तीर्थ है। जिसे तिरने का उपाय अन्तर के

स्वभाव में से शुद्धता जो शुद्धपना-पवित्र है, उसमें से पवित्र परिणति-अवस्था जिसने प्रगट की है, वही तीर्थ है। बाहर के तीर्थ तो व्यवहार, शुभभाव होता है, तब उसे होते हैं। इतनी बात।

यहाँ तो कहते हैं कि ग्यारह स्थानक में... यह सब बोल पहले आ गये हैं, उनका विशेषण किया कि यह ग्यारह स्थानक कैसे हैं? कि **छहकाय के जीवों के हित करनेवाले हैं।** जीव छह प्रकार के हैं। पृथ्वी जीव है। यह पत्थर निकलता है न सचेत खान में से? अन्दर जीव है। जैसे यह शरीर है परन्तु अन्दर जीव है। इस पृथ्वी का ऊपर का शरीर दल है परन्तु अन्दर एकेन्द्रिय जीव है। पृथ्वी, हीरा, माणिक सीधे निकलते हैं। उसमें अन्दर शरीर है, उसके रजकण, अन्दर जीव अरूपी भिन्न है। इन छह काय में एकेन्द्रिय पृथ्वीकाय कहलाता है। जल, पानी की बूँद सचेत है। कुँए में जो बिन्दु है, वह है शरीर ऊपर, परन्तु अन्दर अरूपी जीव है। जैसे यह शरीर दिखता है, और अन्दर जीव है, वैसे एकेन्द्रिय जलकाय कहलाता है। पानी के जीव हैं। अग्नि। यह दियासलाई सुलगाते हैं, वहाँ भड़का होता है। वह दिखता है शरीर, अन्दर एकेन्द्रिय जीव है। ऐसे वायु और वनस्पति। वायु भी अन्दर जीव है। यह वनस्पति। और त्रस—दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौन्द्रिय। इन **छहकाय के जीवों के...** यह छह काय हुए। यह ग्यारह स्थानक इनके जीव के हित के करनेवाले हैं।

अन्यमती इनको अन्यथा स्थापित कर प्रवृत्ति करते हैं, वे हिंसारूप हैं... जिसमें अकेली हिंसा हो और आत्मा का स्वभाव बिल्कुल प्रगट न हो और उसे यहाँ उत्थापित किया है। **और जीवों के हित करनेवाले नहीं हैं। ये ग्यारह ही स्थान संयमी मुनि और अरहन्त, सिद्ध को ही कहे हैं।** लो! जिसकी अतीन्द्रिय दशा, अपना स्वरूप अतीन्द्रिय है, ऐसी अतीन्द्रिय दशा, दशा अर्थात् हालत वर्तमान में प्रगट हो गयी है, ऐसी संयमी मुनि और अरिहन्त और सिद्ध। अर्हंत शब्द प्रयोग किया है। अरिहन्त शब्द नहीं प्रयोग किया। अर्हंत अर्थात् पूजनीक और परमात्मा सदेह और देहरहित सिद्ध। उन्हें यहाँ ग्यारह स्थानक में मुख्यरूप से गिनने में आया है।

ये तो छहकाय के जीवों के हित करनेवाले ही हैं,... छह काय के जीव का हित करनेवाले हैं मुनि, अरिहन्त, और सिद्ध। **इसलिए पूज्य हैं।** इससे वे पूज्य हैं। दूसरे

के लिये .... **यह तो सत्य है...** अरिहन्त परमात्मा, सिद्ध और मुनि, वही सत्य है और वही पूज्य है। **और जहाँ रहते हैं, इस प्रकार आकाश के प्रदेशरूप क्षेत्र...** ऐसे अरिहन्त परमात्मा अथवा सिद्ध भगवान या मुनि आत्मज्ञानी-ध्यानी जिस क्षेत्र में बसते हैं, वह भी पूज्य है। **क्षेत्र तथा पर्वत की गुफा वनादिक...** वन आदि में मुनि बसें, **तथा अकृत्रिम चैत्यालय...** शाश्वत् मन्दिर होते हैं। मेरुपर्वत आदि में शाश्वत् प्रतिमायें अनादि की हैं। जैसे यह चन्द्र-सूर्य अनादि के हैं, वैसे वहाँ अनादि के चैत्यालय अर्थात् प्रतिमाये हैं, मन्दिर है। **ये स्वयमेव बने हुए हैं,...** वह तो अपने आप बने हुए हैं। किसे ने बनाये नहीं।

उनको भी प्रयोजन और निमित्त विचार उपचारमात्र से छह काय के जीवों के हित करनेवाले कहें तो विरोध नहीं है,... क्यों? क्योंकि वह कोई किसी का घात नहीं करते। **क्योंकि ये प्रदेश जड़ हैं, ये बुद्धिपूर्वक किसी का बुरा-भला नहीं करते हैं तथा जड़ को सुख-दुःख आदि फल का अनुभव नहीं है, इसलिए ये भी व्यवहार से पूज्य हैं,...** तीर्थस्थान, वनादिक आदि जहाँ मुनि ... ध्यान में होते हैं, ऐसे मुनि मोक्ष पधारे हों, वे स्थल। वह स्थान भी व्यवहार से पूजनीक कहलाते हैं। उसमें स्मृति का कारण है न? इसलिए।

क्योंकि अरहन्तादिक जहाँ रहते हैं,... अरिहन्त, सिद्ध, मुनि जिस स्थान में रहते हैं **वे क्षेत्र-निवास आदिक प्रशस्त हैं,...** शुभ-प्रशस्त है। **इसलिए उन अरहन्तादिक के आश्रय से ये क्षेत्रादिक भी पूज्य हैं,...** लोगों में भी ऐसा होता है न, देखो न! हमारे पिताजी यहाँ बैठते थे, यहाँ माला जपते थे। यह चन्दुभाई है न? चन्दुभाई, शिक्षा अधिकारी। चन्दुभाई गुजर गये न? पटले थे गोंडल में। पूरे गोंडल राज के। स्वयं बड़े थे और उनका पिता था मास्टर, स्कूल का। वे थे पूरे गोंडल के बड़े अधिकारी। विद्या अधिकारी थे। पूरे राज में उनका बहुत मान था। बड़ा बँगला दिया था, बहुत थोड़ी कीमत में। हम एक बार उनके मकान में रहे थे। तब कहते कि मेरे पिताश्री यहाँ बैठते थे। बहुमान है न! मेरे पिताश्री यहाँ माला जपते थे। यह उनका स्थान है। याद करते थे। स्वयं तो बड़े अधिकारी थे। पिताश्री तो मास्टर थे परन्तु उनके प्रति भक्ति-प्रेम था। मेरे पिताश्री यहाँ नहाते, यहाँ स्नान करते, यहाँ माला गिनते थे। राज की ओर से मिला हुआ बड़ा बँगला है। बहुत थोड़ी कीमत में। पच्चीस हजार लिये थे। दो-तीन लाख का बँगला है। अभी दस लाख का बँगला होगा।

... परन्तु वे कहते, उनके मकान में रहे तब, कि यह मेरे पिताश्री यहाँ बैठते थे। मैंने कहा, इनके पिता छोटे थे। दोनों यहाँ आये थे। बेचरभाई। उस स्थान को याद करते थे, लो!

इसी प्रकार जिसे परमात्मदशा प्रगट हुई है और सिद्धलोक में जिस स्थान में होते हैं, और नीचे अरिहन्तादि हों सशरीरी, मुनि आदि आत्मध्यानी, ज्ञानी जहाँ आत्मा के अमृत के अन्तर के साधन कर रहे हैं, ऐसे स्थान को भी व्यवहार से पूजनीक कहा जाता है।

परन्तु प्रश्न – गृहस्थ जिनमन्दिर बनावे,... वीतराग के मन्दिर बनाते हैं। प्रतिमायें। **वस्तिका,...** रहने के लिये (स्थान)। **प्रतिमा...** वस्तिका (तो) क्या कोई ब्रह्मचारी, त्यागी आदि (के लिये बनायी हो)। मुनि के लिये बनावे, उस वस्तिका की बात यहाँ नहीं है। मुनि के लिये बनावे, वह वस्तिका मुनि को नहीं चलती। परन्तु कोई त्यागी, ब्रह्मचारी आदि हो, साधर्मी जीव आदि, उनके लिये वस्तिका बनायी हो, प्रतिमा बनावे। **प्रतिष्ठा पूजा करे, उसमें तो छह काय के जीवों की विराधना होती है,...** तुम कहो छह काय के हित के लिये यह बनाया है और उसमें छह काय की विराधना होती है। मन्दिर बनाने में पानी के जीव मरते हैं, पृथ्वी के मरते हैं, वनस्पति के जीव मरते हैं न? छहकाय के रक्षक तुम कहते हो, (तो) कहाँ आया इसमें? ऐसा बखेड़ा होता है। **यह उपदेश और प्रवृत्ति की बाहुल्यता कैसे है?** तुम तो एकदम आत्मा... आत्मा... आत्मा... पवित्र आनन्दकन्द, बस, उसे अन्तर दशा प्रगटी वह मुनि, वह प्रतिमा, वह अरिहन्त, वह सिद्ध, यह सब आत्मा में डाल दिया। तब यह सब प्रवृत्ति है, वह क्या है? ऐसा स्वयं प्रश्न उठाकर उसका उत्तर देते हैं।

उसमें तो छह काय के जीवों की विराधना होती है,... प्रतिष्ठा, देखो न! यह सब अभी बड़े गजरथ चलते हैं न! बड़ा विवाद उठता है। बड़ा विवाद चलता है। बुन्देलखण्ड में गजरथ। पपोराजी में कितने ही मन्दिर हैं तो भी नये मन्दिर बनाते हैं। फिर लोग चले तो चले मेल बिना के। परन्तु कहते हैं साधारण जिसकी आवश्यकता है, उस जगह बनाते हैं तो भी उसे छह काय के जीव की हिंसा तो होती है। यह उपदेश चलता है और यह प्रवृत्ति जो है, उसकी **बाहुल्यता कैसे है?** यह सब क्या है तब यह? ऐसा प्रश्न किया। स्थानकवासी प्रतिमा और मन्दिर को नहीं मानते न? प्रश्न करे, छह काय के जीव

की हिंसा (नहीं) करनेवाले मन्दिर आदि (बनाते हैं) और इस मन्दिर में तो छह काय की हिंसा होती है। ऐई! चन्दुभाई!

इसका समाधान इस प्रकार है कि गृहस्थ अरहन्त, सिद्ध और मुनियों का उपासक हैं,... सच्चा गृहस्थ जो है, वह परमात्मा अरिहन्तदेव सर्वज्ञ, मुनि और सिद्ध का वह सेवक होता है। आत्मा की दशा पूर्ण आनन्द की जब तक नहीं हुई, ऐसे गृहस्थी धर्म के समझनेवाले, माननेवाले, वे ऐसे परमात्मा अरिहन्त, सिद्ध और मुनि के तो सेवक होते हैं। उपासक चाहिए। एक शब्द पड़ा रहा है। क्या कहा जाता है उसे? कानो? **ये जहाँ साक्षात् हों...** अरिहन्त, सिद्ध और मुनि, धर्मात्मा सच्चे, हों! सच्चे मुनि की बात है। **वहाँ तो उनकी वन्दना, पूजन करता ही है।** साक्षात् करे।

जहाँ ये साक्षात् न हों, वहाँ परोक्ष संकल्प कर वन्दना पूजन करता है... मन्दिर आदि बनाकर संकल्प करे कि यह भगवान है, यह अरिहन्त है, यह मुनि है। लो, यह मुनि की बात आयी जरा। सच्चे मुनि की प्रतिमा होती है। **तथा उनके रहने का क्षेत्र...** ऐसे महा धर्मात्मा आनन्दधाम, पवित्रता जैसी अन्तर में है, वैसी जिन्होंने प्रगट की है, ऐसे पवित्रता के रहनेवाले जीव वहाँ होते हैं, वह वस्तिका, उसका **क्षेत्र तथा ये मुक्त हुए उस क्षेत्र में...** और जहाँ से मुक्ति में पधारे, क्षेत्र। शत्रुंजय, गिरनार (आदि)। (शत्रुंजय से) पाण्डव मोक्ष पधारे हैं। ध्यान में थे, वहाँ आत्मा के स्वरूप में स्थिर होकर मोक्ष पधारे हैं। वह नीचे का स्थान भी जहाँ से मोक्ष पधारे, वह भी पूज्य गिनने में आता है। पुण्य उपार्जक शुभभाव है वह। धर्म नहीं। धर्म तो आत्मा के आश्रय से होता है। परन्तु ऐसे भाव भी धर्मी को होते हैं।

अकृत्रिम चैत्यालय... शाश्वत् मन्दिर होते हैं। मेरुपर्वत के ऊपर, वहाँ जा सकते हैं। आगे तो नहीं जा सकते। गृहस्थ लोग हैं। आगे बहुत नहीं जा सकते। परन्तु मेरुपर्वत एक लाख योजन का है, जम्बूद्वीप के बीच। जम्बूद्वीप के लाख योजन... उसमें बीच में... वहाँ अकृत्रिम शाश्वत् जिनमन्दिर है। वहाँ जाकर ध्यान करे। और, **उनका संकल्प कर वन्दना व पूजन करता है। इसमें अनुरागविशेष सूचित होता है,...** अनुराग है न? प्रेम। **फिर उनकी मुद्रा, प्रतिमा तदाकार बनावे...** भगवान अरिहन्त देव की, सिद्ध की और मुनि की मुद्रा, प्रतिमा तदाकार—जैसा है, वैसा बनावे। **इसमें अनुराग विशेष सूचित**

होता है,... बहुत प्रेम है। उसके कारण बहुत भगवान के प्रति अनुराग है, इसलिए उसे ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता।

और, **उनकी मुद्रा, प्रतिमा तदाकार बनावे और उसको मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा कर स्थापित करे तथा नित्य पूजन करे...** हमेशा भगवान की प्रतिमा की पूजा करे, **इसमें अत्यन्त अनुराग से सूचित होता है,...** प्रेम होता है न? देखा न! गाय थी न, गाय? भाई! वहाँ नहीं? कुँवरजीभाई की। उनकी गाय थी। प्रेम था। वह मानो मेरी बहू कामधेनु हुई, ऐसा हो गया था। मूली के दरबार के कामदार थे न अभी? है। है। यह मूली दरबार थे। वहाँ मुझे एक बार ले गये थे। उनकी बहू गुजर गयी तो उन्हें ऐसा हुआ कि मेरी बहू ही यह कामधेनु गायरूप से आयी है। यह कामधेनु गाय ऐसी थी कि जब चाहो तब दूध दे। हमारे वढवाण में थी। दादभा में थी। जब चाहे तब दूध। वह कामधेनु कहलाती है। जब चाय पीनी हो, तब उसमें दूध तैयार। वे साधारण गायें तो सवेरे और शाम दो समय दूध दे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसा रिवाज है। दादभा को गाय थी। चुनीभाई के घर में। यह तो बहुत वर्ष की बात है। भाई अभी गुजर गये न? उनके परिवार में वहाँ गाय थी। और उनके यहाँ थी। यह गोविन्दजी मूली के। गोविन्दभाई जीवित हैं। उसकी पूजा करे। गाय के लिये उन्होंने किया। बहुत प्रेम है न। गाय की मूर्ति बनायी, मन्दिर बनाया। उस समय अठारह हजार रुपये का, हों! बहुत वर्ष हो गये। हे माताजी! ऐसा आता है न अपने श्रीमद् में। हे भगवान! मैं भूल गया। उसी प्रकार वहाँ उसे बोले। लेख लिखा है। हम देखने गये थे मन्दिर में। हे माता! मैं भूल गया, तुमको पहिचाना नहीं। तुम मेरे घर की स्त्री थीं। माता तुम ऐसी थीं। पतिव्रता महासती। तुम कामधेनुरूप से अवतरित हुईं, यह मुझे पहिचान नहीं हुई। वहाँ सब लिखा है। तब अठारह हजार खर्च किये। तब, हों! यह तो बहुत वर्ष की बात है। स्वयं को जिसका प्रेम होता है न, उसका सब आरोप करना, मूर्ति आदि बनाकर करते हैं, ऐसा कहते हैं।

धर्मात्मा को अरिहन्त और मुनियों के प्रति प्रेम-अनुराग है तो उनकी भी प्रतिमा और मन्दिर बनाकर पूजता है। यह व्यवहार अनादि का है, नया नहीं। समझ में आया? यह

स्थानकवासी ने निकाल डाला है न? यह तो उन्होंने मिथ्यात्व सेवन किया है। मूर्ति का, पूजा का अनादि का मार्ग है।

अत्यन्त अनुराग से सूचित होता है, उस अनुराग से विशिष्ट पुण्यबन्ध होता है... उसे खास पुण्यबन्धन होता है। धर्म नहीं। धर्म तो आत्मा आनन्द का कन्द, उसका आश्रय लेकर अन्तर की पवित्रता निर्विकल्प शान्ति प्रगट करे, वह धर्म। परन्तु ऐसा भाव धर्मी को बीच में आये बिना रहता नहीं। आता है। ऐसा कहते हैं। **उस मन्दिर में छह काय के जीवों के हित की रक्षा का उपदेश होता है...** वहाँ उपदेश तो यह होता है या नहीं? छह काय के जीव सभी प्राणी हैं। उपदेश ऐसा दे। **तथा निरन्तर सुननेवाले और धारण करनेवाले के अहिंसा धर्म की श्रद्धा दृढ़ होती है...** रागरहित आत्मा का स्वभाव, ऐसी अहिंसा की श्रद्धा वहाँ दृढ़ होती है, **तथा उनकी तदाकार प्रतिमा देखनेवाले के शान्तभाव होते हैं,...** देखो! अहो! सर्वज्ञ ऐसे थे। वीतराग निर्विकल्प सन्त ऐसे थे। ऐसे शान्तभाव देखकर शुभभाव उत्पन्न होता है। **ध्यान की मुद्रा का स्वरूप जाना जाता है...** लो! समझ में आया? ध्यान की मुद्रा ऐसी (बनावे)। अन्तर में आत्मदशा-वर्तमान दशा-हालत-पर्याय त्रिकाली वस्तु में झुकायी होती है। ऐसी मुद्रा देखकर शान्तभाव प्रगट होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहार भी समझना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक वस्तु सत्य तो ऐसी है कि लोग या एकान्त पकड़े निश्चय और या एकान्त पकड़े व्यवहार। दोनों सत्य नहीं। दोनों वस्तु है। साक्षात् प्रतिमा भी है, यह मुनि आदि और जिनमन्दिर आदि भी अनादि के हैं। शाश्वत् जिनमन्दिर असंख्य हैं। जिनप्रतिमायें रत्न की प्रतिमायें हैं। नन्दीश्वरद्वीप है, वहाँ तो बावन विशाल जिनालय हैं। यह तो प्रत्येक स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी, दिगम्बर तीनों में आता है। परन्तु पक्ष बँध जाता है, फिर निकलना कठिन पड़ता है। है शुभभाव का हेतु। इतना। विशिष्ट पुण्य। खास पुण्य आत्मा के भानसहित, ऐसी प्रतिमा आदि पूजा, भक्ति करे तो खास पुण्य बँधता है। जिसके कारण भविष्य में अरिहन्त की वाणी, समवसरण का योग, मुनियों का समागम मिले, ऐसा वह पुण्य होता है। कहो, हिम्मतभाई!

मुमुक्षु : आज तो संक्रान्ति है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा था न एक बार (संवत्) १९८२ के वर्ष में। सुन्दरवोरा के उपाश्रय में। मणिभाई नहीं? मणिभाई थे एक। ८२ के वर्ष की बात है। १८ और २७ कितने हुए? ४५ हुए। रात्रि में यह बात निकली थी। सुन्दरवोरा के उपाश्रय में चातुर्मास था। ४५ वर्ष पहले। थे न तुम वहाँ ही थे न? यह दोनों वहाँ ही थे। तुम थे या नहीं? किसी समय। वहाँ सामने बात निकलने पर निकली कि इस मूर्ति का क्या करना? मैं तो उसमें था न। प्रश्न उठा प्रतिमा का। रात्रि के दस-बारह व्यक्ति बैठे थे। रात्रिचर्चा में। मणिभाई बैठे थे। मणिभाई को पहिचानते हो? मणिभाई नहीं वे वैद्य? वे वडवे रहते न बहुत? खम्भात रहते थे। मोटे थे। उनसे कहा देखो भाई! बात मध्यस्थ से कहें तो ऐसी है कि जिनप्रतिमा अनादि की है। अनादि का मार्ग है। परन्तु यह श्वेताम्बर लोगों ने सिर पर मुकुट चढ़ा दिया, चाँदी का खोया, आंगी को बढ़ा दिया। बाजूबन्ध। बढ़ा दिया।

इसलिए कहा, देखो! एक पिता ने दूसरे पिता को सौ रुपये दिये थे। दोनों मित्र थे। एक को सौ रुपये एक बाप ने दिये। (बहियों में) लिखा हुआ। पश्चात् जिसके पिता ने दिये दूसरे के पिता को। उस लड़के ने माँगे। उसने सौ के ऊपर दो शून्य चढ़ाये। मेरे पिता ने तेरे पिता को दस हजार दिये हैं। देख बहियों में और ला। वह कहे, देखता हूँ। दूध में धोकर देना था। ऐसा लोग कहते हैं न। बहियों में देखा तो सौ दिखे। सौ स्वीकार करूँगा तो यह दस हजार माँगता है। इसलिए मेरी बहियों में ही नहीं है।

इसी प्रकार इन स्थानकवासी के पास उसने मुकुट सहित प्रतिमा माँगी। इसने देखा सही प्रतिमा तो है परन्तु यदि हाँ करने जाऊँगा तो यह सब करना पड़ेगा। है ही नहीं, कहे जाओ। चिमनभाई! तब चातुर्मास किया था न। १९८२ के वर्ष। वढवाण... वढवाण। तब यह बात हुई। परन्तु मेरे प्रति लोगों को विश्वास बहुत न, इसलिए बहुत चर्चा नहीं करते। नहीं तो मुँहपत्ती में रहे, ऐसी प्रतिमा कैसे स्थापित करते हैं? इसलिए बहुत शंका नहीं करे। ऐसी-वैसी गड़बड़ चले। परन्तु तब कहा था कि देखो! एक व्यक्ति ने निकाल डाली और एक व्यक्ति ने सब बढ़ा डाली। सिर पर शृंगार, आँगी और फाँगी। ऐई! जयन्तीभाई! तुमने यह किया।

मुमुक्षु : हमने यह किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : रामजीभाई ने ऐसा किया। रामजीभाई स्थानकवासी में थे न? ऐई! हिम्मतभाई! यह सब स्थानकवासी में ही थे न सभी–बहुत। यह तो एक बात है। बात हो, तब तो बात होगी न? हम सब स्थानकवासी थे न। मेरे पिता के पिता आठ पेढ़ी के स्थानकवासी। हमारे पिता के पिता तो बड़े राजा जैसे थे, राजकुमार जैसे। ... और बहुत कवि थे। गृहस्थ व्यक्ति। धन्धा–बन्धा करना हो तो करे। दो महीने सूत की पेटी का धन्धा था। एक आदमी भेजे। दो महीने में दो हजार पैदा करे। दस महीने तक धन्धा ही नहीं। तुम्हारे जैसे बारह महीने होली (सुलगे), ऐसा नहीं। बारह महीने धन्धा। कोई निवृत्ति ही न रहे। हमारी माँ कहती थी, वृद्धा, दो महीने धन्धा करे। मानो बहुत... दो महीने में दो हजार पैदा करे। और खर्च पूरे बारह महीने का तीन सौ रुपये का। अभी तो तीन सौ की सब्जी भी नहीं होगी परन्तु उस समय में पैसे की सेर भिण्डी, दो सेर, पाँच सेर। पैसे की पाँच सेर भिण्डी मिलती थी। उस समय की बात है। भिण्डो समझे? यह भिण्डी की सब्जी होती है न? ऐसा सन्तोष, कम–बहुत। अभी तो तुम्हारे पाँच–पाँच, दस हजार की आमदनी दिन में (होवे) तो भी चैन नहीं मिलती। इस पूनमचन्द को दस हजार की आमदनी दिन की। यह मलूकचन्द का पिता। यह मलूकचन्दभाई थे न? कल गये न। दस हजार की आमदनी एक दिन की। बड़ा मुम्बई में। बाईस–बाईस हजार का माल करे। दस हजार एक दिन की आमदनी। परन्तु चैन नहीं मिलती। भटका–भटक दिल्ली जाना और यहाँ जाना। भटका–भटक।

यहाँ कहते हैं, पहले मुनिपने में निश्चय से प्रतिमा आदि स्थापित की है। परन्तु व्यवहार प्रतिमा भी है अनादि की। उसे उत्थापित करे तो वे मार्ग को नहीं समझते। तथा उस प्रतिमा के दर्शन, पूजा, भक्ति में धर्म माने, वह भी भूल है। वह पुण्य है। अशुभ चारित्रदोष से बचने के लिये शुभभाव है। पण्डितजी! धर्म नहीं तथा वह पाप भी नहीं तथा वह निश्चय भी नहीं। ऐसी बात है, भाई! मध्यस्थ से विचार करे तो काम आवे, हों! और वह भी प्रतिमा कैसी होती है? ऐसी वीतराग मुद्रा। उसके ऊपर कुछ (लगाया न हो)। जिसे देखने से ऐसा लगे कि ओहो! आत्मा राग की क्रियारहित ऐसा आत्मा अक्रिय है। ऐसा एक शुभभाव उत्पन्न होता है। यह अनादि की बात है, ऐसा कहते हैं। देखो! आया न?

शान्तभाव होते हैं, ध्यान की मुद्रा का स्वरूप जाना जाता है और वीतरागधर्म से अनुराग विशेष होने से पुण्यबन्ध होता है,... लो! पुण्यबन्ध है। संवर-निर्जरा नहीं। अरे! गजब बात। तथा वह पाप के परिणाम हैं, ऐसा नहीं। शुभभाव-पुण्य के भाव हैं। कहो, दास! बहुत सब स्थानकवासी हैं।

मुमुक्षु : अब आत्मा के स्थानकवासी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल लिखा है न? विनोबा। कल से मैं स्थानकवासी होनेवाला हूँ। इसलिए वे प्रसन्न हो गये। स्थानकवासी अर्थात्? मैं एक जगह रहनेवाला हूँ। उसका अर्थ ऐसा किया तो वे स्थानकवासी प्रसन्न हो गये। यह विनोबा है न? ... कल समाचारपत्र में आया। मैं कल से अब स्थानकवासी होनेवाला हूँ। तो वे लोग कहें, देखा! अपने स्थानकवासी (होनेवाले हैं)। स्थानकवासी का अर्थ किया, कल से मैं अब एक जगह रहना चाहता हूँ। एक स्थानक करना चाहता हूँ। इसका नाम स्थानकवासी होगा?

निश्चय तो आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसके स्थानक में रहे, उसका नाम स्थानकवासी है। यह सब बाहर में भटका-भटक करे, परन्तु इसे अभी खबर कहाँ है? यह तो बाहर की क्रिया महाव्रत और दया, दान करे, उसे धर्म मानते हैं। वह तो राग है, पुण्य है। राग और विकल्परहित भगवान, चैतन्य सहजानन्द की मूर्ति आत्मा है। परन्तु इसे कैसे ख्याल में आवे? अनुमान में भी नहीं आता इसे कि ऐसा आत्मा अन्दर है। ऐसे आनन्द के धाम में बसकर स्थिर होना, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करना, उसका नाम वास्तव में स्थानकवासी कहा जाता है। समझ में आया? इसका तो भान नहीं होता और यह बाहर से (मानता है)।

इसलिए इनको भी छहकाय के जीवों के हित करनेवाले उपचार से कहते हैं। लो। मन्दिर को, प्रतिमा को छहकाय का हित करनेवाले व्यवहार से कहा जाता है। **जिनमन्दिर वस्तिका प्रतिमा बनाने में तथा पूजा प्रतिष्ठा करने में आरम्भ होता है,...** छह काय में एकेन्द्रिय... **उसमें कुछ हिंसा भी होती है। ऐसा आरम्भ तो गृहस्थ का कार्य है,...** गृहस्थ तो संसार के लिये करता है। वैसे यह पुण्यभाव के लिये हो, ऐसा कहते हैं। **इसमें गृहस्थ को अल्प पाप कहा,...** सावद्य लेशो, बहु पुण्य राशो... समन्तभद्र (आचार्य ने कहा है।)

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... तथापि उसमें पुण्य बहुत होता है। समझ में आया? यह गृहस्थ का कार्य है।

गृहस्थ को अल्प पाप कहा, पुण्य बहुत कहा है, क्योंकि गृहस्थ के पद में न्यायकार्य करके, न्यायपूर्वक धन उपार्जन करना,... लो। न्याय कार्य से। लौकिक न्याय, हों! **न्यायपूर्वक धन उपार्जन करना, रहने के लिए मकान बनवाना,...** रहने के लिये जगह बनावे। **विवाहादिक...** करते हैं न सगाई और विवाह और बड़ी धामधूम। **करना और यत्नपूर्वक आरम्भ कर आहारादिक स्वयं बनाना तथा खाना इत्यादिक कार्यों में यद्यपि हिंसा होती है तो भी गृहस्थ को इनका महापाप नहीं कहा जाता है।** देखा! महापाप किसे कहना? अब यह कहते हैं, देखो!

गृहस्थ के तो महापाप मिथ्यात्व का सेवन करना,... ओहो! यह पुण्य-पाप का राग, इसे धर्म मानना; देह की क्रिया से धर्म होता है, ऐसा मानना; सच्चे देव-गुरु-शास्त्र से विरुद्ध मानना, ऐसा जो महा मिथ्यात्वभाव। महापाप तो वह है। समझ में आया? **महापाप मिथ्यात्व का सेवन करना,...** एक बात। जैसा तत्त्व का स्वरूप है, देव-गुरु का स्वरूप है, आत्मा का जैसा स्वरूप है, उससे विपरीत मानना, यही महापाप जगत में है। सात व्यसन से भी महापाप। इसे उसका माप ख्याल में नहीं आता। जीव मरे, उसे पाप मानता है, परन्तु यह पूरा आत्मा का जो स्वरूप है, उससे विपरीत मानना और सच्चे सन्त-देव-गुरु कैसे होते हैं, उससे विपरीत मानना, ऐसी मिथ्याश्रद्धा, वही गृहस्थ को महापाप है। यह तो अल्प पाप है। पुण्य अधिक है। पूजा आदि में—ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

स्थानकवासी में यह बात निकाल डाली। मन्दिरमार्गी ने उसमें पूरा धर्म मनवा लिया। धर्म, मन्दिर, पूजा, यात्रा, धर्म, धर्म और धर्म। क्या कहा, वह आता है न? 'धामधुमे धमाधम चली। धर्म मार्ग रहा दूर रे।' ज्ञानमार्ग रहा दूर। चैतन्य भगवान की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, यह मार्ग दूर रह गया और यह सब धमाधम। लाखों रुपये खर्च करे, पाँच लाख खर्च किये, दस लाख खर्च किये। उसे बड़ा धर्म हुआ। उसकी होड़ करे, होड़। उसने पाँच लाख खर्च किये तो अपने दस लाख खर्च करेंगे। बड़ा धर्म होगा। बड़ा कहलाऊँगा।

उसमें धर्म कहाँ था ? राग मन्द होवे तो शुभ होता है। उसमें और वापस उसके फल की इच्छा हो कि इसमें मुझे पुण्य बँधे और स्वर्ग मिले और मुझे लक्ष्मी मिले। तो पाप बँधता है। भारी काम।

अन्याय... लो ! मिथ्यात्व का महापाप है। अन्याय का महापाप है। गृहस्थों को अन्याय नहीं होता। समझ में आया ? जिस-तिस के रुपये ले लेना, चुरा लेना, धरोहर रख गया हो, उसे हड़प लेना। ऐसे जो महा अन्याय। बेचारा पाँच लाख रख गया, चार आने रूप से। पहले चार आने रूप से (रखते थे) । अब अभी तो डेढ़ रुपया, दो प्रतिशत ऐसा सुना है। करोड़पति दो-दो प्रतिशत देते हैं। दो-दो प्रतिशत का ब्याज। पहले चार-छह आना देते थे। न्याय से काम लेते। विशेष अन्याय नहीं करे। कोई धरोहर रख गया हो। वह भूल गया हो। उसका पिता मर गया और रख गया पाँच लाख। लड़का लेना मेरे दो लाख रुपये हैं न तुम्हारे पास ? भाई ! दो लाख नहीं। पाँच लाख रख गये हैं। चार आने रूप से। पैसा चाहिए हो तो ले जा। ऐसा न्याय होता है। समझ में आया ? उसे ऐसा अन्याय नहीं होता। किसी के छुपा देना, ले लेना।

देखो न, श्रीमद् में नहीं बना ? श्रीमद् ने मोती का व्यापार किया था। जिसके साथ मोती का व्यापार किया था, वह मोती साधारण लिये हुए और उसमें पुड़िया अच्छी दे दी उसने। उल्टी पुड़िया। जिसमें लाखों रुपये (मिलते) । जिसके साथ साधारण मोती का धन्धा किया, उसने उसमें बड़ी अच्छी पुड़िया दे दी। देकर, यहाँ देखे श्रीमद् घर लाकर। अहो ! यह व्यापार नहीं किया। वह तो बेचारा चिल्ला उठेगा। ऐसी की ऐसी पुड़िया बाँधकर रख दी। वह आया, साहेब ! यह पुड़िया तो दूसरी आ गयी है। भाई ! लो, यह पुड़िया। यह अपने सौदा नहीं किया था। दूसरी पुड़िया लाओ हो तुम ? लाओ। (इसे) ले जाओ। आहाहा ! वह तो कहे, यह वह कौन है ? लाखों रुपये के महा मूल्यवान मोती। अरे ! यह तो दैवीपुरुष है। पुड़िया ऐसी की ऐसी रख रखी थी। यह श्रीमद् अभी हुए। श्रीमद् राजचन्द्र। लौकिक के व्यापार में भी उनका न्याय होता है। धर्मी को अन्याय नहीं होता। किसी का पचा लेना। भूल गया, इसलिए पचा लेना, ऐसा नहीं होता—ऐसा कहते हैं। ऐसा अन्याय महापाप है। यह तो अल्प पाप और बहुत पुण्य है। समझ में आया ? किसमें ? जिनप्रतिमा, पूजा, भक्ति में अल्प पाप और बहुत पुण्य है।

चोरी आदि से धन उपार्जन करना,... देखो! अन्याय से धन लेना, चोरी करके किसी का ले लेना, उठा लेना, यह महा अन्याय है। कहा था न? एक बार वहाँ मुम्बई माल लेने गये। बड़ा मुसलमान था। उसे बेचारे को हस्ताक्षर करना नहीं आता। नौकर था उमराला का। माल लिया। बड़ा भण्डार था। माल लेने गये तो वह कहे, मेरे बाद ले लेना। मेरे नाम से। पैसा देकर। मैंने कहा, संवत् १९६४/६५ की बात होगी। क्या करता है? मुसलमान का नौकर। नौकर नामा लिखे और सेठिया को तो नामा भी आवे नहीं धन्धा में। ऐसा सेठिया। फिर उसके धन्धे में बड़े भण्डार भरे हों। माल लिया कुछ दो दूसरे वे क्या कहलाते हैं? पेटियाँ। एक पेटी कहे मेरी ले जाओ। नौकर कहे। मुझे पैसे देना। मैंने कहा, ऐसा? ऐसा धन्धा अपने को होता है? ... वह साथ में था। ऐसा धन्धा अपने को नहीं होता। किसी का चुराकर ... कम भाव में देना परन्तु ले जाओ पेटी। नहीं ली जाती। ऐसा अन्याय का व्यापार गृहस्थाश्रम में भी नहीं होता। समझ में आया?

इसके अतिरिक्त फिर दूसरा पाप... उस समय। माल ले न? एक व्यक्ति को पौणे मण था तब। पौणे मण (तीस किलो)। रेल में चढ़ावे। पौणे मण... फिर हम गये। तो पास लेकर आये दूसरे के साथ। हमारे पास माल बहुत। इतना अधिक माल और करता क्या है यह? दूसरे सगे-सम्बन्धी को लेकर... अपने को कुछ खबर नहीं। हम सरल सीधे व्यक्ति। भगत कहलाते थे। कहा, यह क्या करता है? पास लेकर आ... यहाँ से चढ़ाकर तुम उतरोगे वहाँ पालेज में तो तुम्हारे परिचित होंगे न? क्या कहलाता है? स्टेशन मास्टर-बास्टर सब परिचित। हमको जानते हैं। कहा, यह चढ़ाने का यह न्याय नहीं, भाई! ले लिया दूसरा। साथ में कोई था। इन भगत को खबर न पड़े। तुम भी ऐसा माल... एक व्यक्ति को पौणे मण तो अपन दो व्यक्ति हैं तो डेढ़ मण होगा, बस। इसके बदले यह तो छह-सात आठ मण माल है। यहाँ से लेकर वहाँ उतार लेना, यह न्याय नहीं है, कहा। ... कौन माने? न्याय से मार्ग होना चाहिए। समझ में आया या नहीं? वह पास नहीं होता रेल में? सेठ कुछ समझते नहीं। नहीं तो पास तो सादी भाषा है। पहले से ऐसा होवे कि यह समझ में नहीं आता।

माल लेकर रेल में चढ़ते हैं या नहीं? तो एक व्यक्ति के टिकिट में पौणे मण माल चढ़ता था। उसके बदले सात-आठ मण माल हमारे साथ था। मुम्बई से पालेज लाना था।

परन्तु उसमें दूसरे-दूसरे लोग पास लेकर (चढ़े हुए)। पास होवे न दो-दो पैसे का? वह ले लेवे और माल डाला रेल में। मैंने कहा, यह मार्ग नहीं है, बापू! यह क्या करते हैं? कहा, कुछ नहीं, कुछ नहीं। जाओ। ठीक। कोई साथ में था। एक व्यक्ति को पौणे मण। क्या कहलाता है वह तुम्हारे? वजन। उसके बदले दो टिकिट में छह-आठ मण बड़े टोकरे और सब भरा हुआ था। यह मार्ग नहीं है। यह किसने किया ऐसा? पासवाले अपने को चढ़ा देंगे और अपने तो गाँव में उतरना है, वहाँ परिचित है। न्याय नहीं, कहा। उतारा था सही, हों! मुफ्त।... माने नहीं अपने क्या करना? कुँवरजी साथ में था। आहाहा! यह तो बहुत वर्ष की बातें हैं। दुकान की।

(यहाँ) कहते हैं, गृहस्थ को तो पाप तो ऐसा चोरी, अन्याय करके करना, वह महापाप है। और **त्रस जीवों को मारकर मांस आदि अभक्ष्य खाना...** यह महापाप है। समझ में आया? **परस्त्री सेवन करना ये महापाप हैं। गृहस्थाचार छोड़कर मुनि हो जावे, तब गृहस्थ के न्यायकार्य भी अन्याय ही हैं।** यह भी अन्याय है। न्याय कार्य भी अन्याय है। पाप है न यह सब। **मुनि के भी आहार आदि की प्रवृत्ति में कुछ हिंसा होती है,...** लो! मुनि भी आहार लेने जाये, तब जरा हिंसा होती है न। **मुनि को हिंसक नहीं कहा जाता है, वैसे ही गृहस्थ के न्यायपूर्वक अपने पद के योग्य आरम्भ के कार्यों में अल्प पाप ही कहा जाता है,...** लो। जिनमन्दिर, प्रतिमा प्रतिष्ठा आदि में अल्प पाप होता है। **इसलिए जिनमन्दिर, वस्तिका और पूजा प्रतिष्ठा के कार्यों में आरम्भ का अल्प पाप है, मोक्षमार्ग में प्रवर्तनेवाले से अति अनुराग होता है...** मोक्षमार्ग में प्रवर्तनेवाले संयमी मुनि इत्यादि। उनके प्रति बहुत प्रेम होता है।

उनकी प्रभावना करते हैं, उनको आहारदानादिक देते हैं और उनका वैयावृत्त्यादि करते हैं। ये सम्यक्त्व के अंग हैं... लो! यह समकित का अंग है। पुण्य ... होता है। **और महान पुण्य के कारण हैं,...** लो। समकित का अंग है अर्थात् उसमें होता है, उसमें यह पुण्यबन्ध का कारण है। **इसलिए गृहस्थ को सदा ही करना योग्य है...** गृहस्थ को यह प्रतिमा पूजा, मन्दिर भगवान की प्रतिष्ठा आदि यह उचित है। **और गृहस्थ होकर ये कार्य न करे तो ज्ञात होता है कि इसके धर्मानुराग विशेष नहीं है।** प्रेम नहीं। लड़के को विवाह करने में कैसे खर्च कर डालता है लाख, दो लाख? मकान

बनावे वहाँ पाँच-दस लाख पच्चीस लाख खर्च कर डालता है। सेठ! मकान बनाने में कितना किया? सेठ ने छह लाख का मकान बनाया। उसने वहाँ चालीस लाख का बनाया। गोवा-गोवा। शान्तिलाल ने चालीस लाख का एक मकान बनाया। चालीस करोड़ रुपये और दो अरब रुपये हैं। दो अरब चालीस करोड़। बड़ा बँगला बनाया है। हजीरा कहलाता है या क्या बड़ा मकान हो उसे? अपनी अनुकूलता के लिये करते हैं या नहीं? तो जिसे धर्म की प्रभावना का अनुराग होता है, उसे जिनमन्दिर आदि वीतराग प्रतिमा, प्रतिष्ठा, पूजा आदि में अल्प पाप होता है, परन्तु बहुत पुण्य है, इसलिए उसे करना उचित है, ऐसा यहाँ कहना है न। उसकी भूमिका के योग्य उसे है। मुनि हो, फिर उसे कुछ नहीं। कहो, शान्तिभाई! यह सब निषेध में थे, उसमें न सब? तुम भी थे न उसमें पहले?

और, **प्रश्न – गृहस्थी को जिसके बिना चले नहीं इस प्रकार के कार्य तो करना ही पड़े...** गृहस्थ को आवश्यक हो, वह तो करना पड़ता है। पुत्र-स्त्री, मकान आदि। ऐसा कहते हैं। **और धर्म पद्धति में आरम्भ का कार्य करके पाप क्यों मिलावे,...** ऐसा कहते हैं। ऐसे धर्म में किसलिए ऐसा करते हैं? सामायिक न करें? लो! ऐसा कहते हैं, यह सब तर्क तुम्हारे। **सामायिक,...** न करें। णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... **प्रतिक्रमण, प्रोषध आदि करके पुण्य उपजावे।** उसमें पुण्य न उपजावें? ऐसे आरम्भ के काम किसलिए करना? ऐसा कहते हैं।

उसको कहते हैं – यदि तुम इस प्रकार कहो तो तुम्हारे परिणाम तो इस जाति के हैं नहीं,... तुम्हारे परिणाम की ऐसी जाति है और तुम्हें खबर नहीं, ऐसा कहते हैं। **केवल बाह्यक्रिया मात्र में ही पुण्य समझते हो।** यह सामायिक लेकर बैठे। णमो अरिहन्ताणं... जरा हो गया। परिणाम कैसे हैं, इसकी तो खबर नहीं। **बाह्यक्रिया मात्र में ही पुण्य समझते हो। बाह्य में बहु आरम्भ परिग्रह का मन, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि निरारम्भ कार्यों में विशेषरूप से लगता नहीं है,...** देखो! आरम्भ परिग्रहवाले के सामायिक और निर्दोष आनन्दस्वरूप प्रभु, उसमें उसकी स्थिरता किसी दिन जमती ही नहीं। उसे सामायिकादि हो नहीं सकते। **विशेषरूप से लगता नहीं है, यह अनुभवगम्य है,...** यह तो अनुभवगोचर है, ऐसा कहते हैं। खबर नहीं सबको? ऐसा।

तुम्हारे अपने भावों का अनुभव नहीं है,... लो! तुझे तेरे परिणाम की खबर

नहीं। यह क्रिया का लगाया और मानो अपने को धर्म हो गया। **केवल बाह्य सामायिकादि निरारम्भ कार्य का भेष धारण कर...** निरारम्भ कार्य का वेशधारी। निरारम्भ भाव नहीं। **बैठो तो कुछ विशिष्ट पुण्य नहीं है,...** उससे खास पुण्य कुछ है नहीं। **शरीरादिक बाह्य वस्तु तो जड़ है,...** यह तो जड़ है। यह ऐसे बैठा रहे तो क्या ? तेरे भाव क्या हैं, उसकी तो तुझे खबर नहीं। **केवल जड़ की क्रिया का फल तो आत्मा को मिलता नहीं है।** लो ! जड़ की क्रिया का फल आत्मा को नहीं है। बैठा रहा ऐसे-तैसे। परन्तु अन्दर परिणाम कैसे हैं, इसकी खबर नहीं। **अपने भाव जितने अंश में बाह्यक्रिया में लगे;...** देखो ! शुभ या अशुभ या शुद्ध। ऐसा जैसा भाव हो, वैसा उसे फल आता है।

मुमुक्षु : परिणाम....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। परिणाम से बन्ध है, किसी जड़ की क्रिया से बन्ध नहीं है।

जितने अंश में बाह्यक्रिया में लगे; उतने अंश में शुभाशुभ फल अपने को लगता है,... राग की मन्दता के परिणाम हों तो पुण्य होता है। तीव्र परिणाम-कठोर हों तो पाप होता है। जड़ की क्रिया वास्तव में पुण्य-पाप है नहीं। **इस प्रकार विशिष्ट पुण्य तो भावों के अनुसार है।** यह तो अन्तर के भाव हैं, उसके प्रमाण इसे पुण्य बँधता है। जड़ की क्रिया के अनुसार पुण्य नहीं बँधता। **आरम्भी परिग्रही के भाव तो पूजा, प्रतिष्ठादिक बड़े आरम्भ में ही विशेष अनुराग सहित लगते हैं।** बहुत आरम्भ-परिग्रहवाला है न, ऐसा कहते हैं। पूजा, प्रतिष्ठा में जरा अनुराग होता है।

जो गृहस्थाचार के बड़े आरम्भ से विरक्त होगा... गृहस्थाचार छोड़कर मुनि हो जाये आत्मा के ध्यान में, **सो उसे त्यागकर अपना पद बढ़ावेगा, जब गृहस्थाचार के बड़े आरम्भ छोड़ेगा,...** तब तो यह आरम्भ छोड़ देगा। फिर मुनि होकर जिनमन्दिर नहीं बनाता। मुनि होकर कुछ बनावे ? **तब उसी तरह धर्मप्रवृत्ति के बड़े आरम्भ भी पद के अनुसार घटावेगा।** तब उसे घट जायेंगे जिनमन्दिर आदि के भाव। **मुनि होगा तब आरम्भ क्यों करेगा ?** बहुत ठीक लिखा है। **अतः तब तो सर्वथा आरम्भ नहीं करेगा, इसलिए मिथ्यादृष्टि बाह्यबुद्धि जो बाह्य कार्यमात्र ही को पुण्य-पाप मोक्षमार्ग समझते हैं,...** मिथ्यादृष्टि तो बाह्य कार्य मात्र से पुण्य, पाप और मोक्षमार्ग तीनों समझते हैं। देह की क्रिया से पुण्य, पाप और धर्म, ऐसा समझते हैं। ऐसा है नहीं।

उनका उपदेश सुनकर अपने को अज्ञानी नहीं होना चाहिए। ऐसे अज्ञानी का उपदेश सुनकर अज्ञानी नहीं होना। **पुण्य-पाप के बन्ध में शुभाशुभभाव ही प्रधान हैं...** पुण्य-पाप के बन्ध में तो शुभाशुभभाव हो, वह मुख्य है। देह की क्रिया का क्या काम? **पुण्य-पापरहित मोक्षमार्ग है,...** दो बातें कीं। **पुण्य-पाप के बन्ध में शुभाशुभभाव ही प्रधान हैं और पुण्य-पापरहित मोक्षमार्ग है, उसमें सम्यग्दर्शनादिकरूप आत्मपरिणाम प्रधान है।** क्या कहा? देहादि की क्रिया में जो अपना भाव शुभ और अशुभ होता है, वह बन्ध का कारण है। क्रिया नहीं। और धर्म में पुण्य-पापरहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम, वे मोक्षमार्ग हैं। समझ में आया?

सम्यग्दर्शनादिकरूप आत्मपरिणाम प्रधान है। देखा! वे शुभाशुभभाव प्रधान हैं, ऐसा था। लिखा बहुत सरस है। शुभभाव जैसा हो राग की मन्दता-तीव्रता, तत्प्रमाण उसे पुण्य-पाप होते हैं। देह की क्रिया से कुछ है नहीं। वह तो जड़ है। शुभाशुभ परिणाम के आश्रय से बन्ध है। और धर्म पुण्य-पापरहित सम्यग्दर्शन आदि मोक्षमार्ग जो है, वह तो आत्मपरिणाम है। वे आत्मा के परिणाम हैं। पुण्य-पाप परिणाम को आत्मपरिणाम नहीं कहा, देखो! आत्मा सहजानन्द प्रभु, उसकी सहजानन्द की मूर्ति भगवान आत्मा, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता, वे तो आत्मा के परिणाम हैं, वे निर्विकल्प हैं। राग और पुण्य से से रहित परिणाम हैं, वह मोक्षमार्ग है। कहो, समझ में आया? बहुत समाहित किया है। लौकिक की बात सब स्थापित की, व्यवहार स्थापित किया, निश्चय ऐसा होता है।

धर्मानुराग मोक्षमार्ग का सहकारी है... निमित्त है, ऐसा कहते हैं। जिसमें भगवान की पूजा आदि का शुभभाव हो, वह निमित्त है। साथ में ऐसा होता है। **और धर्मानुराग के तीव्र मन्द के भेद बहुत हैं,...** धर्म के प्रेम में भी असंख्य प्रकार के तीव्र-मन्द परिणाम की जाति है। **इसलिए अपने भावों को यथार्थ पहिचानकर अपनी पदवी, सामर्थ्य पहिचान...** दो बात। **भावों को पहिचानकर...** यथार्थ, हों! यथार्थ। **अपनी पदवी, सामर्थ्य पहिचान...** वापस पदवी के योग्य सामर्थ्य कितनी उसे चाहिए? **समझकर श्रद्धान-ज्ञान और उसमें प्रवृत्ति करना। अपना भला-बुरा अपने भावों के आधीन है, बाह्य परद्रव्य तो निमित्तमात्र है,...** शरीरादि क्रिया तो निमित्तमात्र है।

उपादानकारण हो तो निमित्त भी सहकारी हो... लो! अपने परिणाम उपादान

हों तो निमित्त को सहकारी कहा जाता है। साथ में होते हैं, ऐसा। **उपादान न हो तो निमित्त कुछ भी नहीं करता है,...** लो! अपना भाव न हो तो निमित्त उसे करा दे कुछ? तीर्थंकर भी करा नहीं देते और मूर्ति भी करा नहीं देती, ऐसा कहते हैं। तू भाव करे, उसमें वे निमित्त कहे जाते हैं। **इस प्रकार इस बोधपाहुड का आशय जानना चाहिए।** लो! यह बोधपाहुड़ का आशय जानना।

इसको अच्छी तरह समझकर... अर्थात् भलीभाँति समझकर। बराबर समझना वापस। निश्चय स्थापित करने गये तो वे कितने ही कहते हैं कि इस बोधपाहुड़ में जो कहा, वह हमें ठीक लगता है। प्रतिमा आत्मा, संयमी आत्मा, मुद्रा आत्मा, आयतन आत्मा स्वयं धर्म का घर। दूसरे घर आयतन नहीं। यह तो निश्चय की बात है। व्यवहार-निश्चय का बतलाया। यह व्यवहार दूसरा है। **जैसे कहे वैसे और इनका व्यवहार भी बाह्य वैसा ही तथा चैत्यगृह, प्रतिमा, जिनबिम्ब, जिनमुद्रा आदि धातु पाषाणादिक का भी व्यवहार वैसा ही जानकर श्रद्धान और प्रवृत्ति करनी।** नहीं तो मिथ्या श्रद्धा हो जायेगी। अज्ञानी की श्रद्धा छोड़ देना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निश्चय है, उसे निश्चय समझना, व्यवहार के परिणाम को व्यवहार समझना।

अन्यमती अनेक प्रकार स्वरूप बिगाड़कर प्रवृत्ति करते हैं, उनको बुद्धि कल्पित जानकर उपासना नहीं करनी। बुद्धि कल्पित (हो), उसकी सेवा करना नहीं। **इस द्रव्यव्यवहार का प्ररूपण प्रव्रज्या के स्थल में आदि से दूसरी गाथा में बिंब चैत्यालयत्रिक और जिनभवन ये भी मुनियों के ध्यान करने योग्य हैं, इस प्रकार कहा है,...** उसमें आया है। उसमें इनकार किया है, इसमें ही आया है कि जिनभवन होता है। बनानेवाला होता है तो होता है न? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आ गया न पहले? **दूसरी गाथा में बिंब चैत्यालयत्रिक और जिनभवन ये भी मुनियों के ध्यान करने योग्य हैं, इस प्रकार कहा है, सो गृहस्थ जब इनकी प्रवृत्ति करते हैं, तब ये मुनियों के ध्यान करने योग्य होते हैं, इसलिए जो जिनमन्दिर, प्रतिमा, पूजा, प्रतिष्ठा आदिक के सर्वथा निषेध करनेवाले वह सर्वथा एकान्ती की तरह मिथ्यादृष्टि हैं, इनकी संगति नहीं करना।** लो! अच्छा किया है न? किया न?

सन्तबाल ने परिवर्तन किया। सन्तबाल कहे, जिन नहीं, मूर्ति नहीं... मूर्ति नहीं...

ऐसा हाँका। फिर वह आया था, कल्याणचन्दजी कहे, क्या करता है यह? नहीं कुछ? कहा, देखो! यह गाथा दी। (संवत्) १९९१ की बात है। ९१ के वर्ष। यह जिनभवन इसमें है पाठ। जिनभवन बनानेवाले होंगे, तब होंगे या उनके बिना होंगे? जिनभवन आ गया है पहले पाठ में। मूल सूत्र में है। जिनभवन। है या नहीं? ४३ गाथा। देखो! **'जिणभवणं अह वेज्झं, जिणमग्गे जिणवरा विंति'** ४३ गाथा में आ गया है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं जिनभवन होते हैं। देखो! **'तित्थं, वचचइदालत्तयं च वुत्तेहिं'** ४३ गाथा है। १४२ पृष्ठ। तब यह बात हुई थी। कहा, यह प्रतिमा और भवन न हो तो आया कहाँ से इसमें? है। अनादि का है। उसकी मर्यादा शुभ जितनी है। धर्म, वह तो आत्मा के पुण्य-पापरहित आत्मा की पहिचान करे और श्रद्धा करे, तब धर्म होता है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-६१

आगे आचार्य इस बोधपाहुड का वर्णन अपनी बुद्धिकल्पित नहीं है, किन्तु पूर्वाचार्यों के अनुसार कहा है, इस प्रकार कहते हैं -

सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स॥६१॥

शब्दविकारो भूतः भाषासूत्रेषु यज्जिनेन कथितम्।
तत् तथा कथितं ज्ञातं शिष्येण च भद्रबाहोः॥६१॥

हो शाब्दिक परिणाम से जिन-कथन भाषा सूत्र में।
वह जान वैसा ही कहा इन भद्रबाहु शिष्य ने॥६१॥

अर्थ **- शब्द के विकार से उत्पन्न हुआ, इस प्रकार अक्षररूप परिणमे भाषासूत्रों में जिनदेव ने कहा, वही श्रवण में अक्षररूप आया और जैसा जिनदेव ने कहा वैसा ही परम्परा से भद्रबाहु नामक पंचम श्रुतकेवली ने जाना और अपने शिष्य [1]विशाखाचार्य**

१. विशाखाचार्य-मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त को दीक्षाकाल में दिया हुआ नाम है।

आदि को कहा। वह उन्होंने जाना, वही अर्थरूप विशाखाचार्य की परम्परा से चला आया। वही अर्थ आचार्य कहते हैं, हमने कहा है, वह हमारी बुद्धि से कल्पित करके नहीं कहा गया है, इस प्रकार अभिप्राय है।।६१।।

प्रवचन-१७५, गाथा-६१-६२, (लिंगपाहुड़) १-२, शुक्रवार, पौष कृष्ण ४,
दिनांक १५-०१-१९७१

बोधपाहुड़ की ६१ वीं गाथा। **आगे आचार्य इस बोधपाहुड का वर्णन अपनी बुद्धिकल्पित नहीं है, किन्तु पूर्वाचार्यों के अनुसार कहा है, इस प्रकार कहते हैं –**

सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स।।६१।।

कहते हैं कि वाणी **शब्द के विकार से उत्पन्न हुआ,...** भाषा जो है, वह शब्द का विकार है। **अक्षररूप परिणमे भाषासूत्रों में...** यह परमाणु है न जड़? यह शब्द का विकार है। उससे उपजे अक्षर। अक्षररूप परिणमी भाषा। जड़ की अवस्था, हों! भाषा। भाषासूत्र में ऐसे भाषासूत्र में **जिनदेव ने कहा,...** जिनदेव का निमित्त था। उस वाणी में जिनदेव ने कहा का अर्थ निमित्त था। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा एक समय में त्रिकाल ज्ञान, ऐसे जिनेश्वरदेव की वाणी में वे स्वयं जिनेश्वरदेव निमित्त थे। **वही श्रवण में अक्षररूप आया...** सुनने में अक्षररूप आया है।

और जैसा जिनदेव ने कहा, वैसा ही परम्परा से भद्रबाहु नामक पंचम श्रुतकेवली ने जाना... भद्रबाहु पाँचवें (श्रुत) केवली हो गये हैं। श्रुतकेवली, हों! केवली नहीं। उन श्रुतकेवली ने ऐसा जाना। महावीर भगवान से परम्परा से आया, वह भगवान भद्रबाहुस्वामी ने जाना। **अपने शिष्य विशाखाचार्य आदि को कहा।** उनके शिष्य विशाखाचार्य हैं, उनको कहा। **वह उन्होंने जाना, वही अर्थरूप विशाखाचार्य की परम्परा से चला आया।** परम्परा से यह भाव चला आता है। देखो! निश्चयप्रतिमा आत्मा, निश्चयदेव आत्मा, निश्चयतीर्थ आत्मा, यह बात कहते हैं, ठेठ भगवान की वाणी में आया, विशाखाचार्य तक परम्परा से आया। उससे हमें परम्परा आयी है, कुन्दकुन्दाचार्य

कहते हैं। समझ में आया ?

विशाखाचार्य की परम्परा से चला आया। वही अर्थ आचार्य कहते हैं, हमने कहा है, वह हमारी बुद्धि से कल्पित करके नहीं कहा गया है,... हमने जो यह कहा है कि आत्मा, वह आयतन—धर्म का स्थान है। आनन्दमूर्ति ज्ञायकभाव, वही आयतन—धर्म का स्थान है। वह धर्म का स्थान यह है, वह तो बाह्य है। आत्मा अखण्ड आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्य, वही जिनप्रतिमा है, वही जिनमुद्रा है। ऐसा परम्परा का मार्ग भगवान की वाणी में आया था, उसे भद्रबाहुस्वामी ने अपने शिष्य को दिया। परम्परा से हमें मिला। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। हमारे घर की यह बात नहीं है।

इस प्रकार अभिप्राय है। लो! इसमें ऐसा अभिप्राय है। कितनों को यह निश्चय है, वह बात बराबर लगती है परन्तु वापस वह व्यवहार है, उसे उड़ाते हैं। ऐसा नहीं। निश्चय से जिनप्रतिमा आत्मा है। निर्विकारी शुद्ध भगवान आत्मा। मुनिपद की दशा को यहाँ जिनप्रतिमा कहते हैं। उसे जिनमुद्रा कहते हैं। उसे आयतन कहते हैं। इत्यादि मुनि और अरिहन्त के ग्यारह बोल हैं, अन्तर के। परन्तु व्यवहार में उसका भाव शुभभाव होता है, तब अरिहन्त की प्रतिमा आदि पूजनीक गिनी जाती है। देखो! आचार्य भद्रबाहुस्वामी की बात लेकर हमने परम श्रुतकेवली से परम्परा से मिला हुआ है। वह हमने कहा है। हमने घर का कुछ नहीं कहा।

गाथा-६२

आगे भद्रबाहुस्वामी की स्तुतिरूप वचन कहते हैं –

बारसअंगवियाणं चउदसपुव्वंगविउलवित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरू भयवओ जयउ।।६२।।

द्वादशांगविज्ञानः चतुर्दशपूर्वांग विपुलविस्तरणः।
श्रुतज्ञानिभद्रबाहुः गमकगुरुः भगवान् जयतु।।६२।।

विज्ञान बारह अंग चौदह पूर्व अंगों का सकल।
श्रुत ज्ञानि भगवत् भद्रबाहु गमक गुरु जयवन्त नित।।६२।।

अर्थ – भद्रबाहु नाम आचार्य जयवन्त होवें, कैसे हैं? जिनको बारह अंगों का विशेष ज्ञान है, जिनको चौदह पूर्वों का विपुल विस्तार है, इसीलिए श्रुतज्ञानी हैं, पूर्ण भावज्ञान सहित अक्षरात्मक श्रुतज्ञान उनके था, 'गमक गुरु' है जो सूत्र के अर्थ को प्राप्त कर उसी प्रकार वाक्यार्थ करे उसको 'गमक' कहते हैं, उनके भी गुरुओं में प्रधान हैं, भगवान हैं – सुरासुरों से पूज्य हैं, वे जयवन्त होवें। इस प्रकार कहने में उनको स्तुतिरूप नमस्कार सूचित है। 'जयति' धातु सर्वोत्कृष्ट अर्थ में है वह सर्वोत्कृष्ट कहने से नमस्कार ही आता है।

भावार्थ – भद्रबाहुस्वामी पंचम श्रुतकेवली हुए। उनकी परम्परा से शास्त्र का अर्थ जानकर, यह बोधपाहुड ग्रन्थ रचा गया है, इसलिए उनको अन्तिम मंगल के लिए आचार्य ने स्तुतिरूप नमस्कार किया है। इस प्रकार बोधपाहुड समाप्त किया है।।६२।।

(छप्पय)

प्रथम आयतन[१] दुतिय चैत्यगृह[२] तीजी प्रतिमा[३]।
दर्शन[४] अर जिनबिंब[५] छठो जिनमुद्रा[६] यतिमा।।
ज्ञान[७] सातमूं देव[८] आठमूं नवमूं तीरथ[९]।
दसमूं है अरहन्त[१०] ग्यारमूं दीक्षा[११] श्रीपथ।।
इम परमारथ मुनिरूप सति अन्यभेष सब निंद्य है।
व्यवहार धातुपाषाणमय आकृति इनिकी वंद्य है।।१।।

(दोहा)

भयो वीर जिनबोध यहु, गौतमगणधर धारि।
बरतायो [१]पंचमगुरु, नमूं तिनहिं मद छारि।।२।।

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित बोधपाहुड की
जयपुरनिवासि पण्डित जयचन्द्रछाबड़ाकृत
देशभाषामयवचनिका समाप्त।।४।।

१. पंचमगुरु – पांचवें श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी।

गाथा-६२ पर प्रवचन

आगे भद्रबाहुस्वामी की स्तुतिरूप वचन कहते हैं – अन्तिम श्लोक।

बारसअंगवियाणं चउदसपुव्वंगविउलवित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरू भयवओ जयउ।।६२।।

अर्थ – भद्रबाहु नाम आचार्य जयवन्त होवें, कैसे हैं? जिनको बारह अंगों का विशेष ज्ञान है,... बारह अंग के जाननेवाले थे। ओहोहो! अगाध ज्ञान। लब्धिरूप से प्रगट ऐसा। बारह अंग के जाननेवाले। आचारांग, सूयगडांग (इत्यादि)। एक आचारांग में अठारह हजार पद, एक पद के इक्यावन करोड़ अधिक श्लोक। ऐसे-ऐसे एक आचारांग, दुगना सूयगडांग... दुगुना... ऐसे। बारह अंग वह तो अपूर्व लब्धि। लिखने से लिखी नहीं जाती, सीधी पढ़ने से पढ़ी नहीं जाती। अन्दर ऐसी लब्धि बारह अंग की प्रगट हुई। बहुत ज्ञान, पूर्व का सहित विशेष ज्ञान। और कैसे हैं?

चौदह पूर्वों का विपुल विस्तार है, इसीलिए श्रुतज्ञानी हैं,... इस बारह अंग में चौदह पूर्व आ गये। परन्तु विशेष खास यह डाला। एक-एक पूर्व का ज्ञान इतना है कि हाथी ऊँचा खड़ा रखे और इतनी स्याही करे और वन की कलम करे तो लिखने से पूरा नहीं पड़े। इतना वह पूर्व का ज्ञान है। श्रुतज्ञान, भावश्रुतज्ञान इतना है। वह चौदह पूर्व का जिसे विपुल विस्तार ज्ञान था। ऐसे जो श्रुतज्ञानी **पूर्ण भावज्ञान सहित...** भावश्रुतज्ञान तो पूर्ण था। उपयोग में रागरहित आत्मा को पर्याय में जानने से ऐसा भावश्रुतज्ञानरूप परिणमन, वह भद्रबाहुस्वामी को था। केवलज्ञानी की तो बात क्या करना, परन्तु यह बारह अंग की बात क्या करना! इतना ज्ञान! ऐसा आत्मा ज्ञान का समुद्र है। वह तो चैतन्यस्वभाव का समुद्र है। उसमें से दशा में ज्वार आवे। समुद्र के किनारे (जब ज्वार आता है), तब भले वर्षा २५-२५ इंच हो, और उसमें नदियाँ गिरती हों, परन्तु भाटा के समय वह पानी ज्वार नहीं ला सकता। ज्वार तो समुद्र के मध्य में से उछलकर जब किनारे आवे, तब समुद्र में ज्वार आता है। इसी प्रकार यह बारह अंग का ज्ञान कहीं पढ़ने से, अक्षर से और इन्द्रियों से अन्दर नहीं जाना जा सकता, मध्यबिन्दु द्रव्यस्वभाव भगवान आत्मा का, उसमें अनन्त-अनन्त

बेहद ज्ञानस्वभाव का सत्त्व-तत्त्व का भाव है। उसमें से प्रवाह होकर बारह अंग का ज्ञान पर्यायरूप परिणमता है। कहते हैं कि श्रुतज्ञान से पूर्ण भावज्ञानवाले थे। केवलज्ञानी ज्ञान से-पर्याय से पूर्ण, यह श्रुतज्ञान से पूर्ण। छद्मस्थ है न?

अक्षरात्मक श्रुतज्ञान उनके था,... ऐसे भावश्रुतज्ञान का अक्षरस्वरूप भी श्रुतज्ञान उन्हें था। अक्षर। ऐसा कहा न? **पूर्ण भावज्ञान सहित अक्षरात्मक श्रुतज्ञान उनके था,...** द्रव्यश्रुत। **'गमक गुरु' है, जो सूत्र के अर्थ को प्राप्त कर...** सूत्र के सिद्धान्त के भाव को पाकर **उसी प्रकार वाक्यार्थ करे...** जैसा सर्वज्ञ को कहना है, श्रुतकेवलियों को कहना है, ऐसा जो शब्द का अर्थ और वाक्यार्थ करे, **उसको 'गमक' कहते हैं,...** समझ में आया? **सूत्र के अर्थ को प्राप्त कर...** जैसा अर्थ है, वैसा करे, उसे गमक कहते हैं कि इस शब्द का ऐसा ही अर्थ होता है, इस वाक्य का ऐसा ही भाव होता है। ऐसा जो समझावे, उसे यहाँ गमक गुरु कहा जाता है।

उनके भी गुरुओं में प्रधान हैं,... ऐसे अर्थ का बोध देनेवाले सन्तों में भी यह भद्रबाहुस्वामी प्रधान अर्थात् मुख्य थे। प्रधान अर्थात् यहाँ वे गुरु, राजा और प्रधान, ऐसा नहीं। प्रधान अर्थात् मुख्य। सब ऐसे सन्तों में ये भद्रबाहुस्वामी मुख्य थे। और कैसे हैं भगवान? भद्रबाहुस्वामी श्रुतकेवली **भगवान हैं – सुरासुरों से पूज्य हैं,...** देव से पूज्य थे। देवता जिनकी सेवा-पूजा करते थे। ऐसे श्रुतकेवली।

आत्मा चैतन्यसमुद्र, शक्ति में तो केवलज्ञान अकेला ज्ञान है परिपूर्ण वस्तु में। जैसे पीपर के दाने में चौठस पहरी चरपराहट शक्ति है। चौसठ पहरी चरपराहट भरी है। भले दाना छोटा, कद छोटा, रंग में काला परन्तु चौठस पहर अर्थात् रुपया-रुपया चरपरा। शक्ति का सत्त्व अन्दर पड़ा है, वह बाहर आता है। घूँटने से बाहर आता है।

उसी प्रकार इस वस्तु में—भगवान आत्मा में शक्तिरूप सत्त्वरूप-भावरूप केवलज्ञान पड़ा है। केवलज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञान, ऐसा। आहाहा! ऐसा आत्मा जँचे किस प्रकार? पामररूप से माना, उसे ऐसी प्रभुता विद्यमान है, उसे अविद्यमान किया है। समझ में आया? ऐसा स्वरूप भगवान आत्मा का जिसे अन्दर श्रुतज्ञान में प्रगट हुआ है, उन सब श्रुतकेवलियों में भी मुख्य थे।

सुरासुरों से पूज्य हैं, वे जयवन्त होवें। आचार्य महाराज स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दाचार्य। तीसरे नाम में आये। वे भद्रबाहुस्वामी को कहते हैं, अहो! प्रभु! आप जयवन्त रहो! आपका भावश्रुतज्ञान, अक्षरात्मक ज्ञान जयवन्त रहो! बात ऐसी है कि यह आत्मा क्या चीज़ है, यह बात ही लोगों को ख्याल में नहीं आती। यह सब तो जड़ है—मिट्टी, वह तो किसी की चीज़ है, कहीं इसकी (आत्मा की) नहीं। कर्म अन्दर है, वह मिट्टी है, जड़ है। उसके उदय काल में यह सब बाहर के संयोग-वियोग, संयोग-वियोग होते हैं। पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वह विकार है। वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं है।

मुमुक्षु : कल आपने आत्मा का स्वरूप कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो दूसरी बात। पर्याय में इसकी पर्याय है, इस अपेक्षा से। इसकी ही पर्याय है। वह जड़ की नहीं, पर की नहीं, ऐसा बतलाने को (कहा था)। बाकी उसके स्वभाव में त्रिकाल में वह विकार नहीं है। त्रिकाल वस्तु तो विकार से रहित है। पर्याय में विकारसहित है। समझ में आया? भारी कठिन!

अरे! यह आत्मा स्वयं भगवानस्वरूप ही है। कैसे जँचे? इन्द्रियों से काम लेना। जिसकी दशा-अवस्था ऐसे इन्द्रियों से काम ले। अब उसे अतीन्द्रिय ऐसा आत्मा (कैसे जँचे)? ज्ञान अतीन्द्रियस्वभाव से भरपूर स्वरूप है। उसे इन्द्रिय की आवश्यकता नहीं, मन की आवश्यकता नहीं, राग के विकल्प की भी आवश्यकता नहीं। ऐसा जो चैतन्य स्वभाव जिसका स्वभाव, जिसका स्वस्वरूप सत्त्व, उसे मर्यादा क्या? अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ज्ञान, दर्शन, आनन्द से भरपूर है। उसमें से यह ज्ञान आया हुआ है, ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार कहने में उनको स्तुतिरूप नमस्कार सूचित है। स्तुतिरूप नमस्कार किया भद्रबाहुस्वामी को। **'जयति' धातु सर्वोत्कृष्ट अर्थ में है...** जय होओ, यह सब सर्वोत्कृष्ट में है। जय होओ। अर्थात् जो स्वरूप शुद्ध है, वह वैसा टिका रहो, निभा रहो। पूर्णानन्द की दशा आपको जो प्रगट हुई अथवा श्रुतज्ञानादि हुआ, (वह) जयवन्त रहो। ऐसा का ऐसा वह ज्ञान जीवन्त रहो। प्रकाश जो अन्दर का आया है, वह ऐसा का ऐसा जीवन्त टिकता रहो। पण्डितजी! अरे! अन्तर की बातें पूरी दुनिया ने बहुत बदल डाली।

खबर नहीं होती चीज़ की और कुछ न कुछ कल्पित किया... कुछ न कुछ कल्पित किया और कल्पित करके कुछ कर डाला।

आहा! ऐसा मीठा महेरामण। भगवान अन्तर स्वभाव जिसका। अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द मीठा महेरामण है। उसमें एकाकार हो तो अन्दर शक्ति जो महेरामण महा पड़ा है प्रभु, वह प्रगट होता है। ऐसी श्रुतज्ञान की दशा प्रगट हुई, उसे जयवन्त रहो, ऐसा कहते हैं। ऐसा करके स्तुति करते हैं। समझ में आया? **सर्वोत्कृष्ट कहने से नमस्कार ही आता है।** सर्वोत्कृष्ट कहा। जय हो, इसका अर्थ कि आपको नमता हूँ। ऐसी स्थिति टिकी रहो, ऐसा कहकर भी ऐसे भाववन्त को नमते और विनय करते हैं। समझ में आया?

भावार्थ – भद्रबाहुस्वामी पंचम श्रुतकेवली हुए। केवलज्ञानी महावीर भगवान के पश्चात् गौतमस्वामी के पश्चात् सुधर्मस्वामी, पश्चात् जम्बूस्वामी (हुए)। वहाँ तक तो केवलज्ञान—तीन काल का ज्ञान था। बाद में प्रभवस्वामी से लेकर भद्रबाहुस्वामी तक पाँच श्रुतकेवली हुए। श्रुतज्ञान में पूरे। वे पूर्ण ज्ञान में पूरे थे। ये श्रुतज्ञान में पूरे—भावश्रुतज्ञान। **उनकी परम्परा से शास्त्र का अर्थ जानकर,...** उनकी परम्परा से इस शास्त्र का अर्थ जानने में आया। **यह बोधपाहुड ग्रन्थ रचा गया है, इसलिए उनको अन्तिम मंगल के लिए आचार्य ने स्तुतिरूप नमस्कार किया है। इस प्रकार बोधपाहुड समाप्त किया है।** लो। यह नाम (कहते हैं)। पहला अधिकार आ गया है।

प्रथम आयतन दुतिय चैत्यगृह तीजी प्रतिमा।
दर्शन अर जिनबिंब छठो जिनमुद्रा यतिमा।।
ज्ञान सातमूं देव आठमूं नवमूं तीरथ।
दसमूं है अरहन्त ग्यारमूं दीक्षा श्रीपथ।।
इम परमारथ मुनिरूप सति अन्यभेष सब निंद्य है।
व्यवहार धातुपाषाणमय आकृति इनिकी वंद्य है।।१।।

अब फिर से अर्थ। यह तो नाम शब्द बोले गये। प्रथम **आयतन...** आत्मा जिसे अतीन्द्रिय प्रगट हुआ है और इन्द्रिय का आधीनपना जिसे टल गया है। पाँच इन्द्रियाँ हैं, वे तो जड़ हैं, उनके आधीन की दशा जिसकी टली है और अतीन्द्रिय भगवान आत्मा का

आधीनपना जिसे प्रगट हुआ है, ऐसे आत्मा को आयतन—धर्म का स्थान कहते हैं। समझ में आया? यह मन्दिर और यह उपाश्रय और इस सम्मेदशिखर को धर्मस्थान कहा जाता है न? वह सब व्यवहार है। निश्चय धर्मस्थान यह भगवान है। अपना स्वभाव अतीन्द्रिय है। जिसे इन्द्रिय का आधीनपना अनादि से वर्तता है, वह अनायतन है। पाँच इन्द्रियाँ यह मिट्टी-जड़, उनका आधीनपना टलकर अतीन्द्रिय आनन्द के आधीन जिसकी दशा प्रगट हुई है, ऐसे मुनि को धर्म का स्थानक कहा जाता है। जिसमें से धर्म प्रगट हुआ और उपजा। आहाहा! समझ में आया? यह धर्म के स्थानक।

दूसरा, **चैत्यगृह**... प्रतिमा का घर। चैत्य का घर, वह यह आत्मा। संयमी मुनि। जिसकी अन्तर दशा अत्यन्त निर्विकल्प आनन्द के वेदन में बढ़ गयी है, ऐसे आत्मा को चैत्यगृह, यह ज्ञान का घर उसे कहा जाता है। चैत्यालय कहा जाता है न तुम्हारे? वह चैत्यालय नहीं, कहते हैं, यह चैत्यालय है। समझ में आया? तीसरा, **प्रतिमा**... प्रतिमा भी आत्मा वीतराग मुद्रारूप से परिणमे, वह जिनप्रतिमा है। विकल्प जो रागादि हैं, उनसे रहित निर्विकल्परूप से आत्मा बिम्ब चैतन्य आत्मा हो जाये, उस मुनिपने की अतीन्द्रिय दशारूप परिणमन है, उसे सच्ची प्रतिमा कहा जाता है। यह प्रतिमा और यह मन्दिर, वह सब व्यवहार है। निश्चय तो यह है।

दर्शन... दर्शन भी मुनिपने की वीतरागदशा और बाह्य में नग्नपना। अन्तर में आनन्द की लहर वर्तती हो। जैसा सच्चिदानन्द प्रभु, सत् शाश्वत् आनन्द की खान है, ऐसी आनन्द की दशा जिसे बहुत बढ़ गयी है और जिसकी नग्नदशा है, उसे यहाँ दर्शन कहा जाता है। वह जैनदर्शन है। समझ में आया? **जिनबिंब**... जिन का बिम्ब-मूर्ति। वह भी आत्मा संयमी मुनि, अतीन्द्रियस्वभावस्वरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रियरूप से अन्दर स्थिर हो गया है। विकल्प और विषय की वासना जिसकी नाश हो गयी है। ऐसा जिनबिम्ब। आत्मा स्वयं जिनबिम्ब है। कहो, समझ में आया? यह जिनबिम्ब आदि व्यवहार है।

छठवाँ, **जिनमुद्रा**... दिखाव। अन्तर वीतरागता और बाह्य माता से जन्मा, ऐसी मुद्रा। अन्तर में निर्विकल्प रागरहित शान्ति जिसे प्रगट हुई है, उसे यहाँ जिनमुद्रा कहा जाता है। '**यतिमा**' कहा न? '**यति**' यति को जिनमुद्रा कहा है। '**यति**' अर्थात् यह बाबा और

यति हो, ऐसे नहीं, हों! आत्मा आनन्दस्वरूप की यतना, यतना, जतना करे और राग की रक्षा छोड़ दे, उसे यहाँ यति आत्मा को कहा जाता है। यह यति तो बहुत होते हैं। वे तो जतड़ा कहलाते हैं। यह तो आत्मा अनादि से जो पुण्य-पाप के विकल्प की रक्षा करता था, वह अयति था। संसारी मूढ़ जीव (था)। उसे आत्मा के आनन्द और वस्तु के स्वभाव की जतना-जयना-है, वैसा रखा नहीं। और विकार को जिसने टाला है, ऐसे आत्मा को यति-जिनमुद्रा कहा जाता है। गजब! देखो! यह सब हमें परम्परा से मिला हुआ कहते हैं, ऐसा कहते हैं।

ज्ञान सातमूं... ज्ञान कहीं शास्त्र में नहीं है, पृष्ठ में नहीं है। यह पृष्ठ तो जड़, मिट्टी, अजीव है। यह तो शब्द के विकारकृत है। यहाँ अन्दर चैतन्यप्रकाश का पूर, किरण अन्दर में से आयी। क्या कहलाता है तुम्हारे वह? हजार बोल्ट की सर्च लाईट। सर्च लाईट दो थी न वहाँ? बाहुबली। हजार-हजार की दो। उसी प्रकार यह ज्ञान की सर्च लाईट अन्दर है। अनन्त-अनन्त किरण फटें ऐसी। वह हजार और दो हजार... क्या कहलाता है वह? वोल्ट। जो कहते हों वह। यह भगवान चैतन्य तो अनन्त चैतन्य के किरण से प्रगट हो, ऐसा वह आत्मा है। ऐसी अनन्त चैतन्य किरणें जिसे प्रगट हुई है, उसे यहाँ ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान वाणी में नहीं, ज्ञान कण्ठ में नहीं, बोले वह ज्ञान नहीं, भाषा वह ज्ञान नहीं। समझ में आया? सब निश्चय से वर्णन किया है। निश्चय अर्थात् सत्य।

ज्ञान सातमूं... उसे ज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान ज्ञानरूप होकर रहे, उसे ज्ञान कहते हैं। जो ज्ञानस्वभाव राग होकर रहे, वह ज्ञान नहीं। समझ में आया? अनन्त-अनन्त ज्ञान है, उसमें से अनन्त-अनन्त ज्ञान में, यहाँ श्रुत की अपेक्षा है मुनिपने में। अनन्त-अनन्त भी श्रुतकेवली का ज्ञान अन्दर से प्रगट हुआ है, अन्दर से आया है। ऐसे ज्ञान को ज्ञान कहते हैं। बाहर से पढ़े, वह ज्ञान नहीं; शास्त्र से पढ़े, वह ज्ञान नहीं।

मुमुक्षु : सब कचरा निकाल डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : था कब?

फूलझड़ी नहीं आती? वह फूलझड़ी आती थी दिवाली में। फूल झरे, फूल। दियासलाई रखे तो (फूल झरे)। उसी प्रकार यह तो अकेला ज्ञान का झरना है। वह तो इतनी हो, इसलिए समाप्त हो जाये। यह तो अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञानस्वभाव वस्तु स्वयं

चैतन्यप्रभु, उसमें से पर्याय निकली, एक के बाद एक... एक के बाद एक.... एक के बाद एक। वह (फूलझड़ी) खिरकर चली जाये और यह हो और अन्दर मिलती है। नयी होती है और पुरानी मिलती है, नयी होती है और पुरानी मिलती है। क्या कहा यह ? फूलझड़ी। आहाहा! यह ज्ञानझड़ी। आत्मा ज्ञानझड़ी है। अन्दर अनन्त ज्ञान का समुद्र है। परन्तु बैठना कठिन पड़ता है। बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं, विषय बिना चले नहीं, पैसे बिना चले नहीं। उसे यह जँचे किस प्रकार? विषय के अर्थी के तत्पर हुए को विषयरहित ऐसी चीज़ उसे प्रतीति में नहीं आती। पाँच इन्द्रिय के विषयों में शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में आर्त हो गया है, पीड़ित हो गया है। उसे अतीन्द्रिय ऐसा स्वरूप है, वह उसकी प्रतीति में, विश्वास में, भरोसे में नहीं आता। समझ में आया? आहाहा! ऐसा भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा है। वह तो चैतन्य का नूर है। चैतन्य के प्रकाश का पूर है। उसमें जिसने एकाग्र होकर ज्ञान प्रगट किया, उसे ज्ञान कहते हैं। बाकी वाचा ज्ञान। आता है न श्रीमद् में ? नहीं ?

मुमुक्षु : सकल जगत है ऐंठ वत्।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'सकल जगत है ऐंठ वत् अथवा स्वप्न समान, वह कहिये ज्ञानी दशा, बाकी वाचा ज्ञान।' सातवाँ (हुआ)।

देव आठमूं... अब अरिहन्त आये। वे देव भी आत्मा अरिहन्तरूप से है। जिन्हें दिव्यशक्ति अन्दर पड़ी है, वह प्रगट हुई है, वह आत्मा देव है। आहाहा! चौसठ पहरी पीपर में जैसे अन्दर शक्ति थी, वह बाहर आयी। कुछ सर्दी को टाले, ऐसी जिसकी ताकत। उसी प्रकार भगवान आत्मा चौसठ अर्थात् पूर्ण। रुपया-रुपया शक्ति से था, दिव्यशक्ति थी, उस शक्ति की प्रगट पर्याय अवस्था में की, उसे देव कहते हैं। कहो, समझ में आया? स्वर्ग के देव वे तो व्यवहारिक देव हैं। यह तो दिव्यशक्ति का धनी भगवान आत्मा। जिसकी दिव्यता शक्ति में थी, उसकी प्रगटदशारूप दिव्यता प्रगट हुई, उसे देव कहा जाता है। अरे! गजब बात। आठवाँ (हुआ)।

नवमूं तीरथ... तीर्थ, वह आत्मा। चिदानन्दस्वभाव में अन्दर स्नान कर तो तीर्थ है वह। बाह्य तीर्थ, वे सब व्यवहार निमित्त, शुभभाव में निमित्त कहे जाते हैं। वे पुण्य में निमित्त, हों! वह धर्म तो नहीं। आहाहा! अन्दर चिदानन्द भगवान। द्रव्यसंग्रह में श्लोक

आता है। 'संयम तोय पूरणा...' द्रव्यसंग्रह में नहीं आता यह ? श्लोक आता है। सत्यार्थ। यह श्लोक बोलते थे पहले। क्या था ? श्लोक नहीं वह ? द्रव्यसंग्रह में आता है। पाण्डव को श्रीकृष्ण कहते हैं। श्रीकृष्ण पाण्डव को कहते हैं, ऐसा आता है। पहला शब्द भूल गये। पहले बहुत आता था वह सम्प्रदाय में। द्रव्यसंग्रह में है। उसमें श्लोक है। श्रीकृष्ण पाण्डव को कहते हैं।

यह स्थानकवासी में बहुत चलता है। उन्हें निश्चय का सही न, इसलिए। पाण्डव गये थे यात्रा करने। श्रीकृष्ण ने उन्हें तुम्बी दी। लौकी। यह तुम्बी कड़वी। नहाते-नहाते इस तुम्बी को नहलाना, जहाँ जाओ वहाँ। यात्रा करके आये। कहाँ होगी वह कहाँ खबर पड़े ? कि ऐसा है, जहाँ तीर्थ का अधिकार है। अब वह तो श्लोक है। दूसरा खोजे तब हो। मुझे तो देरी लगेगी। इस जगह है। मेरी पुस्तक है, उसमें इस जगह है। होगा कहीं, तीर्थ होगा न तीर्थ, जहाँ तीर्थ की व्याख्या होगी, वहाँ होगा। पहला शब्द हाथ में नहीं आता। गुरु पाण्डुपुत्रा, ऐसा आता है अन्तिम शब्द। .... इसमें आया नहीं परन्तु कण्ठस्थ आ गया। 'आत्मा नदी संयम तोय पूर्णा...' लो! श्लोक आ गया। यह तो आवे तब आवे न।

श्रीकृष्ण पाण्डव को कहते हैं कि यह दूधी—तुम्बड़ी तुल ले आओ। स्नान करके आने के बाद सबको टुकड़ा-टुकड़ा करके दिया। रखो। तीर्थ की प्रसादी। खाने लगे तो कड़वी। अरे! परन्तु यह मीठी तो हुई नहीं। तीर्थ के इतने स्नान कराये तो भी मीठी हुई नहीं। तुम्बड़ी-तुम्बड़ी। कड़वी होती है। तो फिर तुम्हारा आत्मा मीठा कहाँ से हो गया ऐसी यात्रा में से ? बाहर से। फिर कहते हैं, 'आत्मा नदी संयम तोय पूर्णा...' आत्मारूपी नदी, उसमें संयमरूपी तोय अर्थात् पानी भरा है। अतीन्द्रिय। 'आत्मा नदी संयम तोय पूर्णा सत्यावहा...' उसके दो किनारे। सत्य के दो किनारे हैं। 'सत्यावहा...' उसमें है। 'तत्राअभिषेकं करु पांडुपुत्रा...' ऐसे आनन्दस्वरूप भगवान सत्य जिसके किनारे हैं। ज्ञान जिसका जल भरा है, उसमें अभिषेक कर। 'न वारिणाम् शुद्ध चैतन आत्मा।' पानी से कहीं आत्मा शुद्ध हो ऐसा नहीं है। नहा-धोकर हो गये पवित्र। धूल में भी नहीं। ... हमेशा बहुत नहाते हैं। समझ में आया ? 'आत्मा नदी संयम तोय पूर्णा सत्यावहा तील कटाय दयोर्मि।' लो! शील। प्रिय ब्रह्मचर्य और रागरहित स्वभाव, यह उसके दो तट हैं। 'तत्राभिषेकं करुं पांडु पुत्रा न

वारिणामं शुद्धचेतनत्र आत्मा' इस पानी से अन्तर का आत्मा शुद्ध नहीं होता। कहो, समझ में आया ?

वह यह तीर्थ, यहाँ देखो ! यह आत्मा तीर्थ है। आहाहा ! परन्तु जँचे कैसे ? बाहर की महत्ता घुस गयी है न, इसलिए बाहरवाले को बाहर की चीज़ उसे तीर्थ लगती है परन्तु अन्तरात्मा भगवान पूर्णानन्द की पवित्र का धाम, एक क्षण का विकार, उसके पीछे पूरा भगवान पूर्ण आनन्द और शान्ति से भरपूर है। आहाहा ! वह तेरा तीर्थ है। अन्य तो व्यवहार तीर्थ है। व्यवहार होता है, जब तक पूर्ण वीतराग न हो, (तब तक)।

दसमूं है अरहन्त... भगवान साक्षात्, लो ! शुरु करके अपने वर्णन किया न ! अरिहन्त का स्वरूप वर्णन किया। दो बाकी थे। **ग्यारमूं दीक्षा...** प्रव्रज्या। यह श्रीपथ है। श्री अर्थात् मोक्ष का पन्थ है। लो ! **इम परमारथ मुनिरूप सति...** परमार्थ मुनि का रूप। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव और नग्नदशा **अन्यभेष सब निंद्य है।** इसके अतिरिक्त दूसरे वेश वे निन्दनीय हैं। कहो, समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा मार्ग।

आज सुना कि एक वह साध्वी होगी कोई मारवाड़ी। गुरु-शिष्य वे दो साध्वी रजनीश में मिल गयी। गजब है न ! ऐसा मार्ग ! कुछ होगा। गुरु होंगे। पढ़ते होंगे। पढ़ते-पढ़ते... कुछ भान नहीं होता। कुछ भी कुथळिया पढ़े, अखबार जहाँ-तहाँ पढ़े और दौड़ जाये। आहाहा ! ऐसा मार्ग प्रभु का। प्रभु अर्थात् तेरा। उसके अन्तर का माहात्म्य नहीं और बाहर के माहात्म्य में। या तो ऐसे व्याख्यान देना, पाँच-पाँच, दस हजार लोग इकट्ठे हों। ऊँट की तरह भूंके। लोग भी ऐसे हों बेचारे सुननेवाले। उन्हें कुछ खबर नहीं हो। आहाहा ! आहाहा ! मार्ग की तो कुछ खबर नहीं होती। पण्डितजी ! आहाहा !

प्रभु ! तू तुझे पूर्ण गुण से पूर्ण है। ऐसी चीज़ कहीं अन्यत्र है नहीं। तेरी ऐसी चीज़ अन्यत्र कहीं है नहीं। आहाहा ! वीतराग तो कहते हैं, वह यह कहते हैं वीतराग। तेरा तत्त्व ऐसा है, यह वीतराग कहते हैं।

कहते हैं कि **परमारथ मुनिरूप सति...** वास्तव में तो मुनि का वेश, दिगम्बरदशा और अन्तर वीतरागी आनन्द का वेदन। **अन्यभेष सब निंद्य है।** इसके अतिरिक्त वेश साधुपने के नहीं हो सकते। **व्यवहार धातुपाषाणमय आकृति इनिकी वंद्य है।** व्यवहार

से भगवान की धातु की पाषाणमय मूर्ति, वह व्यवहार से वन्द्य है। नामस्मरण आदि शुभभाव है न? इसलिए व्यवहार से वन्द्य कहने में आता है।

दोहा :

भयो वीर जिनबोध यहु, गौतमगणधर धारि।
बरतायो पंचमगुरु, नमूं तिनहिं मद छारि।।२।।

भयो वीर जिनबोध... वीतराग परमात्मा बोधसूर्य प्रगट हुआ। **गौतमगणधर...** उसमें से सब गौतमस्वामी ने ऐसे भाव को धारण किया। भगवान ने केवलज्ञानमय स्वरूप होकर बोध प्रगट किया। गौतम गणधर ने धारण किया। **बरतायो पंचमगुरु,...** और पंचम श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामी ने उसका विस्तार किया। **नमूं तिनहिं मद छारि।** अहो! मान छोड़कर इन तीनों को मैं नमन करता हूँ, ऐसा कहते हैं।

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित बोधपाहुड की जयपुरनिवासि पण्डित जयचन्द्रछाबड़ाकृत देशभाषामयवचनिका समाप्त। हुआ, लो! यह भावपाहुड़ पढ़ गये हैं। मोक्षपाहुड़ पढ़ गये हैं। अब लिंगपाहुड़। अन्तिम दो। ●●●

लिंगपाहुड़

लिंग-लिंग। ३६७ पृष्ठ पर है। लिंगपाहुड़। गाथायें २२ हैं, लो। छह (पाहुड़ों का) वाँचन हो गया है। अब यह दो बाकी हैं। उनमें यह आया, देखो! लिंग। मुनि की मुद्रा कैसी होती है, लिंग कैसा होता है, उसकी बात करते हैं।

अथ लिंगपाहुड की वचनिका (का अनुवाद) लिखते हैं – पण्डित जयचन्द्रजी कहते हैं। उसकी वचनिका लिखते हैं। प्रचलित भाषा में अर्थ करते हैं, ऐसा।

(दोहा)

जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय।
कर्म नाशि शिवसुख लियो बंदूं तिनके पांय ॥१॥

जिसमें जिनमुद्रा, वीतरागमुद्रा धारण की। जैसा माता ने जन्म दिया, वैसी शरीर की नग्न दिगम्बरदशा धारण की। यह तो बाह्य हुआ। **'निजस्वरूपकूं ध्याय'** जिनमुद्रा, निज स्वरूप। जिनमुद्रा, वीतरागमुद्रा दिगम्बर। उसमें जिनमुद्रा, यह निज स्वरूप। निज स्वरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का ज्ञान का धाम, उसका जिसने ध्यान किया है। अकेला बाह्य वेश नहीं। बाह्य वेश तो कहीं आत्मा को लाभदायक नहीं है। वेश होता अवश्य है। परन्तु इस वस्तु के भान बिना कोई बाह्य वेश लाभ नहीं करता। नग्नपना धारण करे, उससे क्या?

'निजस्वरूपकूं ध्याय' देखो! भगवान के स्वरूप को ध्याकर, ऐसा करके नहीं कहा। भगवान तो परद्रव्य है। उनके ऊपर लक्ष्य जाये तो विकल्प उठता है, राग उठता है। यह वस्तु का स्वरूप नहीं ध्यान सच्चा। लिंगपाहुड़ होगा। पीछे-पीछे। पीछे नहीं उसमें? छह ही हैं। इसमें होगा, होवे तो। है न उसमें? इसमें छह ही पाहुड़ हैं। नहीं? द्रव्यसंग्रह। यहाँ है। हिन्दी है, यह हिन्दी में।

जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय।
कर्म नाशि शिवसुख लियो बंदूं तिनके पांय ॥१॥

शिव अर्थात् आत्मा। निरुपद्रव। शिव का अर्थ निरुपद्रव्य कल्याणमूर्ति भगवान

अपने आनन्दस्वरूप को प्राप्त हुए। शिव अर्थात् मोक्ष। मोक्ष के सुख को जो प्राप्त हुए, **वन्दू तिनिके पांय...** उनके पद को मैं नमन करता हूँ। उनके चरणकमल को नमता हूँ। ऐसा चलती भाषा के अर्थकार का यह मांगलिक है।

इस प्रकार मंगल के लिए जिन मुनियों ने शिवसुख प्राप्त किया... जो मोक्ष का सुख प्राप्त किया। शिव अर्थात् मोक्ष। नमोत्थुणं में आता है। 'सिवमलयमरुयमणंतमक्ख...' और **श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत प्राकृत गाथाबन्ध लिंगपाहुडनामक ग्रन्थ की देशभाषामय...** प्रचलित भाषा में वचनिका अर्थात् कथन करते हैं। **वचनिका का अनुवाद लिखा जाता है, प्रथम ही आचार्य मंगल के लिए इष्ट को नमस्कार कर ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं –**ह्रलो!

काऊण णमोकारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
वोच्छामि समणलिंगं पाहुडसत्थं समासेण।।१।।

इसमें अरहन्ताणं आया। वह अरिहन्ताणं। यह अरहन्ताणं। आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य भगवान मुनि कहते हैं। **आचार्य कहते हैं कि मैं अरहन्तों को नमस्कार करके...** जो इन्द्रों को पूज्य हुए और अपनी पूज्य पदवी जिन्होंने अन्तर में से पूर्ण प्रगट की। भगवान आत्मा जैसा स्वभाव से है, वैसी जिसकी दशा वर्तमान में अन्तर में से प्रगट की, ऐसे अरिहन्त को नमस्कार करता हूँ। **और वैसे ही सिद्धों को नमस्कार...** अरिहन्त हैं, वे अभी शरीरसहित होते हैं। सिद्ध हैं, वे शरीररहित हो गये। णमो अरिहन्ताणं है न पहला पद? वह अरिहन्ताणं अर्थात् अरि अर्थात् राग-द्वेष और अज्ञानरूपी अरि को नाश करके जिन्होंने अपना निजपद प्राप्त किया, उन्हें अरिहन्त कहते हैं। अरिहन्त कोई पक्ष का शब्द नहीं। अरिहन्त, वह आत्मा के गुण के वाचक का शब्द है।

कहते हैं कि जिसने अज्ञान और राग-द्वेष टालकर आत्मा का ज्ञान और वीतरागता जिसने पूर्ण प्रगट की, ऐसे अरिहन्त को अथवा अर्हंताणं, जो बड़े महापुरुष इन्द्र आदि से भी पूज्य हैं, ऐसे अरहन्त को मैं नमस्कार करता हूँ। और शरीररहित हुए ऐसे सिद्ध भगवान को भी नमस्कार करता हूँ। अरिहन्त को शरीर होता है, वाणी होती है, वाणी निकलती है, ध्वनि निकलती है। परन्तु होता है अन्दर केवलज्ञान, केवलदर्शन परिपूर्ण। सिद्ध होने के

पश्चात् शरीर और वाणी नहीं होते। दोनों को नमस्कार। णमो सिद्धाणं, दूसरा पद। जिनकी शरीररहित पूर्ण दशा प्रगट हुई, अकेला आत्मा आनन्द के अनुभव में रहता है, ऐसे सिद्ध को मैं नमस्कार करता हूँ।

तथा जिसमें श्रमणलिंग का निरूपण है... बाह्य और अभ्यन्तर साधु का वेश कैसा होता है? **इस प्रकार पाहुडशास्त्र को कहूँगा।** लो! कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा लिंग कहते हैं। वे (श्वेताम्बर) कहें, पन्द्रह भेद से सिद्ध हुए, उसमें से एक भेद कम माने तो संसारी होता है। ऐसा लिखा है। अभी हम्पी से काल कर गये न? पन्द्रह भेद से सिद्ध। यह श्वेताम्बर आगम कथन जगजाहिर है। उसमें से एक भेद को उत्थापित करनेवाले उत्सूत्र भाषी को अनन्त संसारी होना पड़ता है। लो! उसे ... वह तो आत्मानुभवी महा योगीराज थे, लो! अमरचन्द नाहटा श्वेताम्बर इतिहासिक ... काशी में मिले थे। काशी में जब गये थे न? ऐसी दिव्यध्वनि सुनानेवाले अविरती केवल मनकल्पित स्वलिंग मात्र का ऐकान्तिक आग्रह कैसे हो सकता है? यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, यह एक ही आग्रह है। मुनिलिंग नग्न मार्ग एक का एक ही होता है। कोई दूसरा आकर वस्त्र डाल दे, वह अलग बात है। परन्तु स्वयं तो मन, वचन और काया से कृत, कारित और अनुमोदन से सब परिग्रह छूट गया होता है। काया से भी परिग्रह छूट गया होता है, वस्त्र का धागा भी जिसे नहीं होता। ऐसा अनादि जैनलिंग वीतराग मार्ग में कहा जाता है। समझ में आया? यह सब वेश-बेश स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी यह सब वेश वीतराग के नहीं हैं, ऐसा कहते हैं। जगत के जीवों ने बाहर से कल्पित (वेश हैं)। **जिसमें श्रमणलिंग का निरूपण है, इस प्रकार पाहुडशास्त्र को कहूँगा।** प्राभृत शास्त्र। शास्त्र का सार। प्राभृत अर्थात् सार। उसे **कहूँगा।**

भावार्थ – इस काल में मुनि का लिंग जैसा जिनदेव ने कहा है, उसमें विपर्यय हो गया,... उसमें विपरीत हो गया है। **उसका निषेध करने के लिए यह लिंगनिरूपण शास्त्र आचार्य ने रचा है, इसकी आदि में घातिकर्म का नाश कर अनन्त चतुष्टय प्राप्त...** जिसने अनन्त ज्ञानस्वभाव में था, उस शक्ति में से दशा वर्तमान में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य-बल प्रगट किया, उसे **अरहन्त**

हुए... यहाँ अरहन्त शब्द प्रयोग किया है। अर्हंत भगवान हुए। जैसे सीमन्धर भगवान अभी महाविदेह में विचरते हैं। वे अरिहन्तपद में हैं। महावीर भगवानादि शरीररहित हो गये, वे अभी सिद्धपद में हैं। अकेले। शरीररहित अकेला आत्मा।

इन्होंने यथार्थरूप से श्रमण का मार्ग प्रवर्ताया... ऐसे अरिहन्त भगवान ने साधु का मार्ग बराबर यथार्थ कहा। **उस लिंग को साधकर सिद्ध हुए,...** उस लिंग को, भाव और द्रव्य को साधकर **इस प्रकार अरहन्त सिद्धों को नमस्कार करके ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा की है।** यह अरिहन्त भी इस प्रकार हुए, कहते हैं। भाव में आनन्दस्वरूपादि दशा और बाह्य में नग्नदशा। अनादि का वीतराग का मार्ग यह है। यह सब बीच में फेरफार हो गया श्वेताम्बर निकलकर, उसका निषेध करने के लिये यह सब लिखा। कहो, समझ में इसमें? अब तो यहाँ बहुत वर्ष हो गये, ३६ वर्ष, इसलिए बहुत दिक्कत आवे ऐसा बहुतों को नहीं है। नया हो तो अभी भड़के। अब ३६ वर्ष हुए। बहुत सुनते थे न। बहुत बार सुनाया है या नहीं? चिमनभाई! नये-नये तो भड़के जरा।

मुमुक्षु : कोठी पड़ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोठे पड़ा अब तो। (ऐसा) कहते हैं, लो।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्त ने जो लिंग बताया, वह लिंग एक ही सच्चा है। दूसरा मार्ग सच्चा नहीं। श्रद्धा से भ्रष्ट होकर, वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपने के लिंग धारण किये, वह वीतराग का मार्ग नहीं है। उसे वीतराग की श्रद्धा नहीं है। कहो, समझ में आया?

आगे कहते हैं कि जो लिंग बाह्यभेष है, वह अन्तरंगधर्मसहित कार्यकारी है– अब कहते हैं कि नग्नपना हो, परन्तु अकेला नग्नपना अन्तर के भान और अनुभव बिना कार्यकारी नहीं है।

धम्मेण होइ लिंगं ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती।
जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो।।२।।

वापस ऐसा करके निकाले कि लिंग से कुछ कार्य नहीं होता, इसलिए चाहे जैसा लिंग हो। ऐसा नहीं है। समझ में आया? श्रीमद् में से यह कहते हैं न सब, 'जाति वेश का

भेद नहीं कहा मार्ग जो होय।' जहाँ-तहाँ यह डालते हैं। परन्तु यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं वह ? उन्हें श्रीमद् ने गुरु माना है। वे तो ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव यह, परन्तु लिंग ? वह और भाव अलग बात हुई। भाव अलग। भाव बराबर है। लिंग भी कैसा होता है, वह यहाँ बात चलती है। स्त्री का लिंग नहीं होता।

मुमुक्षु : लिंग कुछ नहीं करता, बाह्य लिंग चाहे जैसा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही विवाद है। करता नहीं परन्तु निमित्त ऐसा ही होता है। इसलिए तो यह बनाया है। केशवलालजी ऐसा कहते थे। कहा था न उन्होंने ? चेतनजी को। निमित्त चाहे जैसा हो। निमित्त चाहे जैसा नहीं होता। होता ही नहीं। जीव गति करता है तब निमित्त, जीव और पुद्गल गति करे, तब धर्मास्तिकाय ही निमित्त होता है, दूसरा निमित्त होता ही नहीं। तथापि निमित्त ने किया नहीं। करे तो निमित्त नहीं और अनुकूल न हो तो निमित्त कहलाये नहीं। विवाद बड़ा, बड़ा विवाद। झगड़ा... झगड़ा...

धर्म सहित तो लिंग होता है, परन्तु लिंगमात्र ही से धर्म की प्राप्ति नहीं है,... ऐसा कहते हैं। देखो! धर्म सहित जो लिंग हो, वह होता है। बराबर है। आत्मा के अनुभव का वीतरागी समकित ज्ञान और शान्ति (हो), ऐसी दशा में लिंग नग्नपना, वह बराबर है, कहते हैं, परन्तु **लिंगमात्र ही से धर्म की प्राप्ति नहीं है,...** परन्तु बाह्य का लिंग नग्न धारण किया, इसलिए धर्म प्राप्ति होती है, ऐसा नहीं है। भारी बात, भाई! समझ में आया ? **लिंगमात्र ही से धर्म की प्राप्ति नहीं है,...** नग्न धारण किया और बाहर महाव्रत के विकल्प हुए, इसलिए धर्म है—ऐसा बिल्कुल नहीं है। वह धर्म है ही नहीं। नग्नपना, वह धर्म नहीं और पंच महाव्रत का विकल्प पुण्य के परिणाम हैं, वह भी धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

इसलिए हे भव्यजीव ! तू भावरूप धर्म को जान... अन्तर का भगवान आत्मा आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति है। उसका ज्ञान कर अर्थात् उसका आश्रय कर और उसका अनुभव कर तो धर्म की प्राप्ति होगी। बाह्य लिंग वेश नग्न धारण किया,

उसमें क्या हो गया? नग्न तो सब श्वान भी घूमते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ निकाला?

यहाँ तो लिंग भले हो, परन्तु उस लिंग से आत्मा का कल्याण नहीं। कल्याण नहीं, तो भी लिंग दूसरा हो, ऐसा नहीं है। ऐसी बात है, भाई! मुनि का लिंग तो नग्नदशा दिगम्बरदशा, एक वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं, पात्र लेने का कहाँ से हो? आहाहा! गौतमस्वामी जैसे पात्र लेकर आहार लेने गये। पानी और आहार। भगवान को बतलाया।

मुमुक्षु : वह वापस भगवान के लिये लेने गये थे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके लिये, स्वयं के लिये लेने गये थे। गौतम तो स्वयं के लिये गये थे।

मुमुक्षु : दवा लेने...

पूज्य गुरुदेवश्री : दवा के लिये दूसरे साधु गये थे। ...

मुमुक्षु : भगवान को बताया क्यों है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहार लेकर लावे बतावे कि इस प्रमाण में ले आया हूँ। ऐसा पाठ है। श्वेताम्बर के उपासक में। गौतमस्वामी लेने गये। बाहर भगवान विचरे थे न गाँव में आहार लेने गये, झोली में पात्र भरकर। उसमें आनन्द श्रावक ने संथारा किया। आनन्द श्रावक आता है उसमें। संथारा करके, उसके पास गये। गये तो कहे, अवधिज्ञान कैसा है तुमको! स्वामी मुझे इतना हुआ। ऐसा अवधिज्ञान नहीं होता, गौतम कहे। महाराज! फिर गौतम कहे प्रायश्चित लो। साहेब! सच्चे का प्रायश्चित खोटे का? इसलिए गौतमस्वामी भगवान के पास गये। भगवान को आहार बताया। महाराज! इस तरह मेरी बात हुई है। यह हुआ है। कहे, तेरी भूल है। उसे अवधिज्ञान हुआ है, वह बराबर हो सकता है। कहो, यह गणधर भी भूले।

मुमुक्षु : ... गणधर भूले।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतनी खबर न हो कि श्रावक हो धर्मी, धर्मात्मा, हों! समकिती

अनुभवी। वाडावाले श्रावक की कहाँ बात है यह ? उसे ऐसा अन्तर से अवधिज्ञान होता है। द्वीप, समुद्र देखे। यह कहे, इतना बड़ा नहीं होता। प्रायश्चित लो, प्रायश्चित सच्चे का या खोटे का ? तुम लो, ऐसा नहीं कहा।

मुमुक्षु : पंचम काल में तो अवधिज्ञान होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले शुरुआत में है यह। पंचम काल के शुरुआत में थे।

यहाँ तो कहते है भाव अन्तर के, आनन्द के और सम्यग्दर्शन और अनुभव बिना अकेला बाह्यलिंग कोई धर्म का कार्य नहीं करता। ऐसे वेश तो अनन्त बार धारण किये। परन्तु वेश होवे तो यही होता है। परन्तु यह वेश भी धर्म का कारण नहीं है। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)